सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी-अनुवादसहिता]



सम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारतीग्रन्थमाला–४०
Bauddha Bharati Series-40

सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहिता]

(१. सगाथवग्गो)

1

प्रधानसम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-४०

सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहिता]

(१. सगाथवग्गो)

प्रथम भाग

सम्पादक एवं अनुवादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारती

वाराणसी

बु० २५४३] सन् २००० ई० [वि० २०५६

Bauddha Bharati Series-40

The SAṀYUTTANIKĀYAPĀLI

(1. Sagātha Vagga)

with

HINDI TRANSLATION

Vol. - 1

Edited & Translated By

Swāmī Dwārikādās Śāstrī

बौद्धभारती

Varanasi

B. 2543] **2000** [V. 2056

प्रकाशक :
बौद्धभारती
पञ्चशील, एस १०/६ ए-२ए,
मकबूल आलम रोड,
(जिला जेल के सामने) वाराणसी-२२१ ००२
फोन : ०५४२-३२९८०४४
मो० : ०९३३६९१२५४७
* * * * * * * * * * * *
पोस्ट बाक्स नं. : १०४९,
वाराणसी-२२१ ००१. (भारत)

Publisher :
Bauddha Bhāratī
S 10/6 A-2A, 'Panchasila'
Maqbool Alam Road,
Opp. Distt. Jail, Varanasi-221 002
Ph. 0542-3298044
Mo. 09336912547
* * * * * * * * * * * *
Post Box No. : 1049,
Varanasi-221 001 (India)

e-mail : bauddhabhrti@satyam.net.in

सहसम्पादक :
धर्मकीर्तिशास्त्री
चन्द्रकीर्तिशास्त्री

प्रथम संस्करण : २००० ई.

First Edition : 2000 E.

Price Rs. 2250/- (In 4 Vol's set)

मुद्रक :
साधना प्रेस
वाराणसी-२२१ ००२

Printed By :
Sadhana Press
Varanasi- 221 002



"एसोहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि, धम्मं च, भिक्खुसङ्घं च।
उपासकं मं, भन्ते, भगवा धारेतु, अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणङ्गतं" ति॥

प्रकाशकीय वक्तव्य

''अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं'' ति

—विनयपिटके, भगवा बुद्धो।

सन् १९५८-१९६१ ई० में पालित्रिपिटकप्रकाशनसमिति, नालन्दा द्वारा सम्पूर्ण त्रिपिटक प्रकाशन में कार्य करते समय से ही हमारा यह सङ्कल्प था कि समस्त त्रिपिटक (बुद्धवचन) का हिन्दी-रूपान्तर (अनुवाद) के साथ भी प्रकाशन होना चाहिये, जिससे वह अन्य भाषाओं के विद्वानों के लिये भी उपयोगी हो सके। परन्तु यह कार्य स्वयं में इतना विशाल, गुरुतर एवं बहुजनसाध्य था कि हमारे जैसा अल्पसाधन वाला एकाकी पुरुष इसके प्रकाशन का साहस नहीं कर पा रहा था।

एतदर्थ, हमने विगत पन्द्रह वर्षों में अत्यधिक प्रयास किया; भारत के केन्द्रीय शिक्षामन्त्रालय से, उ०प्र० शासन के शिक्षाविभाग से, भारत के अनेक साधनसम्पन्न प्रकाशकों से तथा धनपतियों एवं बुद्धिजीवियों से इस कार्य के लिये आर्थिक साधन संगृहीत कराने हेतु निवेदन किया; परन्तु किसी ने भी, इस कार्यहेतु, हमारा उत्साहवर्धन नहीं किया।

अन्त में, हमने विवश होकर, अपने अल्प साधनों के बल पर ही इस कार्य को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। तदनुसार, सर्वप्रथम सुत्तपिटक का **मज्झिमनिकाय** (सम्पूर्ण) हिन्दी अनुवाद के साथ पाँच भागों में प्रकाशित किया, जो कि पाँच वर्ष में पूर्ण हुआ।

तदनन्तर, हमने सुत्तपिटक का **दीघनिकाय** (सम्पूर्ण) (हिन्दी अनुवाद के साथ) तीन भागों में प्रकाशित करने का सङ्कल्प किया।

इस बार हमने पुनः केन्द्रीय शिक्षामन्त्रालय, नई दिल्ली से (सन् १९९६ ई० में) इस ग्रन्थ के प्रकाशनहेतु आर्थिक अनुदान के लिये आवेदन किया। सौभाग्य से, इस बार हमारा यह आवेदन स्वीकृत हो गया और मुद्रण पर होने वाले समग्र व्यय में से ८० प्रतिशत अंश राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से प्राप्त होने की स्वीकृति मिली। एतदर्थ हम उक्त मन्त्रालय के आभारी हैं।

इसी क्रम में हमने समस्त **संयुत्तनिकायपालि** का हिन्दी अनुवाद के साथ चार भागों में प्रकाशन करने का सङ्कल्प किया। दो वर्ष के कठिन परिश्रम एवं प्रयास के बाद, यह ग्रन्थ (चार भागों में सम्पूर्ण) आप के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है। यह ग्रन्थ २२५० पृष्ठों में पूर्ण हो पाया, अतः ग्रन्थ का कलेवर कुछ विशाल हो गया है। परन्तु हमें इस बात की प्रसन्नता है कि यह ग्रन्थ पालि एवं हिन्दी-दोनों भाषाओं में एक साथ सुलभ हो रहा है। इस

तरह, इस ग्रन्थमाला में त्रिपिटक के **सुत्तनिकाय** का बहुत अंश प्रकाशित हो चुका है। अब **अङ्गुत्तरनिकाय** का अनुवाद कार्य हो रहा है। उसे भी यथासम्भव शीघ्र ही मुद्रित-प्रकाशित कराने का हमारा प्रयास है। अस्तु।

यह इस ग्रन्थ का **१. सगाथवग्ग** नामक प्रथम भाग है। इस ग्रन्थ के आदि के ११ संयुक्त संगृहीत हैं। 'मज्झिमनिकाय' एवं 'दीघनिकाय' की तरह इसमें भी हमने पालि-पाठ के लिये बर्मा में हुए छट्ठ सङ्गायन पर आधृत, और श्रीलंका, स्याम (थाईलैण्ड) तथा पालिटैक्स्ट सोसाइटी लन्दन के संस्करणों का सहयोग लेकर १९५९ में 'पालि त्रिपिटक प्रकाशन बोर्ड' नालन्दा से प्रकाशित एवं आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी-संस्करण को आदर्श रूप में रखा है। इसमें हमने बहुत कम परिवर्तन किया है। कहीं कहीं मुद्रणाशुद्धियों के संशोधन के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं किया है।

साथ ही हमने उक्त सभी बर्मा, नालन्दा एवं रोमन संस्करणों की पृष्ठ-संख्या भी रोमन अक्षरों में क्रमश: यथास्थान दे दी है। अनुसन्धाता इससे भी लाभान्वित होंगे।

इसमें हमने आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथा को प्रमाण मान कर अपना स्वतन्त्र **हिन्दी अनुवाद** सम्पन्न करते हुए, उसे पालि-पाठ के साथ नीचे दिया है। इससे पाठकों को पालि एवं उसकी हिन्दी—दोनों ही भाषाएँ अत्यन्त सरलता से हृदयङ्गम हो सकेंगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

यहाँ हमें एक निवेदन अवश्य करना है कि विषय-वैशद्य (बात को समझाने) के लिये त्रिपिटक में विषय का अनुकूल-प्रतिकूल, या आरोह-अवरोह दोनों क्रमों से विस्तृत (अक्षरश:) वर्णन किया जाता है। इस शैली में भाषाच्छटा तो अवश्य आ जाती है, परन्तु इस शब्द-समूह में फँस कर पाठक से मूल विषय दूर दूर सा होने लगता है। इसके लिये पालि-संग्रहकारों ने ऐसे विशेष स्थानों (जहाँ पाठ पुन: पुन: आवृत्त हो) के लिये '...पे०...' की परम्परा रखी है। इस परम्परा का इससे पहले के संस्करणों में निर्भयता से उपयोग हुआ है। इसे हमने भी अपने हिन्दी-अनुवाद में स्वीकार किया है। परन्तु '...पे०...' का अनुवाद हमने '...पूर्ववत्...' करके दिया है, या प्राय: '...' इस चिह्न का प्रयोग किया है, ताकि पाठक प्रसङ्ग के प्रधान विषय से दूर न हो जाय।

यों हमने एक अभिनव पद्धति में बुद्ध-वचन (त्रिपिटक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। यदि विद्वानों को यह पद्धति रुचिकर व अनुकूल प्रतीत हुई तो हम आगामी काल में त्रिपिटक के समग्र ग्रन्थों का प्रकाशन इसी पद्धति से करेंगे।

एक कार्य हमने इस प्रसङ्ग में और किया है। ग्रन्थ में वर्णित सूत्रों का संक्षेप हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ग्रन्थ के प्रारम्भ में दे दिया है, जिससे पाठकों को सूत्रों का वर्ण्य विषय एक ही दृष्टि में हृदयङ्गम हो जाय।

इस तरह, हम इस ग्रन्थमाला को पालि-हिन्दी-इंग्लिश तीनों ही भाषाओं के विद्वानों के लिये उपयोगी बना पाये हैं—ऐसा हमारा विश्वास है।

अन्ते च, इस पवित्र ग्रन्थ का यह अनुवाद हमने स्वकीय ज्ञानवृद्धिहेतु लिखा था, लिखने के बाद यह ध्यान में आया कि यह हमारे समानधर्मा अन्य जिज्ञासुओं का भी अर्थसाधक हो सकता है। इसी उद्देश्य से यह प्रकाशित किया जा रहा है।

इतने विस्तृत अनुवाद में, हो सकता है कहीं परम्परा का निर्वाह न हो पाया हो, एतदर्थ हमारा विज्ञ जनों से विनम्र निवेदन है कि हमारे प्रमाद को क्षमा करते हुए हमें सूचित करने का कष्ट करें; जिससे आगामी संस्करण में उस का परिहार किया जा सके।

वसन्तपञ्चमी, २०५६ वि.
वाराणसी

विद्वद्वशंवद
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

निदानकथा

आज से प्राय: २५०० वर्ष पूर्व लोकशास्ता भगवान् बुद्ध ने, बुद्धत्वप्राप्ति के बाद मध्यमण्डल में चारिका करते हुए निरन्तर ४५ वर्षों तक उस समय की लोकभाषा में, बहुजनहिताय बहुजनसुखाय जो उपदेश किया था, सौभाग्य से त्रिपिटिक के रूप में वह आज भी सुरक्षित है। वे चाहते थे कि उनका सन्देश जनसाधारण तक पहुँचे, इसके लिये स्वयं उन्होंने लोकभाषा (अर्धमागधी) में उपदेश किया और साथ ही अपने शिष्यों को भी यह अनुमति प्रदान की कि वे उनके उपदेशों को अपनी अपनी भाषा में परिवर्तित कर धारण कर सकते हैं। हो सकता है उन दिनों तत्कालीन अनेक भाषाओं में बुद्धवचनों के संग्रह हुए हों; किन्तु आज जो बुद्धवचन हमें मिलते हैं, वे एक ही भाषा में हैं, जिसे हम 'पालिभाषा' कहते हैं। कालान्तर में इसी भाषा में विस्तृत साहित्य की रचना हुई। त्रिपिटक पर अट्ठकथाएँ और इन अट्ठकथाओं पर टीका, अनुटीका, मधुटीका, योजना, गण्ठी आदि अनेक टीका-ग्रन्थ समय समय पर निर्मित हुए। इनके अतिरिक्त अनुपिटक और उन पर अट्ठकथा, टीका आदि प्रचुर साहित्य भी हमें इसी पालिभाषा में मिलता है। यह सम्पूर्ण साहित्य बर्मा, श्रीलङ्का, श्याम, कम्बोज आदि बौद्ध देशों में आज भी न केवल सुरक्षित ही है; अपितु अध्ययन-अध्यापन तथा नये नये ग्रन्थलेखन आदि द्वारा दिनानुदिन वृद्धिङ्गत भी हो रहा है। वहाँ के मनीषी इस साहित्य की उसी प्रकार सुरक्षा कर रहे हैं, जिस प्रकार भारत में वेद और उसके उपजीव्य साहित्य की या अन्यत्र बाइबिल और कुरान साहित्य की सुरक्षा की जा रही है।

त्रिपिटक—सम्बोधिप्राप्त्यनन्तर भगवान् बुद्ध ने ४५ वर्ष के सुदीर्घकाल में जो कुछ भी धर्मप्रवचन किया, वह इतना विशाल विस्तृत एवं बहुआयामी था कि स्थूल या सूक्ष्म रूप से कुछ विभाजन किये विना उस के आदि अन्त का छोर प्राप्त करना साधारण जिज्ञासु के लिये बहुत कठिन कार्य था, अत: भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के अनन्तर सङ्गीतिकारों ने सर्वप्रथम इस विशाल धर्मप्रवचन का एक सरल वर्गीकरण तीन भागों में किया; जैसे—१. **विनयपिटक**, २. **सुत्तपिटक** एवं ३. **अभिधम्मपिटक**। इन में प्रथम 'विनयपिटक' में पाँच ग्रन्थ हैं, इन सभी में भिक्षुसङ्घ एवं भिक्षुणीसङ्घ के लिये प्रोक्त छोटे बड़े सभी पालनीय नियम तथा धर्मानुशासन संगृहीत हैं। तथा जिस भाग में विद्वानों एवं साधारण समाज के लिये उपदेश संगृहीत हैं उसे 'सुत्तपिटक' नाम दिया गया। तथा जिस भाग में केवल विद्वानों एवं साधकों द्वारा समझने योग्य गम्भीर दार्शनिक सिद्धान्त उपदिष्ट हैं उसे 'अभिधम्मपिटक' संज्ञा दी गयी। ये तीनों पिटक भी, आगे चल कर अनेक उपविभागों में विभक्त किये गये। इस समस्त प्रवचनसंग्रह को **त्रिपिटक** कहते हैं।

'त्रिपिटक' के ग्रन्थों का विभाजन

त्रिपिटक

विनयपिटक

१. महावग्ग
२. चुल्लवग्ग
३. पाराजिक
४. पाचित्तिय
५. परिवार

सुत्तपिटक

१. दीघनिकाय
२. मज्झिमनिकाय
३. संयुत्तनिकाय
४. अङ्गुत्तरनिकाय
५. खुद्दकनिकाय

(१) खुद्दकपाठ
(२) धम्मपद
(३) उदान
(४) इतिवुत्तक
(५) सुत्तनिपात
(६) विमानवत्थु
(७) पेतवत्थु
(८) थेरगाथा
(९) थेरीगाथा
(१०) जातक
(११) निद्देस
(१२) पटिसम्भिदामग्ग
(१३) अपदान
(१४) बुद्धवंस
(१५) चरियापिटक

अभिधम्मपिटक

१. धम्मसङ्गणि
२. विभङ्ग
३. धातुकथा
४. पुग्गलपञ्ञत्ति
५. कथावत्थु
६. यमक
७. पट्ठान

सुत्तपिटक के ग्रन्थों का परिचय

प्रस्तुत **संयुक्तनिकाय** ग्रन्थ त्रिपिटक के अन्तर्गत **सुत्तपिटक** का तीसरा ग्रन्थ है। जिसका कि यह वर्तमान संस्करण इस ग्रन्थमाला में चार भागों में मुद्रित एवं प्रकाशित किया जा रहा है।

सुत्तपिटक का संग्रह : सुत्तपिटक के ग्रन्थों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि इन का संग्रह न तो विषयविभाजन की दृष्टि से न काल के पौर्वापर्य की दृष्टि से ही किया गया है। उस समय संग्रहकारों की दृष्टि में सर्वप्रथम एवं महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि इस विशाल बुद्धप्रवचन की परम्परा किस तरह सुरक्षित रखी जाय। उस समय लेखनकला से परिचय होने पर भी सम्बद्ध उपकरणों की प्रचुरता न होने के कारण, एतदर्थ संग्रहकर्ताओं को श्रुतिपरम्परा का ही आश्रय लेना पड़ा। सम्भवत: इसी लिये सूत्रों के आकार का ध्यान सब से अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया। अत एव उन्होंने सर्वप्रथम **दीघनिकाय** ग्रन्थ में सुदीर्घ (लम्बे) आकार वाले सूत्रों का, तब उस के बाद उस निकाय की अपेक्षा कम, अर्थात् मध्यम आकार वाले सूत्रों का संग्रह **मज्झिमनिकाय** नाम से किया। अवशिष्ट छोटे बड़े सूत्रों का संग्रह इस **संयुक्तनिकाय** नाम से किया गया।

संयुक्तनिकाय का विषयविभाजन

यद्यपि सुत्तपिटक के अन्य ग्रन्थों—दीघनिकाय एवं मज्झिमनिकाय में विषयविभाजन की दृष्टि से सूत्रों के सङ्कलन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया—ऐसा प्रतीत होता है। वहाँ एक दार्शनिक विवेचना वाले सूत्र की समाप्ति के तत्काल बाद किसी जातिवादखण्डनपरक सूत्र का आरम्भ देखा जाता है, तदनन्तर अनुपद में ही कोई अन्य हिंसामय यज्ञ का खण्डनपरक सूत्र आरम्भ कर दिया गया है; परन्तु इस **संयुत्तनिकाय** ग्रन्थ में ऐसा नहीं हुआ है। यहाँ सब कुछ क्रमबद्ध एवं पृथक् पृथक् विषयबद्ध संग्रह दिखायी देता है।

प्रथम विभाजन : यह ग्रन्थ सर्वप्रथम **पाँच वर्गों की दृष्टि से** विभाजित किया गया। अत: इस का प्रथम स्थूल विभाजन वर्गों को ध्यान में रख कर किया गया। यों, यह ग्रन्थ प्रथमत: पाँच वर्गों में विभक्त किया गया—१. सगाथवर्ग, २. निदानवर्ग, ३. स्कन्धवर्ग, ४. षडायतनवर्ग एवं ५. महावर्ग।

यहाँ प्रथम **सगाथवर्ग** में उन्हीं सूत्रों का संग्रह है, जिन में विषयों का विवेचन गाथाओं के माध्यम से किया गया है, जैसे सगाथवर्ग में परिगणित देवतासंयुक्त एवं

देवपुत्रसंयुक्त में प्रत्येक विषय का विवेचन गाथाओं के माध्यम से हुआ है अतः वैसे सभी सूत्रों का संग्रह इसी सगाथवर्ग में किया गया है। द्वितीय **निदानवर्ग** में सभी प्रकार के, प्रतीत्यसमुत्पाद आदि भव-कारणबोधक सूत्रों का संग्रह किया गया है। तृतीय **स्कन्धवर्ग** में परिगणित सभी सूत्रों में पाँचों उपादानस्कन्धों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान) का विस्तृत निरूपण किया गया है। चतुर्थ **षडायतनवर्ग** में चक्षुरायतन, श्रोत्रायतन आदि छह आयतनों का सर्वथा सर्वविध रूप से विस्तृत वर्णन हुआ है। और अन्तिम (पञ्चम) वर्ग **महावर्ग** में आर्यसत्यचतुष्टय, आर्यअष्टाङ्गिक मार्ग, सात बोध्यङ्ग, चार स्मृत्युपस्थान, इन्द्रिय, बल आदि बौद्धदर्शन के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का विवेचन विस्तृत रूप से संगृहीत हैं। इस प्रकार समग्र त्रिपिटक में, सुव्यवस्थित व्याख्यान की दृष्टि से संयुक्तनिकाय का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

द्वितीय विभाजन : सङ्गीतिकारों ने सरल विवेचन को ध्यान में रख कर इस ग्रन्थ का **संयुक्तों** के रूप में भी विभाजन किया। यों, यह ग्रन्थ **देवतासंयुक्त** आदि छप्पन (५६) संयुक्तों के माध्यम से भी विभक्त हुआ। इन सभी संयुक्तों को अनुपद में ही प्रत्येकशः स्पष्ट किया जायगा। इन संयुक्तों की विशेषता यह है कि जिस संयुक्त का वर्णन हो रहा है उस में उसी से सम्बद्ध विषय की चर्चा है। वहाँ अन्य किसी विषय की चर्चा करना भी अप्रासङ्गिक समझा गया।

तृतीय विभाजन : इस ग्रन्थ का तृतीय विभाजन सूत्रों की दृष्टि से किया गया है। यहाँ एक सूत्र में एक ही विषय का वर्णन है, अनेक विषयों का एक साथ नहीं। साथ ही, प्रत्येक सूत्र के आरम्भ में सामान्यतः, संक्षेप में उस स्थान, काल, व्यक्तिविशेष तथा परिस्थितिविशेष का भी निर्देश कर दिया है कि कहाँ, कब एवं किन परिस्थितियों में भगवान् ने उन सूत्रों का प्रवचन किया। इस पद्धति से अनुसन्धाता को उस सूत्र के प्रवचन के कालनिर्धारण में बहुत सुविधा मिलेगी। फिर कोई जिज्ञासु यदि अपनी जिज्ञासा गाथा या गद्य में प्रकट करता है तो भगवान् भी उस का उत्तर गद्य या पद्य में ही देते हैं। इस पद्धति से संवाद में प्राञ्जलता आ जाती है। इस तरह यह ग्रन्थ सभी पाठकों के लिये हृदयग्राही बन गया है।

उक्त पञ्चविध वर्गविभाजन को कुछ अधिक स्पष्ट रूप से यों समझ लें—

संयुक्त निकाय में सूत्रों की सम्पूर्ण संख्या २९४५ है, जो पाँच वर्गों में एवं छप्पन संयुत्तों में इस प्रकार विभक्त है—

१. सगाथवर्ग — (सूत्रसङ्ख्या २७१)

१.देवतासंयुत्त, २. देवपुत्तसंयुत्त, ३. कोसलसंयुत्त, ४. मारसंयुत्त, ५. भिक्खुनीसंयुत्त, ६. ब्रह्मसंयुत्त, ७. ब्राह्मणसंयुत्त, ८. वङ्गीससंयुत्त, ९. वनसंयुत्त, १०. यक्खसंयुत्त, ११. सक्कसंयुत्त।

२. निदानवर्ग — (सूत्रसङ्ख्या २९६)

१२. निदानसंयुत्त, १३. अभिसमयसंयुत्त, १४. धातुसंयुत्त, १५. अनमतग्गसंयुत्त, १६. कस्सपसंयुत्त, १७. लाभसक्कारसंयुत्त, १८. राहुलसंयुत्त, १९. लक्खणसंयुत्त, २०. ओपम्मसंयुत्त, २१. भिक्खुसंयुत्त।

३. स्कन्धवर्ग — (सूत्रसङ्ख्या ७१६)

२२. खन्धसंयुत्त, २३. राधसंयुत्त, २४. दिट्ठिसंयुत्त, २५. ओक्कन्तसंयुत्त, २६. उप्पादसंयुत्त, २७. किलेससंयुत्त, २८. सारिपुत्तसंयुत्त, २९. नागसंयुत्त, ३०. सुपण्णसंयुत्त, ३१. गन्धब्बसंयुत्त, ३२. वलाहकसंयुत्त, ३३. वच्छगोत्तसंयुत्त, ३४. झानसंयुत्त।

४. षडायतनवर्ग — (सूत्रसङ्ख्या ४३८)

३५. सळायतनसंयुत्त, ३६. वेदनासंयुत्त, ३७. मातुगामसंयुत्त, ३८. जम्बुखादकसंयुत्त, ३९. सामण्डकसंयुत्त, ४०. मोग्गल्लानसंयुत्त, ४१. चित्तसंयुत्त, ४२. गामणीसंयुत्त, ४३. असङ्खतसंयुत्त, ४४. अब्याकतसंयुक्त।

५. महावर्ग — (सूत्रसङ्ख्या १२२४)

४५. मग्गसंयुत्त, ४६. बोज्झङ्गसंयुत्त, ४७. सतिपट्ठानसंयुत्त, ४८. इन्द्रियसंयुत्त, ४९. सम्मप्पधानसंयुत्त, ५०. बलसंयुत्त, ५१. इद्धिपादसंयुत्त, ५२. अनुरुद्धसंयुत्त, ५३. झानसंयुत्त, ५४. आनापानसंयुत्त, ५५. सोतापत्तिसंयुत्त, ५६. सच्चसंयुक्त।

इन संयुत्तों के अन्तर्गत भी अपने प्रकार से विभाजन और वर्गीकरण किये गये हैं, जिनका विचार करना बहुत आवश्यक नहीं है॥

१. सगाथवर्ग

प्रथम वर्ग, सगाथवर्ग, का नाम ही सिद्ध करता है कि इस के सूत्रों में गाथाओं से प्रश्नोत्तरमय संवाद का प्रयोग होगा; यही इस की विशेषता है। सूत्रों के प्रारम्भ में उन स्थान, काल, व्यक्ति तथा अवस्था का परिचय दिया गया है जहाँ, जब, जिन्हें और जिन परिस्थितियों में भगवान् ने वे उपदेश दिये। तब, साधारणतः कोई पुद्गल गाथाओं में कुछ विशेष प्रश्न उपस्थित करता है और भगवान् गाथाओं में ही तदनुरूप उत्तर देते हैं। इस वर्ग की समस्त सूत्रसंख्या २७१ है।

२. निदानवर्ग

निदानवर्ग में कुल २९६ सूत्र हैं। इन का विषय है—संसार-चक्र की व्याख्या करना। यह व्याख्या प्रतीत्यसमुत्पादसिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है। इस सिद्धान्त को बौद्ध दर्शन का हृदय माना गया है।

सिद्धान्त यह है कि मनुष्य जिस तृष्णा को ले कर मरता है उसी की प्रेरणा से वह अपने कर्मानुसार पुनः जन्म ग्रहण करता है। जिस ने तृष्णा का सर्वथा प्रहाण कर दिया वह वीततृष्ण चित्त से मरता है और इस कारण वह पुनः कोई जन्म ग्रहण नहीं

करता। तृष्णा का कारण है हमारी अपनी अविद्या। यथार्थ में सभी वस्तुएँ अनित्य, असार (=अनात्म) और दुःखपूर्ण हैं। इस सत्य का साक्षात्कार न होने के कारण मनुष्य संसार की वस्तुओं को नित्य, सारवान् और सुखपूर्ण समझ कर उन के पीछे दौड़ता है। यही अज्ञान 'अविद्या' है।

अविद्या से मनुष्य नाना प्रकार की तृष्णाएँ करता है और उन की पूर्ति के लिये सुकर्म और कुकर्म करता है। इन कर्मों के संस्कार उस के चित्त में एकत्र होते रहते हैं। जन्म भर के एकत्र संस्कारों के अनुरूप उस का चित्त-प्रवाह अच्छी या बुरी योनि में प्रवाहित होता है। माता के गर्भ से जो उस का पहला चित्तक्षण उत्पन्न होता है उसे 'विज्ञान' कहते हैं। 'विज्ञान' के उत्पन्न होने से चक्षु श्रोत्र आदि इन्द्रियों का विकास होता है। समय पा कर गर्भ क्रमशः परिपक्व हो जाता है और नये जन्म में अवतरित होता है। इन्द्रियों का सम्पर्क अपने अपने विषयों से होता है, और उसे सुख, दुःख या उपेक्षा की वेदना होती है। वेदना से विषय के प्रति तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णा से वह विषयों के प्रति आसक्त हो जाता है, जिसे 'उपादान' कहते हैं। इस से वह अनेक प्रकार के कर्म करने लगता है और इस प्रकार संसार का यह चक्र चलता रहता है।

जब मनुष्य धर्मज्ञान प्राप्त कर शुद्ध आचरण पर प्रतिष्ठित हो चित्त की समाधि का लाभ कर सत्तामात्र के यथार्थ स्वरूप—अनित्य, अनात्म, दुःख—का साक्षात्कार कर लेता है तब उस की अविद्या नष्ट हो जाती है। अविद्या के न होने से उसे संसार के विषयों के प्रति तृष्णा नहीं होती। वह उन के पीछे नहीं लगता। उस के कर्म तृष्णारहित होने के कारण संस्कार संचित नहीं होते। कर्म-संस्कार न होने से, मरने के बाद, उस का चित्तप्रवाह निरुद्ध हो जाता है। यही निर्वाण है।

प्रतीत्यसमुत्पाद में यही बात बारह कड़ियों में बतायी गयी है, जिन्हें 'द्वादश निदान' भी कहते हैं। इन बारह निदानों का क्रम इस प्रकार व्यक्त किया जाता है—

"अविद्या के होने से संस्कार होता है। संस्कार के होने से विज्ञान होता है, विज्ञान के होने से नाम-रूप होते हैं, नाम-रूप के होने से षडायतन होता है, षडायतन के होने से स्पर्श होता है, स्पर्श के होने से वेदना होती है, वेदना के होने से तृष्णा होती है, तृष्णा के होने से उपादान होता है, उपादान के होने से भव होता है, भव के होने से जन्म होता है, जन्म के होने से बुढ़ापा, मरना, शोक, रोना, पीटना, दुःख और खिन्नता होती है। इस तरह समस्त दुःख-पुञ्ज का उदय होता है"। इस क्रम को अनुलोम प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं। प्रतिलोम प्रतीत्यसमुत्पाद का रूप इस प्रकार है—

"अविद्या के रुक जाने से संस्कार भी रुक जाते हैं, संस्कारों के रुक जाने से विज्ञान भी रुक जाता है, विज्ञान के रुक जाने से नाम-रूप भी रुक जाते हैं, नाम-रूप के रुक जाने से षडायतन रुक जाता है, षडायतन के रुक जाने से स्पर्श रुक जाता है, स्पर्श

के रुक जाने से वेदना रुक जाती है, वेदना के रुक जाने से तृष्णा रुक जाती है, तृष्णा के रुक जाने से उपादान रुक जाता है, उपादान के रुक जाने से भव रुक जाता है, भव के रुक जाने से जन्म रुक जाता है, जन्म के रुक जाने से बुढ़ापा, रोग आदि सभी दुःख रुक जाते हैं। यही निर्वाण की अवस्था है।

सम्पूर्ण निदानवर्ग में इसी सिद्धान्त पर भिन्न-भिन्न दृष्टियों से विचार किया है। प्रतीत्यसमुत्पाद की ग्रन्थियों को स्पष्टतः समझने के लिये निदानवर्ग अत्यन्त सहायक और प्रामाणिक स्थल है।

३. स्कन्धवर्ग

बौद्ध दर्शन के अनुसार ऐसी कोई सत्ता नहीं है जो शुद्ध इकाई हो, जो विना अवयवसंयोग के बनी हो। इसी सिद्धान्त को 'अनात्मवाद' कहते हैं, जो मनुष्य के व्यक्तित्व पर उसी प्रकार चरितार्थ होता है जिस प्रकार किसी भौतिक वस्तु पर। तभी तो सगाथवर्ग के **वजिरासुत्त** में कहा है—''जैसे अपने अवयवों के आधार पर 'यह रथ है' ऐसी ख्याति होती है वैसे ही पाँच स्कन्धों के आधार पर 'यह प्राणी है' ऐसा जाना जाता है''। ये पाँच स्कन्ध क्या हैं? प्राणी के शरीर और मन की जो अवस्थाएँ हैं उन्हीं को हम पाँच स्कन्धों में विभक्त कर समझते हैं। शरीर की समग्र अवस्थाओं को रूप-स्कन्ध में, सुख-दुःख-उपेक्षा की समस्त अवस्थाओं को वेदना-स्कन्ध में, चिह्न देख कर वस्तुओं को पहचान लेने की अवस्थाओं को संज्ञा-स्कन्ध में, प्राणी की समस्त प्रवृत्तियों को संस्कार-स्कन्ध में, और सभी तरह की मनःस्थितियों को विज्ञान-स्कन्ध के अन्तर्गत मानते हैं।

ये पाँच स्कन्ध भी अत्यन्त अनित्य और अनात्म हैं, और वे किसी स्थिर सुख का आश्वासन नहीं दे सकते। अज्ञानवश मनुष्य इन स्कन्धों के प्रति आसक्ति से भ्रान्त होता रहता है। अतः पाँच स्कन्धों को 'पञ्च उपादान-स्कन्ध' कहते हैं। स्कन्धवर्ग के समस्त सूत्रों का सार यही है।

स्कन्धवर्ग के नाम से कोई आशा कर सकता है कि इस में इस की दार्शनिक व्याख्या होगी कि इन स्कन्धों में किन धर्मों का संग्रह होता है। किन्तु समस्त वर्ग में यह प्रश्न कहीं नहीं उठाया गया। बस, बार बार यही दुहराया गया है कि रूप अनित्य है, अनात्म है, दुःख है; वेदना अनित्य है, अनात्म है, दुःख है; संज्ञा अनित्य है, अनात्म है, दुःख है; और विज्ञान अनित्य है, अनात्म है, दुःख है। और इस कारण उन के प्रति विरक्त होना चाहिये—यही निर्वाण का मार्ग है।

पाँच स्कन्धों की उपमा भार से और निर्वाण की उपमा इस भार से मुक्त होने से दी गयी है। **भार-सुत्त** में कहा है—

''ये पाँच स्कन्ध भार हैं, पुरुष भारवहन करने वाला है।

संसार-दु:ख ही भार का उठाना है, इस भार का उतार देना ही सुख है॥
भिक्षु भार के बोझ को उतार कर दूसरा भार नहीं लेता है।
तृष्णा को जड़ से उखाड़ कर दु:खमुक्त निर्वाण पा लेता है"।

४. षडायतनवर्ग

षडायतन-वर्ग के विषय एवं सिद्धान्त तथा शैली भी वही है जो 'खन्धवग्ग' में हम देख चुके हैं। प्राणी शारीरिक और मानसिक धर्मों के सङ्घात से बना है और उस में कोई शुद्ध एकरस रहने वाला शाश्वत अंश—आत्मा, जीव या पुरुष नहीं है। इसी सिद्धान्त से पञ्चस्कन्धवाद और षडायतनवाद—दोनों के सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं। अन्तर केवल यह है कि जहाँ पञ्चस्कन्धवाद में प्राणी के समस्त भौतिक धर्मों का सन्निवेश एक ही रूप-स्कन्ध में कर लिया है, वहाँ षडायतनवाद के विभाजन में उसे चक्षु-रूप, श्रोत्र-शब्द, घ्राण-गन्ध, जिव्हा-रस, काय-स्पर्श, इतने विभागों में बाँटा है; इसी तरह वेदना-स्कन्ध, संज्ञा-स्कन्ध और संस्कार-स्कन्ध—इन तीन स्कन्धों का सन्निवेश एक ही धर्मायतन में किया है। विज्ञान-स्कन्ध का विभाग भी वही है जो मनआयतन का है। इस तरह, यह स्पष्ट होता है कि एक प्राणी के ही व्यक्तित्व का विश्लेषण एक दृष्टि से पाँच स्कन्धों में तथा दूसरी दृष्टि से बारह आयतनों में हुआ है।

फिर उसी विश्लेषण का एक तीसरा प्रकार है जो प्राणी को अठारह धातुओं में विभक्त कर देता है। जैसे—

१. चक्षु	२. रूप	३. चक्षुर्विज्ञान
४. श्रोत्र	५. शब्द	६. श्रोत्रविज्ञान
७. घ्राण	८. गन्ध	९. घ्राणविज्ञान
१०. जिव्हा	११. रस	१२. जिव्हाविज्ञान
१३. काय	१४. स्पर्श	१५. कायविज्ञान
१६. मन	१७. धर्म	१८. मनोविज्ञान

यहाँ रूप-स्कन्ध के विभाजन उसी प्रकार हैं जैसे षडायतन में। धर्मायतन और धर्मधातु एक ही वस्तु हैं। विज्ञानस्कन्ध इन सात धातुओं में विभक्त हुआ है—

चक्षुर्विज्ञानधातु, श्रोत्रविज्ञानधातु, घ्राणविज्ञानधातु, जिव्हाविज्ञानधातु, कायविज्ञान-धातु, मनोविज्ञानधातु, और मनोधातु।

बौद्ध दर्शन में स्कन्ध-आयतन-धातु के सिद्धान्त को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यहाँ तक कि इन के परस्पर अन्तर्भाव को यथाविधि समझने के लिये अभिधम्म-पिटक में एक स्वतन्त्र प्रकरण **धातुकथा-प्रकरण** को स्थान दिया है।

संयुक्तनिकाय के इन वर्गों में उस के दार्शनिक विश्लेषण पर उतना ध्यान न दे

कर, इस बात पर बल दिया गया है कि वे स्कन्ध या आयतन या धातु, अनित्य-अनात्म और दुःख हैं तथा यह कि उन में किसी सुखस्वरूप स्थिर आत्मतत्त्व की गवेषणा करना भ्रममूलक है, जो समस्त अनर्थ का कारण होता है॥

५. महावर्ग

इस वर्ग में समग्रतया बारह (१२) संयुक्त हैं; इन सभी में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं तत्सम्बन्धी साधना के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं; जैसे—आर्यसत्यचतुष्टय, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, जिसे साहित्यिक भाषा में 'ब्रह्मयान' भी कहा गया है, चार स्मृत्युपस्थान, सात बोध्यङ्ग, पाँच इन्द्रियाँ, चार सम्यक्प्रधान, चार बल, चार ऋद्धिपाद एवं आनापानस्मृति।

प्रसङ्गवश, इसी वर्ग में आयुष्मान् सारिपुत्र का परिनिर्वाण भी वर्णित है, जिस के माध्यम से भगवान् बुद्ध ने भिक्षु द्वारा अवश्य प्राप्तव्य शील आदि गुणों की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

साथ ही, इसी वर्ग में भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट 'धर्मचक्रप्रवर्तनसूत्र' भी, महत्त्वशाली होने के कारण, पुनः अक्षरशः वर्णित है, जो विनयपिटक के **महावग्ग** में इसी नाम से आ चुका है। यह (धर्मचक्रप्रवर्तन) सूत्र बौद्ध सिद्धान्तों का बीजमन्त्र है, इसी लिये इस का वर्णन बौद्धसाहित्य (त्रिपिटक) में अनेक स्थानों पर अक्षरशः आया है। अस्तु॥

कुछ प्रमुख बौद्ध सिद्धान्त

अब हम इस महावर्ग में वर्णित कुछ प्रमुख बौद्ध सिद्धान्तों की चर्चा, संक्षेप में, करेंगे, जिस से बौद्ध साहित्य के साधारण जिज्ञासु पाठक का भी एतद्विषयक ज्ञान कुछ वृद्धिङ्गत हो सके। आर्यसत्यचतुष्टय के वर्णन से ही इसे आरम्भ करना उचित लगता है; क्योंकि इस दर्शन को समझने का यही क्रम है। अतः सर्वप्रथम उस का ही वर्णन आरम्भ किया जा रहा है।

१. आर्य सत्यचतुष्टय

भगवान् बुद्ध ने जनता को सर्वप्रथम शील (सदाचार) पालन के लिये दृढ़ता से समझाया और इन्होंने पाँच नियम ऐसे सुझाये, जिनका पालन जनता को दृढ़ता से करना ही पड़ता था। जैसे—१. अहिंसा, २. सत्यभाषण, ३. अस्तेय (चोरी न करना), ४. ब्रह्मचर्यपालन (परस्त्रीगमन का निषेध) एवं ५. मद्यपान का निषेध। इन पाँच नियमों को 'पञ्चशील' कहा गया है। भगवान् बुद्ध के मत में इस **पञ्चशील का पालन** प्रत्येक पुरुष के लिये आवश्यक है, फिर भले ही वह गृहस्थ हो या प्रव्रजित। भगवान् बुद्ध इस 'पञ्चशील' के पालन हेतु अपने सभी प्रवचनों में दृढ़ता से आग्रह करते थे।

तब भगवान् बुद्ध श्रद्धालु जनता को इस सद्धर्म की दूसरी सीढ़ी (सोपान) का उपदेश प्रारम्भ करते थे जो साधक को बौद्ध धर्म की साधना की ओर प्रेरित करने वाला होता था। जैसे—"इस धर्म की साधना से साधक को स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि यह समग्र दृश्यमान जगत् '**दुःख**' है; इस दुःख की उत्पत्ति का कोई न कोई कारण '**समुदय**' भी अवश्य है; (प्रयास करने पर) उस दुःख का '**निरोध**' (नाश) भी किया जा सकता है और उस '**निरोध का मार्ग**' (उपाय) भी तथागत ने अभिसम्बुद्ध कर लिया है।"

भगवान् इस दुःखनिरोध के लिये जो मार्ग बताते थे, उसके ये आठ अङ्ग (आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग) होते थे। जैसे— १. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्मान्त, ५. सम्यगाजीव, ६. सम्यग्व्यायाम, ७. सम्यक्स्मृति एवं ८. सम्यक्समाधि। विशुद्ध ज्ञानप्राप्ति का यह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही एकमात्र साधन है, अन्य कोई नहीं।

२. आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग

१. सम्यग्दृष्टि— भगवान् कहते हैं कि जो तत्त्वचिन्तक स्वचिन्तन से प्राणातिपात अकुशल; लोभ आदि अकुशलमूल; प्राणातिपात-त्याग आदि कुशल; अलोभ आदि कुशलमूल कर्मों एवं चार आर्यसत्यों को भली भाँति (उचित पद्धति से) जान लेता है वही 'सम्यग्दृष्टि' कहलाता है।

'यह लोक शाश्वत है या अशाश्वत' आदि मिथ्यादृष्टियाँ (धारणाएँ) रखना जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य को ही निमन्त्रण देना है। सत्कायदृष्टि आदि छह संयोजन नष्ट कर वह स्रोतआपन्न (निर्वाण मार्ग पर चलने वाला) बन जाता है।

भगवान् अवतार लें या न लें, उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म तो बने ही रहते हैं। अतः सम्यग्दृष्टिचिन्तक को उन्हीं उपदेशों पर निरन्तर चिन्तन-मनन करना चाहिये। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान— ये सब अनित्य हैं, विनाशी हैं। भगवदुक्त इस मान्यता पर सभी पण्डितजन एकमत हैं। जिसके यह बात समझ में न आये या जो इन्हें नित्य एवं अविनाशी समझे, वह मूर्ख या बाल ही है।

भगवान् कहते हैं कि 'वही जीव है, वही शरीर है' या 'जीव अन्य है, शरीर अन्य'— ऐसी धारणा रखने पर मेरे बताये धर्म की वास्तविक साधना नहीं हो सकती। इसलिये इन दोनों अन्तों (मर्यादाओं=किनारों) की मिथ्या बातों को छोड़कर, तथागत मध्यममार्ग से धर्मोपदेश करते हैं। वह उपदेश यों है—

प्रतीत्यसमुत्पाद— अविद्या के होने (प्रत्यय) से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नामरूप, नामरूप के होने से छह आयतन, छह आयतनों के होने से (विषय-) स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना (अनुभूति), वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से जरा (बुढ़ापा), मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, मानसिक चिन्ता तथा उद्विग्नता होती है। इस प्रकार इस समग्र दुःखस्कन्ध की उत्पत्ति होती है।

अविद्या के निरोध से समग्र वैराग्य एवं संस्कारों का निरोध होता है, संस्कारों के निरोध से विज्ञान का निरोध, विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध, नामरूप के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव का निरोध, भव के निरोध से जन्म का निरोध, जन्म के निरोध से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख एवं उद्विग्नता का निरोध होता है। इस प्रकार इस समग्र दुःखस्कन्ध का निरोध होता है।

अविद्या और नीवरणों (दोषों) से युक्त प्राणी तृष्णा के बन्धन में बँधे हुए, यहाँ वहाँ आसक्त होते रहते हैं— इस प्रकार उनको बार बार जन्म लेना पड़ता है।

लोभ द्वेष मोह के परिणाम एवं लोभ द्वेष मोह के कारण किये गये कर्म का, जहाँ उसका अस्तित्व बनता है वहीं विपाक होता है। जहाँ वह कर्मविपाक होता है वहीं उस कर्मविपाक की अनुभूति (भोग) भी होती है, भले ही वह इस जन्म में हो या किसी दूसरे जन्म में।

परन्तु अविद्या के नाश से विद्या का उत्पाद एवं तृष्णा का निरोध हो जाने पर पुनर्जन्म की कोई सम्भावना नहीं रहती। अलोभ अद्वेष अमोह का परिणाम, अलोभ अद्वेष अमोह के कारण किया गया, अलोभ अद्वेष अमोह से उत्पन्न कर्म लोभ द्वेष और मोह के विनष्ट हो जाने पर स्वयं भी नष्ट हो जाता है, मूल से समाप्त हो जाता है, भविष्य में उसके पुनरुत्पाद की कोई सम्भावना नहीं रहती।

२. सम्यक्सङ्कल्प— १. नैष्कर्म्यसङ्कल्प २. अव्यापादसङ्कल्प एवं ३. अविहिंसा-सङ्कल्प— ये त्रिविध सङ्कल्प सम्यक्सङ्कल्प कहलाते हैं। भगवान् के मत में वह सर्वोत्कृष्ट सम्यक्सङ्कल्प है, जिससे, उनका उपदेश सुनने के बाद, आर्यश्रावक को अपना गृहद्वार तथा सांसारिक व्यवहार छोड़कर प्रव्रज्या लेने का मन होने लगे।

३. सम्यग्वाक्— यहाँ कोई साधक असत्यभाषण त्यागकर, उससे दूर रहता है और सत्यवादी, सत्यभाषण में विश्वास करता हुआ, यथार्थ वचन से जनता का विश्वासपात्र बन जाता है। उससे यदि किसी सभा, जनसमूह या राजदरबार में किसी बात के विषय में पूछा जाय तो उसने जो सुना या देखा हो वही कहता है, झूठ नहीं बोलता। वह किसी की चुगली कर एक दूसरे को नहीं लड़ाता, कठोर वाणी नहीं बोलता, व्यर्थ प्रलाप (बकवाद) नहीं करता, विरोधियों (चोर-लुटेरों) द्वारा पीटे जाने पर भी उनके विरुद्ध मन में विकार नहीं लाता— वही 'सम्यग्वाक्' कहलाता है। अतः तत्त्वचिन्तक को समूह में पड़ने पर दो ही बात करनी चाहिये— या तो धार्मिक संवाद या फिर मौन धारण।

४. सम्यक्कर्मान्त— जो व्यक्ति सन्मार्ग पर चलने की इच्छा रखता हुआ हिंसा, चोरी, व्यभिचार, फिर वह भले ही किसी भी कैसी भी परायी स्त्री के साथ क्यों न हो, को छोड़कर अहिंसारत रहता है, दूसरे से दी हुई चीज को ही लेता है, बलपूर्वक नहीं

और सभी प्रकार के व्यभिचार से दूर रहता है, वही 'सम्यक्कर्मान्त' (उचित कर्म करने वाला) कहलाता है।

५. सम्यगाजीव— यहाँ कोई आर्यश्रावक मिथ्या आजीव (आजीविका= जीवनयापनवृत्ति) को छोड़कर, उचित आजीविका से जीवनयापन करता है यह 'सम्यक्-आजीव' कहलाता है। [धर्म के उपासक को ये पाँच दूषित व्यापारिक वृत्ति निषिद्ध बतायी गयी हैं— शस्त्र का व्यापार, प्राणियों का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य (शराब) का व्यापार एवं जहरीली चीजों का व्यापार।]

६. सम्यग्व्यायाम— सम्यग्व्यायाम से तात्पर्य है, सम्यक्प्रयत्न। [व्यायाम, प्रधान और प्रयत्न—ये तीनों शब्द समानार्थक (एक ही अर्थ को बताते) हैं।] इस सम्यग्व्यायाम को शास्त्र में चार भागों में विभक्त किया गया है, वे हैं— संवरप्रधान, प्रहाणप्रधान, भावनाप्रधान और अनुरक्षणप्रधान।

(क) संवरप्रधान— कोई साधक अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये प्रयत्न करता है, श्रम करता है, चित्त को वश में करता है, निगृहीत करता है— उसका यह प्रयत्न 'संवरप्रधान' है।

(ख) प्रहाणप्रधान— कोई साधक उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के नाश (प्रहाण) के लिये इच्छा व प्रयास करता है, उधर बढ़ता है, चित्त को वश में करता है, निगृहीत करता है और उत्पन्न हुए कामवितर्क आदि सभी पापमय अकुशल धर्मों को स्वीकार नहीं करता, उन्हें त्याग देता है— उसका यह प्रयत्न 'प्रहाणप्रधान' है।

(ग) भावनाप्रधान— कोई साधक अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये इच्छा व प्रयास करता है, उधर बढ़ता है, चित्त को वश में करता है, दबाता है— उसका यह प्रयत्न 'भावनाप्रधान' कहलाता है।

(घ) अनुरक्षणप्रधान— कोई साधक उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति, विपुलता एवं परिपूर्णता के लिये इच्छा व प्रयास करता है, उधर बढ़ता है, तदर्थ चित्त को वश में करता है, निगृहीत करता है—उसका यह प्रयत्न 'अनुरक्षणप्रधान' कहलाता है।

७. सम्यक्स्मृति— कोई साधक इस शरीर के अङ्गों को ही शरीर की वास्तविकता समझते हुए काया में कायानुपश्यी हो कर उद्योगशील, अनुभव और ज्ञान से युक्त, स्मृतिसम्पन्न, लोक (शरीर) सम्बन्धी लोभ और दुःखदौर्मनस्य का संवरण कर अभ्यास करता है। वेदनाओं में वेदनानुपश्यी, चित्त में चित्तानुपश्यी तथा धर्मों में (अर्थात् पाँच उपादानस्कन्धों में, छह आध्यात्मिक एवं बाह्य आयतनों में, सात बोध्यङ्गों में एवं चार आर्यसत्यों में) धर्मानुपश्यी होकर उद्योगशील, अनुभव एवं ज्ञान से युक्त हो, स्मृतिसम्पन्न, लोकसम्बन्धी लोभ और दुःख-दौर्मनस्य का संवरण कर अभ्यास करता है वह 'सम्यक्स्मृति' कहलाता है।

८. सम्यक्समाधि— चित्त की एकाग्रता को ही 'समाधि' कहते हैं। चार स्मृत्युपस्थान समाधि के कारण हैं। चार सम्यक्प्रधान समाधि द्वारा परिष्कृत होते हैं। उन उन धर्मों का सेवन करना, भावना करना या अधिक बढ़ाना ही समाधि की भावना है। जैसे— पाँच नीवरणों को दूर हटाना, चार ध्यानों की मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा के साथ चित्त में भावना करना। यही 'सम्यक्समाधि' है। इस समाधि से अनुपादान (अपरिग्रह) भावना में दृढ़ता लाकर चित्तवृत्ति को उसी तरह निरुद्ध कर लिया जाता है, जैसे दीपक में तैल और बत्ती के समाप्त हो जाने पर दीपक बुझ जाता है।

भगवान् बुद्ध के मत में चित्तवृत्तिनिरोध ही निर्वाण है।

इस आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का महत्त्व बताते हुए भगवान् कहते हैं—इस आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग की साधना से ही साधक भिक्षु चार सम्यक्प्रधान, चार ऋद्धियाँ, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग—इन सब की पूर्णता प्राप्त कर सकता है। (द्र०- बलसूत्र, ४५.१४९-१५१)

द्विविध मार्ग : इस निरोधमार्ग का एक अन्य प्रकार से भी भेद किया गया है; जैसे—१. मिथ्यामार्ग एवं २. सम्यङ् मार्ग। अविद्या के कारण मनुष्य मिथ्यामार्ग में लगता है तथा विद्या के कारण सम्यङ् मार्गारूढ हो जाता है।

३. सात बोध्यङ्ग : ये सात बोध्यङ्ग इस ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णित हैं—१. स्मृतिसम्बोध्यङ्ग, २. धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग, ३. वीर्यसम्बोध्यङ्ग, ४. प्रीतिसम्बोध्यङ्ग, ५. प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग, ६. समाधिसम्बोध्यङ्ग, एवं ७. उपेक्षासम्बोध्यङ्ग। (इन सब का विस्तृत वर्णन ग्रन्थ में यथास्थान देखें।) [द्र०-महाकाश्यपसूत्र, ४६.१४.१४ एवं १५, १६]

४. चार स्मृत्युपस्थान : इस ग्रन्थ में चार स्मृत्युपस्थानों का वर्णन इस प्रकार है—

१. काया में कायानुपश्यी हो कर, क्लेशों को तपाते हुए, स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होते हुए, सांसारिक लोभ एवं दौर्मनस्य पर निग्रह करते हुए जीवनचर्या का निर्वाह करता है।

२. वेदना में वेदनानुपश्यी हो कर, क्लेशों को तपाते हुए, स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होते हुए तथा सांसारिक लोभ एवं दौर्मनस्य पर निग्रह करते हुए जीवनचर्या का निर्वाह करता है।

३. चित्त में चित्तानुपश्यी हो कर, क्लेशों को तपाते हुए, स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होते हुए तथा सांसारिक लोभ एवं दौर्मनस्य पर निग्रह करते हुए जीवनचर्या का निर्वाह करता है।

४. धर्म में धर्मानुपश्यी होते हुए, क्लेशों को तपाते हुए, स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होते हुए तथा सांसारिक लोभ एवं दौर्मनस्य पर निग्रह करते हुए जीवनचर्या का निर्वाह

करता है। (द्र०-अम्बपालिसूत्र, ४७.१.१) (इन चारों धर्मों का विशेष विवरण ग्रन्थ में अन्यत्र भी यथास्थान देखें।)

५. पञ्च शील : भगवान् बुद्ध के उपदेशों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन्होंने श्रद्धालु धर्मप्राण जनता को सर्वप्रथम शील (सदाचार) का दृढ़ता से पालन हेतु समझाया। साथ ही भगवान् ने पाँच नियम ऐसे सुझाये, जिनका पालन जनता को दृढ़ता से करना ही पड़ता था। जैसे—१. अहिंसाव्रत, २. सत्यभाषण, ३. अस्तेय (चौरी न करना), ४. ब्रह्मचर्यपालन (परस्त्रीगमननिषेध) एवं मद्यपाननिषेध। इन पाँच नियमों का पालन ही पञ्चशीलव्रत कहलाता है। भगवान् बुद्ध के मत में इस पञ्चशीलव्रत का पालन प्रत्येक निर्वाणाभिकांक्षी के लिये अत्यावश्यक घोषित किया गया; फिर भले ही वह स्त्री हो या पुरुष, गृहस्थ हो या प्रव्रजित, देवता हो या मनुष्य।

६. पञ्च इन्द्रिय : मनुष्य में आध्यात्मिक मार्ग में प्रेरणा देने वाली ये पाँच शक्तियाँ हैं, जिन्हें इस शास्त्र में 'इन्द्रिय' कहते हैं। जैसे—१. श्रद्धेन्द्रिय, २. वीर्येन्द्रिय, ३. स्मृतीन्द्रिय, ४. समाधीन्द्रिय एवं ५. प्रज्ञेन्द्रिय। इस महावर्ग में पठित ४८वें इन्द्रियसंयुक्त में इन पाँच इन्द्रियों का विस्तृत वर्णन हुआ है। वहाँ इस विषय का अणुवीक्षण किया जाय।

७. चार सम्यक्प्रधान : सम्यक्प्रधान चार होते हैं। इन्हें 'सम्यग्व्यायाम' भी कहते हैं। पीछे हम 'आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग' शीर्षक के अन्तर्गत इस 'सम्यग्व्यायाम' के विषय में बहुत कुछ ज्ञातव्य लिख आये हैं, अत: वहाँ देखें। इस से अधिक विस्तार देखना हो तो, इसी ग्रन्थ का **४९ सम्यक्प्रधानसंयुक्त** भी देख लें।

८. पाँच बल : इस महावर्ग का **पचासवाँ** संयुक्त **बलसंयुक्त** है। इस में बहुत विस्तार से पाँच बलों का वर्णन है। पाँच बल ये हैं—१. श्रद्धाबल, २. वीर्यबल, ३. स्मृतिबल, ४. समाधिबल एवं ५. प्रज्ञाबल। ये पाँचों बल भी साधक को सन्मार्ग में प्रवृत्त करने के लिये अत्यधिक सहायक होते हैं। अत: इन बलों के अध्ययन हेतु इस 'बलसंयुक्त' का अवश्य अध्ययन करें। इस संयुक्त के सभी सूत्रों में भगवान् ने इन पाँच बलों के अभ्यासहेतु उपदेश किया है।

९. चार ऋद्धिपाद : बौद्ध धर्मविनय में ऋद्धिपाद चार गिनाये गये हैं; जैसे—

१. छन्दसमाधिप्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद,

२. वीर्यसमाधिप्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद,

३. चित्तसमाधिप्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद,

४. मीमांसासमाधिप्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद।

इन चारों ही ऋद्धिपादों का महावर्ग (५) के **ऋद्धिपादसंयुक्त** (५१) में विस्तृत वर्णन हुआ है। वहाँ प्रसङ्ग आने पर ऋद्धि, ऋद्धिपाद, ऋद्धिपादभावना एवं

ऋद्धिपादभावना-प्राप्ति के उपाय का भी सरल एवं सुबोध वर्णन है। वहाँ से इन सब को जान लेना अधिक सुगम होगा।

१०. आनापानस्मृति : शरीर की श्वसन (श्वास) प्रक्रिया पर पूर्ण ध्यान रखना ही 'आनापानस्मृति' कहलाती है। **आन** कहते हैं—आश्वास (ऊर्ध्व श्वास) को, तथा **अपान** कहते हैं—अधःश्वास को। अर्थात् ऊपर नीचे आने जाने वाली इस श्वासप्रक्रिया पर निरन्तर ध्यान रखना साधक की साधना में अत्यधिक लाभप्रद होता है। इस से साधक को चित्तवृत्तियों पर नियन्त्रण रखने में बहुत सहयोग मिलता है। इस आनापानस्मृति का भी इस महावग्ग प्रकरण के ५१. **आनापानस्मृतिसंयुक्त** में विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है।

११. ध्यानचतुष्टय : महावग्ग में आगत **५३. ध्यानसंयुक्त** में चतुर्विध ध्यान का वर्णन किया गया है; जैसे—१. प्रथम ध्यान, २. द्वितीय ध्यान, ३. तृतीय ध्यान, एवं ४. चतुर्थ ध्यान। इन चारों ध्यानों में यह विशेष (भेद) समझना चाहिये—

(१) प्रथम ध्यान : साधक भिक्षु पाँच नीवरणों को चित्त से हटा कर, अन्य चित्तमलों (उपक्लेशों) को जान कर उन को प्रज्ञा द्वारा दूर करने के लिये कामों (इच्छाओं) से पृथक् हो कर अकुशल धर्मों से भी पृथक् हो कर, वितर्क एवं विचार सहित विवेक से उत्पन्न प्रीतिसुख वाली ध्यानभावना करता है, इसे ही 'प्रथम ध्यान' कहते हैं।

(२) द्वितीय ध्यान : वह साधक साधना करते करते उन (प्रथम ध्यान में उपस्थित) वितर्क विचारों के शान्त होने पर, तदनन्तर आभ्यन्तर सम्प्रसाद (प्रसन्नता) =चित्त की एकाग्रता को वितर्क विचार रहित समाधि से उत्पन्न प्रीतिसुख वाली ध्यानभावना करता है, उसे ही 'द्वितीय ध्यान' कहते हैं।

(३) तृतीय ध्यान : फिर वही साधक, अपने साधनाक्रम में, उस प्रीति की वैराग्यपूर्वक उपेक्षा कर स्मृति (आभ्यन्तर क्रियाओं का स्मरण) एवं सम्प्रजन्य (बाह्य क्रियाओं का स्मरण) से युक्त हो कर कायिक सुख का अनुभव करता है, जिस को कि आर्यजन 'उपेक्षक', 'स्मृतिमान्' एवं 'सुखविहारी' कहते हैं, ऐसी साधना को 'तृतीय ध्यान' कहते हैं।

(४) चतुर्थ ध्यान : इसी साधनाक्रम में आगे बढ़कर वह साधक सुख दुःख के विनाश से, सौमनस्य एवं दौर्मनस्य के भी पहले ही अस्त (विनष्ट) हो जाने से, अदुःखमय एवं असुखमय उपेक्षायुक्त स्मृतिपरिशुद्धि वाली ध्यानभावना करता है, इसी भावना को 'चतुर्थ ध्यान' कहते हैं।

अधिक विस्तार के लिये इसी ग्रन्थ का ५१. ध्यानसंयुक्त देखें॥

भगवान् बुद्ध के समसामयिक छह शास्ता

वैदिक यज्ञ-प्रधान धर्म ने प्राचीन भारतवासियों के मन पर नियन्त्रण कर रखा था। धीरे धीरे वह धर्म स्वयं इतना कर्मकाण्डमय बन गया कि उस का विरोध आरम्भ हो गया। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि यज्ञ भवसागर से परलोक में ले जाने वाली नौका तो है, परन्तु वह डगमगाती हुई अविश्वसनीय नौका है। (प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा:; मुण्डक १, २, ७।) अन्यत्र यह भी कहा गया है कि यज्ञ से मिलने वाला पुण्य अल्पजीवी है। भारतीय तत्वज्ञान का आरम्भ, नासदीय सूक्त पर जो स्वतन्त्र भाष्य (ऋग्वेद, दशम मण्डल, १२९) रचे गये, उन से होता है। अत: यज्ञ याग की विधियों से हट कर चिन्तकों का मन अन्य विषयों की ओर लगा। धीरे धीरे हमारे तत्त्वचिन्तक आश्रम-व्यवस्था अर्थात् वानप्रस्थ और संन्यास धर्म की ओर झुके।

यह मार्ग केवल ब्राह्मणों के लिये ही नहीं था; अपि तु राजा जनक जैसे क्षत्रिय भी विदेह बन सकते थे। उस समय आर्य विरक्तों के अतिरिक्त अनार्य साधु या वैरागी भी अवश्य रहे होंगे, जिनका उल्लेख नहीं मिलता। उदाहरणार्थ, तत्कालीन **मक्खलि गोसाल** ऐसे अनार्य विचारों का प्रतिनिधि था। अनार्य साहित्य में 'श्रमण' शब्द बार बार आता है। निगण्ठ (जैन) और आजीव (आजीविक) जैसे पाँच श्रमण गिनाये गये हैं।

वैदिक विष्णुसूक्त में दूसरे लोक की तथा यम सूक्त में मरणानन्तर इस लोक में लौट आने की कल्पनाओं के बीज हैं। उपनिषदों में बार बार इस लोक की दु:खमयता और अमर जीवन की शाश्वत गवेषणा का उल्लेख मिलता है।

सम्भवत: बुद्ध की प्रतीत्यसमुत्पाद वाली कारण-सरणि, इन सूत्रों से निकली हो। माध्यमिक बौद्धों का 'चतुष्कोटिविनिर्मुक्त' वाला भाव माण्डूक्योपनिषद् के अन्तिम अनुवाक में ज्यों का त्यों मिलता है। (नान्त:प्रज्ञं न बहि:प्रज्ञम्, उभयत: प्रज्ञम्....नाप्रज्ञम्।)

बुद्धपूर्व साहित्य में अनात्मवाद का कोई संकेत नहीं मिलता। बृहदारण्यक उपनिषद् में —'मृत्यु के पश्चात् संज्ञा नहीं रहती' इत्यादि कुछ अस्पष्ट संकेत हैं। परन्तु बौद्धों का 'अनत्ता' का सिद्धान्त इस से नहीं निकला। जीवन की क्षणभंगुरता या पाँच तत्त्वों का मृत्यु से पाँच तत्वों में मिल जाना, यह एक सामान्य बात हुई। अवैदिक विरक्ति-प्रधान पन्थों के विषय में, **सूयगद्** (श्वेताम्बर जैनियों के प्राकृत धर्मग्रन्थ का दूसरा भाग) या पालि दीर्घनिकाय के 'सामञ्ञफल सुत्त' आदि से कुछ सूचना मिलती है। गिलगित में प्राप्त दीर्घनिकाय की संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तक से भी इस सूचना की पुष्टि होती है। इन जैन बौद्ध प्राचीन सूत्रों से अनात्मवाद के मूल का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में जिन्हें परिव्राजक कहा गया, उन्हें ही मस्करिन्, (मस्कर नामक बाँस का दण्ड साथ में रखने वाले) 'तापस' और 'मुण्डक' कहा गया है। ये स्थान-स्थान पर नित्य विचरण करने वाले साधु थे। यहाँ तक कि एक उपनिषद् का ही नाम 'मुण्डक' पर रखा गया। **सुत्तनिपात** से पता चलता है कि सिर मुँडाना वैदिक और अवैदिक दोनों पन्थों में सामान्य प्रथा थी। कुछ संन्यासी वस्त्रों से अपने पन्थ का नाम रखते थे, यथा **श्वेताम्बर** अथवा **दिगम्बर**। वस्त्र जिस चीज के बनते थे, उस से भी पन्थों के नाम रखे जाते थे, यथा **केशकम्बलिन्**। इन अवैदिक सिद्धान्तों की गवेषणा करने पर ज्ञात होता है कि जैन सूत्रों में ऐसे ३६३ पन्थ और बौद्ध सूत्रों में ६२ या ६३ पन्थ गिनाये गये हैं।

महावीर क्रियावादी कहे गये हैं और अजित केशकम्बलिन् अक्रियावादी। अक्रियावादी चार्वाकपन्थी या लौकायतिक थे। अज्ञानवाद के आचार्य सञ्जय बेलट्ठिपुत्त थे। इन्हें ही बौद्धों ने विक्षेपवादिन्, या 'किसी भी सिद्धान्त को न मानने वाला' कहा है। बौद्ध सूत्रों में विक्षेपवाद को सीलब्बतपरामास या शरीरपीड़न से मुक्ति भी मानने वाला कहा गया है। इस प्रकार के अतिवादों से कुछ नहीं होता—ऐसा भी बौद्ध मानते हैं। सञ्जय ने बौद्ध तर्कों का उत्तर नहीं दिया। जैनों ने अनेकान्त के रूप में उस में से मार्ग निकाला।

बौद्ध साहित्य में भगवान् बुद्ध के समसामयिक ६ वरिष्ठ शास्ताओं का बार बार उल्लेख किया गया है। अजातशत्रु को ऐसे अनेक शास्ता मिले थे।

१. इन में पहले थे **निगण्ठ नाटपुत्त**। ये महावीर से भिन्न थे। पार्श्वनाथ महावीर से २५० वर्ष पहले हुए। पार्श्वनाथ ने चार नैतिक सूत्रों की रचना की थी। महावीर ने चौथे सूत्र 'अपरिग्रह' के दो भाग करके पाँच सूत्र बनाये। पार्श्वनाथ के चेले 'अचेलक' या 'नग्न' थे। महावीर के शिष्यों ने वस्त्र पहने। यही दोनों में प्रधान अन्तर है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार श्रावस्ती में पार्श्वनाथ और महावीर के शिष्य एकत्र हुए। बाद में जैनों ने पार्श्वनाथ से पहले २२ और तीर्थङ्कर दिखला कर इस एकता को सिद्ध किया। परन्तु पी० एल० वैद्य के अनुसार पार्श्वनाथ और महावीर ने दो विभिन्न कालखण्डों में स्वतन्त्र रूप से अपने दर्शन-निकाय आरम्भ किये, जिनकी भित्ति समान थी। निगण्ठ नाथपुत्त के जो चार संयम 'सामञ्ञफल सुत्त' (दी.नि. १-२) में बताये गये हैं वे 'उदुम्बरिक सुत्त' (दी. नि., तृतीय भाग-२) में बताये संयमों से भिन्न हैं। पर दोनों ही पार्श्वनाथ के चार नीति-नियमों जैसे ही हैं। जैन मत केवल नीति नियमों का आचार-धर्म नहीं, परन्तु अनेकान्तवाद और स्याद्वाद पर आधारित दर्शन भी है।

२. **मक्खलि गोसाल** भगवान् बुद्ध का दूसरा समकालीन था। वह अचेलक या नग्न साधु था। वह पहले महावीर का शिष्य था और बाद में विरोधी हो गया। उस ने आजीवक पन्थ चलाया। परवर्ती लेखक **नन्दवच्छ** और किस **सङ्किच्च** नामक दो और

पूर्व चिन्तक मानते हैं। गोसाल का सिद्धान्त अब कोई नहीं मानता, परन्तु किसी समय में उस का 'संसार-विसुद्धिमार्ग' बहुत लोकप्रिय था। वह एक प्रकार का **जड़नियतिवादी** था। प्रत्येक व्यक्ति को संसार में निश्चित अवधि के लिये दु:ख भोगना ही पड़ता है—ऐसी उस की मान्यता थी।

शेष चार चिन्तक जो बुद्ध के समकालीन कहे जाते हैं, उन का महावीर या गोसाल की भाँति प्रभाव नहीं रहा।

३. पूरण कस्सप अक्रियावादी थे। वे किसी भी कर्म में पुण्य या पाप मानते ही नहीं मानते थे।

४. अजित-केशकम्बलिन् भी एक प्रकार के **भौतिकवादी** थे, परलोक या मानवोपरि शक्तियों में उन का विश्वास नहीं था।

५. पकुध कच्चायन, जो सम्भवत: प्रश्नोपनिषद् में उल्लिखित ककुद कात्यायन हों, और जिनका उल्लेख श्वेताम्बर ग्रन्थ में भी है, **अशाश्वतवादी** थे। उन के अनुसार सात ऐसे तत्व हैं जो सदा रहते हैं, मिटाये नहीं जा सकते। शेष सब अनित्य हैं।

६. एक चिन्तक **सञ्जय वेलट्ठिपुत्त** थे। अजातशत्रु कहते हैं कि जितने शास्ता उन्हें मिले, उन सब में सबसे मूर्ख ये ही थे। वे **विक्षेपवादी** थे। वे किसी भी प्रश्न का निश्चयात्मक उत्तर नहीं देते थे। दस प्रश्न ऐसे हैं जिन का कोई उत्तर नहीं मिलता, न दिया जाता है, सञ्जय ने उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया, और बौद्धमत में भी उन प्रश्नों को अनुत्तरित ही रहने दिया है।

बुद्ध के पूर्वकालीन और समकालीन इन छह मत मतान्तरों पर विचार करने से यह सहज स्पष्ट हो जाता कि बुद्ध ने नया मत क्यों चलाया? और वह इतना लोकप्रिय क्यों हुआ?

१. पकुध कच्चायन और अजित केशकम्बलिन् 'सब्बम् अत्थि', 'सब्बं नत्थि', मानते थे। इन्हें ही शाश्वतवाद और उच्छेदवाद कहते हैं।

२. गोसाल का विश्वास यह था कि वस्तुजात का रूप पूर्वनिश्चित है और उस का कोई मूल कारण नहीं : 'सब्बं पुब्बेकतहेतु' और 'सब्बं अहेतु-अपच्चया'।

३. दूसरे चिन्तकों का विचार था कि सुख-दु:ख अपने ही कर्मों का फल है या फिर उस का कोई और कारण है : सुखदुक्खं परकतम्।

४. और एक विश्वास यह भी था कि जीवन का ध्येय है खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ या फिर आत्म-पीड़न करो : कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगो और अत्तकिल-मथानुयोगो।

इस प्रकार उस समय की दार्शनिक स्थिति यह थी कि क्या महावीर और क्या बुद्ध—दोनों की ही अतिवादी विचारकों से प्रतिद्वन्द्विता थी। महावीर ने अनेकान्तवाद और शून्यवाद से एक मार्ग निकाला, बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पाद से। जब कि एक ओर

महावीर अपने अत्तकिलमथ अथवा आत्मपीड़न के सिद्धान्त पर कस्सप, अजित, गोसाल और सञ्जय के विरुद्ध डटे रहे। दूसरी ओर बुद्ध ने मध्यमा प्रतिपदा या मध्यम मार्ग का उपदेश किया॥

ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषयों की
अन्य सांस्कृतिक परम्पराओं से तुलना

संयुक्तनिकाय का पहला वर्ग (सगाथवर्ग) विषय और शैली—दोनों ही दृष्टियों से अत्यधिक रोचक है। इस में दर्शन, धर्म और नीति जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर गाथाओं के माध्यम से जो प्रश्नोत्तर हुए हैं उन्हें पढ़ते पढ़ते भारतीय संस्कृति की अन्य समान (वैदिक, पौराणिक या जैन) परम्पराओं का भी उन प्रसङ्गों पर स्मरण होने लगता है। जैसे कतिपय उदाहरण देखें—

१. सगाथवर्ग के **देवतासंयुक्त** के अन्तर्गत **वृष्टिसूत्र** में गाथा के माध्यम से किसी देवता ने भगवान् से प्रश्न किया—

''किं सु उप्पततं सेट्ठं, किं सु निपततं वरं?
किं सु पवजमानानं, किं सु पवदतं वरं?'' ति॥

इस का भगवान् उत्तर देते हैं—

''बीजं उप्पततं सेट्ठं, वुट्ठि निपततं वरा।
गावो पवजमानानं, पुत्तो पवदतं वरो'' ति॥

अक्षरशः इन्हीं शब्दों में **महाभारत के वनपर्व** में युधिष्ठिर-यक्ष संवाद पढिये—
युधिष्ठिर से यक्ष का प्रश्न है—

''किं स्विदापततां श्रेष्ठं, किं स्विन्निपततां वरम्?
किं स्वित्प्रतिष्ठमानानां, किंस्वित्प्रवदतां वरम्?''

इस यक्षप्रश्न का युधिष्ठिर उत्तर देते हैं—

''बीजमापततां श्रेष्ठं, वर्षं निपततां वरम्।
गावः प्रतिष्ठमानानां, पुत्रः प्रवदतां वरः॥''

(म०भा०, व०प०, अ० २६८/४२, ४३)

है न दोनों ग्रन्थों में अक्षरशः समानता!

२. अब दूसरे उदाहरण के रूप में इसी सगाथवर्ग के **देवतासंयुक्त** के **मित्रसूत्र** (५३) के गाथाबद्ध प्रश्नोत्तर देखिये—

कोई देवता भगवान् बुद्ध से पूछता है—

''किंसु पवसतो मित्तं, किंसु मित्तं सके घरे?

किं मित्तं अत्थजातस्स, किं मित्तं सम्परायिकं ?''

भगवान् उत्तर देते हैं—

''सत्थो पवसतो मित्तं, माता मित्तं सके घरे।
सहायो अत्थजातस्स होति मित्तं पुनप्पुनं॥''

उधर **महाभारत के वनपर्व** की २६८वीं अध्याय में देखिये। यक्ष युधिष्ठिर से पूछता है—

''किंस्वित्प्रवसतो मित्रं किस्विन्मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य च किं मित्रं किंस्विन्मित्रं मरिष्यतः ?''

युधिष्ठिर का उत्तर है—

''विद्या प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य भिषङ् मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः॥''

(म०भा०, व०प०, अ० २६८/४९-५०)

३. इसी तरह संयुत्तनिकाय के अन्तर्गत **देवपुत्रसंयुक्त** के **किन्ददसूत्र, अन्नसूत्र** एवं **स्वैरीसूत्र** में अन्नदान का विशेष महत्त्व बताया गया है तो **महाभारत के अनुशासनपर्व** में भी यही उपदेश दिया गया है। जैसे—

''सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम्।
पूर्वमन्नं प्रदातव्यमृजुना धर्ममिच्छता॥''

(म०भ०, अ०प०, अ० ११२/१०)

४. सगाथवर्ग में देवतासंयुक्त के **दुष्कर सूत्र** (१७) में लिखा है—

कुम्मो व अङ्गानि सके कपाले,समोदहं भिक्खु मनोवितक्के।
अनिस्सितो अञ्ञमहेठयानो,परिनिब्बुतो नूपवदेय्य कञ्ची'' ति॥

तो **भगवद्गीता** के द्वितीय अध्याय में यही वाक्य इस तरह मिलता है—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥''

५. **स्त्री द्वारा गर्भधारण-प्रकार** संयुक्तनिकाय के **यक्षसंयुक्त** (१०) के **इन्द्रकसूत्र** (१) में इस प्रकार लिखा है—

''पठमं कललं होति, कलला होति अब्बुदं।
अब्बुदा जायते पेसि, पेसिया निब्बत्तति घनो॥
घना पसाखा जायन्ति, केसा लोमा नखापि च।
''यं चस्स भुञ्जति माता अन्नं पानं च भोजनं।
तेन सो तत्थ यापेति, मातुकुच्छिगतो नरो''॥ ति॥

इसी बात को **भागवतपुराण** में यों पढ़ा गया है—

"कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम्।
दशाहेन तु कर्कन्धूः पेशाण्डं वा ततः परम्॥
मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वंघ्र्यङ्गादिविग्रहः।
नखलोमादिचर्माणि लिङ्गच्छेदोद्भवास्त्रिभिः॥"

(भा० ३/३१/२-३)

कहने का तात्पर्य है कि संयुक्तनिकाय का यह वचन एक तरह से आयुर्वेदशास्त्र का संक्षिप्त, परन्तु प्रामाणिक रूपान्तरण है॥

६. इस ग्रन्थ के देवपुत्रसंयुक्त (२) के अन्तर्गत **क्षेमसूत्र** (२२) में एक देवपुत्र भगवान् से कहता है—

चरन्ति बाला दुम्मेधा अमित्तेनेव अत्तना।
करोन्ता पापकं कम्मं यं होति कटुकप्फलं॥"

इसी बात को **भगवद्गीता** के षष्ठ अध्याय में यों कहा गया है—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥"

(भ० गी० ६/५)

७. ब्राह्मणसंयुक्त (७) के **क्षोमदुष्यकसूत्र** में एक गाथा आती है—

"नेसा सभा यत्थ न सन्ति सन्तो, सन्तो न ते ये न वदन्ति धम्मं।"

यही बात **महाभारत** में भी कही गयी है—

"न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।"

इस तरह **स्थालीपुलाकन्याय** से दिखाये गये इन उद्धरणों से इस ग्रन्थ का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। समस्त ग्रन्थ में ऐसे हजारों उदाहरण भरे पड़े हैं।

इस में धर्म और दर्शन पर न केवल बौद्धधर्म की दृष्टि से ही विचार किया गया है, अपि तु इस में वर्णित समग्र विचारधारा सर्वधर्मसमभाव की ही द्योतक है। अनुशीलन करने पर भारत की अन्य समान संस्कृति-धाराओं के समीप भी पहुँचाने वाली है।

अतः आज के इस दूषित सामाजिक वायुमण्डल में इस ग्रन्थ का प्रकाशन, प्रचार तथा प्रसार देश एवं समाज की सार्वत्रिक अभ्युन्नति में बलप्रद ही सिद्ध होगा— ऐसा हमारा विश्वास है।

वर्तमान संस्करण की विशेषता

१. इसका मूलपालिपाठ छट्ठसंङ्गायन के प्रामाणिक मूल पालिपाठ के आधार पर प्रकाशित नालन्दा संस्करण (१९५९ ई०) के अनुसार रखा गया है। इसमें हमने अपनी ओर से कुछ भी परिवर्तन नहीं किया है; क्यों कि यह पाठ छट्ठ सङ्गायन द्वारा भी प्रमाणित हो चुका है।

२. हिन्दी अनुवाद में इन विशेषताओं पर समग्र ग्रन्थ में पूर्ण ध्यान रखा गया है—

१. शुद्ध पालिपाठ (नालन्दा संस्करण के आधार पर);
२. अक्षरशः हिन्दी अनुवाद (बौद्धों की पारम्परिक भाषा में);
३. विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों की ब्रैकेट में व्यांख्या (यथासम्भव);
४. पूर्वागत विषयों का पृष्ठ-संख्यानिर्देश;
५. अन्य ग्रन्थों का पृष्ठ-संख्यानिर्देश;
६. विशिष्ट शब्दों तथा विषयों पर यथाप्रसङ्ग शास्त्र बोधक टिप्पणियाँ;
७. संयुक्तनिकाय के छट्ठ संगायन, वर्मा, नालन्दा एवं रोमन संस्करणों का पृ० संख्या निर्देश;
८. प्रत्येक सूत्र पर उसके वर्ण्य विषय का शीर्षक (हिन्दी में भी);
९. भाषा में विराम चिह्नों की वर्तनी बौद्धभारती द्वारा प्रकाशित अन्य ग्रन्थों के समान ही रखी गयी है।
१०. ग्रन्थ चार भागों में प्रकाशित हो रहा है, प्रायः समान पृष्ठों के आधार पर। जैसे—

प्रथम भाग	द्वितीय भाग	तृतीय भाग	चतुर्थ भाग
१.सगाथवर्ग,	२. निदानवर्ग, ३. स्कन्धवर्ग,	४. षडायतनवर्ग,	५. महावर्ग

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

संयुक्तनिकायपालि के

सगाथवर्ग का संक्षिप्त विवरण

इस संयुक्तनिकाय ग्रन्थ में भगवान् बुद्ध के उन उपदेशों का संग्रह है जो उन्होंने प्राय: श्रावस्ती के जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजते हुए, समय समय पर वहाँ आये जिज्ञासुओं को अभिलक्षित कर, उन पर अनुकम्पा करते हुए, किये थे। सङ्गीतिकारों ने उन उपदेशों का संग्रह, संयुक्तों के माध्यम से विभाजन कर, किया है।

यहाँ जिस विषय या पुद्गल के नाम से जो 'संयुक्त' है उस में केवल उसी से सम्बद्ध उपदेश है; अन्य किसी की उस उतने प्रकरण में कोई विशेष चर्चा नहीं है। क्यों कि 'संयुक्त' शब्द का अर्थ है—'सम्बद्ध', अत: 'संयुक्त' शीर्षक से जब किसी विषय की चर्चा करनी है तो उस से सम्बद्ध की चर्चा करना ही सङ्गत है, अन्य की चर्चा वहाँ अप्रासङ्गिक ही कहलायगी। जैसे यहाँ प्रथम देवतासंयुक्त है, अत: इस में किसी न किसी देवता से सम्बद्ध प्रश्न का ही उत्तर है, अन्य किसी से सम्बद्ध का नहीं। फिर भले ही वह कोई भिक्षु हो या भिक्षुणी, उपासक हो या उपासिका, राजा हो या साधारण पुरुष। यहाँ तक कि देवपुत्रों के लिये भी पृथक् 'देवपुत्र संयुक्त' नाम दे कर उस में उन को अभिलक्षित कर भगवान् द्वारा किये गये उपदेशों का संग्रह है। इसी प्रकार आगे संयुक्तों के लिये भी समझना चाहिये।

१. **देवतासंयुक्त** : इस समस्त संयुक्त में भगवान् के साथ, पृथक् पृथक् देवताओं का, जीवन की समस्याओं पर, गाथाओं के माध्यम से गम्भीर एवं सार्थक संवाद है। इन संवादों में कुछ गाथाएँ तो इतनी गम्भीरार्थक हैं कि उन के अर्थ की स्पष्ट अभिव्यञ्जना प्रकट करने के लिये अनागत काल में विद्वानों को अनेक विशाल एवं वृहत्काय लिखने पड़े। जैसे, जनश्रुति है कि—

> **''अक्खेय्यसञ्ञिनो सत्ता, अक्खेय्यस्मिं पतिट्ठिता।**
> **अक्खेय्यं अपरिञ्ञाय, योगमायान्ति मच्चुनो॥**
> **''अक्खेय्यं च परिञ्ञाय, अक्खातारं न मञ्ञति।**
> **तं हि तस्स न होती ति, ये न नं वज्जा न तस्स अत्थि।**
> **सचे विजानासि वदेहि यक्खा ?'' ति॥**

अथवा, आगे ५. भिक्षुणीसंयुक्त के **वजिरासूत्र** में एक अन्य गाथा भी आती है—

''यथा हि अङ्गसम्भारा होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु होति सत्तो ति सम्मुति॥''

इन दोनों गाथाओं के आधार पर प्रथम शताब्दी में **मिलिन्दपञ्हो** जैसा वृहत् ग्रन्थ लिखा गया है।

इसी तरह, इतिहासकार प्रमाणित करते हैं कि आचार्य बुद्धघोष ने लङ्कास्थित भिक्षुसङ्घ के आदेश से **विसुद्धिमग्ग** जैसा विशाल ग्रन्थ इस ग्रन्थ के इसी देवतासंयुक्त के **जटासूत्र** में वर्णित इन दो गाथाओं के आधार पर लिखा है—

''अन्तो जटा बहि जटा जटाय जटिता पजा।
तं तं गोतम पुच्छामि को इमं विजटये जटं ?'' ति॥
''सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञं च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं'' ति॥

इसी तरह, इस संयुक्त के कुछ अन्य सूत्र, जैसे—४२. किंददसूत्र, ४३. अन्नसूत्र, ५०. घटिकारसूत्र, ५४. वत्थुसूत्र, ७३. वित्तसूत्र, ७४. वुट्ठिसूत्र, ७९. पाथेय्यसूत्र आदि, सर्वसाधारणजन के लिये, पठनीय एवं मननीय हैं॥

२. देवपुत्रसंयुक्त : इस संयुक्त का—प्रथमवर्ग, अनाथपिण्डिकवर्ग एवं नानातित्थियवर्ग—इस तरह इन तीन वर्गों में विभाजन कर वर्णन हुआ है। इस में कतिपय देवपुत्रों का भगवान् के साथ संवाद वर्णित है। [इन में आगत वेण्डुसूत्र एवं वासुदत्तसूत्र से विष्णु एवं वासुदेव के नामों की गन्ध आ रही है। शिव देवपुत्र तो साक्षात् वर्णित है ही। इस पर विद्वज्जन ही प्रमाण हैं।] इस में वर्णित कतिपय सूत्र, जैसे—१. पठमकस्सपसूत्र, ७. कामदसूत्र, ८. तायनसूत्र, १९. उत्तरसूत्र, २०. अनाथपिण्डिकसूत्र, एवं २३. सेरीसूत्र पठनीय एवं मननीय हैं॥

३. कौसलसंयुक्त : यह संयुक्त प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय वर्गों में विभाजित होने पर भी इस के सभी सूत्रों में राजा प्रसेनजित् कौसल ही प्रष्टा हैं तथा भगवान् ने उस के सभी प्रश्नों का सन्तोषप्रद उत्तर दिया है। यह संयुक्त भी प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय वर्ग के माध्यम से २५ सूत्रों में विभाजित है। इस संयुक्त में १. दहरसूत्र, २. पुरुषसूत्र, ४. प्रियसूत्र, ८. मल्लिकासूत्र, १०. बन्धनसूत्र, १२. पञ्चराजसूत्र, १३. दोणपाकसूत्र, १५. द्वितीयसंग्रामसूत्र, १८. कल्याणमित्रसूत्र, १९. अपुत्तकसूत्र, २१. पुद्गलसूत्र, एवं २३. लोकसूत्र—ये सूत्र विशेषत: मननीय हैं॥

४. मारसंयुक्त : इस संयुक्त में भी, पूर्व संयुक्त के समान तीन वर्गों में विभक्त कर, २५ सूत्रों का व्याख्यान हुआ है। यहाँ सभी सूत्रों में भगवान् का मार से संवाद है। इन में ४. पठममारपाशसूत्र, ७. सुपतिसूत्र, १३. सकलिकसूत्र, १६. पत्तसूत्र, १८. पिण्डसूत्र, २०. रज्जसूत्र, २१. सम्बहुलसूत्र, एवं २३. गोधिकसूत्र तथा २५. मारधीतुसूत्र पठनीय एवं मननीय हैं॥

५. भिक्खुणीसंयुत्त : इस संयुत्त में दश सूत्रों का व्याख्यान है। सभी में किसी न किसी भिक्षुणी से पापी मार का संवाद है। इन संवादिका भिक्षुणियों के ये नाम हैं— १. आळविका, २. सोमा, ३. किसा गौतमी, ४. विजया, ५. उप्पलवण्णा, ६. चाला, ७. उपचाला, ८. सीसुपचाला, ९. सेला एवं १०. वजिरा। यहाँ **वजिरासूत्र** में आगत यह गाथा समस्त बौद्ध साहित्य में प्रख्यात है—

''यथा हि अङ्गसम्भारा होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु होति सत्तो ति सम्मुति''॥

यह गाथा **मिलिन्दपञ्हो** ग्रन्थ में अति उच्च स्तर पर वर्णित होने के कारण इतनी प्रसिद्ध हो चुकी है कि यह सभी बौद्ध भिक्षुओं को कण्ठस्थ रहती है॥

६. ब्रह्मसंयुत्त : इस संयुत्त में १५ सूत्रों का व्याख्यान हुआ है। जिन में १. ब्रह्मायाचनसूत्र (जो विनयपिटक के महावग्ग में भी इसी तरह वर्णित है), २. गारवसूत्र, ३. वकब्रह्मसूत्र (जिस में ७२ ब्रह्माओं की सङ्ख्या का निर्देश है), ९. तुदुब्रह्मसूत्र, तथा १०. कोकालिकसूत्र, एवं १४. अरुणवतीसूत्र, १५. परिनिर्वाणसूत्र विशेषत: पठनीय हैं॥

७. ब्राह्मणसंयुत्त : इस संयुत्त में अर्हद्वर्ग एवं उपासकवर्ग—इस वर्गद्वय के विभाजन से २२ सूत्रों का व्याख्यान हुआ है। इन में प्रथम दश सूत्रों से अर्हत् की प्रशंसा की गयी है तथा अवशिष्ट १२ सूत्रों में बौद्ध धर्म के उपासकों की अनेक प्रकार से प्रशंसा की गयी है। इन में, अविकल स्वाध्याय करते समय, अधोलिखित सूत्रों पर अधिक ध्यान देना चाहिये। जैसे—१. धनञ्जानीसूत्र, ५. विलङ्गिकसूत्र, ६. जटासूत्र, ९. सुन्दरिकसूत्र, ११. कृषिभारद्वाजसूत्र, १४. महासालसूत्र, १८. कट्ठहारसूत्र, १९. मातुपोसकसूत्र एवं २२. खोमदुस्ससूत्र। इस सूत्र की यह गाथा स्मरणीय है—

''नेसा सभा यत्थ न सन्ति सन्तो, सन्तो न ते ये न वदन्ति धम्मं।'' इत्यादि॥

८. वङ्गीससंयुत्त : १२ सूत्रों के माध्यम से इस संयुत्त का वर्णन हुआ है। प्रथम तीन सूत्रों में आयुष्मान् वङ्गीस ने रत्नत्रय के प्रति अपने हृदय में उत्पन्न अनभिरुचि को प्रकट किया है। चतुर्थ सूत्र में आयुष्मान् आनन्द ने उस को, उक्त अनभिरुचि हटाने हेतु, उपदेश किया है। पञ्चम में वङ्गीस द्वारा भगवान् बुद्ध की स्तुति, षष्ठ में आयुष्मान् सारिपुत्र की प्रशंसा; सप्तम तथा अष्टम में भगवान् की स्तुति के माध्यम से वङ्गीस द्वारा अपने आशुकवित्व का प्रदर्शन; नवम में आयुष्मान् आज्ञातकौण्डिन्य की प्रशंसा; दशम में आयुष्मान् महामोग्गल्लान की प्रशंसा; एकादश में गग्गरा नदी तट पर विराजमान बुद्ध की स्तुति, तथा द्वादश में वङ्गीस ने अपनी अर्हत्त्वप्राप्ति का फल बताया है॥

९. वनसंयुत्त : इस संयुत्त में चौदह सूत्रों से एकान्तसाधना का महत्त्व वर्णित है। चौदहवें सूत्र में सूक्ष्म पापों का निषेध भी वर्णित है। इस संयुत्त में १२हवाँ सूत्र मनोभावनीय है॥

१०. यक्षसंयुक्त : इस संयुक्त में १२ सूत्रों का व्याख्यान है। जिन में ८. सुदत्तसूत्र एवं १२. आळवकसूत्र महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हें अवश्य हृदयङ्गम करना चाहिये। ९. शुक्रासूत्र भी पठनीय है॥

११. शक्रसंयुक्त : यह संयुक्त सगाथवर्ग का अन्तिम संयुक्त है। इस में तीन वर्गों की सहायता से २५ सूत्रों का व्याख्यान है। इन तीन वर्गों में तीसरा वर्ग 'शक्रपञ्चक' नाम से प्रख्यात है। इस सम्पूर्ण संयुक्त में शक्र के पूर्वजन्मों के व्रत आदि पुण्यकर्मों का; उन के फलस्वरूप देवलोक में इन्द्रपद प्राप्त करने का; देवासुरसंग्राम में देवताओं की विजय का; विजयोत्सव में सुभाषित-प्रतियोगिता का वर्णन है। साथ ही प्रसङ्गानुसार बुद्धवन्दना, भिक्षुवन्दना एवं सद्गृहस्थवन्दना भी वर्णित है॥

इस सगाथवर्ग में **११ संयुक्त** एवं **२७२ सूत्र** पटित हैं।

सगाथवर्ग का संक्षेप सम्पन्न॥

संयुक्तनिकायपालि में आगत
समग्र संयुक्तों एवं सूत्रों का वर्गशः विभाजन

१. सगाथवर्ग	:	११ संयुक्त	२७१ सूत्र
२. निदानवर्ग	:	१० संयुक्त	२९६ सूत्र
३. स्कन्धवर्ग	:	१३ संयुक्त	७१६ सूत्र
४. षडायतनवर्ग	:	१० संयुक्त	४३८ सूत्र
५. महावर्ग	:	१२ संयुक्त	१२२४ सूत्र
		५६ संयुक्त	२९४५ सूत्र

The Saṁyutta Nikāya Pāli

There are altogether 2945 Suttas in the Saṁyutta Nikāya, classed in fifty-six divisions (called *Saṁyuttas*), grouped in five parts (called *Vaggas*), as under :—

(I) Sagātha Vagga

1. Devatā Saṁyutta
2. Devaputta Saṁyutta
3. Kosala Saṁyutta
4. Māra Saṁyutta
5. Bhikkhuni Saṁyutta
6. Brahma Saṁyutta
7. Brāhmaṇa Saṁyutta
8. Vaṅgisa Saṁyutta
9. Vana Saṁyutta
10. Yakkha Saṁyutta
11. Sakka Saṁyutta

(II) Nidāna Vagga

12. Nidāna Saṁyutta
13. Abhisamaya Saṁyutta
14. Dhātu Saṁyutta
15. Anamatagga Saṁyutta
16. Kassapa Saṁyutta
17. Lābhasakkāra Saṁyutta
18. Rāhula Saṁyutta
19. Lakkhana Saṁyutta
20. Opamma Saṁyutta
21. Bhikkhu Saṁyutta

(III) Khandha Vagga

22. Khandha Saṁyutta
23. Rādha Saṁyutta
24. Diṭṭhi Saṁyutta
25. Okkanta Saṁyutta
26. Uppāda Saṁyutta
27. Kilesa Saṁyutta
28. Sāriputta Saṁyutta
29. Nāga Saṁyutta
30. Supaṇṇa Saṁyutta
31. Gandhabbakāya Saṁyutta
32. Valāhaka Saṁyutta
33. Vacchagotta Saṁyutta
34. Jhāna Saṁyutta

(IV) Saḷāyatana Vagga

35. Saḷāyatana Saṁyutta
36. Vedanā Saṁyutta
37. Mātugāma Saṁyutta
38. Jambukhādaka Saṁyutta
39. Sāmandaka Saṁyutta
40. Moggallāna Saṁyutta
41. Citta Saṁyutta
42. Gāmaṇi Saṁyutta
43. Asaṅkhata Saṁyutta
44. Abyākata Saṁyutta

(V) Mahā Vagga

45. Magga Saṁyutta
46. Bojjhaṅga Saṁyutta
47. Satipaṭṭhāna Saṁyutta
48. Indriya Saṁyutta
49. Sammappadhāna Saṁyutta
50. Bala Saṁyutta
51. Iddhipāda Saṁyutta
52. Anuruddha Saṁyutta
53. Jhāna Saṁyutta
54. Ānāpāna Saṁyutta
55. Sotāpatti Saṁyutta &
56. Sacca Saṁyutta.

The Present Volume : A Comparision

Sagātha Vagga, in particular, the first volume of this book, commands the greatest interest in this respect, both from the point of view of subject matter and the way of treatment, dealing with the subtle problems of religion and philosophy, presented in a poetic dialogue style. This reminds us at once of the parallel pieces occuring in the literatures of other co-existing cultural traditions.

In the *Vutthi Sutta* we have :—

Q. What is the best of those that grow?
What is the best of those that fall?
What is the best of those that move?
What is the best those that speak?

A. Seeds are the best of those that grow.
Rains are the best of those that fall.
Cows are the best of those that move.
Sons are the best of those that speak. [P.70]

In the *Vanaparva* of the *Mahābhārata*, we have the parallel dialogue between the Yakṣa and Yudhiṣṭhira—

Q. What is the best of those that come down?
What is the best of those that fall?
What is the best of those that stand?
What is the best of those that speak?

A. Rains are the best of those that come down.
Seeds are the best of those that fall.
Cows are the best of those that stand.
Sons are the best of those that speak.

In the *Mitta Sutta* we have—

Q. What is a friend in the journey?
What is a friend in the house?
What is a friend in need?
What is a friend in a life hereafter?

A. Weapon is a friend in a journey.
Mother is a friend in the house.

A comrade is a friend in need.
One's merits are friend in a life hereafter. [P.61]

The parallel passage in the *Vanaparva* of the *Mahābhārata* is—

Q. What is a friend while away?
What is a friend while at home?
What is a friend while ill?
What is a friend while passing away?

A. Knowledge is a friend while away.
Wife is a friend while at home.
Physician is a friend while ill.
Gifts given by one is a friend while passing away.

Kindada Sutta, Anna Sutta and *Seri Sutta* teach that the gift of food is highly meritorious. The same has been done in the *Anusāsan Parva* of the *Mahābhārata.* [Adhyaya 112/10]

In the *Dukkara Sutta* we have—"As the tortoise collects all its limbs in the skull, so the Bhikkhu collects all of his thoughts within himself. Being free, harmless and peaceful, he speaks ill of none." [P.15]

The same simile has been given in the **Gitā** [2/58] to illustrate the teaching—"The wisdom of the yogi gets established when he is able to collect all his senses from the enjoyments of the world, as does the tortoise its limbs within its skull."

In the *Indaka Sutta,* there is a description of the different stages of the embroy in the process of development. The stages are—Kalala, Abbuda, Pesi and Ghana. The same description is found in the *Bhāgavata,* where the stages have been called as—Kalala, Budbuda, Karkandhu, and Pesanda. [P.331]

The Present Volume

1. SAGĀTHAVAGGA

The very name of this Vagga shows that the singularity of it consists in having Suttas that contain Gāthās or stanzas in them. The Suttas generally open by giving a description in prose of the particular occasions related to them. Then there follows a querry or a series of them put in stanzas to the Buddha or to a disciple by a spirit or a human being, to which adequate answers are given in parallel stanzas. There are altogether 271 Suttas in this Vagga. The following is a brief introduction to some of them—

Oghataraṇa Sutta—A certain god enquired how did the Blessed One cross the flood. The Buddha said—"Friend, neither by being still nor by over-exertion. This is how I crossed the flood. If I had been still, I would have sunk down; and if I had made an over exertion, I would have been carried astray." Thus, in a figurative way, the efficacy of the Middle Path has been shown. (1.1.1)

Jaṭā Sutta—This Sutta is important from a philosophical point of view. A god asked the Buddha—"There are tangles within, there are tangles without; the beings are badly entangled in these tangles. I ask you, O Gotama, who can untangle these tangles"? The Buddha said—"The wise man discrete and self-controlled, seing fear in the bondage of the world, establlished in the purity of conduct, developing concentration and insight may indeed untangle these tangles." (1.23.29)

Ācārya Buddhaghosa has written his famous book on Buddhist Yoga, the *Visuddhimagga*, as an elaboration of these very two stanzas that were given to him by the Bhikkhu-Sangha of Lankā as a test to his knowledge of the Dhamma.

Sara Sutta—It gives a description of Nibbāna in the following words—"The stream ceases to flow where water earth and air function not; there the whirlpool whirls not; there itself both mind and matter come to a final cessation." (1.27.33).

Sakalika Sutta—It refers to the occasion when the Blessed One was hurt by the splinter of a stone hurled at him by Devadatta, and he was bleeding profusely. The Blessed One was bearing the pain of it with a vigilent calmness. At it, the gods, present at the place, compared him to a lion, to an elephant, to a high bred horse and to a bull. (1.38.51).

It seems that it was on the basis of this that these animals were accepted as the symbols of Buddhist arts, now available on the famous lion-capital of the Asokan piller of Sārnāth.

Arahant Sutta—A philosophical distinction has been made between the two grades of truth—the conventional and the ultimate. The common man of the world takes the conventional usage as a reality and breeds attachment towards it. The Arahant, on the other hand, who has dispelled all ignorance, realises the nature of the conventional and is not deluded. It has been said—

"He has no complex in him whose egotism has been eradicated. All of his pride and fetters have been ended. He, the wise, has risen above all attachment. No doubt, he says—'I say' or 'It is said to me', but it is nothing more than a conventional usage to him." (1.25.31).

Candima Sutta—This Sutta gives an evidence of the traditional conception of eclipse in Buddhist mythology. The demon Rāhu had caught hold of the God Candima, who took the refuge of the Blessed One for safety. Rāhu had to release Candima as ordered by the Buddha. (2.9.13).

Satta Jatila Sutta—It refers to the practice of monk's garb being used by the government spies going abroad amongst the public for investigation. Once a number of monks and mendicants, in the different sectarian manners, were passing by on the road before the mansion of Migāramātā where the king Pasenadi of Kosala had arrived to pay his respect to the Blessed One. At first, the king did homage to them, taking them to be liberated saints; but soon after he learnt that they were none else but his own spies. (3.11.27).

Doṇapāka Sutta—It refers to an advice given by the Buddha to Pasendi to practise moderation in food. This helped him in getting rid of the excess of weight and having a normal healthy slim body. (3.13.34).

Saṅgāma Sutta—This acquaints us with the then strained political relations between Magadha and Kosala. Occasional battles were raged between them in connection with the state of Kāsi. Some times one was defeated and some times the other. (3.14.36 & 3.15.40).

Mallikā Sutta—Queen Mallikā was blessed with a daughter. The news was whispered into the ear of king Pasenadi by a messenger while he was sitting in the presence of the Buddha. The king felt depressed at it. The Buddha taught that it is not proper to feel like it at the birth of a daughter; for, even a girl may attain to the same exalted status that a boy may do. Moreover, she may give birth to a great and glorious son. (3.16.43).

Aputtaka Sutta—This gives the story of a childless miser, who had died leaving behind a vast treasure of wealth. While he lived he took the coarsest food and rode the poorest car. King Pasenadi reported to the Buddha that he had transferred all of his wealth to the royal treasury. The Buddha compared the wealth of such a man to the lake that is inhabited by demons, which none can make use of. (3.10.49 & 3.20.51).

Pinda Sutta—The Blessed One went out begging alms in the village Pancasāla in Magadha, but could not get even a grain of food. (4.18.24).

Godhika Sutta—It refers to the suicide committed by Bhikkhu Godhika. The Buddha declared that he had attained Arahantahood. (4.23.29).

Bikkhuni Saṁyutta—This consists of Suttas connected with the life of Bhikkhunis who had attained to the different states of perfection in the religious practices. (5).

Vajirā Sutta—This sutta is important from the philosophical point of view. Bhikkhuni Vajirā expounds the philosophy of substancelessness in the famous stanza—

"As the 'chariot' is known depending on the different parts of it, so a 'being' is known depending on the five aggregates." (5.10.10).

In the **Milindapanha** this very stanza has been cited by Bhikkhu Nāgasena in expounding the principle of Anatta to the king Milinda.

Kokālika Sutta—The Sutta reveals that in the Saṅgha there existed an element that was intolerent to the eminence of the chief disciples—Sāriputta and Moggallāna. This gives the story of Bhikkhu Kokālika who, even in the face of Buddha's repeated disapproval, did not desist from reviling and blaming the two Arahants. (6.7.10).

Vaṅgisa Saṁyutta—It contains Suttas that give instances exhibitting the poetic genius of a Bhikkhu called Vaṅgisa. (8).

Yakkha Saṁyutta—The Suttas of this Saṁyutta make reference to various spirituous beings approaching the Buddha for puttting some querries or listening to his sermons. (10).

THE PĀLI ALPHABET IN DEVNĀGARĪ AND ROMAN CHARACTERS

VOWELS

अ = a	आ = ā	इ = i	ई = ī	उ = u	ऊ = ū	ए = e	ओ=o

CONSONANTS WITH VOWEL "A"

क ka	ख kha	ग ga	घ gha	ङ ṅa
च ca	छ cha	ज ja	झ jha	ञ ña
ट ṭa	ठ ṭha	ड ḍa	ढ ḍha	ण ṇa
त ta	थ tha	द da	ध dha	न na
प pa	फ pha	ब ba	भ bha	म ma
य ya	र ra	ल la	व va	स sa
	ह ha	ळ ḷa	अं aṁ	

VOWELS IN COMBINATION

क ka	का kā	कि ki	की kī	कु ku	कू kū	के ke	को ko
ख kha	खा khā	खि khi	खी khi	खु khu	खू khū	खे khe	खो kho

CONJUNCT-CONSONANTS

क्क kka	ञ्च ñca	द्व dva	म्ब mba
क्ख kkha	ञ्छ ñcha	ध्य dhya	म्भ mbha
क्य kya	ञ्ज ṅja	ध्व dhva	म्म mma
क्र kra	ञ्झ ṅjha	न्त nta	म्य mya
क्ल kla	ट्ट ṭṭa	न्त्व ntva	म्ह mha
क्व kva	ट्ठ ṭṭha	न्थ ntha	य्य yya
ख्य khya	ड्ड ḍḍa	न्द nda	य्ह yha
ख्व khva	ड्ढ ḍḍha	न्द्र ndra	ल्ल lla
ग्ग gga	ण्ट ṇta	न्ध ndha	ल्य lya
ग्घ ggha	ण्ठ ṇtha	न्न nna	ल्ह lha
ग्य gya	ण्ड ṅda	न्य nya	व्ह vha
ग्र gra	ण्ण ṇṇa	न्ह nha	स्त sta
ङ्क ṅka	ण्ह ṇha	प्प ppa	स्त्र stra
ङ्ख ṅkha	त्त tta	प्फ ppha	स्न sna
ङ्ग ṅga	त्थ ttha	प्य pya	स्य sya
ङ्घ ṅgha	त्व tva	प्ल pla	स्स ssa
च्च cca	त्य tya	ब्ब bba	स्म sma
च्छ ccha	त्र tra	ब्भ bbha	स्व sva
ज्ज jja	द्द dda	ब्य bya	ह्म hma
ज्झ jjha	द्ध ddha	ब्र bra	ह्व hva
ञ्ञ ñña	द्य dya	म्प mpa	ळ्ह lha
ञ्ह ñha	द्र dra	म्फ mpha	

ा = ā	ि = i	ी = ī	ु = u	ू = ū	े = e	ो = o

1	2	3	4	5	6	7	8	9	0
१	२	३	४	५	६	७	८	९	०

संयुत्तनिकायपालि

संयुत्त-वग्ग-सुत्तक्कमो

१. सगाथवग्गो पठमो

सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहिता]

(१. सगाथवग्गो)

* नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स *

संयुत्तनिकायपालि

सगाथवग्गो

१. देवतासंयुत्तं

१. नळवग्गो

१. ओघतरणसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N.Vol.I.3, B.1, R.1] जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं एतदवोच—''कथं नु त्वं, मारिस, ओघमतरी'' ति?

---

* उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम *

संयुक्तनिकायपालि

सगाथवर्ग

१. देवतासंयुक्त[1]

१. नड़वर्ग

१. ओघतरणसूत्र : : तृष्णा की बाढ को पार करना

१. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवन महाविहार में साधनाहेतु विराजमान थे। तब किसी चान्दनी रात में कोई देदीप्यमान रूप वाला देवता उस जेतवन को अवभासित करता हुआ, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ, पहुँचा। वहाँ पहुँचकर, वह भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुए उस देवता ने भगवान् से यों निवेदन किया—''मार्ष! (पूजनीय!) आपने (इस संसार में आकर) इस भवतृष्णा की बाढ़ को कैसे पार किया?''

---

१. इस संयुक्त के प्रत्येक सूत्र में किसी न किसी देवता के साथ ही भगवान् का संवाद है, अतः इस संयुक्त को 'देवतासंयुक्त' यह नाम उचित ही दिया गया है। (संयुक्त अर्थात् सम्बद्ध)

"अप्पतिट्ठं ख्वाहं, आवुसो, अनायूहं ओघमतरिं" ति।

"यथा कथं पन त्वं, मारिस, अप्पतिट्ठं अनायूहं ओघमतरी" ति?

"यदा ख्वाहं, आवुसा, सन्तिट्ठामि तदास्सु संसीदामि; यदा ख्वाहं, आवुसो, आयूहामि तदास्सु निब्बुय्हामि। एवं ख्वाहं, आवुसो, अप्पतिट्ठं अनायूहं ओघमतरिं" ति।

"चिरस्सं वत पस्सामि, ब्राह्मणं परिनिब्बुतं।
अप्पतिट्ठं अनायूहं, तिण्णं लोके विसत्तिकं" ति॥

[B.2] २. इदमवोच सा देवता। समनुञ्ञो सत्था अहोसि। अथ खो सा देवता— "समनुञ्ञो मे सत्था" ति भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

२. निमोक्खसुत्तं

[N.4, R.2] ३. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिः उपसङ्क-

---

(भगवान्—) "आयुष्मन्! मैंने तो विना रुके एवं विना कोई विशेष प्रयास किये ही इस बाढ को पार कर लिया।"

(देवता—) "मार्ष! आपने विना रुके एवं विना कोई विशेष प्रयास किये कैसे इस बाढ को पार कर लिया?"

(भगवान्—) "क्योंकि यदि मैं कहीं रुकता तो डूब जाता; तथा कोई अतिरिक्त प्रयास करता तो बह जाता। अत: मैंने विना रुके एवं विना कोई विशेष प्रयास किये उस बाढ़ को पार किया॥"

"अरे! मैंने बहुत समय बाद ऐसे ब्राह्मण (ज्ञानी) के दर्शन किये, जो विना कहीं रुके एवं विना कोई अतिरिक्त प्रयास किये इस सांसारिक तृष्णा (आसक्ति) को पार कर निर्वाण तक पहुँच चुका हो॥"

२. उस देवता ने यह कहा। भगवान् ने भी उसकी इस बात का अनुमोदन किया। तब वह देवता, यह समझ कर कि भगवान् मुझसे सहमत है, भगवान् को प्रणाम एवं प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्हित हो गया॥ •

२. निर्मोक्षसूत्र : : मोक्ष

३. **श्रावस्ती में।** फिर कोई अन्य देदीप्यमान देवता किसी अन्य चान्दनी रात में जेतवन को अपनी आभा से प्रद्योतित करता हुआ भगवान् के यहाँ आया। आकर भगवान्

मित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं एतदवोच—"जानासि नो त्वं, मारिस, सत्तानं निमोक्खं पमोक्खं विवेकं" ति?

"जानामि ख्वाहं, आवुसो, सत्तानं निमोक्खं पमोक्खं विवेकं" ति।

"यथा कथं पन त्वं, मारिस, जानासि सत्तानं निमोक्खं पमोक्खं विवेकं" ति?

"नन्दीभवपरिक्खया, सञ्ञाविञ्ञाणसङ्ख्या, वेदनानं निरोधा उपसमा—एवं ख्वाहं, आवुसो, जानामि सत्तानं निमोक्खं पमोक्खं विवेकं" ति॥ •

३. उपनीयसुत्तं

४. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"उपनीयति जीवितमप्पमायु, जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानी" ति॥

को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। तब उस ने भगवान् से यों पूछा—"मार्ष! क्या आप (इस भवसागर से) प्राणियों के निर्मोक्ष (निर्वाण), प्रमोक्ष या सर्वथा छुटकारे का उपाय जानते हैं?"

"हाँ, आयुष्मन्! मैं (इस भवसागर से) प्राणियों के निर्मोक्ष, प्रमोक्ष या सर्वथा छुटकारे का उपाय जानता हूँ।"

(देवता—) "मार्ष! आप प्राणियों के उस निर्मोक्ष, प्रमोक्ष या सर्वथा छुटकारे का क्या उपाय जानते हैं?"

(भगवान्—) "तृष्णा (आसक्ति) के कारण उद्भूत कर्मबन्धन के समूलतः नष्ट हो जाने से, संज्ञा एवं विज्ञान के निवृत्त हो जाने से, वेदनाओं का निरोध एवं उपशमन (शान्ति) हो जाने से, मैं समझता हूँ, प्राणियों का इस भवसागर से निर्मोक्ष प्रमोक्ष एवं सदा के लिये छुटकारा हो जाता है॥ •

३. उपनीयसूत्र : : सांसारिक भोगों का त्याग

४. **श्रावस्ती में साधना के समय** ... एक ओर खड़े किसी देवता ने सांसारिक भोगत्याग के विषय में भगवान् के सम्मुख ये गाथाएँ कहीं—

"तुम्हारा अल्प जीवन भी क्षीण होता जा रहा है, आयु कम होती जा रही है, बुढ़ापे (जरा) से बचने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। (यों सम्मुखस्थ) मृत्यु को देख कर भय मान रहे हो तो (अब भी समय है कि तुम) परिणाम में सुखदायी पुण्यकर्म करना आरम्भ करो॥"

"उपनीयति जीवितमप्पमायु, जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, लोकामिसं पजहे सन्तिपेक्खो" ति॥ •

४. अच्चेन्तिसुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं [B.3, R.3] अभासि—

"अच्चेन्ति काला तरयन्ति रत्तियो, वयोगुणा अनुपुब्बं जहन्ति।
[N.5] एतं भयं मरणे पेक्खमानो, पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानी" ति॥
"अच्चेन्ति काला तरयन्ति रत्तियो, वयोगुणा अनुपुब्बं जहन्ति।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, लोकामिसं पजहे सन्तिपेक्खो" ति॥ •

५. कतिछिन्दसुत्तं

६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"कति छिन्दे कति जहे, कति चुत्तरि भावये?
कति सङ्गातिगो भिक्खु, ओघतिण्णो ति वुच्चती"? ति॥

(भगवान्—) "जीवन क्षीण होता जा रहा है, आयु भी कम होती जा रही है; बुढापे से बचने का कोई उपाय दृष्टिगोचर नहीं हो पा रहा है, यों सम्मुखस्थ मृत्यु को देखकर तुम्हें भय भी लग रहा है। ऐसी स्थिति में, यदि तुम्हें शान्ति चाहिये तो अब से भी तुम सांसारिक कामभोगों का परित्याग कर दो (इसी में तुम्हारा हित है)॥" •

४. 'अत्येन्ति' सूत्र : : सांसारिक कामभोगों का त्याग

५. **श्रावस्ती में साधना के समय** ...एक ओर खड़े किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"समय बीतता जा रहा है, रातें गुजरती जा रही हैं; जीवन-सूत्र धीरे धीरे ढीले होते जा रहे हैं, सामने यमराज (मृत्यु) खड़ा दिखायी दे रहा है, ऐसी स्थिति में यदि तुम पुण्यकर्म करते रहो तो वे तुम्हारे लिये सुखदायी ही होंगे॥"

(भगवान्—) समय बीतता जा रहा है...पूर्ववत्...ऐसी स्थिति में यदि तुम अब भी कामभोगों का परित्याग कर दो तो इसी में तुम्हें शान्ति मिलेगी॥ •

५. 'कतिछिन्द' सूत्र : : पाँच को काट दो

६. **श्रावस्ती में** साधना के समय...एक तरफ खडे किसी देवता ने भगवान् से यह कहा—

"पञ्च छिन्दे पञ्च जहे, पञ्च चुत्तरि भावये।
पञ्च सङ्गातिगो भिक्खु, ओघतिण्णो ति वुच्चती" ति॥

(ध०प०, ३७० गा०) ●

६. जागरसुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"कति जागरतं सुत्ता, कति सुत्तेसु जागरा?
कतिभि रजमादेति, कतिभि परिसुज्झती"? ति॥
"पञ्च जागरतं सुत्ता, पञ्च सुत्तेसु जागरा।
पञ्चभि रजमादेति, पञ्चभि परिसुज्झती" ति॥

"कोई साधक भिक्षु कितनों को काटे, कितनों को छोड़े? तथा आगे अन्य किन्हीं का कितना अभ्यास करे एवं कितनों का सङ्ग त्याग दे कि वह 'बाढ पार कर गया'—ऐसा समझा जाय?"

(भगवान्-) "साधक भिक्षु को चाहिये कि वह साधना करते समय अपने पाँच (अवर भागीय[१] संयोजनों=बन्धनों) को काटने का प्रयास करे; पाँच (ऊर्ध्वभागीय[२] संयोजनों) को छोड़ने का प्रयास करे। तथा (श्रद्धा वीर्य आदि पाँच) इन्द्रियों का अभ्यास करे एवं (राग, द्वेष, मोह, मान और दृष्टि—इन) पाँच का सङ्ग (आसक्ति) अतिक्रान्त कर दे तो ऐसे साधक को ही लोग 'बाढ को पार गया'—ऐसा कहते हैं॥ ●

६. जागरसूत्र : : पाँच से शुद्धि

७. **श्रावस्ती में**...एक ओर खड़े किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"आध्यात्मिक साधनाभ्यासी जागते हुए साधकों में कितनों को सोया हुआ (प्रमादी) ही माना जाय तथा कितने सोये हुए प्रमादियों को जाग्रत् माना जाय? कितने साधनों (दुर्गुणों[३]) को अपनाने से साधक का चरित्र मलिन हो जाता है और कितने साधनों (सद्गुणों[४]) को स्वीकार करने से उसका चरित्र परिशुद्ध (पवित्र) होता है?"

---

१. सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रतपरामर्श, कामच्छन्द तथा व्यापाद—ये **अवरभागीय संयोजन** हैं।
२. रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य एवं अविद्याओं पाँच **ऊर्ध्वभागीय संयोजन** कहलाते हैं।
३. कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य एवं विचिकित्सा—ये पाँच **नीवरण** ही यहाँ पाँच दुर्गुण हैं।
४. श्रद्धा, वीर्य, प्रज्ञा, स्मृति एवं समाधि—ये पाँच **इन्द्रियाँ** ही यहाँ पाँच सद्गुण हैं।

७. अप्पटिविदितसुत्तं

८. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं [B.4, R.4] गाथं अभासि—

"येसं धम्मा अप्पटिविदिता, परवादेसु नीयरे।
सुत्ता ते नप्पबुज्झन्ति, कालो तेसं पबुज्झितुं" ति॥
"येसं धम्मा सुप्पटिविदिता, परवादेसु न नीयरे।
ते सम्बुद्धा सम्मदञ्ञा, चरन्ति विसमे समं" ति॥ •

८. सुसम्मुट्ठसुत्तं

९. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं [N.6] अभासि—

(भगवान्—) वैसे जाग्रत् कहलाने वालों में से पाँच वस्तुतः सोये हुए ही हैं। (अर्थात् उनकी साधना सम्यक् नहीं है।) तथा 'सोया हुआ' कहलाने वालों में से भी पाँच वस्तुतः जाग्रत् ही हैं। पाँच दुर्गुणों के अपनाने से साधक का चरित्र कलुषित होता है तथा पाँच सद्गुणों के अभ्यास से साधक का चरित्र शनैः शनैः परिशुद्ध होता जाता है॥ •

७. अप्रतिविदितसूत्र : : आर्य सत्यचतुष्टय के ज्ञाता बुद्ध

८. **श्रावस्ती में...।** एक तरफ खड़े हुए किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"जिन साधकों को धर्मों (आर्य सत्यचतुष्टय) का वास्तविक तत्त्व अविदित ही रह गया वे अन्य धर्मावलम्बियों का मत स्वीकार कर भवजाल में फँसते जा रहे हैं। वे वस्तुतः सोये हुए (प्रमत्त) ही हैं, उन्हें 'जाग्रत्' (जगता हुआ) नहीं कहा जा सकता। ऐसे उन बहके हुए (प्रमत्त) साधकों के लिये अब अपना प्रमाद छोड़ने का अवसर आ गया है॥"

(भगवान्—) "जिनके द्वारा धर्म (आर्य सत्यचतुष्टय) भलीभाँति अभ्यस्त कर लिये गये हैं, वे अन्य धर्मावलम्बियों के मतों से बहकाये नहीं जा सकते; क्योंकि वे सम्यक्सम्बुद्ध हो चुके हैं, वे सब कुछ जान चुके हैं। प्रमाद (भूल) करने योग्य स्थान में भी वे सतत अप्रमत्त (सावधान) रहते हुए अपना आचरण सम ही रखते हैं॥" •

८. सुसम्मृष्ट सूत्र : : सर्वज्ञ बुद्ध

९. **श्रावस्ती में...।** एक तरफ खड़े हुए किसी देवता ने भगवान् से यह गाथा कही—

"येसं धम्मा सुसम्मुट्ठा, परवादेसु नीयरे।
सुत्ता ते नप्पबुज्झन्ति, कालो तेसं पबुज्झितुं" ति॥
"येसं धम्मा असम्मुट्ठा, परवादेसु न नीयरे।
ते सम्बुद्धा सम्मदञ्ञा, चरन्ति विसमे समं" ति॥ •

९. मानकामसुत्तं

१०. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"न मानकामस्स दमो इधत्थि, न मोनमत्थि असमाहितस्स।
एको अरञ्ञे विहरं पमत्तो, न मच्चुधेय्यस्स तरेय्य पारं" ति॥
"मानं पहाय सुसमाहितत्तो, सुचेतसो सब्बधि विप्पमुत्तो।
एको अरञ्ञे विहरं अप्पमत्तो, समच्चुधेयस्स तरेय्य पारं" ति॥ •

"जो आज भी धर्म की वास्तविकता के विषय में मोहग्रस्त हैं तथा अन्य धर्मावलम्बियों के मतों में उलझे हुए हैं वे तो वस्तुत: सुप्त (वास्तविकता से अनभिज्ञ) ही हैं; उन्हें जाग्रत् (सावधान=तत्त्वज्ञ) नहीं कहा जा सकता। ऐसे लोगों के प्रबुद्ध होने (वास्तविकता से परिचित होने) का समय आ गया है॥"

(भगवान्—) "जो सद्धर्मों के वास्तविक ज्ञान के विषय में प्रमत्त नहीं है तथा अन्य धर्मावलम्बियों के मतों के जञ्जाल में नहीं फँसे हैं, उन्हें सम्बुद्ध एवं वस्तुतत्त्वज्ञ (सम्यग्ज्ञ) समझना चाहिये। वे विषम (असमान=ऊँचे नीचे) मार्ग में भी समत्व ग्रहण करने का सामर्थ्य रखते हैं॥" •

९. मानकामसूत्र : : मृत्युभय को पार करना

१०. **श्रावस्ती में...**। एक ओर खड़े हुए किसी देवता ने भगवान् से यह गाथा कही—

"अपने अभिमान में उन्मत्त साधक अपनी इन्द्रियों का दमन कभी नहीं कर सकता। समाधिस्थ हुए विना चार आर्यसत्यों का ज्ञान (=मौन) उसी तरह असम्भव है जैसे कोई जङ्गल में अकेला चलने वाला असावधान प्राणी मृत्यु के राज्य (=भय) को पार नहीं कर सकता"।

(भगवान्—) "जो साधक अभिमान के मद से रहित होकर, अपने चित्त को समाधिस्थ कर बुद्ध एवं धर्म में श्रद्धा रखता हुआ भवतृष्णा से सर्वथा विमुक्त हो चुका है, वह जङ्गल में विचरण करने वाले सावधान यात्री की तरह मृत्युभय को पार कर लेता है॥" •

१०. अरञ्ञसुत्तं

[B.5, R.5] ११. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"अरञ्ञे विहरन्तानं, सन्तानं ब्रह्मचारिनं।
एकभत्तं भुञ्जमानानं, केन वण्णो पसीदती"? ति॥
"अतीतं नानुसोचन्ति, नप्पजप्पन्ति नागतं।
पच्चुप्पन्नेन यापेन्ति तेन वण्णो पसीदति॥
"अनागतप्पजप्पाय, अतीतस्सानुसोचना।
एतेन बाला सुस्सन्ति, नळो व हरितो लुतो" ति॥

नळवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

[N.7] ओघं निमोक्खं उपनेय्य, अच्चेन्ति कतिछिन्दि च।
जागरं अप्पटिविदिता, सुसम्मुट्ठा मानकामिना।
अरञ्ञे दसमो वुत्तो, वग्गो तेन पवुच्चति॥ •

---

१०. अरण्यसूत्र : : प्रसन्नचित्तता

११. **श्रावस्ती में...**। एक ओर खड़े हुए किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"जो साधक वन में एकाकी साधनारत रहते हैं, शान्त हैं, धर्म की निरन्तर उपासना करते रहते हैं, एक समय ही भोजन करते हैं, ऐसा होने पर भी उनके मुख (चेहरे) पर किस कारण निरन्तर प्रसन्नता झलकती रहती है ?"

(भगवान्—) "वे साधक अपने बीते हुए के विषय में चिन्ता (सोच) नहीं करते, इसी तरह अपने भविष्य के विषय में भी व्यर्थ नहीं सोचते, केवल वर्तमान के अनुसार अपने प्रारब्ध को बिताते चलते हैं, इसी लिये उन साधकों के मुख पर प्रसन्नता झलकती रहती है॥

("इसके विपरीत) मूर्ख जन अपने भविष्य की कल्पना में लगे रहते हैं, या फिर अपने अतीत का व्यर्थ चिन्तन करते रहते हैं, इसी (चिन्ता के) कारण उन का चेहरा उसी

तरह सूखा रहता है जैसे कटा हुआ (=लुत) हरा नरकट (नड़=नदी किनारे खड़ा सरपत) सूखा रहता है ॥''

प्रथम नडवर्ग समाप्त ॥

इस वर्ग की सूची (उदान)—१. ओघ, २. निर्मोक्ष, ३. उपनीय, ४. 'अत्येन्ति', ५. कतिछिन्न, ६. जाग्रत्, ७. अप्रतिविदित, ८. सुसम्मृष्ट, ९. मानकाम एवं १०. अरण्य—ये दश सूत्र इस नडवर्ग में कहे गये हैं ॥

२. नन्दनवग्गो

११. नन्दनसुत्तं

१२. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"भूतपुब्बं, भिक्खवे, अञ्ञतरा तावतिंसकायिका देवता नन्दने वने अच्छरासङ्घपरिवुता दिब्बेहि पञ्चहि कामगुणेहि समप्पिता समङ्गीभूता परिचारयमाना तायं वेलायं इमं गाथं अभासि—

[B.6] 'न ते सुखं पजानन्ति, ये न पस्सन्ति नन्दनं।
आवासं नरदेवानं, तिदसानं यसस्सिनं' ति॥ •

[R.6] १३. "एवं वुत्ते, भिक्खवे, अञ्ञतरा देवता तं देवतं गाथाय पच्चभासि—
'न त्वं बाले पजानासि, यथा अरहतं वचो।
अनिच्चा सब्बसङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो''' ति॥ •

---

२. नन्दनवर्ग

११. नन्दनसूत्र : : नन्दनवन

१२. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ कभी भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ!" "हाँ, भन्ते" कहते हुए भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् ने उनको यह बताया—

"भिक्षुओ! पहले कभी कोई त्रायस्त्रिंश लोक का देवता नन्दन वन में अप्सराओं के समूह से घिरा हुआ, पाँचों इन्द्रियों के कामभोगों का उपभोग करता हुआ, उन्हीं में आसक्त चित्त रहता हुआ यह गाथा बोला—

'वे सुख का महत्त्व क्या जानें जिन्होंने यशस्वी त्रायस्त्रिंश देवों का वासस्थान नन्दनवन नहीं देखा॥'

१३. "ऐसा कहे जाने पर, भिक्षुओ! किसी अन्य देवता ने उस को, यह गाथा सुनकर, उत्तर दिया—

'अरे मूर्ख! तूँ वह सब नहीं जानता जो अर्हत् जन इस विषय में कहते हैं। उन का कहना है कि—

१२. नन्दतिसुत्तं

१४. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा, गोमिको गोहि तथेव नन्दति।
उपधीहि नरस्स नन्दना, न हि सो नन्दति यो निरूपधी" ति॥
"सोचति पुत्तेहि पुत्तिमा, गोमिको गोहि तथेव सोचति। [N.8]
उपधीहि नरस्स सोचना, न हि सो सोचति या निरूपधी" ति॥ ●

१३. नत्थिपुत्तसमसुत्तं

१५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"नत्थि पुत्तसमं पेमं, नत्थि गोसमितं धनं।
नत्थि सुरियसमा आभा, समुद्दपरमा सरा" ति॥

सभी संस्कार (लोक में उत्पन्न पदार्थ) उत्पत्ति एवं विनाश स्वभाव वाले हैं। ये तो उत्पन्न एवं विनष्ट होते रहते हैं। इनका व्युपशम (शान्ति) ही वास्तविक सुख है॥' " ●

१२. 'नन्दति' सूत्र : : चिन्तारहित होना

१४. **श्रावस्ती में...**। एक ओर खड़े हुए किसी देवता ने भगवान् से यह गाथा कही—

"पुत्रों वाला गृहस्थ जन अपने पुत्रों से घिरा रहकर ही सुख मानता है; उसी तरह कोई गोपाल अपने पशुओं से घिरा रहकर ही सुख मानता है; क्योंकि सांसारिक वस्तुओं में तथाकथित राग से ही मनुष्य को सुख का अनुभव होता है। जिसके पास कोई सांसारिक वस्तु है ही नहीं, वह किसमें सुख मानेगा!"

(भगवान्—) "परन्तु वास्तविकता यह है कि वह पुत्रों वाला उन पुत्रों की चिन्ता में दिन रात डूबा रहता है, और वह गोपाल अपनी गायों (पशुओं) की चिन्ता में डूबा रहता है; क्योंकि ये सभी सांसारिक पदार्थ सभी प्राणियों के लिये चिन्ता का विषय बने रहते हैं। हाँ! सांसारिक पदार्थों का सर्वथा त्याग करने वाले (अर्हत्) को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं सताती, अत: वही वस्तुत: सुखी है॥" ●

१३. 'नास्ति पुत्रसम' सूत्र : : अपने से बढकर कोई प्रिय नहीं

१५. **श्रावस्ती में...**। एक तरफ खड़ा कोई देवता भगवान् के सम्मुख इस गाथा के माध्यम से यों बोला—

"पुत्र से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है, पशु (गौ) के समान कोई धन नहीं है। सूर्य के समान कोई प्रकाशवान् वस्तु नहीं है, जलराशियों में सबसे बढकर समुद्र है।"

"नत्थि अत्तसमं पेमं, नत्थि धञ्ञसमं धनं।
नत्थि पञ्ञासमा आभा, वुट्ठि वे परमा सरा" ति॥

१४. खत्तियसुत्तं

[B.7] १६. "खत्तियो द्विपदं सेट्ठो, बलीबद्दो चतुप्पदं।
कोमारी सेट्ठा भरियानं, यो च पुत्तान पुब्बजो" ति॥
"सम्बुद्धो द्विपदं सेट्ठो, आजानीयो चतुप्पदं।
सुस्सूसा सेट्ठा भरियानं, यो च पुत्तानमस्सवो" ति॥

१५. सणमानसुत्तं

[R.7] १७. "ठिते मज्झन्हिके काले, सन्निसीवेसु पक्खिसु।
सणतेव ब्रह्मारञ्ञं, तं भयं पटिभाति मं" ति॥
"ठिते मज्झन्हिके काले, सन्निसीवेसु पक्खिसु।
सणतेव ब्रहारञ्ञं, सा रति पटिभाति मं" ति॥

(भगवान्—) "नहीं; वस्तुतः आत्मा (अपने आप) के समान अन्य कोई प्रिय नहीं है, धान्य (अन्न) के समान कोई धन नहीं है। प्रज्ञा (बुद्धि) के समान कोई अन्य प्रकाशक पदार्थ नहीं है, तथा वर्षा से बढ़कर अन्य कोई विशाल जलराशि नहीं है—ऐसा समझ॥"

१४. क्षत्रियसूत्र : : बुद्ध ही सर्वश्रेष्ठ हैं

(देवता—) १६. "दो पैरों वाले प्राणियों (मनुष्यों) में क्षत्रिय श्रेष्ठ है, चार पैरों वाले प्राणियों (पशुओं) में बैल (बलीवर्द) श्रेष्ठ है। स्त्रियों में कुमारी (कन्या) श्रेष्ठ है, तथा पुत्रों में जो सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ (ज्येष्ठ) है वही श्रेष्ठ है॥"

(भगवान्—) "दो पैरों वाले प्राणियों (मनुष्यों) में बुद्ध श्रेष्ठ है, चौपायों में सुशिक्षित अश्व श्रेष्ठ होता है। स्त्रियों में उसे श्रेष्ठ कहना चाहिये जो सेवा करने वाली हो, तथा पुत्रों में वह श्रेष्ठ है जो माता पिता का आज्ञाकारी है॥"

१५. सणमानसूत्र : : शान्ति में सुख

(देवता—) १७. "दिन में दोपहर के समय, जब कि पक्षी भी अपने अपने घोंसलों में चुपचाप शान्त बैठे जाते हैं, सन सन करता हुआ यह विशाल अरण्य मुझे बहुत भयदायक लगता है।"

(भगवान्—) "दिन में दोपहर के समय, जब कि पक्षी भी अपने अपने घोंसलों में चुपचाप बैठ जाते हैं, सन सन करता हुआ यह विशाल अरण्य मुझे बहुत ही आनन्ददायक लगता है॥"

१६. निद्दातन्दीसुत्तं

१८. "निद्दा तन्दी विजम्भिता, अरती भत्तसम्मदो।
एतेन नप्पकासेति, अरियमग्गो ध पाणिनं" ति॥
"निद्दं तन्दिं विजम्भितं, अरतिं भत्तसम्मदं। [N.9]
विरियेन नं पणामेत्वा, अरियमग्गो विसुज्झती" ति॥ •

१७. दुक्करसुत्तं

१९. "दुक्करं दुत्तितिक्खं च, अब्यत्तेन च सामञ्ञं।
बहू हि तत्थ सम्बाधा, यत्थ बालो विसीदती" ति॥
"कतिहं चरेय्य सामञ्ञं, चित्तं चे न निवारये।
पदे पदे विसीदेय्य, सङ्कप्पानं वसानुगो" ति॥
"कुम्मो व अङ्गानि सके कपाले, समोदहं भिक्खु मनोवितक्के।
अनिस्सितो अञ्ञमहेठयानो, परिनिब्बुतो नूपवदेय्य कञ्ची" ति॥ •

---

१६. निद्रातन्द्रासूत्र : : निन्द्रा, तन्द्रा आदि का त्याग

(देवता—) १८. निद्रा, तन्द्रा, जम्हाई लेना, अरति (अरुचि), भोजन के बाद का आलस्य—ये सब कारण हैं जिनसे साधक लोग आर्यमार्ग का समीचीनतया साक्षात्कार नहीं कर पाते॥"

(भगवान्—) "निद्रा, तन्द्रा, जम्हाई, अरुचि एवं भोजन के बाद के आलस्य को प्रयत्न (उत्साह) पूर्वक दबाकर आर्यमार्ग का सम्यक्तया साक्षात्कार करना चाहिये॥"•

१७. दुष्करसूत्र : : श्रमणभाव की रक्षा

(देवता—) १९. मूर्ख द्वारा श्रमण (भिक्षु) भाव धारण करना, उसके आचरण में होने वाली कठिनाइयों को सहन करना, तथा उसका पालन करना—तीनों ही बातें कठिन है; क्यों कि इनमें नाना प्रकार की बाधाएँ आती रहती हैं, जिनसे वे (मूर्ख) हार मान बैठते हैं॥

(भगवान्—) "साधक यदि अपने चित्त को वश में नहीं रख सकता तो वह कितने दिन तक श्रमणभाव का पालन कर पायगा; क्योंकि वह अपने सङ्कल्प विकल्पों के वश में हो कर कभी भी च्युत हो सकता है!॥

"अत: श्रेष्ठ साधक, कछुआ जैसे अपने समस्त शरीर को अपने कपाल के नीचे समेट लेता है वैसे ही, अपने मन:सङ्कल्पों को शान्त रखता हुआ, स्वतन्त्र रहकर किसी को कष्ट न देता हुआ निर्वाण का ही साक्षात्कार करे; किसी की भी निन्दा में प्रवृत्त न हो॥"•

१८. हिरीसुत्तं

२०. ''हिरीनिसेधो पुरिसो, कोचि लोकस्मिं विज्जति।
[B.7] यो निन्दं अपबोधति, अस्सो भद्रो कसामिवा'' ति॥
''हिरीनिसेधा तनुया, ये चरन्ति सदा सता।
अन्तं दुक्खस्स पप्पुय्य, चरन्ति विसमे समं'' ति॥ •

१९. कुटिकासुत्तं

[R.8] २१. ''कच्चि ते कुटिका नत्थि, कच्चि नत्थि कुलावका।
कच्चि सन्तानका नत्थि, कच्चि मुत्तोसि बन्धना''? ति॥
''तग्घ मे कुटिका नत्थि, तग्घ नत्थि कुलावका।
तग्घ सन्तानका नत्थि, तग्घ मुत्तोम्हि बन्धना'' ति॥
''किन्ताहं कुटिकं ब्रूमि, किन्ते ब्रूमि कुलावकं।
किन्ते सन्तानकं ब्रूमि, किन्ताहं ब्रूमि बन्धनं''? ति॥
''मातरं कुटिकं ब्रूसि, भरियं ब्रूसि कुलावकं।
पुत्ते सन्तानके ब्रूसि, तण्हं मे ब्रूसि बन्धनं'' ति॥

---

१८. ह्रीसूत्र : : पापकर्म से सङ्कोच करना

(देवता—) २०. ''संसार में ऐसे कुछ ही लोग हैं जो पापकर्मों के निष्पादन में सङ्कोच करते हैं। वे परनिन्दा से ऐसे ही भय खाते हैं, जैसे घोड़ा चाबुक से भय खाता है॥''

(भगवान्—) ''अल्प पापकर्म के निष्पादन में भी जो सङ्कोच करते हैं तथा सदा स्मृतिमान् (सावधान) रह कर लोक में विचरण करते हैं, वे अपने दु:खों का अन्त कर विषम परिस्थितियों में भी सीधा एवं सच्चा मार्ग खोज ही लेते हैं॥'' •

१९. कुटिकासूत्र : : कुटी का भी त्याग

(देवता—) २१. ''क्या आपके पास रहने के लिये कुटिया नहीं है? क्या आपका कोई घोंसला नहीं है? क्या आपको कोई पुत्र पौत्रादि सन्तान नहीं है? क्या आप सभी बन्धनों से मुक्त हो चुके हैं?''

(भगवान्—) ''वस्तुत: न मुझे कोई कुटिया है, न कोई छोटा मोटा आवासस्थान (घोंसला)। न मेरी कोई सन्तान ही है, अत: मैं सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त हूँ॥

(देवता—) ''क्या आप समझे कि मैंने आपके लिये 'कुटिया' किसे कहा? 'घोंसला' किसे कहा? 'सन्तान' किसे कहा? तथा 'बन्धन' किसे कहा?''

(भगवान्—) हाँ, तुमने 'कुटिया' से मेरी माता की तरफ सङ्केत किया है, 'घोंसला'

"साहु ते कुटिला नत्थि, साहु नत्थि कुलावका।
साहु सन्तानका नत्थि, साहु मुत्तोसि बन्धना" ति॥ •

२०. समिद्धिसुत्तं

२२. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति तपोदारामे। अथ [N.10] खो आयस्मा समिद्धि रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय येन तपोदा तेनुपसङ्कमि गत्तानि परिसिञ्चितुं। तपोदे गत्तानि परिसिञ्चित्वा पच्चुत्तरित्वा एकचीवरो अट्ठासि गत्तानि पुब्बापयमानो। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं तपोदं ओभासेत्वा येन आयस्मा समिद्धि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा वेहासं ठिता आयस्मन्तं समिद्धिं गाथाय अज्झभासि—

"अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु, न हि भुत्वान भिक्खसि। [B.9]
भुत्वान भिक्खु भिक्खस्सु, मा तं कालो उपच्चगा" ति॥

"कालं वोहं न जानामि, छन्नो कालो न दिस्सति। [R.9]
तस्मा अभुत्वा भिक्खामि, मा मं कालो उपच्चगा" ति॥ •

कह कर मेरी भार्या की तरफ सङ्केत किया है। 'सन्तान' कहकर मेरे पुत्र पौत्रादि की तरफ सङ्केत किया है एवं 'बन्धन' से मेरी सांसारिक तृष्णा की तरफ तुम्हारा सङ्केत है।"

(देवता-) "ठीक है, तब तो आपके पास न कोई कुटिया है, न कोई घोंसला तथा न कोई सन्तान। अत: आप वस्तुत: सभी बन्धनों से मुक्त हैं"॥ •

२०. समृद्धिसूत्र : : यथाशीघ्र कामभोगों का त्याग

२२. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह के तपोदाराम** में साधना हेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् **समृद्धि** रात्रि के अन्तिम प्रहर में बहुत सबेरे उठ कर तपोदा कुण्ड में स्नान हेतु पहुँचे। तपोदा में स्नान कर एक वस्त्र पहिने हुए वे अपना शरीर सुखा रहे थे। तभी कोई आभायुक्त देवता तपोदा को देदीप्यमान करता हुआ समृद्धि भिक्षु के समीप आया। वहाँ आकर, आकाश में ही खड़े खड़े उसने आयुष्मान् समृद्धि से यह गाथा कही—

"भिक्षु जी! आप पञ्च कामभोगों का उपभोग किये विना (इतनी अल्प आयु में) ही भिक्षु बनकर घर घर भीख माँगने लगे गये। उन कामभोगों का उपभोग कर के ही आप भिक्षु क्यों नहीं बने? भिक्षु! अब भी समय है, आप पहले उन पाँचों कामभागों का उपभोग कर लें। ऐसा न हो कि आपके लिये उन कामभोगों के भोगने का समय ही बीत जाय तथा आपका मृत्युकाल समीप आ जाय॥"

(भिक्षु) "मृत्युकाल के विषय में तो मैं कुछ नहीं जानता; क्योंकि वह काल सभी

२३. अथ खो सा देवता पठवियं पतिट्ठहित्वा आयस्मन्तं समिद्धिं एतदवोच— "दहरो त्वं, भिक्खु, पब्बजितो सुसु काळकेसो, भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो, पठमेन वयसा, अनिक्कीळितावी कामेसु। भुञ्ज, भिक्खु, मानुसके कामे; मा सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावी" ति।

२४. "न ख्वाहं, आवुसो, सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावामि। कालिकं च ख्वाहं, आवुसो, हित्वा सन्दिट्ठिकं अनुधावामि। कालिका हि, आवुसो, कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा; आदीनवो एत्थ भिय्यो। सन्दिट्ठिको अयं धम्मो अकालिको एहिपस्सिको ओपनयिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही" ति।

"कथं च, भिक्खु, कालिका कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा; आदीनवो एत्थ भिय्यो? कथं सन्दिट्ठिको अयं धम्मो अकालिको एहिपस्सिको ओपनयिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही" ति?

के लिये अज्ञात है। अतः मैं (अपना इसी में हित देखते हुए) कामभोगों का उपभोग किये विना ही भिक्षुभाव (प्रव्रज्या) को प्राप्त हो गया हूँ कि मेरा यह अमूल्य समय व्यर्थ न बीत जाय॥"

२३. तब वह देवता पृथ्वी पर उतर कर, आयुष्मान् समृद्धि से यों बोला—"भिक्षु! तुम तो अपनी भरी जवानी में ही भिक्षुभाव को प्राप्त हो गये हो! अभी तो तुम तरुण हो, तुम्हारे केश भी काले हैं; तुम पर युवावस्था का भारी दबाव है, अभी तुम्हारी यह तरुण अवस्था है, अभी तक तुमने कामभोगों का भी क्या उपभोग किया होगा, या संसार क्या देखा होगा! अतः, भिक्षु! अभी तो तुम कामभोगों का उपभोग करने में ही अपना मन लगाओ। वर्तमान को छोड़कर भविष्य की सुनहरी कल्पनाओं के भ्रमजाल में न फँसो।"

२४. "नहीं, आयुष्मन्! मैं वर्तमान की उपेक्षा कर भविष्य के मायाजाल में नहीं फँसा हूँ, अपितु भविष्य की कल्पना की उपेक्षा कर वर्तमान के ही पीछे दौड़ रहा हूँ; क्योंकि भगवान् ने इन पञ्च कामगुणों को ही, जिनकी तुम इतनी प्रशंसा कर रहे हो, भविष्य की सुनहरी कल्पना कोटि में रखा है, जो कि परिणाम में अत्यधिक दुःखप्रद एवं अतीव श्रमसाध्य और बहुत अधिक उद्विग्नता पैदा करने वाले हैं। इनके तो दुष्परिणाम ही अधिक देखने में आते हैं। इसके विपरीत, तथागत द्वारा उपदिष्ट यह धर्म वर्तमान में भी फलप्रद है, यह किसी विशेष समय का मुखापेक्षी नहीं है। जब चाहो तब अपनी इन्द्रियों पर भली भाँति निग्रह कर इसका साक्षात्कार कर सकते हो। इसकी आराधना से निर्वाण के समीप पहुँचा जा सकता है, विद्वान् लोग इसका फल प्रत्यक्ष देख सकते हैं।"

"भिक्षु! तथागत ने इन कामगुणों को सामयिक एवं दुष्परिणामदायक क्यों कहा है

"अहं खो, आवुसो, नवो अचिरपब्बजितो अधुनागतो इमं धम्मविनयं। न ताहं सक्कोमि वित्थारेन आचिक्खितुं। अयं सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो राजगहे [N.11] विहरति तपोदारामे। तं भगवन्तं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छ। यथा ते भगवा व्याकरोति तथा नं धारेय्यासी" ति।

"न खो, भिक्खु, सुकरो सो भगवा अम्हेहि उपसङ्कमितुं, अञ्ञाहि महेसक्खाहि देवताहि परिवुतो। सचे खो त्वं, भिक्खु, तं भगवन्तं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छेय्यासि, मयं पि आगच्छेय्याम धम्मस्सवनाया" ति।

२५. "एवमावुसो" ति खो आयस्मा समिद्धि तस्सा देवताय पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। [R.10] एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा समिद्धि भगवन्तं एतदवोच—"इधाहं, भन्ते, [B.10] रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय येन तपोदा तेनुपसङ्कमि गत्तानि परिसिञ्चितुं। तपोदे गत्तानि परिसिञ्चित्वा पच्चुत्तरित्वा एकचीवरो अट्ठासिं गत्तानि पुब्बापयमानो। अथ खो, भन्ते, अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं तपोदं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा वेहासं ठिता इमाय गाथाय अज्झभासि—

'अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु, न हि भुत्वान भिक्खसि।
भुत्वान भिक्खु भिक्खस्सु, मा तं कालो उपच्चगा' ति॥

और अपने उपदिष्ट धर्म को वर्तमान में भी फलप्रद तथा निर्वाण तक पहुँचाने वाला क्यों कह दिया है?"

"आयुष्मन्! मैं तथागत के इस धर्म में नया ही प्रव्रजित हुआ हूँ, अत: इस विषय में विस्तार से कुछ नहीं कह पाऊँगा। हाँ, भगवान् अभी राजगृह के तपोदाराम में ही विराजमान हैं, अच्छा हो कि आप उनके सम्मुख पहुँचकर उन्हीं से अपनी शङ्का का समाधान कर लें!"

"भिक्षु! भगवान् के सम्मुख पहुँचना हम जैसों के लिये इतना सरल नहीं है; क्योंकि वे प्राय: बड़े बड़े यशस्वी देवताओं से घिरे रहते हैं। अत: अच्छा यही होगा कि आप उनसे समझ कर मुझे बता दें। या फिर आप जब पूछते रहेंगे तो मैं भी उस समय उसे सुनने के लिये उपस्थित हो जाऊँगा।"

२५. आयुष्मान् समृद्धि ने "ठीक है" कहते हुए देवता को उत्तर दिया। और वह स्वयं भगवान् के सम्मुख पहुँच गया। वहाँ पहुँच कर, प्रणाम कर एक तरफ बैठते हुए यह

"एवं वुत्ते अहं, भन्ते, तं देवतं गाथाय पच्चभासिं—

'कालं वोहं न जानामि, छन्नो कालो न दिस्सति।

तस्मा अभुत्वा भिक्खामि, मा मं कालो उपच्चगा' ति॥

"अथ खो, भन्ते, सा देवता पठवियं पतिट्ठहित्वा मं एतदवोच— 'दहरो त्वं, भिक्खु, पब्बजितो सुसु काळकेसो, भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो, पठमेन वयसा, अनिक्कीळितावी कामेसु। भुञ्ज, भिक्खु, मानुसके कामे; मा सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावी' ति।

"एवं वुत्ताहं, भन्ते, तं देवतं एतदवोचं—'न ख्वाहं, आवुसो, सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावामि; कालिकं च ख्वाहं, आवुसो, हित्वा सन्दिट्ठिकं अनुधावामि। कालिका हि, आवुसो, कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो [N.12] एत्थभिय्यो, सन्दिट्ठिको अयं धम्मो अकालिको एहिपस्सिको ओपनयिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति।

"एवं वुत्ते, भन्ते, सा देवता मं एतदवोच—'कथं च, भिक्खु, कालिका कामा [R.11] वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। कथं सन्दिट्ठिको अयं धम्मो अकालिको एहिपस्सिको ओपनयिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति? एवं वुत्ताहं, भन्ते, तं देवतं एतदवोचं—'अहं खो, आवुसो, नवो अचिरपब्बजितो अधुनागतो इमं धम्मविनयं, न ताहं सक्कोमि वित्थारेन आचिक्खितुं। अयं सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो राजगहे विहरति तपोदारामे। तं भगवन्तं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छ। यथा ते भगवा ब्याकरोति तथा नं धारेय्यासी' ति।

[B.11] "एवं वुत्ते, भन्ते, सा देवता मं एतदवोच—'न खो, भिक्खु, सुकरो सो भगवा अम्हेहि उपसङ्कमितुं, अञ्ञाहि महेसक्खाहि देवताहि परिवुतो। सचे खो त्वं, भिक्खु, तं भगवन्तं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छेय्यासि, मयं पि आगच्छेय्याम धम्मस्सवनाया" ति। सचे, भन्ते, तस्सा देवताय सच्चं वचनं, इधेव सा देवता अविदूरे" ति।

एवं वुत्ते, सा देवता आयस्मन्तं समिद्धिं एतदवोच—"पुच्छ, भिक्खु; पुच्छ, भिक्खु, यमहं अनुप्पत्तो" ति।

निवेदन करने लगा— "भन्ते! आज रात्रि व्यतीत होने पर, बहुत सबेरे उठकर मैं तपोदा कुण्ड में... पूर्ववत्... उसे सुनने के लिये उपस्थित हो जाऊँगा। यदि उस देवता का कहना सत्य है, तो वह भी इस समय यहाँ कहीं समीप में ही उपस्थित होगा।"

२६. अथ खो भगवा तं देवतं गाथाहि अज्झभासि—

"अक्खेय्यसञ्ञिनो सत्ता, अक्खेय्यस्मिं पतिट्ठिता।
अक्खेय्यं अपरिञ्ञाय, योगमायन्ति मच्चुनो॥
"अक्खेय्यं च परिञ्ञाय, अक्खातारं न मञ्ञति।
तं हि तस्स न होती ति, येनं नं वज्जा न तस्स अत्थि॥
सचे विजानासि वदेहि यक्खा"? ति॥

"न ख्वाहं, भन्ते, इमस्स भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानामि। साधु मे, भन्ते, भगवा तथा भासतु यथाहं इमस्स भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं जानेय्यं" ति।

"समो विसेसी उद वा निहीनो, यो मञ्ञती सो विवदेथ तेन। [R.12]
तीसु विधासु अविकम्पमानो, समो विसेसी ति न तस्स होति। [N.13]
सचे विजानासि वदेहि यक्खा"? ति॥

ऐसा निवेदन किये जाने पर उस देवता ने आयुष्मान् समृद्धि से यह कहा—"पूछो, भिक्षु! वह पूछो, जिसको सुनने के लिये हम यहाँ तक आये हैं।"

२६. तब भगवान् ने इन गाथाओं के माध्यम से उस देवता से यह कहा—

"लोक में जिन प्राणियों को 'जीव' कहा जाता है, वह आख्या(संज्ञा)मात्र है। उस आख्या पर ही उनका समग्र लोकव्यवहार प्रतिष्ठित है। इस आख्या की वास्तविकता का ज्ञान न होने से प्राणी मृत्यु के अधीन होते रहते हैं।[१]

जो इस आख्या (संज्ञा) की वास्तविकता (तत्त्व) को जान गया है वह पञ्चस्कन्धातिरिक्त आत्मा की मिथ्यादृष्टि के प्रपञ्च में नहीं फँसता। उस (ज्ञानी) को ऐसा कुछ नहीं रह जाता, जिससे उस पर कोई तद्विषयक सतृष्णता का दोषारोपण कर सके। यक्ष! यदि तुमने ऐसे किसी ज्ञानी (क्षीणास्रव) को देखा हो तो बताओ?"

"भन्ते! मैं आपके इस संक्षिप्त कथन का निष्कर्ष नहीं समझ पाया। अत: आप ही इस का विस्तार करें, जिससे मैं कुछ वास्तविकता समझ सकूँ।"

(भगवान् बोले—) " 'मैं किसी के बराबर हूँ', 'किसी से ऊँचा हूँ' या 'किसी से नीचा हूँ'—ऐसे विचारों वाला पुरुष लोक में विविध विवादों में फँसता रहता है। इसके विपरीत, जो इन तीनों अवस्थाओं में पडने पर स्वचित्त को निगृहीत रखता है उसका लोक

---

१. इस गाथा का निष्कर्ष समझने के लिये **मिलिन्दपञ्हपालि** में वर्णित रथ-उपमा का विशेष मनन करना चाहिये।—सं०।

"इमस्सा पि ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स न वित्थारेन अत्थं आजानामि। साधु मे, भन्ते, भगवा तथा भासतु यथाहं इमस्स भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं जानेय्यं" ति।

"पहासि सङ्खं न विमानमज्झगा, अच्छेच्छि तण्हं इध नामरूपे।
तं छिन्नगन्थं अनिघं निरासं, परियेसमाना नाज्झगमुं॥
देवा मनुस्सा इध वा हुरं वा, सग्गेसु वा सब्बनिवेसनेसु।
सचे विजानासि वदेहि यक्खा?" ति॥

[B.12] "इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि—

"पापं न कयिरा वचसा मनसा, कायेन वा किञ्चन सब्बलोके।
कामे पहाय सतिमा सम्पजानो, दुक्खं न सेवेत अनत्थसंहितं" ति॥ •

नन्दनवग्गो दुतियो॥

में किसी के कोई विवाद नहीं होता। "यक्ष! यदि तुम ऐसे किसी (ज्ञानी) पुरुष को जानते हो तो बताओ?"॥

(देवता—) "भन्ते! मैं आपके इस कथन का भी तात्पर्य नहीं समझ पाया। अच्छा होता कि आप ही इस बात को भी मुझे कुछ विस्तार से समझाते। जिससे मैं कुछ अधिक समझ सकूँ॥"

(भगवान्—) "जिसने अपने राग द्वेष एवं मोह का प्रहाण कर लिया है वह माता के गर्भ (=मातृकुक्षि=विमान) में नहीं आता। नाम एवं रूप के प्रति होने वाली समस्त तृष्णा को जिसने काट डाला है, ऐसे उस सांसारिक बन्धनों तथा त्रिविध दुःखों से मुक्त एवं तृष्णारहित ज्ञानी पुरुष को, कोई खोजते रहने पर भी, विना सौभाग्य के प्राप्त नहीं कर सकता।

"हे यक्ष! ऐसा ज्ञानी पुरुष तुमने देवलोक में या मनुष्यलोक में, इस लोक या परलोक में, स्वर्ग या अन्य किसी जीवलोक में देखा हो तो बताओ?"

(देवता—) "भन्ते! भगवान् के इस कथन का मैं इतना ही विस्तार जानता हूँ—

"स्वहिताकांक्षी पुरुष शरीर, वचन या मन से होने वाला कोई पाप न करे, वह समस्त संसार में स्मृतिमान् होकर कामभोगों का उपभोग न करता हुआ विचरण करे। अपने लिये अनर्थकारी दुःखों को न बढ़ावे॥" •

द्वितीय नन्दनवर्ग सम्पन्न॥

तस्सुद्दानं

नन्दना नन्दति चेव, नत्थिपुत्तसमेन च।
खत्तियो सणमानो च, निद्दातन्दी च दुक्करं।
हिरी कुटिका नवमो, दसमो वुत्तो समिद्धिना ति॥

इस वर्ग की सूत्र सूची—इस वर्ग में ११. नन्दन, १२. नन्दति, १३. नास्तिपुत्रसम, १४. क्षत्रिय, १५. सणमान, १६. निद्रातन्द्रा, १७. दुष्कर, १८. ह्री, १९. कुटिका एवं २०. समृद्धि—ये दश सूत्र हैं।

३. सत्तिवग्गो

२१. सत्तिसुत्तं

[R.13] २७. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

[N.14] "सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानो व मत्थके।
कामरागप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे" ति॥
"सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानो व मत्थके।
सक्कायदिट्ठिप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे" ति॥ •

२२. फुसतिसुत्तं

२८. "नाफुसन्तं[१] फुसति च, फुसन्तं च ततो फुसे।
तस्मा फुसन्तं फुसति, अप्पदुट्ठपदोसिनं" ति॥

---

३. शक्तिवर्ग

२१. शक्तिसूत्र : : सत्कायदृष्टि का प्रहाण

२७. **श्रावस्ती में**...। वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

"जैसे भाला (=शक्ति) लेकर कोई आक्रमण करने आ जाय, या शिर पर अग्नि लग जाय उस समय जैसे सावधान होकर उसका प्रतीकार करना पड़ता है; उसी तरह कामभोगों में उत्पन्न राग (आसक्ति) के प्रहाण के लिये भिक्षु को स्मृतिमान् होकर लोक में त्यागमय भावना से रहना चाहिये।"

(भगवान्—) "जैसे भाला...पूर्ववत्...प्रतीकार करना पड़ता है, उसी तरह सत्कायदृष्टि (मिथ्या आत्मदृष्टि) के प्रहाण के लिये संन्यासी बन कर भिक्षु को लोक में स्मृतिमान् होकर विचरण करना चाहिये॥" •

२२. स्पृशतिसूत्र : : निर्दोष पर दोषारोपण

(देवता—) २८. "न स्पर्श करने वाले को स्पर्श नहीं करता। स्पर्श करने वाले को स्पर्श करता है। अत: निर्दोष पर दोष लगाने वाले जैसे स्पर्श करने वाले पुरुष को स्पर्श करता है॥"

---

१. अट्ठकथाकार **आचार्य बुद्धघोष** ने इन दोनों गाथाओं का विद्वज्जनसम्मत यह अर्थ किया है—
"जिस ज्ञानी को किसी कर्म के प्रति आसक्ति नहीं है उसे उस कृत कर्म का विपाक (=फल) भी नहीं होता। अपितु, आसक्त होकर कर्म करने वाले को ही उसका विपाक लगता है॥"
"कर्म का स्पर्श न करने वाले को उसका विपाक भी स्पर्श नहीं करता। जो कर्म को स्पर्श करता है उसे ही विपाक भी स्पर्श करता है।"

[B.13] "यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति, सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं, सुखुमो रजो पटिवातं व खित्तो" ति॥
(ध०प० १२५ गा०) •

२३. जटासुत्तं

२९. "अन्तो जटा बहि जटा, जटाय जटिता पजा।
तं तं, गोतम, पुच्छामि, को इमं विजटये जटं?" ति॥
"सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञं च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं॥
"येसं रागो च दोसो च, अविज्जा न विराजिता।
खीणासवा अरहन्तो, तेसं विजटिता जटा[१]॥
"यत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झति।
पटिघं रूपसञ्ञा च, एत्थेसा छिज्जते जटा" ति॥ •

(भगवान्—) जो निष्पाप, निर्दोष एवं शुद्ध (ज्ञानी) पुरुष पर असत्य दोषारोपण करता है, वह समस्त दोष, प्रतिकूल वायु में फैंकी गयी धूल की तरह, उलट कर दोषारोपण करने वाले पर ही जा पड़ता है॥ •

२३. जटासूत्र : : जञ्जाल को सुलझाने वाला कौन!

(देवता—) "यहाँ (इस संसार में) अन्दर भी जञ्जाल (उलझन) है, बाहर भी जञ्जाल है, यों इस संसार की यह समस्त प्रजा (प्राणी) जञ्जालों से जकड़ी हुई है। अत: हे गौतम! मैं आप से ही पूछ रहा हूँ कि इस सांसारिक (माया-)जाल को काटने में कौन समर्थ है?"

(भगवान्—) "तपस्वी, प्रज्ञावान् एवं विवेकशील पुरुष शील (सदाचार) में प्रतिष्ठित (अभ्यस्त) होता हुआ चित्त समाधि और प्रज्ञा की भावना करते हुए उत्साहसम्पन्न होकर निपुणता से इस (सांसारिक माया-)जाल को सुलझा सकता है[२]॥

"जिन साधकों का चित्त राग द्वेष से विहीन हो चुका है, अविद्यान्धकार विनष्ट हो चुका है, ऐसे क्षीणास्रव (निर्मलचित्त) ज्ञानी भिक्षु ही इस जञ्जाल को काटने में समर्थ हो सके हैं॥

---

१. इतिहास हमें बताता है कि आचार्य **बुद्धघोष** ने पाँचवीं शताब्दी में अनुराधपुर (श्रीलङ्का) के महाविहार में बैठकर महाविहारवासी स्थविर भिक्षुओं के आदेश से बौद्धसम्मत साधनानुकूल योगशास्त्र पर '**विसुद्धिमग्ग**' जैसा सर्वजनोपयोगी विशाल ग्रन्थ इन्हीं दो गम्भीर एवं महत्त्वशाली गाथाओं को आधार मानकर लिखा था। —स०।

२४. मनोनिवारणसुत्तं

३०. "यते यतो मनो निवारये, न दुक्खमेति नं ततो ततो।
[R.14] स सब्बतो मनो निवारये, स सब्बतो दुक्खा पमुच्चति"॥
"न सब्बतो मनो निवारये, न मनो संयतत्तमागतं।
[N.15] यतो यतो च पापकं, ततो ततो मनो निवारये" ति॥ •

२५. अरहन्तसुत्तं

३१. "यो होति भिक्खु अरहं कतावी, खीणासवो अन्तिमदेहधारी।
'अहं वदामी' ति पि सो वदेय्य, 'ममं वदन्ती' ति पि सो वदेय्या" ति॥
[B.14] "यो होति भिक्खु अरहं कतावी, खीणासवो अन्तिमदेहधारी।

"जहाँ (जिस ज्ञानी के चित्त में) नाम एवं रूप निःशेषतया (सर्वथा) निरुद्ध हो चुके हैं और प्रतिघसंज्ञा (कामभव) एवं रूपसंज्ञा (रूपभव) भी निरुद्ध हो चुकी हैं, वहाँ ये जञ्जाल कटे हुए (विनष्ट) ही समझे जाने चाहिये॥" •

२४. मनोनिवारणसूत्र : : मन का निग्रह

(देवता—) ३०. "कोई साधक जिस जिस लौकिक या लोकोत्तर शुभ या अशुभ विषय से स्वचित्त का निवारण (निग्रह) कर लेता है, उसको उस उस विषय की ओर से कोई दुःख प्राप्त होने की सम्भावना नहीं रह जाती। अतः वह (साधक) सभी सांसारिक विषयों से अपने चित्त का निवारण कर ले तो वह उनके द्वारा होने वाले सभी दुःखों से मुक्ति पा सकता है।"

(भगवान्—) "नहीं, ऐसा नहीं है। साधक के लिये सभी विषयों से मन का निवारण करना उचित नहीं होगा। जैसे 'दान दूँगा,' 'शील का पालन करूँगा'—इत्यादि शुभ भावनाओं से जो चित्त निगृहीत हो चुका है, उन भावनाओं से चित्त को हटाना उचित नहीं है। हाँ, जिस जिस भावना से पाप (अशुभ) के उदित होने की सम्भावना हो वहाँ से साधक को स्वचित्त का निवारण अवश्य करना चाहिये॥" •

२५. अर्हत्सूत्र : : अर्हत्त्व (ज्ञान)

(देवता—) ३१. "जो भिक्षु कृतकृत्य (=कतावी) होकर ज्ञानी की स्थिति में पहुँच गया है, जिसका चित्त सभी विकारों से दूर हो चुका है, इस लोक में उसने अपना यह अन्तिम देह धारण किया है, (इसके बाद) उसका निर्वाण प्राप्त कर लेना सुनिश्चित है, वह लोकव्यवहार में 'मैं कहता हूँ'—यह भी कह सकता है और 'मुझे कहते हैं'—यह भी कह सकता है॥"

'अहं वदामी' ति पि सो वदेय्य, 'ममं वदन्ती' ति पि सो वदेय्य।
लोके समञ्ञं कुसलो विदित्वा, वोहारमत्तेन सो वोहरेय्या'' ति॥
''यो होति भिक्खु अरहं कतावी, खीणासवो अन्तिमदेहधारी।
मानं नु खो सो उपगम्म भिक्खु, 'अहं वदामी' ति पि सो वदेय्य।
'ममं वदन्ती' ति पि सो वदेय्या?'' ति॥
''पहीनमानस्स न सन्ति गन्था, विधूपिता मानगन्थस्स सब्बे।
स वीतिवत्तो मञ्ञतं सुमेधो 'अहं वदामी' पि पि सो वदेय्य। [R.15]
'ममं वदन्ती' ति पि सो वदेय्य, लोके समञ्ञं कुसलो विदित्वा।
वोहारमत्तेन सो वोहरेय्या'' ति॥ •

२६. पज्जोतसुत्तं

३२. ''कति लोकस्मिं पज्जोता, येहि लोको पकासति।
भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, कथं जानेमु तं मयं'? ति॥

(भगवान्—) ''जो भिक्षु कृतकृत्य होकर ज्ञानवान् हो चुका है, जिसका चित्त निर्विकार है, जो अन्तिमदेहधारी की स्थिति में पहुँच चुका है, वह लोकव्यवहार में 'मैं कहता हूँ'— ऐसा भी बोलता है, और 'मुझे कहते हैं'—ऐसा भी बोलता है; किन्तु वह, पण्डित लोगों की बोलचाल के कारण, केवल व्यवहारमात्र के लिये ऐसा प्रयोग करता है॥''

(देवता-) ''जो भिक्षु कृतकृत्य...पूर्ववत्...अन्तिमदेहधारी की स्थिति में पहुँच चुका है, वह क्या देहाभिमान के कारण 'मैं कहता हूँ', ऐसा, और 'मुझे कहते हैं' ऐसा बोलता है?

(भगवान्—) ''जिन धर्म-साधकों का देहाभिमान चित्त से दूर हो चुका है, ऐसे साधकों के चित्त में अभिमान की कोई ग्रन्थि अवशिष्ट नहीं रहती। उनके तो सभी मान एवं ग्रन्थियाँ विनष्ट हो चुकी हैं। ऐसा ज्ञानी साधक लोकव्यवहारमात्र चलाने हेतु ही 'मैं कहता हूँ' या 'मुझे कहते हैं'—ऐसा बोलता है। उस कुशल ज्ञानी को लोकव्यवहार (समज्ञा) चलाने के लिये ही ऐसा बोलना पड़ता है''॥

[इससे यह न समझना चाहिये कि उस ज्ञानी को भी अन्य दार्शनिकों की भाँति 'आत्मदृष्टि' ने घेर लिया है। बात भी उचित है; 'स्कन्ध भोजन करते हैं', 'स्कन्ध बैठते हैं', 'यह स्कन्धों का जलपात्र है', 'यह स्कन्धों का चीवर है' आदि कहने से व्यवहार नहीं चलता। कोई समझेगा भी नहीं। वह ऐसा न कह कर लोक-व्यवहार के अनुसार ही प्रयोग करता है।—अट्ठकथा] •

[N.16] "चत्तारो लोके पज्जोता, पञ्चमेत्थ न विज्जति।
दिवा तपति आदिच्चो, रत्तिमाभाति चन्दिमा॥
"अथ अग्गि दिवारत्तिं, तत्थ तत्थ पकासति।
सम्बुद्धो तपतं सेट्ठो, एसा आभा अनुत्तरा" ति॥

२७. सरसुत्तं

३३. "कुतो सरा निवत्तन्ति, कत्थ वट्टं न वत्तति।
[B.15] कत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झती" ति॥
"यत्थ आपो च पठवी, तेजो वायो न गाधति।
अतो सरा निवत्तन्ति, एत्थ वट्टं न वत्तति।
एत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झती" ति॥

---

२६. प्रद्योतसूत्र : : प्रकाशक वस्तुएँ

(देवता—) ३२. "लोक में ऐसी कितनी प्रकाशक वस्तुएँ हैं, जिनसे यह लोक प्रकाशित होता रहता है? भगवान् से हम यही पूछने आये हैं। कृपया हमें इस विषय में कुछ बताइये कि हम भी उन्हें जान पायें?"

(भगवान्—) "लोक में प्रकाशक वस्तुएँ चार ही हैं, पाँचवीं ऐसी कोई वस्तु नहीं जो लोक को प्रकाशित कर सके। जिनमें पहला प्रकाशक है सूर्य, जो दिन में लोक को प्रकाशित करता रहता है तथा दूसरा प्रकाशक है चन्द्रमा, जो रात्रि में लोक को प्रकाशित करता रहता है।

"तीसरी प्रकाशक वस्तु है—अग्नि, जो लोक को दिन रात प्रकाशित करती रहती है। इन (तीनों) प्रकाशक वस्तुओं से भी श्रेष्ठ हैं—बुद्ध; जिनकी आभा (स्वाभाविक प्रकाश, जैसे— उनका जन्मजात ज्ञान, प्रीति, श्रद्धा, धर्मकथा आदि) लोक में अद्वितीय (=अनुत्तर, अलौकिक) कहलाती है॥"

२७. स्वरसूत्र : : नामरूपनिरोध

(देवता—) ३३. "संसार में स्वर (=ध्वनि, आवाज), कहाँ जा कर रुक जाता है? आगे नहीं बढ़ पाता? (अर्थात् उसे मार्ग नहीं मिलता, वहीं चक्कर काटता रहता है?) कहाँ तक पहुँच कर ये लौकिक नाम-रूप पूर्णतः निरुद्ध हो जाते हैं?"

(भगवान्—) "जहाँ पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु की गति (पहुँच) रुक जाती है वहीं स्वरों की गति भी रुक जाती है (अर्थात् उसे आगे बढ़ने का मार्ग नहीं मिलता और वह वहीं चक्कर काटता रहता है।) वहाँ सभी नाम एवं रूप सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं॥"

२८. महद्धनसुत्तं

३४. "महद्धना महाभोगा, रट्ठवन्तो पि खत्तिया।
अञ्ञमञ्ञाभिगिज्झन्ति, कामेसु अनलङ्कता॥
"तेसु उस्सुक्कजातेसु, भवसोतानुसारिसु।
केध तण्हं पजहिंसु, के लोकस्मिं अनुस्सुका?" ति॥
"हित्वा अगारं पब्बजिता, हित्वा पुत्तं पसुं विय।
हित्वा रागं च दोसं च, अविज्जं च विराजिय।
खीणासवा अरहन्तो, ते लोकस्मिं अनुस्सुका" ति॥ •

२९. चतुचक्कसुत्तं

३५. "चतुचक्कं नवद्वारं, पुण्णं लोभेन संयुतं। [R.16]
पङ्कजातं महावीर, कथं यात्रा भविस्सती"? ति॥
"छेत्वा नद्धिं वरत्तं च, इच्छालोभं च पापकं।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, एवं यात्रा भविस्सती" ति॥ •

---

२८. महाधनसूत्र : : तृष्णापरित्याग

(देवता—) ३४. "बड़े बड़े करोड़पति, अरबपति, महान् ऐश्वर्यसम्पन्न धनपति एवं विशाल साम्राज्य वाले राजा लोग भी कामभोगों से अतृप्त रहते हुए पारस्परिक सम्पत्ति पर लोभ- दृष्टि रखते हैं॥

"ऐसे लोगों के भी धन के प्रति उत्सुक बने रहने पर, तथा सांसारिक प्रवाह में पड़े रहने पर कौन अन्य साधारण जन ऐसा होगा जो इस लोक में धन के प्रति अनुत्सुक हो, या जिसे धन की तृष्णा न सताती हो या जिसने उस तृष्णा का त्याग कर दिया हो?"

(भगवान्—) "जिन्होंने घर वार, पुत्र, पशु एवं अपने प्रिय जनों को सर्वदा के लिये सर्वथा त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली हो, जो राग द्वेष का भी त्याग कर चुके हों, जिनका अविद्यान्धकार नष्ट हो चुका हो, जो क्षीणास्रव एवं अर्हत् हो चुके हों उन्हें तुम्हारे उस नश्वर धन में क्या उत्सुकता होगी!" •

२९. चतुश्चक्रसूत्र : : यात्रा की सरलता

(देवता—) ३५. "हे महावीर बुद्ध! मेरा यह (शरीररूप) रथ चार चक्रों (=चार ईर्यापथ— खड़े होना, बैठना, सोना और चलना) वाला है, इसके नौ द्वार (नेत्र आदि इन्द्रियाँ) हैं, यह अशुचिपूर्ण एवं लोभ से भरा पड़ा है। मार्ग भी कीचड़ (=पङ्क) से भरा पड़ा है, ऐसे में मेरी यह (निर्वाण-) यात्रा कैसे सरल (सुगम) होगी?"

(भगवान्—) "वैरभाव (नद्धि=उपनाह=बद्ध वैर) तथा लोभरूप रस्सी को काटकर,

३०. एणिजङ्घसुत्तं

३६. "एणिजङ्घं किसं वीरं, अप्पाहारं अलोलुपं।
सीहं वेकचरं नागं, कामेसु अनपेक्खिनं।
उपसङ्कम्म पुच्छाम, कथं दुक्खा पमुच्चती"? ति॥
"पञ्च कामगुणा लोके, मनोछट्ठा पवेदिता।
एत्थ छन्दं विराजेत्वा, एवं दुक्खा पमुच्चती" ति॥ •

सत्तिवग्गो ततियो॥

तस्सुद्दानं

सत्तिया फुसति चेव, जटा मनोनिवारणा।
अरहन्तेन पज्जोतो, सरा महद्धनेन च।
चतुचक्केन नवमं, एणिजङ्घेन ते दसा ति॥ •

मूल पापमय इच्छाओं तथा लोभ का परित्याग कर, तृष्णा को (जड़) से उखाड़ कर, (निर्वाणनगर की) यात्रा करोगे तो यह अवश्य सरल (निर्विघ्न) होगी।" •

३०. एणिजङ्घसूत्र : : दु:ख से मुक्ति

(कोई देवता—) ३६. "हे एणिमृग के समान जङ्घाओं वाले, कृशकाय परन्तु बलशाली , अल्पाहारी, लोभरहित, सिंह के समान एकाकी विचरण करने वाले, निष्पाप एवं कामभोगों के प्रति निरपेक्ष! आप से हम इतना ही पूछते हैं कि इन भवदु:खों से हमारी मुक्ति कैसे हो सकती है ?"

(भगवान्—) सांसारिक पाँच (इन्द्रियों के पाँच) कामभोग, छठा मन—इनमें उत्पन्न होने वाली सभी इच्छाओं को त्यागकर साधना में लीन रहने वारे साधक को दु:खों से मुक्ति मिल सकती है॥" •

तृतीय शक्तिवर्ग समाप्त॥

इस वर्ग की सूत्रसूची—२१. शक्तिसूत्र, २२. स्पृशति, २३. जटा, २४. मनोनिवारण, २५. अर्हत्, २६. प्रद्योत, २७. स्वर, २८. महाधन, २९. चतुश्चक्र एवं ३०. एणिजङ्घ—ये दश सूत्र इस शक्तिवर्ग में व्याख्यात हुए हैं॥

४. सतुल्लपकायिकवग्गो

३१. सब्भिसुत्तं

३७. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सम्बहुला सतुल्लपकायिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठसुं। एकमन्तं ठिता खो एका देवता [R.17] भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सेय्यो होति न पापियो" ति॥ १॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, पञ्ञा लब्भति नाञ्ञतो" ति॥ २॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

---

४. स्वतुल्यप्रकायिकवर्ग

३१. 'सद्भिः' सूत्र : : सज्जनों का सङ्ग

३७. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती स्थित, अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उसी समय बहुत से तेजस्वी रूप वाले स्वतुल्यप्रकायिक देवता चान्दनी रात में प्राय: समग्र जेतवन को प्रभासित करते हुए, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँच कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हुए उन देवताओं मे से एक देवता, गाथा के माध्यम से, भगवान् के सम्मुख यों बोला—

"स्वहिताकांक्षी पुरुष सज्जनों के साथ ही अपनी बैठ ऊठ (सङ्गति) रखे तथा सज्जनों के साथ ही अपना मेल जोड़ (=संस्तव) बढ़ाये; क्योंकि सज्जनों का धर्म (=आचरण) जानने से वह सबके लिये सर्वदा श्रेयस्कर ही होता है। उसके कारण पुरुष की पाप की तरफ प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती॥" (१)

तब (उनमें से) दूसरे देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्...धर्माचरण जानने से ही प्रज्ञा (ज्ञान) प्राप्त हो सकती है, अन्य किसी उपाय से नहीं॥" (२)

फिर उनमें से किसी अन्य देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सोकमज्झे न सोचती" ति॥ ३॥

[B.17] अथ खो देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, ञातिमज्झे विरोचती" ति॥ ४॥

[N.18] अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं" ति॥ ५॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सत्ता तिट्ठन्ति साततं" ति॥ ६॥

अथ खो अपरा देवता भगवन्तं एतदवोच— "कस्स नु खो, भगवा, सुभासितं" ति?

३८. "सब्बासं वो सुभासितं परियायेन, अपि च मम पि सुणाथ—

"स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्...सद्धर्म का आचरण जानने से व्यवहार में शोक की स्थिति आने पर भी, वह उसके कारण शोकाकुल नहीं हो पाता॥" (३)

फिर उनमें किसी अन्य स्वतुल्यप्रकायिक देवता ने यह गाथा भगवान् को सुनाते हुए कही—

"स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्...धर्माचरणज्ञान के द्वारा समाज में अपनी विशिष्ट सम्मानजनक स्थिति बना लेने के कारण अपने पारिवारिक जनों में शोभित होता (प्रशंसा प्राप्त करता) है॥" (४)

फिर उनमें से किसी अन्य देवता ने...पूर्ववत्...कही—

"स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्...धर्माचरण जानने के कारण, ऐसे प्राणी देहपात के बाद, सुगति (स्वर्गलोक) को प्राप्त होते हैं॥" (५)

फिर उनमें से किसी अन्य देवता ने...पूर्ववत्...कही—

"स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्...धर्माचरण के कारण प्राणी सतत सात्त्विक सुखोपभोग करते रहते है॥" (६)

तब उनमें से किसी देवता ने भगवान् से यों निवेदन किया—

"भगवन्! इन देवताओं द्वारा कथित सुभाषितों में कौन सुभाषित श्रेष्ठ है?"

३८. "यों तो इन में सभी का कहना उचित ही है, फिर भी मेरा मन्तव्य यह है—

"सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं। [R.18]
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सब्बदुक्खा पमुच्चती" ति॥

३९. इदमवोच भगवा। अत्तमना ता देवतायो भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायिंसू ति। •

३२. मच्छरिसुत्तं

४०. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सम्बहुला सतुल्लपकायिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"मच्छेरा च पमादा च, एवं दानं न दीयति।
पुञ्ञं आकङ्खमानेन, देय्यं होति विजानता" ति॥ १॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि— [B.18]

"यस्सेव भीतो न ददाति मच्छरी, तदेवाददतो भयं।
जिघच्छा च पिपासा च, यस्स भायति मच्छरी।
तमेव बालं फुसति, अस्मिं लोके परम्हि च॥

"स्वहिताकांक्षी पुरुष को चाहिये कि वह सज्जनों के साथ ही बैठे ऊठे, सज्जनों के साथ ही अपना मेल जोड़ बढ़ावे। ऐसा करने से वह पुरुष इन सज्जनों के धर्माचरण से भलीभाँति परिचित हो कर स्वयं यह धर्माचरण करता हुआ सभी प्रकार के दुःखों से अपने को मुक्त रखता है॥"

३९. भगवान् ने वह प्रवचन किया। इसे सुनकर प्रसन्न हुए उन देवताओं ने भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहाँ से प्रस्थान किया॥ •

३२. मात्सर्यसूत्र : : कञ्जूसी का त्याग

४०. एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के....जेतवनाराम में साधनाहेतु...। स्वतुल्य-प्रकायिक...देवता ने यह गाथा कही—

"दाता को मात्सर्य और प्रमाद पूर्वक दान नहीं करना चाहिये। जो पुण्य चाहता हो उसे विवेकपूर्वक प्रमादरहित होकर ही दान करना चाहिये॥" (१)

तब दूसरे किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"मात्सर्ययुक्त पुरुष जिस (भूख-प्यास) के कारण दान नहीं करता है, दान न करने वाले उस पुरुष का वे भूख और प्यास के भय जिन केकारण वह दान नहीं कर पाता,

"तस्मा विनेय्य मच्छेरं, दज्जा दानं मलाभिभू।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं" ति॥ २॥

[N.19] अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके गाथायो अभासि—

"ते मतेसु न मीयन्ति, पन्थानं व सहब्बजं।
अप्पस्मिं ये पवेच्छन्ति, एस धम्मो सनन्तनो॥
"अप्पस्मेके पवेच्छन्ति, बहुनेके न दिच्छरे।
अप्पस्मा दक्खिणा दिन्ना, सहस्सेन समं मिता" ति॥ ३॥

[R.19] अथ खो अपरा देवता सन्तिके इमा गाथायो अभासि—

"दुद्ददं ददमानानं, दुक्करं कम्म कुब्बतं।
असन्तो नानुकुब्बन्ति, सतं धम्मो दुरन्वयो॥

जीवन पर्यन्त सताते रहते हैं। इतना ही नहीं, ये दोनों (भूख और प्यास) भय उस मूर्ख का इस लोक और परलोक में भी पीछा करते रहते हैं। इस कारण वह कभी भी भली भाँति दान नहीं कर पाता।

अत: बुद्धिमान् पुरुष को मात्सर्य का त्याग कर निर्मल चित्त से दानकर्म में प्रवृत्त होना चाहिये; क्यों कि प्राणियों द्वारा इस तरह किया गया दान ही परलोक में पुण्यप्रद तथा इस लोक में प्रतिष्ठापरक होता है॥" (२)

तभी दूसरे किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"ऐसे प्राणी को देहपात के बाद की संसार में मरा हुआ नहीं माना जाता अर्थात् उसके मरने के बाद भी संसार में उसका नाम प्रतिष्ठा के साथ लेते हैं जो अपने थोड़े से भी पाये हुए को साथियों के साथ बैठकर मिल-बाँट कर खाता है। सज्जनों के बीच यही कठोर सनातन धर्म चला आ रहा है॥"

"संसार में दोनों ही तरह के लोग मिलते हैं। पहले वे हैं जो थोड़ा सा मिलने पर भी उसे दूसरों के साथ मिल बैठकर उपयोग में लाते हैं, तथा दूसरे वे हैं जो बहुत कुछ मिलने पर भी उसमें से दूसरों को एक कण भी नहीं देना चाहते। वास्तविकता यह है कि अल्प प्राप्त में से दान करना हजारों का दान करने के बराबर माना जाता है॥"(३)

तब किसी अन्य देवता ने भगवान् को यह गाथा सुनायी—

"दानदाताओं में कठिन से कठिन दान करने वाले का तथा कर्मयोगियों में कठिन से कठिन कर्म करने वाले का मूर्खजन अनुकरण नहीं कर पाते; क्योंकि सज्जनों के धर्माचरण का अनुकरण साधारणजनों के लिये बहुत कठिन होता है।

"तस्मा सतं च असतं, नाना होति इतो गति।
असन्तो निरयं यन्ति, सन्तो सग्गपरायना" ति॥४॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके एतदवोच- "कस्स नु खो, भगवा, सुभासितं" ति?

४१. "सब्बासं वो सुभासितं परियायेन; अपि च मम पि सुणाथ—
"धम्मं चरे यो पि समुञ्छकं चरे, दारं च पोसं ददमप्पकस्मिं।
सतं सहस्सानं सहस्सयागिनं, कलं पि नाग्घन्ति तथाविधस्स ते" ति॥

४२. अथ खो अपरा देवता भगवन्तं गाथाय अभासि— [B.19]
"केनेस यञ्ञो विपुलो महग्गतो, समेन दिन्नस्स न अग्घमेति।
कथं सतं सहस्सानं सहस्सयागिनं, कलं पि नाग्घन्ति तथाविधस्सते" ति॥

४३."ददन्ति हेके विसमे निविट्ठा, छेत्वा वधित्वा अथ सोचयित्वा।
सा दक्खिणा अस्सुमुखा सदण्डा, समेन दिन्नस्स न अग्घमेति॥[N.20]
एवं सतं सहस्सानं सहस्सयागिनं, कलं पि नाग्घन्ति तथाविधस्स ते" ति॥ •

"इसी कारण, इस संसार में देहपात के बाद, सज्जनों तथा असज्जनों की गति पृथक् पृथक् होती है। मरणानन्तर असज्जन (पापी) नरक में पहुँचते हैं तो सज्जन (धर्मात्मा) निश्चिन्तता पूर्वक स्वर्गसुख भोगते हैं॥"(४)

इस प्रसङ्ग में किसी देवता ने भगवान् से जिज्ञासा प्रकट की—"भगवन्! इन वक्ताओं में किस देवता का कथन उचित है?"

४१. (भगवान् ने कहा) "यों तो इन सभी देवताओं का कथन उचित ही है, परन्तु यहाँ मेरा मत जानना चाहते हो तो वह यह है—

"जो बुद्धिमान् प्राणी, मूञ्ज में से इषीका (सींक) निकालने के समान धर्म का सूक्ष्म विश्लेषण पूर्वक आचरण करता है और अपनी थोड़ी सी कमाई में से अपने बाल बच्चों का पोषण करता हुआ भी उचित पात्र को कुछ न कुछ दान करता रहता है वही वस्तुतः धर्माचारी है। ऐसे पुण्यात्मा दानी की, वे लोग जो लाखों का दान करते हों, या हजारों शास्त्रविहित यज्ञ करते हों, एक अंश (कला) की भी समानता नहीं कर पाते॥"

४२. तब दूसरे देवता ने भगवान् से प्रश्न किया—

"क्यों उनका यह यज्ञादि द्वारा किया हुआ विशाल एवं महार्घ दान भी इस दान के एक अंश की भी समता नहीं कर पाता, जबकि वे लाखों मुद्राओं का दान एवं हजारों यज्ञ करते हैं इसके विपरीत इस का यह छोटा सा दान है?"

४३. (तब भगवान् ने उस देवता के प्रश्न का यह उत्तर दिया—)

३३. साधुसुत्तं

[R.20] ४४. सावत्थिनिदानं। अथ खो सम्बहुला सतुल्लपकायिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि—"साधु खो, मारिस, दानं।

"मच्छेरा च पमादा च, एवं दानं न दीयति।
पुञ्ञं आकङ्खमानेन, देय्यं होति विजानता" ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि—"साधु खो, मारिस, दानं; अपि च अप्पकस्मि पि साहु दानं।

"अप्पस्मेके पवेच्छन्ति, बहुनेके न दिच्छरे।
अप्पस्मा दक्खिणा दिन्ना, सहस्सेन समं मिता" ति॥

"कुछ लोग हिंसा, वध, वन्धन आदि अनुचित साधनों का प्रयोग करते हुए ये दान तथा यज्ञादि कर्म करते हैं उनका यह दूसरों को रुलाकर, मार कर, काटकर दु:ख देकर किया हुआ दान शान्तिपूर्वक किये गये दान की समता नहीं कर पाता। अतएव लाखों मुद्राओं के दाता तथा हजारो यज्ञों के सम्पादयिता भी उस दान के एक अंश की समता नहीं कर पाते ॥"

३३. साधुसूत्र : : उत्तम दान का माहात्म्य

४४. यह सूत्र भी शास्ता द्वारा **श्रावस्ती में** ही उपदिष्ट हुआ है। एक समय बहुत से सतुल्यप्रकायिकदेवता चान्दनी रात में प्राय: समग्र जेतवन को आलोकित करते हुए, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े होकर उनमें से एक देवता ने भगवान् के सम्मुख अपना यह हर्षोद्गार प्रकट किया—"मार्ष! दान देना बहुत अच्छा सत्कर्म है।

परन्तु यह दान लोभपूर्वक कञ्जूसी से या प्रमादपूर्वक याचकों को नहीं दिया जाता। पुण्य की आकांक्षा वाले सत्पुरुष को समझ बूझकर ही दान करना चहिये॥"

उसी समय वहाँ उपस्थित एक अन्य देवता ने इस विषय में अपना अभिमत यों प्रकट किया—

"मार्ष! दान देना बहुत अच्छा कर्म है। अल्प वस्तु का भी दान बहुत उत्तम है। बहुत लोग वस्तु की अल्प मात्रा रहने पर उसका सहर्ष दान कर देते हैं, परन्तु बहुत से लोग वस्तु की बहुलता होने पर भी उसे अल्प मात्रा में भी देना नहीं चाहते। यहाँ अल्प बस्तु रहने पर भी जो उसका कुछ अंश भी दान कर देता है वह सामान्यत: किये गये हजार दान के तुल्य है।"

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि—"साधु खो, मारिस, दानं; अप्पकस्मिं पि साहु दानं; अपि च सद्धाय पि साहु दानं। [B.20]

"दानं च युद्धं च समानमाहु, अप्पा पि सन्ता बहुके जिनन्ति।
अप्पं पि चे सद्दहानो ददाति, तेनेव सो होति सुखी परत्था" ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि—"साधु [R.21]
खो, मारिस, दानं; अप्पस्मि पि साहु दानं; सद्धाय पि साहु दानं; अपि च धम्मलद्धस्सा पि साहु दानं।

"यो धम्मलद्धस्स ददाति दानं, उट्ठानविरियाधिगतस्स जन्तु।
अतिक्कम्म सो वेतरणिं यमस्स, दिब्बानि ठानानि उपेति मच्चो" ति॥

अथ खो अपरा भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि—"साधु खो, [N.21]
मारिस, दानं; अप्पस्मि पि साहु दानं; सद्धाय पि साधु दानं; धम्मलद्धस्सा पि साहु दानं; अपि च विचेय्य दानं पि साहु दानं।

तब इस दान के विषय में दूसरे किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख अपना अभिमत प्रकट किया—"मार्ष! दान देना सत्कर्म है, वस्तु की कमी रहने पर भी उसका दान करना अपेक्षाकृत अधिक उत्तम है; परन्तु यही दान यदि श्रद्धापूर्वक दिया जाय जो उस से भी उत्तम है।

यहाँ दान और युद्ध कर्म में एक समानता देखी जाती है; युद्ध में कभी संख्या में अल्प वीर योद्धाओं द्वारा भी अच्छी बड़ी सेना पर विजय पा ली जाती है; इसी तरह श्रद्धा के साथ किया हुआ अल्प वस्तु का दान भी परलोक के लिये सुखदायी होता है।"

तब किसी अन्य देवता ने... इसी विषय में अपना अभिमत यों प्रकट किया—"मार्ष! दान करना उत्तम है, वस्तु की अल्पमात्रा होते हुए भी उस का दान कर देना उससे अधिक उत्तम है; इन दोनों से भी अधिक उत्तम है श्रद्धापूर्वक देना; परन्तु मेरा अभिमत यह है कि धर्मपूर्वक अधिगत वस्तु का दान सर्वोत्तम है।

"जो पुरुष अपने श्रम से धर्मपूर्वक अधिगत वस्तु का दान करता है वह यमराज की वैतरणी नदी को पार कर दिव्य (स्वर्ग के) सुखमय स्थानों को प्राप्त करता है॥ "

एक अन्य देवता ने इस विषय में अपना अभिमत यों प्रकट किया—"मार्ष! दान करना...पूर्ववत्...धर्मपूर्वक अधिगत वस्तु का इनसे भी उत्तम है; परन्तु मेरी दृष्टि में इस अल्प वस्तु का श्रद्धापूर्वक तथा इसे धर्मपूर्वक अधिगत कर किया हुआ दान भी यदि किसी सत्पात्र को विचार कर किया जाय तो यह उससे भी उत्तम होगा।

"विचेय्यदानं सुगतप्पसत्थं, ये दक्खिणेय्या इध जीवलोके।
एतेसु दिन्नानि महप्फलानि, बीजानि वुत्तानि यथा सुखेत्ते" ति॥

अथ खो अपरा भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि—"साधु खो, मारिस, दानं; अप्पकस्मिं पि साहु दानं; सद्धाय पि साहु दानं; धम्मलद्धस्सा पि साहु दानं; विचेय्य दानं पि साहु दानं; अपि च पाणेसु पि साधु संयमो।

[B.21] "यो पाणभूतानि अहेठयं चरं, परूपवादा न करोति पापं।
भीरुं पसंसन्ति हि तत्थ सूरं, भया हि सन्तो न करोन्ति पापं" ति॥

[R.22] अथ खो अपरा देवता भगवन्तं एतदवोच-"कस्स नु खो, भगवा, सुभासितं" ति?

४५. "सब्बासं वो सुभासितं परियायेन, अपि च मम पि सुणाथ—
"सद्धा हि दानं बहुधा पसत्थं, दाना च खो धम्मपदं व सेय्यो।
पुब्बे च हि पुब्बतरे च सन्तो, निब्बानमेवज्झगमुं सपञ्ञा''ति॥ ●

"क्योंकि विचार कर उस सत्पात्र को किये गये दान की आप सुगत ने भी प्रशंसा की है जो इस संसार में वस्तुतः दान करने योग्य हैं। ऐसे सत्पात्र को किया गया दान उसी तरह अधिक फलदायक होता है, जैसे अच्छे खेत में बोया हुआ बीज अधिक फलदायक होता है।"

उसी समय किसी देवता ने...अपना अभिमत यों प्रकट किया—"मार्ष! दान करना उत्तम है, अल्प का दान और भी उत्तम तथा उसका श्रद्धापूर्वक दान अपेक्षाकृत अधिक उत्तम है। धर्माधिगत वस्तु का सत्पात्र को विचार कर दान करना भी उत्तम है; परन्तु मेरे विचार से इन सब से भी उत्तम कर्म है—साधक द्वारा जीवों के प्रति हिंसा आदि में अपनी इन्द्रियों पर संयम रखना।

"जो प्राणियों को कष्ट दिये विना संसार में विचरण करता है, परनिन्दा से भय खाता है, तथा किसी भी प्रकार का पापकर्म नहीं करता, पाप कर्म से जो भयभीत रहता है, उसी की सज्जन प्रशंसा करते हैं, उसे वे वीर मानते हैं। सज्जन पापकर्म से डरते हैं, अतः उसका सम्पादन कथमपि नहीं करते।"

अन्त में, उन्हीं में से एक देवता ने पूछा—"भगवन्! इनमें से किसका कथन श्रेष्ठ है?"

४५. तब भगवान् ने यों उत्तर दिया—"यद्यपि आप लोगों में से सभी का कथन अपनी अपनी दृष्टि से उचित ही है, फिर भी यहाँ मेरा मन्तव्य यह है—

श्रद्धापूर्वक दिया गया दान प्रायः सज्जनों द्वारा प्रशस्त है, धर्मपूर्वक अधिगत वस्तु

३४. नसन्तिसुत्तं

४६. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सम्बहुला सतुल्लपकायिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया [N.22] अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकान्तं ठिता खो एका देवता सन्तिके इमं गाथं अभासि—

''न सन्ति कामा मनुजेसु निच्चा, सन्तीध कमनीयानि येसु बद्धो।
येसु पमत्तो अपुनागमनं, अनागन्ता परिसो मच्चुधेय्या'' ति॥

''छन्दजं अघं छन्दजं दुक्खं; छन्दविनया अघविनयो; अघविनया दुक्खविनयो'' ति।

''न ते कामा यानि चित्रानि लोके, सङ्कप्परागो पुरिसस्स कामो।
तिट्ठन्ति चित्रानि तथेव लोके, अथेत्थ धीरा विनयन्ति छन्दं॥

का विचारपूर्वक दान भी श्रेष्ठ ही है, अपितु यहाँ मेरा अभिमत तो यह है कि प्राचीन से आज तक सभी सन्त प्रज्ञा के द्वारा ही निर्वाण को अधिगत कर पाये हैं। अत: दानादि की अपेक्षा प्रज्ञा ही सर्वोत्तम है; क्यों कि निर्वाण की प्राप्ति में प्रज्ञा की महत्ता सर्वविदित है ॥●

३४. 'न सन्ति' सूत्र : : कामों में नित्यता का अभाव

४६. एक समय भगवान् श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक द्वारा बनवाये जेतवन में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय, बहुत से स्वतुल्यप्रकायिक देवता चान्दनी रात्रि में...पूर्ववत्...खड़े हो गये। तब उनमें से एक देवता ने भगवान् के सम्मुख इस गाथा के माध्यम से यों निवेदन किया—

''मनुष्यों के चित्त में उद्भूत होने वाली कामवासनाएँ नित्य (स्थायी) नहीं हैं। फिर भी वे चित्र विचित्र वासनाएँ पुरुषों को संसार में आसक्त किये रहतीं हैं जिन से वह संसार में वझा (फँसा) रहता है। जिनमें फँस कर मनुष्य अपना लक्ष्य भूल जाते हैं और अन्त में वे अपुनरागमन (निर्वाण) को न प्राप्त कर बार बार मृत्युमुख में गिरते रहते हैं।

''छन्द (=इच्छा, कामना, रुचि, अनुराग) से पाप उत्पन्न होता है, छन्द से ही दु:ख उत्पन्न होता है। इसके विपरीत, छन्द की निवृत्ति से पाप निवृत्त होता है, छन्द की ही निवृत्ति से दु:ख निवृत्त होता है॥

''संसार के ये सुन्दर पदार्थ 'काम' नहीं हैं, अपितु पुरुषों का इनके प्रति जो मानसिक सङ्कल्प या राग है वही 'काम' है। यदि साधक पुरुष अपनी वासना को शान्त कर ले तो ये सांसारिक पदार्थ यहीं पड़े रह जाते हैं। तब ज्ञानियों की उन के प्रति कोई इच्छा नहीं रह जाती॥

[B.22, R.23]"कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं, संयोजन सब्बमतिक्कमेय्य।
तं नामरूपस्मिमसज्जमानं, अकिञ्चनं नानुपतन्ति दुक्खा॥(ध०प० २२१)
"पहासि सङ्खं न विमानमज्झगा, अच्छेच्छि तण्हं इध नामरूपे।
तं छिन्नगन्थं अनिघं निरासं, परियेसमाना नाज्झगमुं।
देवा मनुस्सा इध वा हुरं वा, सग्गेसु वा सब्बनिवेसनेसू" ति॥
"तं चे हि नाद्दक्खुं तथाविमुत्तं (इच्चायस्मा मोघराजा), देवा मनुस्सा इध वा हुरं वा।
नरुत्तमं अत्थचरं नरानं, ये तं नमस्सन्ति पसंसिया ते" ति॥
"पसंसिया ते पि भवन्ति भिक्खू (मोघराजा ति भगवा), ये तं नमस्सन्ति तथाविमुत्तं।
[N.23]अञ्ञाय धम्मं विचिकिच्छं पहाय, सङ्गातिगा ते पि भवन्ति भिक्खू" ति॥●

३५. उज्झानसञ्ञिसुत्तं

४७. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सम्बहुला उज्झानसञ्ञिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया [R.24] अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु;

"इसके लिये साधक को इतना ही करना है कि वह क्रोध का त्याग कर दे। मान को स्वचित्त से पूर्णत: हटा दे। सभी सांसारिक बन्धनों को काटकर गिरा दे। ऐसे साधक को जो नाम रूप के प्रति अनासक्त है, अपरिग्रही (त्यागी) है, उसको सांसारिक दु:ख नहीं सताते॥ (ध० प०,२२१)

"जिसने आकांक्षाओं (ग्रन्थियों) का त्याग कर दिया है, जो सङ्कल्प विकल्प से दूर हो चुका है, जिसने नाम रूप के प्रति जायमान तृष्णा को काट डाला है, ऐसा निर्ग्रन्थ निष्पाप एवं निरासक्त ज्ञानी पुरुष देवताओं एवं मनुष्यों द्वारा इस लोक या स्वर्ग लोक अथवा किसी भी लोक में खोजने पर भी नहीं मिल पाता॥"

तब आयुष्मान् मोघराज ने कहा—

"यदि देव एवं मनुष्य इस लोक या परलोक में उस को नहीं देख पाये तो ऐसे परमार्थ के ज्ञाता नरश्रेष्ठ को जो प्रणाम करते हैं वे धन्य हैं, प्रशंसा के योग्य है।"

भगवान् ने कहा—"मोघराज! वे भिक्षु धन्य हैं जो वैसे ज्ञानी एवं मुक्त मनुष्य को प्रणाम करते हैं। ये भिक्षुजन धर्मज्ञान प्राप्त कर तथा सांसारिक संशयों को छिन्न भिन्न कर सभी बन्धनों से ऊपर उठ जाते हैं"॥ ●

३५. उद्ध्यानसंज्ञी सूत्र　: :　तथागत में दोषराहित्य

४७. एक समय भगवान् श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कुछ उद्ध्यानसंज्ञी (दोषारोपण की चेतनायुक्त) देवता

उपसङ्कमित्वा वेहासं अट्ठंसु। वेहासं ठिता खो एका भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"अञ्ञथा सन्तमत्तानं, अञ्ञथा यो पवेदये।
निकच्च कितवस्सेव, भुत्तं थेय्येन तस्स तं॥
"यं हि कयिरा तं हि वदे, यं न कयिरा न तं वदे।
अकरोन्तं भासमानानं, परिजानन्ति पण्डिता" ति॥
"न यिदं भासितमत्तेन, एकन्तसवनेन वा।
अनुक्कमितवे सक्का, यायं पटिपदा दळ्हा।
याय धीरा पमुच्चन्ति, झायिनो मारबन्धना॥
"न वे धीरा पकुब्बन्ति, विदित्वा लोकपरियायं। [B.23]
अञ्ञाय निब्बुता धीरा, तिण्णा लोके विसत्तिकं" ति॥

४८. अथ खो ता देवतायो पठवियं पतिट्ठहित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोचुं-"अच्चयो नो, भन्ते, अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं,

---

चान्दनी रात्रि में समस्त जेतवन को अपनी आभा से आलोकित करते हुए भगवान् के सम्मुख आये। आकर आकाश में खड़े हो गये। आकाश में खड़े हुए उन देवताओं में से एक ने (भगवान् को लक्ष्य कर) ये गाथा कहीं—

"अपना अन्यथा आचरण रहते हुए भी अपने को अन्य प्रकार का घोषित करने वाला पुरुष धूर्तता एवं ठगी करता हुआ मानो चौरी के ही भोग भोगता है॥

"अत: जो करे वही बताना चाहिये, जो न करे उसे नहीं बताना चाहिये। न किये हुए को अपना बताने वाले की एक न एक दिन विद्वान् लोग वास्तविकता जान ही लेते हैं! अन्त में वह उनकी निन्दा का पात्र ही होता है॥"

(भगवान् ने उत्तर दिया—) "यह कथनमात्र या श्रवणमात्र से नहीं किया जा सकता; क्योंकि (साधक का) यह मार्ग इतना कठिन है कि ज्ञानी पुरुष ही इसकी साधना द्वारा मार से मुक्त हो पाते हैं॥

"ज्ञानी पुरुष ऐसा कार्य कभी नहीं करते। वे संसार की गतिविधि (मर्यादा) जान कर ही आचरण करते हुए निर्वाण तक पहुँचते हैं, तथा इस भयानक भवसागर को निस्तृष्ण होकर उसे पार कर जाते हैं॥"

४८. तब उन देवताओं ने पृथ्वी पर आकर भगवान् के श्रीचरणों में अपना शिर झुकाकर कहा—

"भन्ते! हमलोगों से भयङ्कर प्रमाद (अत्यय) हुआ। मूर्ख के समान, मूढ के

यथाअकुसलं, या मयं भगवन्तं आसादेतब्बं अमञ्ञिम्हा। तासं नो, भन्ते, भगवा अच्चयं अच्चयतो पटिग्गणहातु आयतिं संवराया'' ति। अथ खो भगवा सितं पात्वाकासि। अथ खो ता देवतायो भिय्योसोमत्ताय उज्झायन्तियो वेहासं अब्भुग्गञ्छुं। एका देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

[N.24] ''अच्चयं देसयन्तीनं, यो चे न पटिगण्हति।
कोपन्तरो दोसगरु, स वेरं पटिमुञ्चती'' ति॥
''अच्चयो चे न विज्जेथ, नोचिधापगतं सिया।
वेरानि न च सम्मेय्युं, केनीध कुसलो सिया'' ति॥
''कस्सच्चया न विज्जन्ति, कस्स नत्थि अपागतं।
को न सम्मोहमापादि, को च धीरो सदा सतो'' ति॥
[R.25] ''तथागतस्स बुद्धस्स, सब्बभूतानुकम्पिनो।
तस्सच्चया न विज्जन्ति, तस्स नत्थि अपागतं।
सो न सम्मोहमापादि, सो व धीरो सदा सतो'' ति॥
''अच्चयं देसयन्तीनं, यो चे न पटिगण्हति।

समान, अविवेकी के समान आप को ऐसा बोल कर आप के प्रति यह अपराध कर डाला! अत: श्रीमन्! हमारे इस अपराध को प्रमाद समझते हुए क्षमा करें, जिससे हमारा भविष्य में हित हो, कल्याण हो!'' यह सुनकर भगवान् मुस्करा दिये। तब वे देवता प्रायश्चित करते हुए प्रसन्नतापूर्वक आकाश मार्ग से ही पुन: लौट गये। परन्तु उनमें से एक देवता वहीं रुक कर भगवान् से यों कहने लगा—

''दोष करने वाले देवताओं द्वारा दोष बताये जाने पर भी जो उसे स्वीकार नहीं करता, उसे क्षमा नहीं करता, मन में उस के प्रति क्रोध करता हुआ उसके प्रति वैर ही बांधता है॥''

(भगवान्—) ''यदि संसार में कोई प्रमाद न भी करे, तथा उसके वैर शान्त न भी हो जायँ तो भला वह ज्ञानी कैसे बन सकता है!''

(देवता—) ''प्रमाद कौन नही करता! भूल किससे नहीं होती! इस संसार की चाकचिक्य से कौन मुग्ध नहीं होता! कौन पण्डित सदा स्मृतिमान् रहा है?''

(भगवान्—) ''जो तथागत बुद्ध सभी प्राणियों पर कृपालु है, उनसे कोई प्रमाद नहीं होता, उनसे कोई भूल नहीं होती, वे इस संसार की चाकचिक्य से भ्रम में नहीं पड़ते! वे सदा सावधान एवं स्मृतिमान् रहते हैं॥

कोपन्तरो दोसगरु, स वेरं पटिमुञ्चति।
तं वेरं नाभिनन्दामि, पटिग्गण्हामि वोच्चयं'' ति॥

३६. सद्धासुत्तं

४९. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सम्बहुला सतुल्लपकायिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया [B.24] अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

''सद्धा दुतिया पुरिसस्स होति, नो चे अस्सद्धियं अवतिट्ठति।
यसो च कित्ती च तत्वस्स होति, सग्गं च सो गच्छति सरीरं विहाया'' ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि—

''कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं, संयोजनं सब्बमतिक्कमेय्य।(ध०प० २२१ गा०)
तं नामरूपस्मिमसज्जमानं, अकिञ्चनं नानुपतन्ति सङ्गा'' ति॥ [N.25]

''पमादमनुयुञ्जन्ति, बाला दुम्मेधिनो जना।
अप्पमादं च मेधावी, धनं सेट्ठं व रक्खति॥(ध०प० २६ गा०)

'''अपना प्रमाद स्वयं स्वीकार करने वाले को जो क्षमा नहीं कर देता, तथा उसके प्रति वैर बाँध लेता है'—ऐसा कहने वाले के प्रति मैं कोई वैर भावना नहीं रखता। अत: मैं तुम्हारे अपराध को क्षमा करता हूँ॥''

३६. श्रद्धा सूत्र : : प्रमाद-त्याग

४९. एक समय भगवान् श्रावस्ती में...पूर्ववत्...आकाश में खड़े हुए उन देवताओं में से एक ने यों कहा—

''जिस साधक पुरुष की (धर्म के प्रति) सदा श्रद्धा बनी रहती है, जो उसके प्रति कभी श्रद्धारहित नहीं होता, ऐसे पुरुष की लोक में कीर्ति एवं प्रशंसा दिनानुदिन फैलती ही रहती है, तथा वह देहपात के बाद वह सीधा स्वर्ग लोक में पहुँचता है॥''

तभी दूसरे देवता ने इन गाथाओं के माध्यम से यों कहा—

''जो क्रोध का सर्वथा त्याग कर दे, वृथाभिमान से पूर्णत: मुक्त हो जाय, सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाय। ऐसे नाम एवं रूप के प्रति अनासक्त रहने वाले तथा अपरिग्रही (त्यागी) पुरुष को संसार की कोई आसक्ति नहीं रह जाती।'' (ध०प० २२१ गा०)

(भगवान्—) ''मूर्ख एवं कुबुद्धि जन ही प्रमाद किया करते हैं। ज्ञानी पुरुष तो

"मा पमादमनुयुञ्जेथ, मा कामरति सन्थवं।
अप्पमत्तो हि झायन्तो, पप्पोति परमं सुखं" ति॥

३७. समयसुत्तं

[R.26] ५०. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थस्मिं महावने महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सब्बेहेव अरहन्तेहि; दसहि च लोकधातूहि देवता येभुय्येन सन्निपतिता होन्ति भगवन्तं दस्सनाय भिक्खुसङ्घं च। अथ खो चतुन्नं सुद्धावासकायिकानं देवतानं एतदहोसि—"अयं खो भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं महावने महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सब्बेहेव अरहन्तेहि; दसहि च लोकधातूहि देवता येभुय्येन सन्निपतिता होन्ति भगवन्तं दस्सनाय भिक्खुसङ्घं च। यन्नून मयं पि येन भगवा तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा भगवतो सन्तिके पच्चेकं गाथं भासेय्यामा" ति।

अथ खो ता देवता—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य, एवमेव सुद्धावासेसु देवेसु अन्तरहिता भगवतो [B.25] पुरतो पातुरहेसुं। अथ खो ता देवता भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

अपने अप्रमाद (स्मृति) की रक्षा में उसी तरह तत्पर रहते हैं, जैसे कोई व्यापारी अपने धन की रक्षा में तत्पर रहता है। (ध०प० २६ गा०)

"अत: किसी भी प्रकार के प्रमाद में न लगे। सांसारिक कामराग का साथ न पकड़ो; क्यों कि प्रमादरहित होकर निर्वाण की ओर ध्यान लगाने वाला साधक ही परमसुख (निर्वाण) को कर पाता है॥"

३७. समय सूत्र : : भिक्षुसङ्घ की विशाल धर्मसभा

५०. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्य देश में स्थित कपिलवस्तु नगर के पास महावन में पाँच सौ भिक्षुओं के साथ, जिनमें सभी भिक्षु अर्हत्त्व प्राप्त कर चुके थे, साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय दशों लोकधातुओं से चलकर अनेक देवता भगवान् एवं भिक्षुसङ्घ के दर्शनहेतु आते रहते थे। तब चार शुद्धावासकायिक देवताओं को यह विचार हुआ—"ये भगवान् शाक्य देश में...पूर्ववत्...विराजमान हैं। तो क्यों न हम लोग भी भगवान् के दर्शनहेतु चलें। तथा वहाँ चल कर हममें से प्रत्येक देवता एक एक गाथा के माध्यम से भगवान् बुद्ध से संवाद करें"।

तब वे देवता, जैसे कोई बलवान् अपनी सङ्कुचित भुजाओं को पसार लेता है, तथा प्रसारित भुजाओं को सङ्कुचित कर लेता है; उसी तरह शुद्धावास देवलोक से अन्तर्हित

"महासमयो पवनस्मिं, देवकाया समागता।
आगतम्ह इमं धम्मसमयं, दक्खिताये अपराजितसङ्घं" ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं आभासि—

"तत्र भिक्खवो समादहंसु, चित्तमत्तनो उजुकमकंसु।
सारथी व नेत्तानि गहेत्वा, इन्द्रियानि रक्खन्ति पण्डिता" ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि— [N.26, R.27]

"छेत्वा खीलं छेत्वा पलिघं, इन्दखीलं ऊहच्च मनेजा।
ते चरन्ति सुद्धा विमला, चक्खुमता सुदन्ता सुसुनागा" ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"ये केचि बुद्धं सरणं गतासे, न ते गमिस्सन्ति अपायभूमिं।
पहाय मानुसं देहं, देवकायं परिपूरेस्सन्ती" ति॥

३८. सकलिकसुत्तं

५१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति मद्दकुच्छिस्मिं मिगदाये।

होकर भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। वहाँ एक ओर खड़े हुए उन देवताओं में से एक देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"इस वनषण्ड में भिक्षुसङ्घ की विशाल धर्मसभा विराजमान है। देवगण भी यहाँ आकर एकत्र हुआ है। इस धर्मसभा में हम लोग भी, इस अपराजित भिक्षुसङ्घ के दर्शनार्थ, आये हैं।

तब एक अन्य देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"इस धर्मसभा में सभी भिक्षु समाधिनिष्ठ हैं, सभी ने अपने चित्त को विकाररहित कर सरल बना लिया है। जैसे रथ का सारथि घोड़ों की लगाम पकड़कर उन्हें नियन्त्रित रखता है, उसी तरह इन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में कर रखा है॥"

तभी एक अन्य देवता ने यह गाथा कही—

"राग द्वेष मोह के सभी आवरण स्वचित्त से हटाकर, सांसारिक दृढ बन्धन को नष्ट कर, स्थिरचित्त हो कर चतुर शिक्षित एवं युवा हाथी की तरह शुद्ध और निर्मल मार्ग पर विचरण करते हैं॥"

अन्त में, एक देवता ने भी भगवान् के सम्मुख यह बात कही—

"जो साधक पुरुष भगवान् बुद्ध की शरण में आ गये हैं उनका कभी अपाय (नरक, प्रेत लोक, असुर एवं तिर्यग्) योनियों में पतन नहीं होगा। अपितु वे इस मानव देहपात के बाद देवलोक में ही उत्पन्न होंगे॥"

तेन खो पन समयेन भगवतो पादो सकलिकाय खतो होति। भुसा सुदं भगवतो वेदना वत्तन्ति सारीरिका वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असांता अमनापा; ता सुदं भगवा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो। अथ खो भगवा चतुग्गुणं सङ्घाटिं पञ्ञापेत्वा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेति पादे पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो।

[B.26] ५२. अथ खो सत्तसता सतुल्लपकायिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं मद्दकुच्छिं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि—"नागो वत, समणो गोतमो; नागवता च [R.28] समुप्पन्ना सारीरिका वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो" ति।

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि—"सीहो वत, भो, समणो गोतमो; सीहवता च सममुप्पन्ना सारीरिका वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो" ति।

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि—

"आजानीयो वत, भो, समणो गोतमो; आजानीयवता च समुप्पन्ना सारीरिका

---

३८. शकलिकासूत्र : : भगवान् की पादव्यथा

५१. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह स्थित मद्रकुक्षि मृगदाव में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् का एक चरण पत्थर के किसी टुकड़े (शकलिका) के आघात से क्षत विक्षत हो गया। उसके कारण भगवान् के शरीर में दुःखद तीव्र कठोर एवं असह्य वेदनाएँ होने लगीं। भगवान् स्थिरचित्त एवं स्मृतिमान् तथा समप्रज्ञ होकर उन वेदनाओं को सहन कर रहे थे। तब भगवान् चतुर्गुण सङ्घाटी को विछवाकर. दाहिनी करवट लेटकर, सिंहशय्या आसन लगा कर कुछ हटा कर पैर पर पैर रखते हुए स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होकर लेट गये। उसी समय सात सौ सतुल्यप्रकापिक देवता चान्दनी रात में समस्त मद्रकुक्षि मृगदाव को आलोकित करते हुए भगवान् के सम्मुख पहुँचे। पहुँच कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े उन देवताओं में से एक देवता ने यह हर्षोद्गार प्रकट किया—"अरे! ये श्रमण गौतम बलशाली हाथी के तुल्य हैं। ये अपने इसी नागबल के सहारे से इन दुःखद तीव्र एवं कठोर तथा असह्य शारीरिक देवनाओं को स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होकर सहन कर रहे हैं"।

तब दूसरे किसी देवता ने भी यह हर्षोद्गार प्रकट किया--"अरे! ये श्रमण गौतम सिंह के समान हैं। अपने उस सिंह-बल से ही ये इन...पीड़ाओं को...सहन कर रहे हैं।"

वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा सतो सम्पजानो [N.27] अधिवासेति अविहञ्ञमानो'' ति।

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि—''धोरय्हो वत, भो, समणो गोतमो; धोरय्हवता च समुप्पन्ना सारीरिका वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो'' ति।

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि—''दन्तो वत, भो, समणो गोतमो; दन्तवता च समुप्पन्ना सारीरिका वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो'' ति।

अथ खो अपरा भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि—

''पस्स समाधिं सुभावितं चित्तं च सुविमुत्तं, न चाभिनतं न चापनतं न [B.27] च ससङ्खारनिग्गय्हवारितगतं। यो एवरूपं पुरिसनागं पुरिससीहं पुरिसआजानीयं पुरिसनिसभं पुरिसधोरय्हं पुरिसदन्तं अतिक्कमितब्बं मञ्ञेय्य किमञ्ञत्र [R.29] अदस्सना'' ति।

''पञ्चवेदा सतं समं, तपस्सी ब्राह्मणा चरं।
चित्तं च नेसं न सम्मा विमुत्तं, हीनत्थरूपा न पारङ्गमा ते॥

तब किसी अन्य देवता ने...''अरे! ये श्रमण गौतम श्रेष्ठ अश्वसदृश हैं; ये अपने अनुपम अश्वबल के आधार पर ही इन...पीड़ाओं को...सहन कर रहे हैं।

तब किसी अन्य देवता ने...''अरे! ये श्रमण गौतम वृषभसदृश है। ये अपने वृषभ बल के सहारे से ही इन...पीड़ाओं को...सहन कर रहे हैं''॥

तब किसी अन्य देवता ने...''अरे! ये श्रमण गौतम श्रेष्ठ भारवाह (भार ढोने में समर्थ) हैं। इसी सामर्थ्य के बल पर ये इन...पीड़ाओं को...सहन कर रहे हैं''।

तब किसी अन्य देवता ने...''अरे! इस श्रमण के समाधि के अभ्यास से विमुक्त चित्त को देखो! इनका यह चित्त न उठा है, न दबा है, न कोई प्रयत्न कर रोका गया है, अपितु यह पूर्णतः स्वाभाविक है। जो ऐसे को साधारण नाग, सिंह, आजानीय, वृषभ, भारवाह तथा संयमी कह कर चुप हो जाता है वह अपने अज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं प्रकट करता''॥

''कोई ब्राह्मण भले ही सौ वर्ष तक पञ्चाङ्ग वेद का अभ्यास करता रहे। सौ वर्ष भले ही तपस्या करता रहे, किन्तु इन कर्मों से उस का चित्त पूर्णतः विमुक्त नहीं हो सकता क्यों कि हीन लक्ष्य वाले पारगामी नहीं हो सकते॥

"तण्हाधिपन्ना वतसीलबद्धा, लूखं तपं वस्ससतं चरन्ता।
चित्तं च नेसं न सम्मा विमुत्तं, हीनत्थरूपा न पारङ्गमा ते॥
[N.28] न मानकामस्स दमो इधत्थि, न मोनमत्थि असमाहितस्स।
एको अरञ्ञे विहरं पमत्तो, न मच्चुधेय्यस्स तरेय्य पारं" ति॥
"मानं पहाय सुसमाहितत्तो, सुचेतसो सब्बधि विप्पमुत्तो।
एको अरञ्ञे विहरमप्पमत्तो, स मच्चुधेय्यस्स तरेय्य पारं" ति॥ •

३९. पठमपज्जुन्नधीतुसुत्तं

५३. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। अथ खो कोकनदा पज्जुन्नस्स धीता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं महावनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता कोकनदा पज्जुन्नस्स धीता भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि—

"वेसालियं वने विहरन्तं, अग्गं सत्तस्स सम्बुद्धं।
[R.30] कोकनदाहमस्मि अभिवन्दे, कोकनदा पज्जुन्नस्स धीता॥

"कोई तृष्णा से प्रेरित तथा शीलव्रतपरामर्शयुक्त होकर सौ वर्षों तक रूक्ष तपस्या करता रहे; परन्तु इन कर्मों से उसका चित्त सांसारिक बन्धनों से पूर्णत: विमुक्त नहीं हो सकता; क्यों कि हीन लक्ष्य वाले कर्मों से पारगामी नहीं हो सकते।

"आत्मदृष्टि पुरुष आत्मसंयमी नहीं हो सकता, इसी तरह असमाहित मुनिभाव को प्राप्त नहीं कर सकता, वह जंगल में जाकर अकेला भी प्रमादयुक्त होकर साधना कर के मृत्युराज के बन्धन से पार नहीं जा सकता॥

"क्योंकि वही साधक मृत्युराज के बन्धन के पार जा सकता है जो मान छोड़कर, सुसमाहित चित्त होकर, सावधानीपूर्वक जंगल में एकाकी जा कर साधना में निरन्तर लगा रहे॥" •

३९. प्रथम पर्जन्यधीतासूत्र : : आर्यधर्म से स्वर्गप्राप्ति

५३. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **वैशाली** के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कोई कोकनदा नामक पर्जन्यधीता (मेघपुत्री) चान्दनी रात्रि में उस महावन को अपने तेज से आलोकित करती हुई भगवान् के सम्मुख आयी। वहाँ आकर उन्हें प्रणाम कर वह एक ओर खड़ी हो गयी। एक ओर खड़ी उस पर्जन्यधीता कोकनदा देवता ने भगवान् के सम्मुख ये गाथाएँ कहीं—

"सुतमेव पुरे आसि, धम्मो चक्खुमतानुबुद्धो।
साहं दानि सक्खि जानामि, मुनिनो देसयतो सुगतस्स॥
"ये केचि अरियं धम्मं, विगरहन्ता चरन्ति दुम्मेधा।
उपेन्ति रोरुवं घोरं, चिररत्तं दुक्खं अनुभवन्ति॥
"ये च खो अरिये धम्मे, खन्तिया उपसमेन उपेता।
पहाय मानुसं देहं, देवकायं परिपूरेस्सन्ती" ति॥ [N.29]●

४०. दुतियपज्जुन्नधीतुसुत्तं

५४. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने [B.26] कूटागारसालायं। अथ खो चूळकोकनदा पज्जुन्नस्स धीता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं महावनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता चूळकोकनदा पज्जुन्नस्स धीता भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि—

"इधागमा विज्जुपभासवण्णा, कोकनदा पज्जुन्नस्स धीता।
बुद्धं च धम्मं च नमस्समाना, गाथा चिमा अत्थवती अभासि॥
"बहुना पि खो तं विभजेय्यं, परियायेन तादिसो धम्मो। [R.31]
सङ्खित्तमत्थं लपयिस्सामि, यावता मे मनसा परियत्तं॥

"वैशाली के महावन में समाधिरत पुरुषोत्तम भगवान् बुद्ध को मैं कोकनदा नामक पर्जन्यधीता प्रणाम करती हूँ॥

"आज से पहले तो मैने इस आर्य धर्म के विषय में सुना ही था जिसको सर्वज्ञ बुद्ध ने साक्षात् किया है। आज मैं उस को प्रत्यक्ष देख रही हूँ॥

जो कोई मूर्ख इस आर्यधर्म की निन्दा करेंगे वे रौरव नरक में जाकर गिरेंगे। तथा वहाँ चिर काल तक दुःख भोगेंगे॥

"इसके विपरीत, जो कोई इस आर्य धर्म का धीरता एवं शान्ति के साथ पालन करते हैं, वे इस मानव देह की च्युति के बाद देवलोक में उत्पन्न होते हैं॥" ●

४०. द्वितीयपर्जन्यधीतासूत्र : : बौद्ध धर्म का सार

५४. ऐसा सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **वैशाली** स्थित महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। तब छोटी कोकनदा पर्जन्यधीता चान्दनी रात्रि में...पूर्ववत्...पहुँची। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर...ये गाथाएँ कहीं—

"यह मैं विद्युत् के समान कान्ति वाली, कोकनदा पर्जन्यधीता बुद्ध और धर्म को प्रणाम करने हेतु आयी हूँ। मैं यह सार्थक गाथा कहती हूँ॥

"पापं न कयिरा वचसा मनसा, कायेन वा किञ्चन सब्बलोके।
कामे पहाय सतिमा सम्पजानो, दुक्खं न सेवेथ अनत्थसंहितं" ति॥ ●

सतुल्लपकायिकवग्गो चतुत्थो॥

तस्सुद्दानं

सब्भिमच्छरिना साधु, न सन्तुज्झानसञ्ञिनो।
सद्धा समयो सकलिकं, उभो पज्जुन्नधीतरो ति॥

"यद्यपि मैं ऐसे महान् धर्म के विषय में अनेक प्रकार से कह सकती हूँ; तथापि मैं संक्षेप में ही कहना चाहती हूँ। जहाँ तक मेरी बुद्धि (मन) की पहुँच है॥

(वह यह है—) "इस संसार में आकर मन एवं वचन तथा शरीर से कोई पाप नहीं करना चाहिये। अपितु सभी प्रकार की वासनाओं का त्याग कर, स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होकर ऐसा कोई अनर्थकारी कर्म न करे जो परिणाम में दुःखावह हो॥" ●

स्वतुल्यप्रकायिक वर्ग चतुर्थ समाप्त॥

इस वर्ग की सूची—इस वर्ग में इतने सूत्र व्याख्यात हुए हैं—१. सब्भि, २. मात्सर्य, ३. साधु, ४. न सन्ति, ५. उद्ध्यानसंज्ञी, ६. श्रद्धा, ७. समय, ८. शकलिक, ९. प्रथम पर्जन्यधीता एवं १०. द्वितीय पर्जन्यधीतासूत्र।

५. आदित्तवग्गो

४१. आदित्तसुत्तं

५५. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने [B.29] अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; [N.30] उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं उट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि—

"आदित्तस्मिं अगारस्मिं, यं नीहरति भाजनं।
तं तस्स होति अत्थाय, नो च यं तत्थ डय्हति॥

"एवं आदित्तको लोको, जराय मरणेन च।
नीहरेथेव दानेन, दिन्नं होति सुनीहतं॥

"दिन्नं सुखफलं होति, नादिन्नं होति तं तथा। [R.32]
चोरा हरन्ति राजानो, अग्गि डहति नस्सति॥

---

५. आदित्यवर्ग

४१. आदित्यसूत्र : : समस्त लोक प्रज्वलित है

५५. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवन में साधनाहेतु विराजमान थे। उसी समय चाँदनी रात्रि में कोई देवता समस्त जेतवन को स्वकीय प्रकाश से आलोकित करती हुई वहाँ आकर भगवान् को प्रणाम करती हुई गाथाओं के माध्यम से यों बोली—

"कदाचित् आवास (गृह) में अग्नि लग जाने पर जो वस्तु सुरक्षित बाहर निकाल ली जाती हैं, वही उसके कार्य (प्रयोजन) की रह जाती है; वह नहीं जो वहीं जलकर भस्म हो जाती है॥

"इसी प्रकार यह समस्त संसार जरा एवं मरण के माध्यम से जलते हुए के समान लग रहा है। दान देकर ही इस संसार में सुरक्षित रहा जा सकता है। दानकर्म ही सुरक्षा में एकमात्र हेतु है॥

"दान करने से सुखोपलब्धि होती है, दान न करने पर सुख कहाँ और कैसे मिलेगा? दान करने से बचे धन को या तो चौर चुरा ले जायँगें, या राजा छीन लेंगे। या उसे कभी अग्नि द्वारा जला दिये जाने का भय है, या फिर वह अन्य किसी प्रकार से नष्ट हो जाता है॥

"अथ अन्तेन जहति, सरीरं सपरिग्गहं।
एतदञ्ञाय मेधावी, भुञ्जेथ च ददेथ च।
दत्वा च भुत्वा च यथानुभावं,
अनिन्दितो सग्गमुपेति ठानं" ति॥

४२. किन्ददसुत्तं

५६. "किंददो बलदो होति, किंददो होति वण्णदो?
किंददो सुखदो होति, किंददो होति चक्खुदो?
को च सब्बददो होति? तं मे अक्खाहि पुच्छितो" ति॥
"अन्नदो बलदो होति, वत्थदो होति वण्णदो।
यानदो सुखदो होति, दीपदो होति चक्खुदो॥
"सो च सब्बददो होति, यो ददाति उपस्सयं।
अमतन्ददो च सो होति, यो धम्ममनुसासती" ति॥

४३. अन्नसुत्तं

५७. "अन्नमेवाभिनन्दन्ति, उभये देवमानुसा।
अथ को नाम सो यक्खो, यं अन्नं नाभिनन्दती" ति॥

"और अन्त में तो सभी कुछ यहीं छूट जाता है—मनुष्य का यह शरीर भी तथा उसकी जीवनपर्यन्त अर्जित समस्त सम्पत्ति भी। यह जान कर बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह अपनी अर्जित सम्पत्ति का उपभोग करे तथा अवशिष्ट का दान करता रहे॥

"इस तरह धर्मपूर्वक स्वार्जित सम्पत्ति का उपभोग एवं दान ही मनुष्य को देवलोक में पहुँचाने का साधन बनते हैं॥"

४२. किन्ददसूत्र : : क्या देने वाला क्या प्राप्त करता है?

५६. (देवता का प्रश्न—) क्या देने वाला बल देता है? क्या देने वाला वर्ण देता है? क्या देने वाला सुख देता है? क्या देने वाला चक्षु (ज्ञान) देता है?

(भगवान् का उत्तर—) "अन्न का देने वाला बल देता है। (अर्थात् अन्न के दान से दाता को बल (= शक्ति, सामर्थ्य) मिलता है।) वस्त्र का देने वाला वर्ण प्रदान करता है। वाहन (सवारी) देने वाला सुख प्रदान करता है तथा प्रदीप देने वाला मानो चक्षुर्दान करता है।

"वह दाता तो सब कुछ देने वाला माना जाता है जो किसी गृहविहीन को उपाश्रय (आवासहेतु गृह) प्रदान करता है। तथा लोक में वह पुरुष मानो अमृत ही प्रदान करता है जो दूसरों को धर्मोपदेश करता है॥"

"ये नं ददन्ति सद्धाय, विप्पसन्नेन चेतसा। [B.30]
तमेव अन्नं भजति, अस्मिं लोके परम्हि च॥
"तस्मा विनेय्य मच्छेरं, दज्जा दानं मलाभिभू।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं" ति॥ •

४४. एकमूलसुत्तं

५८. "एकमूलं द्विरावट्टं, तिमलं पञ्चपत्थरं।
समुद्दं द्वादसावट्टं, पातालं अतरी इसी" ति॥ •

४५. अनोमसुत्तं

५९. "अनोमनामं निपुणत्थदस्सिं, पञ्ञाददं कामालये असत्तं। [R.33]
तं पस्सथ सब्बविदुं सुमेधं, अरिये पथे कममानं महेसिं" ति॥ •

---

४३. अन्नसूत्र : : अन्न सभी को प्रिय होता है

(देवता—) "देवता एवं मनुष्य दोनों ही अन्न की एकान्ततः प्रशंसा करते हैं। ऐसा कौन यक्ष (देवता या प्राणी) है जो अन्न की प्रशंसा न करता हो?"

(भगवान्—) "जो उस अन्न का श्रद्धापूर्वक प्रसन्न चित्त से दान करते हैं, उन्हीं को इस लोक या परलोक में वह अन्न प्राप्त होता है॥

"अतः स्वहितैषी पुरुष को मात्सर्य (कंजूसी) का परित्याग कर यह दान अवश्य करना चाहिये, जो किइस लोक में पापनिवारक भी है तथा पुण्यफलदायक भी है; जिनके सहारे से प्राणी परलोक (स्वर्ग) में स्थायी निवास प्राप्त कर सकता है॥" •

४४. एकमूलसूत्र : : एक मूल वाले का नाश

५८. "एक मूल वाले, दो मुख वाले, तीन मल वाले, पाँच विस्तार वाले, बारह भँवर वाले समुद्र तथा पाताल—इन सभी को ऋषि (ज्ञानी) पार कर गये॥

[इस गाथा का स्पष्टार्थ **अट्ठकथा** में यों किया गया है—"**एकमूलं**—अविद्या तृष्णा का मूल (जड़) है, तथा तृष्णा अविद्या का। **द्विरावट्टं**—वही तृष्णा शाश्वत एवं उच्छेद दृष्टियों के भेद से दो प्रकार (मुख) वाली है। **तिमलं**—उस (तृष्णा) में राग, द्वेष एवं मोह—ये तीन मल होते हैं। **पञ्चपत्थरं**—पाँच काम गुण इसके विस्तार (फैलाव) हैं। **समुद्दं**—यह तृष्णा कभी पूर्ण नहीं होती—इस अर्थ में इसको 'समुद्र' कहा गया है। **द्वादसावट्टं**—अध्यात्म एवं बाह्य भेद से बारह (१२) आयतनों को यहाँ 'भँवर' कहा गया है। **पातालं**—तृष्णा के गाम्भीर्य (गहराई) की कोई परिधि (सीमा) नहीं है, अतः इसे 'पाताल' की उपमा दी गयी है॥] •

४६. अच्छरासुत्तं

६०. "अच्छरागणसङ्घुट्ठं, पिसाचगणसेवितं।
वनन्तं मोहनं नाम, कथं यात्रा भविस्सती" ति?॥
"उजुको नाम सो मग्गो, अभया नाम सा दिसा।
रथो अकूजनो नाम, धम्मचक्केहि संयुतो॥
"हिरी तस्स अपालम्बो, सत्यस्स परिवारणं।
धम्माहं सारथिं ब्रूमि, सम्मादिट्ठिपुरेजवं॥
"यस्स एतादिसं यानं, इत्थिया पुरिसस्स वा।
स वे एतेन यानन, निब्बानस्सेव सन्तिके" ति॥

४७. वनरोपसुत्तं

६१. "केसं दिवा च रत्तो च, सदा पुञ्ञं पवड्ढति।
धम्मट्ठा सीलसम्पन्ना, के जना सग्गगामिनो" ति?॥

---

४५. अनोमसूत्र : : सर्वतः परिपूर्ण

५९. "इन अनोम (श्रेष्ठ) नाम वाले, सूक्ष्मद्रष्टा, प्रज्ञा (ज्ञान) के देने वाले, लौकिक कामभोगों में अनासक्त, सर्वज्ञ एवं मेधावी महर्षि को देखो जो आर्य मार्ग पर आगे ही आगे बढते जा रहे हैं॥"

४६. अप्सरासूत्र : : यात्रा कैसे पूर्ण होगी!

(देवता—) ६०. "अप्सराओं (के परिहास) से संघुष्ट (गूँजता हुआ), पिशाचसमूहों से सेवित, मोहदायक उस (नन्दन) वन की यात्रा सुखपूर्वक किस मार्ग से पूर्ण हो पाएगी? (मेरी मुक्ति कैसे होगी?")

(भगवान्—) "वह मार्ग बहुत सरल है, वहाँ (निर्वाण) तक जाने के लिये वह भयशून्य है, उस पदयात्रा का साधन कोई शब्द न करने वाला रथ है, जिसमें शारीरिक वीर्य एवं चैतसिक वीर्य रूप धर्मचक्र लगे हुए हैं॥

"अध्यात्म एवं बाह्य ह्री (पाप करने में लज्जा) वहाँ अपालम्ब (यात्री को रथ से नीचे गिरने से रक्षार्थ सहारा देने हेतु लकड़ी का तख्ता) है। धर्म ही उस रथ में सारथि है। सम्यग्दृष्टि ही उस रथ का अग्रगामी अश्वारोही है॥

"जिस स्त्री या पुरुष साधक के पास ऐसा अपूर्व (विशिष्ट) यान (मार्ग पार करने का साधन) है उस पथिक को इस यान से निर्वाण के पास पहुँचा हुआ ही समझना चाहिये॥"

"आरामरोपा वनरोपा, ये जना सेतुकारका।
पपं च उदपानं च, ये ददन्ति उपस्सयं॥
"तेसं दिवा च रत्तो च, सदा पुञ्ञं पवड्ढति। [B.31]
धम्मट्ठा सीलसम्पन्ना, ते जना सग्गगामिनो" ति॥ •

४८. जेतवनसुत्तं

६२. "इदं हि तं जेतवनं, इसिसङ्घनिसेवितं। [N.32]
आवुत्थं धम्मराजेन, पीतिसञ्जननं मम॥
"कम्मं विज्जा च धम्मो च, सीलं जीवितमुत्तमं। [R.34]
एतेन मच्चा सुज्झन्ति, न गोत्तेन धनेन वा॥
"तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो।
योनिसो विचिने धम्मं, एवं तत्थ विसुज्झति॥
"सारिपुत्तो व पञ्ञाय, सीलेन उपसमेन च।
यो पि पारङ्गतो भिक्खु, एतावपरमो सिया" ति॥ •

---

४७. वनरोपसूत्र : : पुण्यों की सदा वृद्धि

(देवता-) ६१. "कैसे पुरुषों का पुण्य दिन रात बढता रहता है? कैसे धर्मारूढ एवं शीलसम्पन्न पुरुष स्वर्ग तक पहुँचते हैं?"

(भगवान्—) "उद्यानों में तथा वनों में वृक्ष लगाने वाले, नदियों पर पुल बनवाने वाले, प्याऊ (प्रया) बनाकर जल पिलाने की व्यवस्था करने वाले, कूआ खुदवाने वाले, यात्रियों के लिये उपाश्रय (धर्मशाला) बनवाले वाले पुरुषों के पुण्य दिन रात बढते रहते हैं। धर्ममार्गारूढ तथा शीलसम्पन्न पुरुष स्वर्ग जाया करते हैं"॥ •

४८. जेतवनसूत्र : : जेतवन की प्रशंसा

६२. "ऋषियों द्वारा सेवित (उपभोग में लाया गया) यह जेतवन, जहाँ धर्मराज (भगवान् बुद्ध) का आवास है, मुझमें अत्यधिक श्रद्धा उत्पन्न करता है॥

"कर्म, विद्या, धर्म एवं शील का पालन ही उत्तम जीवन है। इन्हीं से मनुष्यों की पापशुद्धि होती है। केवल उच्च गोत्र होने या अधिक धन होने से पापशुद्धि नहीं हुआ करती॥

"अत: बुद्धिमान् पुरुष को, अपना हित देखते हुए, धर्म का सूक्ष्म विश्लेषण करना चाहिये, तभी उसका चित्त शुद्ध हो पाता है॥

"सारिपुत्र की तरह प्रज्ञा, शील तथा मन की शान्ति द्वारा जो भिक्षु पार चला गया है यही उसका परम पद है"॥ •

४९. मच्छरिसुत्तं

६३. "येध मच्छरिनो लोके, कदरिया परिभासका।
अञ्ञेसं ददमानानं, अन्तरायकरा नरा॥
"कीदिसो तेसं विपाको, सम्परायो च कीदिसो।
भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, कथं जानेमु तं मयं" ति?॥
"येध मच्छरिनो लोके, कदरिया परिभासका।
अञ्ञेसं ददमानानं, अन्तरायकरा नरा॥
"निरयं तिरच्छानयोनिं यमलोकं उपपज्जरे।
सचे एन्ति मनुस्सत्तं, दलिद्दे जायरे कुले॥
"चोळं पिण्डो रती खिड्डा, यत्थ किच्छेन लब्भति।
परतो आसीसरे बाला, तं पि तेसं न लब्भति।
दिट्ठे धम्मेस विपाको, सम्पराये च दुग्गती" ति॥
"इति हेतं विजानाम, अञ्ञं पुच्छाम गोतम!
येध लद्धा मनुस्सत्तं, वदञ्ञू वीतमच्छरा॥

---

४९. मात्सर्यसूत्र : : श्रद्धालुओं का कर्मफल

(देवता—) ६३. "संसार में जो कंजूस कहे जाते हैं, ऐसे लोग अतिलोभी, दूसरों से चिढकर उनको अपशब्द कहने वाले, दूसरों को दान देते देख कर उसमें भी विघ्न डालने वाले होते हैं॥

"उनके इन कार्यों का परिणाम तथा भावी परिपाक (फल) कैसा होगा?—यह जानने के लिये ही हम लोग भगवान् के पास आये हैं कि हम उसे कैसे जाने?"

(भगवान्—) "संसार में उक्त प्रकार के कंजूस लोग यहाँ से देहपात के बाद, निरय (नरक), तिरश्चीन (पशु) योनि, अथवा यमलोक में जाते हैं। यदि (किसी अन्य शुभकर्मवश) वे मनुष्ययोनि प्राप्त कर लें तो यहाँ आकर भी उनका जन्म दरिद्र कुल में ही होता है॥

"जहाँ उनको अन्न, वस्त्र, रतिक्रीडा आदि उपभोगसामग्री भी बहुत कठिनता से ही मिल पाती हैं। उन्हें वे मूर्ख दूसरों से माँगते रहते हैं, फिर भी सुगमता से उपलब्ध नहीं होतीं। यह तो उनके वर्तमान जन्म का फल है। परलोक में तो उनको दुर्गति लिखी ही है"॥

(देवता—) "भो गौतम! यह हम भी जानते हैं। हम तो आप से एक दूसरा ही आवश्यक प्रश्न पूछने आये थे। हम यह जानना चाहते थे कि जो यहाँ मनुष्यत्व प्राप्तकर

"बुद्धे पसन्ना धम्मे च, सङ्घे च तिब्बगारवा। [B.32]
कीदिसो तेसं विपाको, सम्परायो च कीदिसो।
भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, कथं जानेमु तं मयं" ति?

"येध लद्धा मनुस्सत्तं, वदञ्ञू वीतमच्छरा। [N.33]
बुद्धे पसन्ना धम्मे च, सङ्घे च तिब्बगारवा।
एते सग्गा पकासेन्ति, यत्थ ते उपपज्जरे॥

"सचे एन्ति मनुस्सत्तं, अड्ढे आजायरे कुले। [R.35]
चोळं पिण्डो रती खिड्डी, यत्थाकिच्छेन लब्भति॥

"परसम्भतेसु भोगेसु, वसवत्ती व मोदरे।
दिट्ठे धम्मेस विपाको, सम्पराये च सुग्गती" ति॥

●

५०. घटिकारसुत्तं

६४. "अविहं उपपन्नासे, विमुत्ता सत्त भिक्खवो।
रागदोसपरिक्खीणा, तिण्णा लोके विसत्तिकं" ति॥

उदार एवं कञ्जूसी रहित होकर बुद्ध के प्रति श्रद्धालु धर्म एवं सङ्घ के प्रति तीव्र गौरवयुक्त हैं उनके इन कार्य का फल क्या होगा? तथा परलोक उन का कैसा बीतेगा?—हम तो आप से यह जानने आये थे, इसे हम आप से कैसे जानें!"

(भगवान्—) "जिन्होंने यहँ मानव जन्म ग्रहण किया है, स्वभाव से उदार एवं कंजूसीरहित हैं, कर्म से बुद्ध के प्रति श्रद्धालु एवं धर्म तथा सङ्घ के प्रति तीव्र गौरवयुक्त हैं, ऐसे लोग स्वर्ग में शोभित होते हैं, जबकि यहाँ से देहपात के बाद उनका वहाँ जन्म होता है॥

"वे यदि यहाँ मनुष्यत्व प्राप्त करते हैं तो किसी वैभवशाली कुल में उन की उत्पत्ति होती है; तथा उन्हें यहाँ वस्त्र, अन्न, रति क्रीड़ा आदि उपभोग सामग्री बहुलता से मिलती है।

तथा इन का यथेच्छ उपभोग कर वशवर्ती देवों के समान जीवन का आनन्द उठाते हैं। यह तो इन के इस लोक में जन्म का फल है। परलोक में तो उनकी सुगति होनी ही है॥"

●

५०. घटिकारसूत्र : : बुद्धधर्म से ही मुक्ति

(देवता—) ६४. "सात भिक्षु अपने राग द्वेष विकार क्षीण कर, संसार के प्रति वीततृष्ण हो कर, इस लोक को पार कर अविह देवों में उत्पन्न हुए॥

"के च ते अतरुं पङ्कं, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं।
के हित्वा मानुसं देहं, दिब्बयोगं उपच्चगुं" ति?
"उपको पलगण्डो च, पुक्कुसाति च ते तयो।
भद्दियो खण्डदेवो च, बाहुरग्गि च सिङ्गियो।
ते हित्वा मानुसं देहं, दिब्बयोगं उपच्चगुं" ति॥
"कुसली भाससी तेसं, मारपासप्पहायिनं।
कस्स ते धम्ममञ्ञाय, अच्छिदुं भवबन्धनं" ति?
"न अञ्ञत्र भगवता, नाञ्ञत्र तव सासना।
यस्स ते धम्ममञ्ञाय, अच्छिदुं भवबन्धनं॥
"यत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झति।
तं ते धम्मं इधञ्ञाय, अच्छिदुं भवबन्धनं" ति॥
"गम्भीरं भाससी वाचं, दुब्बिजानं सुदुब्बुधं।
कस्स त्वं धम्ममञ्ञाय, वाचं भाससि ईदिसं" ति?

"वे कौन थे जो इस भवपङ्क को लाँघ गये, कठिनता से पार जाने योग्य मृत्युसागर को भी पार कर गये? कौन इस मानव देहपात के बाद दिव्य स्थान को प्राप्त हो गये?

"वे सात ये थे—१. उपक, २. पलगण्ड, ३. पुक्कुसाति, ४. भद्दिय, ५. खण्डदेव, ६. बाहुरग्गि एवं ७. सिङ्गिय। वे सात इस मानव देहपात के बाद दिव्य भाव को प्राप्त हुए॥

(भगवान्—) "उस मारपाश के बन्धन को काटने वालों के विषय में आप ठीक ही कह रहे हैं। परन्तु क्या आप लोग यह भी जानते हैं कि वे किसके द्वारा उपदिष्ट धर्म का पालन कर अपने इन बन्धनों को काटने में समर्थ हुए?"

(देवता—) "भगवान् को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं, आप के धर्म को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं। आपके द्वारा उपदिष्ट धर्म का अवलम्बन कर के ही वे अपने भवबन्धन काटने में समर्थ हुए!

"जहाँ नाम और रूप-दोनों सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं। आपके उस धर्म को जान कर वे अपने भवबन्धन काटने में समर्थ हो सके॥"

(भगवान्—) "तुम तो बहुत गम्भीर बातें कर रहे हो! पहले इस (धर्म) को ठीक जानना ही कठिन है, फिर ठीक से समझना तो और भी कठिन! यह तो बताओ कि तुम किस धर्म को जान कर ऐसी गम्भीर वाणी बोल रहे हो?"

''कुम्भकारो पुरे आसिं, वेकळिङ्गे घटीकरो। [B.33]
मातापेत्तिभरो आसिं, कस्सपस्स उपासको॥
''विरतो मेथुना धम्मा, ब्रह्मचारी निरामिसो। [N.34, R.36]
अहुवा ते सगामेय्यो, अहुवा ते पुरे सखा॥
''सोहमेते पजानामि, विमुत्ते सत्त भिक्खवो।
रागदोसपरिक्खीणे, तिण्णे लोके विसत्तिकं'' ति॥
''एवमेतं तदा आसि, यथा भाससि भग्गव।
कुम्भकारो पुरे आसि, वेकळिङ्गे घटीकरो।
मातापेत्तिभरो आसि, कस्सपस्स उपासको॥
''विरतो मेथुना धम्मा, ब्रह्मचारी निरामिसो।
अहुवा मे सगामेय्यी, अहुवा मे पुरे सखा'' ति॥
एवमेतं पुराणानं, सहायानं अहु सङ्गमो।
उभिन्नं भावितत्तानं, सरीरन्तिमधारिनं ति॥ •

आदित्तवग्गो पञ्चमो॥

(देवता—) ''पहले मैं एक घटीकार (कुम्भकार) था, वेकलिङ्गनगर में एक घड़ा बनाने वाला, उसी आजीविका से मैं अपने माता पिता का पालन पोषण करता था, मैं भगवान् काश्यप बुद्ध का उपासक (शिष्य) था॥

''मैं मैथुन धर्म (स्त्रीसंसर्ग) से विरत रह कर ब्रह्मचारी (एकान्ततः धर्मोपासक), पूर्ण त्यागी, अपरिग्रही था। हम दोनों (भगवान् काश्यप और मैं) एक ही ग्राम के वासी थे। वे पहले मेरे मित्र थे॥

''अतः मैं इन सातों (पूर्वोक्त) भिक्षुओं को जानता हूँ। वे सातों भिक्षु भवबन्धन से मुक्त होकर अपने राग द्वेष मोह क्षीण कर चुके थे, अतः वे भवसागर से मुक्त हो गये॥''

(भगवान्—) ''आप उस समय ऐसे ही थे, जैसा कि भार्गव! आप कह रहे हो। आप पहले वेकलिङ्ग ग्राम में घड़ा बनाने वाले घटीकार थे। इसी वृत्ति से आप अपने माता पिता का पालन पोषण करते थे॥

''आप मैथुन धर्म से विरत रह कर एकान्ततः धर्मोपासना करते हुए, पूर्णतः त्यागी एवं अपरिग्रही थे। आप और मैं एक ही ग्राम के वासी थे, आप और मैं दोनों पहले सखा थे॥''

(निगमन—) यों यह पुराने दो मित्रों का संलाप हुआ। दोनों ही भावितात्मा (आत्मज्ञानी) एवं अन्तिम देहधारी थे॥ •

आदीप्तवर्ग पञ्चम समाप्त॥

तस्सुद्दानं

आदित्तं किंददं अन्नं, एकमूलअनोमियं।
अच्छरावनरोपजेतं, मच्छरेन घटीकरो ति॥ •

इस वर्ग की सूची—इस वर्ग में इन दश सूत्रों का व्याख्यान है: जैसे—१. आदित्य, २. किन्दद, ३. अन्न, ४. एकमूल, ५. अनोम, ६. अप्सरा, ७. वनरोप, ८. जेतवन, ९. मात्सर्य, एवं १०. घटीकारसूत्र॥

६. जरावग्गो

५१. जरासुत्तं

६५. “किंसु याव जरा साधु, किंसु साधु पतिट्ठितं।
किंसु नरानं रतनं, किंसु चोरेहि दूहरं” ति?
“सीलं याव जरा साधु, सद्धा साधु पतिट्ठिता।
पञ्ञा नरानं रतनं, पुञ्ञं चोरेहि दूहरं” ति॥ ●

५२. अजरसासुत्तं

६६. “किंसु अजरसा साधु, किंसु साधु अधिट्ठितं। [B.34]
किंसु नरानं रतनं, किंसु चोरेह्यहारियं” ति॥
“सीलं अजरसा साधु, सद्धा साधु अधिट्ठिता। [R.37]
पञ्ञा नरानं रतनं, पुञ्ञं चोरेह्यहारियं” ति॥ ●

५३. मित्तसुत्तं

६७. “किंसु पवसतो मित्तं, किंसु मित्तं सके घरे। [N.35]
किं मित्तं अत्थजातस्स, किं मित्तं सम्परायिकं” ति?

---

६. जरावर्ग

५१. जरासूत्र : : पुण्य चुराया नहीं जा सकता

(देवता—) ६५. “वह कौन वस्तु है जो बुढापे तक ठीक हो? स्थिरता पाने के लिये क्या उचित है? मनुष्यों का रत्न (श्रेष्ठ वस्तु) क्या है? तथा चौर किसे नहीं चुरा सकते?”

(भगवान्—) “**शील** का पालन बुढापे तक उचित है, अधिष्ठित (दृढ सङ्कल्पित) के लिये **श्रद्धा** उचित है, **प्रज्ञा** मनुष्यों का रत्न है, **पुण्य** चौरों से नहीं चुराया जा सकता॥ ●

५२. अजरसासूत्र : : प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है

(देवता—) ६६. “बुढापा न आने से भी क्या उचित है? स्थिरता के लिये कौन वस्तु उचित है? मनुष्यों का रत्न क्या है? चौरों द्वारा क्या नहीं चुराया जा सकता?”

(भगवान्—) “**शील** का पालन बुढापा न आने पर करना उचित है। अधिष्ठित **श्रद्धा** भी उचित है। **प्रज्ञा** मनुष्यों का रत्न है। **पुण्य** चौरों से नहीं पुराया जा सकता॥ ●

५३. मित्रसूत्र : : मित्र कौन है?

(देवता—) ६७. “प्रवास (विदेशवास या यात्रा) में कौन मित्र है? अपने घर में कौन मित्र है? प्रयोजन आने पर कौन मित्र है? परलोक में कौन मित्र है?

"सत्थो पवसतो मित्तं, माता मित्तं सके घरे।
सहायो अत्थजातस्स, होति मित्तं पुनप्पुनं।
सयङ्कतानि पुञ्ञानि, तं मित्तं सम्परायिकं" ति॥ ●

५४. वत्थुसुत्तं

६८. "किंसु वत्थु मनुस्सानं, किंसूध परमो सखा।
किंसु भूता उपजीवन्ति, ये पाणा पठविं सिता" ति?
"पुत्ता वत्थु मनुस्सानं, भरिया च परमो सखा।
वुट्ठिं भूता उपजीवन्ति, ये पाणा पठविं सिता" ति॥ ●

५५. पठमजनसुत्तं

६९. "किंसु जनेति पुरिसं, किंसु तस्स विधावति।
किंसु संसारमापादि, किंसु तस्स महब्भयं" ति?
"तण्हा जनेति पुरिसं, चित्तमस्स विधावति।
सत्तो संसारमापादि, दुक्खमस्स महब्भयं" ति॥ ●

५६. दुतियजनसुत्तं

[B.35] ७०. "किंसु जनेति पुरिसं, किंसु तस्स विधावति।
किंसु संसारमापादि, किस्मा न परिमुच्चती" ति?

(भगवान्—) "यात्रा में **शस्त्र** मित्र का कार्य देता है। अपने घर में **माता** सब से बड़ी मित्र है। **साथी** (सहायक) प्रयोजन आने पर मित्र होता है। स्वकृत **पुण्य** कर्म ही परलोक में सहायक होता है॥" ●

५४. वस्तुसूत्र : : आधार

(देवता—) ६८. "मनुष्यों का आधार क्या है? इस लोक में सबसे बड़ा साथी कौन है? किसके आधार पर सभी पृथ्वीवासी प्राणी जीवित रहते हैं?"

(भगवान्—) "**पुत्र** मनुष्यों के आधार हैं। इस लोक में **पत्नी** सबसे बड़ी सहायक (साथी) है। पृथ्वीवासी सभी प्राणी **वर्षा** के आधार पर जीवित रहते हैं"॥ ●

५५. प्रथम जनसूत्र : : उत्पन्न होना

(देवता—) ६९. "मनुष्य को कौन उत्पन्न करता है? उसका वह क्या है जो दौड़ता रहता है? कौन आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है? उसके लिये सबसे बड़ा भय क्या है?"

(भगवान्—) "**तृष्णा** मनुष्य को पैदा करती है। मनुष्य का **चित्त** दौड़ता रहता है। **प्राणी** आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। **दुःख** मनुष्य के लिये सबसे बड़ा भय है"॥

"तण्हा जनेति पुरिसं, चित्तमस्स विधावति।
सत्तो संसारमापादि, दुक्खा न परिमुच्चती" ति॥

५७. ततियजनसुत्तं

७१. "किंसु जनेति पुरिसं, किंसु तस्स विधावति। [R.38]
किंसु संसारमापादि, किसु तस्स परायनं" ति?
"तण्हा जनेति पुरिसं, चित्तमस्स विधावति।
सत्तो संसारमापादि, कम्मं तस्स परायनं" ति॥

५८. उप्पथसुत्तं

७२. "किंसु उप्पथो अक्खातो, किंसु रत्तिन्दिवक्खयो। [N.36]
किं मलं ब्रह्मचरियस्स, किं सिनानमनोदकं" ति?
"रागो उप्पथो अक्खातो, वयो रत्तिन्दिवक्खयो।
इत्थी मलं ब्रह्मचरियस्स, एत्थायं सज्जते पजा।
तपो च ब्रह्मचरियं च, तं सिनानमनोदकं" ति॥

---

५६. द्वितीय जनसूत्र : : उत्पन्न होना

(देवता—) ७० "मनुष्य को कौन उत्पन्न करता है? उसका वह क्या है जो दौडता रहता है? कौन आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है? वह किससे मुक्त नहीं हो पाता?

(भगवान्—) "**तृष्णा** मनुष्य को उत्पन्न करती है। मनुष्य का **चित्त** दौड़ता रहता है। **प्राणी** आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। मनुष्य **दुःख** से मुक्त नहीं हो पाता"॥

५७. तृतीय जनसूत्र : : उत्पन्न होना

(देवता—) ७१. "मनुष्य को कौन उत्पन्न करता है...पूर्ववत्...उसका आश्रय क्या है?

(भगवान्—) "तृष्णा मनुष्य को उत्पन्न...पूर्ववत्...। कर्म ही मनुष्य का आश्रय है"॥

५८. उत्पथसूत्र : : कापथ (अनुचित मार्ग)

(देवता—) ७२. "कुत्सित पथ (कुमार्ग) क्या है? रात दिन क्षीण होने वाला क्या है? ब्रह्मचर्य (धर्माराधन) का मल क्या है? कौन स्नान जल के विना किया जा सकता है?

(भगवान्—) "राग को विद्वज्जन कुमार्ग कहते हैं। आयु रात दिन क्षीण होने वाली है। स्त्री ब्रह्मचर्य का मल (विरोधी) है, जिसमें सभी प्राणी आसक्त हो जाते हैं। तपस्या एवं ब्रह्मचर्य (धर्माराधन) ही विना जल का स्नान है॥

५९. दुतियसुत्तं

७३. ''किंसु दुतिया पुरिसस्स होति, किंसु चेनं पसासति।
किस्स चाभिरतो मच्चो, सब्बदुक्खा पमुच्चती'' ति?॥
''सद्धा दुतिया पुरिसस्स होति, पञ्ञा चेनं पसासति।
निब्बानाभिरतो मच्चो, सब्बदुक्खा पमुच्चती'' ति॥ •

६०. कविसुत्तं

७४. ''किंसु निदानं गाथानं, किंसु तासं वियञ्जनं।
किंसु सन्निस्सिता गाथा, किंसु गाथानमासयो'' ति?
''छन्दो निदानं गाथानं, अक्खरा तासं वियञ्जनं।
[B.36] नामसन्निस्सिता गाथा, कवि गाथानमासयो'' ति॥ •

जरावग्गो छट्ठो॥

तस्सुद्दानं

जरा अजरसा मित्त, वत्थुं तीणि जनानि च।
उप्पथो च दुतियो च, कविना पूरितो वग्गो ति॥ •

---

५९. द्वितीयसूत्र : : सहायक (साथी)

(देवता—) ७३. ''पुरुष का साथी (द्वितीय) क्या होता है? कौन उस पर नियन्त्रण करता है? किसमें अभिरत (तन्मय) होकर मनुष्य दुःखों से मुक्ति पा जाता है?

(भगवान्—) ''श्रद्धा पुरुष का साथी है। प्रज्ञा उस पर नियन्त्रण करती है। निर्वाण में अभिरत होकर मनुष्य सब दुःखों से मुक्त हो जाता है''॥ •

६०. कविसूत्र : : कविता (गाथा)

(देवता—) ७४. ''गाथाओं का मूल कारण क्या है? उनके व्यञ्जन क्या हैं? उनका आधार क्या है? गाथाओं का आश्रय क्या है?''

(भगवान्—) ''गाथाओं का मूल कारण (निदान) छन्द है। अक्षर गाथा के व्यञ्जन (विभेदक) हैं। नाम के आधार पर गाथा बनती है। तथा कवि ही उस गाथा का आश्रय हैं''॥ •

जरावर्ग षष्ठ समाप्त॥

इस वर्ग की सूची—इस वर्ग में १० सूत्र व्याख्यात हैं, जैसे—१. जरा, २. अजरसा, ३. मित्र, ४. वस्तु, ५.,६.,७. जनसूत्र, ८. उत्पथ, ९. द्वितीय एवं १०. कवि सूत्र॥

७. अद्धवग्गो

६१. नामसुत्तं

७५. "किंसु सब्बं अद्धभवि, किस्मा भिय्यो न विज्जति।
किस्सस्सु एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू" ति? [R.39]
"नामं सब्बं अद्धभवि, नामा भिय्यो न विज्जति।
नामस्स एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू" ति॥ •

६२. चित्तसुत्तं

७६. "केनस्सु नीयति लोको, केनस्सु परिकस्सति। [N.37]
किस्सस्सु एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू" ति?
"चित्तेन नीयति लोको, चित्तेन परिकस्सति।
चित्तस्स एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू" ति॥ •

६३. तण्हासुत्तं

७७. "केनस्सु नीयति लोको, केनस्सु परिकस्सति?।
किस्सस्सु एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू" ति?

---

७. अध्ववर्ग

६१. नामसूत्र : : **नाम**

(देवता—) ७५. "वह क्या है जो सब कुछ अपने में रखता है? किससे अधिक कुछ नहीं है? किस एक धर्म के सब वश में चले आते हैं?"

(भगवान्—) "नाम सभी को अपने में अन्तर्भूत रखता है। नाम से अधिक कुछ नहीं है। एक धर्म नाम के वश में सब चले आते हैं।"

[यहाँ **अट्ठकथा** का स्पष्टीकरण यों है—संसार में कोई जीव या वस्तु ऐसी नहीं है जो नामरहित हो। यहाँ तक कि जिस वस्तु का नाम ज्ञात नहीं होता, उसको भी लोकव्यवहार में 'अनामक' नाम से व्यवहृत करने लगते हैं।] •

६२. चित्तसूत्र : : **चित्त**

(देवता—) ७६. "लोक किससे नियन्त्रित होता है? किससे यह क्षीण किया जाता है? किस एक धर्म के वश में सब हो जाते हैं?"

(भगवान्—) "यह समस्त जगत् चित्त के द्वारा नियन्त्रित होता है। तथा चित्त के कारण ही यह क्षीण होता है। इस एक धर्म चित्त के ही वश में सब हो जाते हैं।" •

६३. तृष्णासूत्र : : **तृष्णा**

(देवता—) ७७. "किस से लोक नियन्त्रित होता है?...पूर्ववत्...किस एक धर्म के वश में सब हो जाते हैं?"

"तण्हाय नीयति लोको, तण्हाय परिकस्सति।
तण्हाय एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू" ति॥ •

६४. संयोजनसुत्तं

७८. "किंसु संयोजनो लोको, किंसु तस्स विचारणं?।
[B.37] किस्सस्सु विप्पहानेन, निब्बानं इति वुच्चती" ति?
"नन्दीसंयोजनो लोको, वितक्कस्स विचारणं।
तण्हाय विप्पहानेन, निब्बानं इति वुच्चती" ति॥ •

६५. बन्धनसुत्तं

७९. "किंसु सम्बन्धनो लोको, किंसु तस्स विचारणं?।
किस्सस्सु विप्पहानेन, सब्बं छिन्दति बन्धनं" ति?
[R.40] "नन्दीसम्बन्धनो लोको, वितक्कस्स विचारणं।
तण्हाय विप्पहानेन, सब्बं छिन्दति बन्धनं" ति॥ •

६६. अब्भाहतसुत्तं

८०. "केनस्सुब्भाहतो लोको, केनस्सु परिवारितो?।
केन सल्लेन ओतिण्णो, किस्स धूपायितो सदा" ति?

(भगवान्—) "यह समस्त जगत् तृष्णा के द्वारा...पूर्ववत्...तृष्णा एक धर्म के वश में सब चले आते हैं॥" •

६४. संयोजनसूत्र : : बन्धन

(देवता—) ७८. "यह समस्त लोक किस बन्धन बँधा हुआ है? उसका विचरण (व्यवस्थापन) कौन करता है? किस के प्रहाण होने से 'निर्वाण' ऐसा कहा जाता है?

(भगवान्—) "यह समस्त जगत् तृष्णा (नन्दी) के बन्धन से बँधा हुआ है। वितर्क उस का विचारण करता है। तृष्णा के विशेष प्रहाण से 'निर्वाण' ऐसा कहा जाता है"॥ •

६५. बन्धनसुत्त : : पाश (बन्धन)

(देवता—) ७९. "यह समस्त जगत् किस पाश (बन्धन) में फँसा हुआ है? इसका विचारण (व्यवस्थापन) कौन करता है? किस के प्रहाण से सभी तरह के पाश कट जाते हैं?"

(भगवान्—) "यह समस्त जगत् तृष्णा (नन्दी) के पाश से बँधा हुआ है। इसका विचारण वितर्क से होता है। तृष्णा के विशेषत: प्रहाण से 'निर्वाण' ऐसा कहा जाता है'॥•

"मच्चुनाब्भाहतो लोको, जराय परिवारितो।
तण्हासल्लेन ओतिण्णो, इच्छाधूपायितो सदा" ति॥ •

६७. उड्डितसुत्तं

८१. "केनस्सु उड्डितो लोको, केनस्सु परिवारितो?।
केनस्सु पिहितो लोको, किस्मि लोको पतिट्ठितो" ति?
"तण्हाय उड्डितो लोको, जराय परिवारितो। [N.38]
मच्चुना पिहितो लोको, दुक्खे लोको पतिट्ठितो" ति॥ •

६८. पिहितसुत्तं

८२. "केनस्सु पिहितो लोको, किस्मि लोको पतिट्ठितो?।
केनस्सु उड्डितो लोको, केनस्सु परिवारितो" ति?
"मच्चुना पिहितो लोको, दुक्खे लोको पतिट्ठितो। [B.38]
तण्हाय उड्डितो लोको, जराय परिवारितो" ति॥ •

---

६६. अभ्याहतसूत्र : : आक्रमित (सताया जाना)

(देवता—) ८०. "यह समस्त जगत् किस के द्वारा आक्रान्त किया जाता है (सताया जाता है)? किससे यह परिवृत (घिरा हुआ) है? यह जगत् किस तीर से बिंधा हुआ है? तथा यह किससे सदा धुँवाता रहता है?"

(भगवान्—) "मृत्यु से यह लोक सताया जाता है। जरा से यह परिवृत है। तृष्णा के तीर से बिंधा हुआ है। इच्छा से सदा धुँवाता रहता है"॥ •

६७. उड्डितसूत्र : : उल्लङ्घन (लाँघना)

(देवता—) ८१. "यह समस्त जगत् किसके द्वारा लाँघ लिया गया है? यह किससे परिवृत है? यह किससे ढका छिपा है? तथा यह जगत् किस में प्रतिष्ठित है?"

(भगवान्—) "तृष्णा द्वारा यह समस्त जगत् उल्लङ्घित है। जरा द्वारा परिवृत (घिरा हुआ) है। मृत्यु द्वारा यह ढका छिपा है। तथा यह समस्त जगत् दुःख में प्रतिष्ठित है"॥ •

६८. पिहितसूत्र : : आवरण

(देवता—) ८२. "यह जगत् किससे आवृत है? किसमें प्रतिष्ठित है? किसके द्वारा लाँघा गया है? तथा किससे परिवारित है?"

(भगवान्—) "यह समस्त जगत् मृत्यु से आवृत (ढका हुआ) है। यह दुःख में प्रतिष्ठित है। तृष्णा द्वारा यह लाँघ लिया गया है तथा जरा से परिवारित (घिरा हुआ) है"॥

६९. इच्छासुत्तं

८३. "केनस्सु बज्झती लोको, किस्स विनयाय मुच्चति?
किस्सस्सु विप्पहानेन, सब्बं छिन्दति बन्धनं" ति?
"इच्छाय बज्झती लोको, इच्छाविनयाय मुच्चति।
इच्छाय विप्पहानेन, सब्बं छिन्दति बन्धनं" ति॥ •

७०. लोकसुत्तं

८४. "किस्मिं लोको समुप्पन्नो, किस्मिं कुब्बति सन्थवं?
[R.41] किस्स लोको उपादाय, किस्मिं लोको विहञ्ञती" ति?
"छसु लोको समुप्पन्नो, छसु कुब्बति सन्थवं।
छन्नमेव उपादाय, छसु लोको विहञ्ञती" ति॥ •

अद्धवग्गो सत्तमो॥

तस्सुद्दानं

नामं चित्तं च तण्हा च, संयोजनं च बन्धना।
अब्भाहतुड्डितो पिहितो, इच्छा लोकेन ते दसा ति॥

---

६९. इच्छासूत्र : : **इच्छा**

(देवता—) ८३. "यह लोक किस में उलझता है? किस के निग्रह से मुक्त हो पाता है? किसके प्रहाण से सभी बन्धनों को काटने में समर्थ हो पाता है।"

(भगवान्—) "यह लोक में इच्छाओं में उलझ जाता है। इन्हीं इच्छाओं को यदि वह दबा दे, नियन्त्रित कर ले तो वह सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो सकता है। इच्छाओं के प्रहाण (नाश या त्याग) से सभी बन्धन काटने में समर्थ हो सकता है"॥ •

७०. लोकसूत्र : : **लोक**

(देवता—) ८४. "यह लोक किस के होने से उत्पन्न होता है? कितनों में साथ रहता है? यह किस को ग्रहण कर होता है? तथा किसके कारण सङ्कटग्रस्त होता है?"

(भगवान्—) "यह लोक छह आध्यात्मिक आयतनों (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय एवं मन) के होने उत्पन्न होता है। छह में साथ रहता है। छह को ही ग्रहण कर उत्पन्न होता है तथा इन छह के कारण ही यह सङ्कटग्रस्त होता है"॥ •

अध्ववर्ग सप्तम सम्पन्न॥

इस वर्ग की सूची—इस वर्ग में दश सूत्रों का व्याख्यान हुआ है; जैसे—१. नाम, २. चित्त, ३. तृष्णा, ४. संयोजन, ५. बन्धन, ६. अभ्याहत, ७. उड्डित, ८. पिहित, ९. इच्छा एवं १०. लोक सूत्र॥ •

८. छेत्वावग्गो

७१. छेत्वासुत्तं

८५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"किंसु छेत्वा सुखं सेति, किंसु छेत्वा न सोचति?
किस्सस्सु एकधम्मस्स, वधं रोचेसि गोतमा" ति॥?
"कोधं छेत्वा सुखं सेति, कोधं छेत्वा न सोचति। [N.39, B.39]
कोधस्स विसमूलस्स, मधुरग्गस्स देवते।
वधं अरिया पसंसन्ति, तं हि छेत्वा न सोचती" ति॥

●

७२. रथसुत्तं

८६. "किंसु रथस्स पञ्ञाणं, किंसु पञ्ञाणमग्गिनो।
किंसु रट्ठस्स पञ्ञाणं, किंसु पञ्ञाणमित्थिया" ति?

---

८. छित्त्वा वर्ग

७१. छित्त्वसूत्र : : नाश

८५. नीचे व्याख्यात इन एकादश (११) सूत्रों का प्रवचन भी भगवान् ने **श्रावस्ती** में साधनाहेतु विराजमान रहते हुए ही किया था॥

एक तरफ खड़े किसी देवता ने भगवान् से गाथा के माध्यम से यह प्रश्न किया—

"किसको काट कर मनुष्य सुखपूर्वक सोता है? किसको काटने के बाद वह शोक मग्न नहीं होता? हे गौतम! मुझ को यह भी बताइये कि आप किस एक धर्म के नाश का उपदेश करते हैं?"

(भगवान्—) "क्रोध को काट कर ही मनुष्य सुखपूर्वक सोने में समर्थ हो सकता है। क्रोध को काट देने पर मनुष्य को शोकसंविग्न होने का कोई अवसर नहीं आता। हे देवता! वर्तमान में मीठा लगने वाले परन्तु परिणाम में विषतुल्य क्रोध का वध (नाश) ही आर्य जनों द्वारा प्रशस्त माना गया है। उसके नष्ट होने पर मनुष्य कभी शोकसंविग्न नहीं होता"॥

●

७२. रथसूत्र : : रथ

(देवता—) ८६. "क्या देखकर रथ का आगमन ज्ञात होता है? तथा क्या देखकर अग्नि का अस्तित्व ज्ञात हो जाता है? किसी राष्ट्र का ज्ञान कैसे होता है? इसी तरह किसी स्त्री का प्रज्ञान कैसे हो पाता है?

[R.42] "धजो रथस्स पञ्ञाणं, धूमो पञ्ञाणमग्गिनो।
राजा रट्ठस्स पञ्ञाणं, भत्ता पञ्ञाणमित्थिया" ति॥

७३. वित्तसुत्तं

८७. "किंसूध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, किंसु सुचिण्णो सुखमावहाति।
किंसु हवे सादुतरं रसानं, कथञ्जीविं जीवितमाहु सेट्ठं" ति?
"सद्धीध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, धम्मो सुचिण्णो सुखमावहाति।
सच्चं हवे सादुतरं रसानं, पञ्ञाजीविं जीवितमाहु सेट्ठं" ति॥

७४. वुट्ठिसुत्तं

८८. "किंसु उप्पततं सेट्ठं, किंसु निपततं वरं।
किंसु पवजमानानं, किंसु पवदतं वरं" ति?
"बीजं उप्पततं सेट्ठं, वुट्ठि निपततं वरा।
गावो पवजमानानं, पुत्तो पवदतं वरो ति॥

(भगवान्—) "दूर से ध्वज को देखकर रथ का आगमन ज्ञात हो जाता है। इसी तरह दूर से धूआँ देख कर अग्नि का ज्ञान हो जाता है। राजा के अस्तित्व से राष्ट्र का ज्ञान हो जाता है। तथा पति को देखकर स्त्री के विषय में बहुत कुछ जाना जा सकता है"॥

७३. वित्तसूत्र : : धन

(देवता—) ८७. "संसार में पुरुष का सर्वश्रेष्ठ धन क्या है? क्या अधिक उपार्जित किया हुआ सुखदायी होता है? रसों में स्वादिष्ठ रस कौन होता है? तथा मनुष्य के कैसे जीवन को बुद्धिमान् लोग श्रेष्ठ कहते हैं?"

(भगवान्—) "संसार में पुरुप का सर्वश्रेष्ठ धन श्रद्धा है। धर्म का उपार्जन ही सर्वदा सुखदायी होता है। रसों में स्वादिष्ठ रस सत्य का होता है, जो परिणाम में सर्वदा मधुर ही होता है। तथा प्रज्ञापूर्वक जीवन बुद्धिमान् लोग श्रेष्ठ मानते हैं॥"

७४. वृष्टिसूत्र : : वर्षा

(देवता—) ८८. "ऊपर उठते रहने वालों में क्या श्रेष्ठ है? गिरने वालों में सर्वोत्तम क्या है? घूमते रहने वालों में श्रेष्ठ क्या है? तथा प्रवक्ताओं (बोलने वालों) उत्तम कौन है?"

(भगवान्—) "ऊपर उठने (उगने) वालों में बीज श्रेष्ठ है। गिरने वालों में वृष्टि सर्वोत्तम है। घूमते रहने वालों में गौ सर्वश्रेष्ठ है। तथा बोलने वालों में पुत्र सर्वोत्तम है (क्योंकि पुत्र का अधिक बोलना भी माता पिता को प्रिय ही लगता है)॥

"विज्जा उप्पततं सेट्ठा, अविज्जा निपततं वरा।
सङ्घो पवजमानानं, बुद्धो पवदतं वरो" ति॥ •

७५. भीतासुत्तं

८९. "किंसूध भीता जनता अनेका, मग्गो चनेकायतनप्पवुत्तो?
पुच्छामि तं गोतम भूरिपञ्ञ, किस्मिं ठितो परलोकं न भाये" ति? [N.40]
"वाचं मनं च पणिधाय सम्मा, कायेन पापानि अकुब्बमानो। [B.40]
बव्हन्नपानं घरमावसन्तो, सद्धो मुदू संविभागी वदञ्ञू। [R.43]
एतेसु धम्मेसु ठितो चतूसु, धम्मे ठितो परलोकं न भाये" ति॥ •

७६.नजीरतिसुत्तं

९०. "किं जीरति किं न जीरति, किंसु उप्पथो ति वुच्चति?
किंसु धम्मानं परिपन्थो, किंसु रत्तिन्दिवक्खयो?
किं मलं ब्रह्मचरियस्स, किं सिनानमनोदकं?॥
"कति लोकस्मिं छिद्दानि, यत्थ चित्तं न तिट्ठति?
भगवन्त पुट्ठुमागम्म, कथं जानेसु तं मयं" ति?
"रूपं जीरति मच्चानं, नामगोत्तं न जीरति।
रागो उप्पथो ति पवुच्चति॥

"अथ च, उड़ने वालों में विद्या श्रेष्ठ है। गिरने वालों में अविद्या सबसे बड़ी है। घूमते रहने वालों में भिक्षुसङ्घ एवं वक्ताओं में बुद्ध सर्वश्रेष्ठ (प्रवर) हैं॥" •

७५. भीतसूत्र : : भय

(देवता—) ८९. "संसार में अनेक लोग भयभीत की तरह क्यों रहते हैं? मार्ग अनेकविध लघुमार्गों में विभक्त रहते हैं, हे महाज्ञानी गौतम! मैं आप से पूछता हूँ कि साधक किस मार्ग पर खड़ा रह कर परलोक से भय न माने?"

(भगवान्—) "वाणी एवं मन को संयत कर, शरीर से कोई पाप न करता हुआ, अन्न-पान सामग्री से पूर्ण घर में रहता हुआ, श्रद्धालु एवं मृदु स्वभाव वाला बन कर, बाँट कर खाने वाला. उदारचित्त साधक धर्माचरण करता हुआ परलोक में भय नहीं मानता॥•

७६.'नजीर्यते' सूत्र : : जीर्ण (पुराना) न होना

(देवता—) ९०. "क्या जीर्ण होता है? क्या जीर्ण नहीं होता? कैसे कुमार्ग पर चला जाता है? धर्म का विरोधी क्या है, अर्थात् कार्य में क्या बाधक होता है? दिन रात स्नान क्या है? लोक में कितने छिद्र हैं जहाँ चित्त स्थिर नहीं रहता? ये ही प्रश्न पूछने के लिये हम आप के पास आये हैं। हम इनको कैसे समझें!"

"लोभो धम्मानं परिपन्थो, वयो रत्तिन्दिवक्खयो।
इत्थी मलं ब्रह्मचरियस्स, एत्थायं सज्जते पजा।
तपो च ब्रह्मचरियं च, तं सिनानमनोदकं॥
"छ लोकस्मिं छिद्दानि, यत्थ चित्तं न तिट्ठति।
आलस्यं च पमादो च. अनुट्ठानं असंयमो।
निद्दा तन्दी च ते छिद्दे, सब्बसो तं विवज्जये" ति॥

७७. इस्सरियसुत्तं

९१. "किंसु इस्सरियं लोके, किंसु भण्डानमुत्तमं?
किंसु सत्थमलं लोके, किंसु लोकस्मिमब्बुदं?
"किंसु हरन्तं वारेन्ति, हरन्तो पन को पियो?
किंसु पुनप्पुनायन्तं, अभिनन्दन्ति पण्डिता" ति?
[N.41, B.41] "वसो इस्सरियं लोके, इत्थी भण्डानमुत्तमं।
कोधो सत्थमलं लोके, चोरा लोकस्मिमब्बुदा॥
"चोरं हरन्तं वारेन्ति, हरन्तो समणो पियो।
समणं पुनप्पुनायन्तं, अभिनन्दन्ति पण्डिता" ति॥

(भगवान्—) "मनुष्यों का रूप पुराना हो जाता है। उसके नाम और पुराने नहीं होते। राग के कारण मनुष्य कुपथगामी हो जाता है। लोभ धर्म कार्य में बाधक होता है। मनुष्य की आयु रात दिन क्षीण होती चलती है। स्त्री ब्रह्मचर्य (धर्मसाधना) का मल है; यहीं लोग आसक्त होकर फँस जाते हैं। तप एवं ब्रह्मचर्य—ये दोनों 'जल के विना स्नान' कहलाते हैं। लोक में ये छह छिद्र हैं, जहाँ चित्त स्थिर नहीं होता—१. आलस्य, २. प्रमाद, ३.उत्साहहीनता, ४. असंयम, ५. निद्रा एवं ६. तन्द्रा। साधक इन का सर्वथा वर्जन करे"॥

७७. ऐश्वर्यसूत्र : : वैभवशालिता

(देवता—) ९१. "संसार में ऐश्वर्य क्या है? कौन सी उपभोग की वस्तु सर्वोत्तम है? लोक में शास्त्र का मल क्या है? तथा वहाँ विनाश का कारण क्या है? लोग किसको ले जाने से रोकते हैं? ले जाने वालों में कौन प्रिय हैं? पण्डित जन किस बार बार आते हुए का अभिनन्दन करते हैं?"

(भगवान्—) "संसार में किसी को अधीन (वश में) रखना ऐश्वर्य कहलाता है। लौकिक वस्तुओं में स्त्री सर्वोत्तम है। लोक में शस्त्र का मल क्रोध है, तथा चौर लोक में विनाश के कारण हैं। चौर को वस्तु ले जाने से लोग रोकते हैं। पुनः पुनः आने वालों में

७८. कामसुत्तं

९२. "किमत्थकामो न ददे, किं मच्चो न परिच्चजे। [R.44]
किंसु मुञ्चेय्य कल्याणं, पापिकं न च मोचये" ति?
"अत्तानं न ददे पोसो, अत्तानं न परिच्चजे।
वाचं मुञ्चेय्य कल्याणं, पापिकं च न मोचये" ति॥ •

७९. पाथेय्यसुत्तं

९३. "किंसु बन्धति पाथेय्यं, किंसु भोगानमासयो?
किंसु नरं परिकस्सति, किंसु लोकस्मि दुज्जहं?
किस्मिं बद्धा पुथू सत्ता, पासेन सकुणी यथा" ति?
"सद्धा बन्धति पाथेय्यं, सिरी भोगानमासयो।
अच्छा नरं परिकस्सति, इच्छा लोकस्मि दुज्जहा।
इच्छाबद्धा पुथू सत्ता, पासेन सकुणी यथा" ति॥ •

८०. पज्जोतसुत्तं

९४. "किंसु लोकस्मि पज्जोतो, किंसु लोकस्मि जागरो?
किंसु कम्मे सजीवानं, किमस्स इरियापथो?

भिक्षु सर्वप्रिय है। बार बार आते हुए भिक्षु (श्रमण) का सभी बुद्धिमान् अभिनन्दन करते हैं॥ •

७८. कामसूत्र : : आत्मदाननिषेध

(देवता—) ९२. "परमार्थ की इच्छा रखने वाला क्या न दे? मनुष्य किसका परित्याग न करे? किस कल्याण को बाहर निकालने दे? तथा किस बुरे को बाहर न निकालने दे?"

(भगवान्—) "परमार्थेच्छु अपना दान न कर डाले। मनुष्य अपना परित्याग न करे। कल्याणी वाक् ही मुख से निकाले। अशुभ वाणी मुख से न निकलने दे"॥ •

७९. पाथेयसूत्र : : मार्गव्यय

(देवता—) ९३. "मार्गव्यय (पाथेय) कौन लाँघता है? भोगों का आधार क्या है? मनुष्य को कौन खींच लेता है? लोक में क्या कठिनता से छोड़ने योग्य है? जैसे पक्षी जाल में फँस जाता है वैसे ही सरल प्राणी किस में बँध जाते हैं?"

(भगवान्—) "श्रद्धा मार्गव्यय बाँधती है। सभी भोग ऐश्वर्य में बँध जाते हैं। इच्छा (वासना) मनुष्य को खींचती है। लोक में इच्छा का त्याग बहुत कठिन है। इस वासना में ही जीव बँधे हैं, जैसे जाल में पक्षी (बँध जाते हैं)॥ •

"किंसु अलसं अनलसं च, माता पुत्तं व पोसति?
किं भूता उपजीवन्ति, ये पाणा पठविं सिता" ति?
"पञ्ञा लोकस्मि पज्जोतो, सति लोकस्मि जागरो।
गावो कम्मे सजीवानं, सीतस्स इरियापथो॥
"वुट्ठि अलसं अनलसं च, माता पुत्तं व पोसति।
वुट्ठिं भूता उपजीवन्ति, ये पाणा पठविं सिता" ति॥

८१. अरणसुत्तं

[N.42, B.42] ९५. "केसूध अरणा लोके, केसं वुसितं न नस्सति?
केध इच्छं परिजानन्ति, केसं भोजिस्सियं सदा?
[R.45] "किंसु माता पिता भाता, वन्दन्ति नं पतिट्ठितं?
किंसु इध जातिहीनं, अभिवादेन्ति खत्तिया" ति?
"समणीध अरणा लोके, समणानं वुसितं न नस्सति।
समणा इच्छं परिजानन्ति, समणानं भोजिस्सियं सदा॥

---

८०. प्रद्योतसूत्र : : प्रकाश

(देवता—) ९४. "लोक में चमकने वाला (प्रकाश) क्या है? लोक में सदा जाग्रत् कौन है? प्राणियों में कौन कार्य में सबसे अधिक सहायक होता है? तथा उसके चलने का मार्ग क्या है? माता जैसे पुत्र की रक्षा करती है वैसे ही आलसी एवं उद्योगी-दोनों की रक्षा कौन करता है? किसके रहने से सभी प्राणी, जो पृथ्वी पर बसते हैं, प्राण धारण करते हैं?"

(भगवान्—) "प्रज्ञा ही लोक में प्रकाश है। स्मृति ही लोक में सदा जागती रहती है। प्राणियों में बैल सबसे अधिक साथ देता है। जोत उसके चलने का मार्ग है। वृष्टि (वर्षा) ही आलसी एवं उद्यमी-दोनों की रक्षा उसी तरह करती है, जैसे माता पुत्र की। वृष्टि के होने से ही सब प्राणी, जितने पृथ्वी पर बसते हैं, जीवन धारण करते हैं"॥

८१. अरणसूत्र : : क्लेशरहितता

(देवता—) ९५. "लोक में कौन क्लेशरहित हैं? किन का ब्रह्मचर्यवास (धर्मसाधना) व्यर्थ नहीं जाता? कौन इच्छा को भली भाँति समझता है? तथा कौन किसी के दास (=भुजिष्य) सदा रहते हैं?"

"माता पिता एवं भाई किस प्रतिष्ठित की वन्दना करते हैं? किस जातिहीन की क्षत्रिय जन भी वन्दना करते हैं?"

(भगवान्—) "श्रमण (सन्तजन) ही लोक में क्लेशरहित हैं। सन्तों की धर्मसाधना

"समणं माता पिता भाता, वन्दन्ति नं पतिट्ठितं।
समणीध जातिहीनं, अभिवादेन्ति खत्तिया" ति॥ •

छेत्वावग्गो अट्ठमो॥

तस्सुद्दानं

छेत्वा रथं च चित्तं च, वुट्ठि भीता नजीरति।
इस्सरं कामं पाथेय्यं, पज्जोतो अरणेन चा ति॥ •

देवतासंयुत्तं समत्तं॥

नष्ट नहीं होती। यहाँ जाति अभिमान से रहित सन्त (श्रमण) की लोक में माता पिता एवं भाई भी वन्दना करते हैं। इसी जातिहीन श्रमण की क्षत्रिय (राजा) भी पूजा (अभिवादन) करते हैं"॥ •

छित्वावर्ग अष्टम समाप्त॥

इस वर्ग की सूची—इस वर्ग में ये एकादश सूत्र व्याख्यात हैं; जैसे—१. छित्वा, २. रथ, ३. चित्त, ४. वृष्टि, ५. भीत, ६. नजीर्यते, ७. ऐश्वर्य, ८. काम, ९. पाथेय, १०. प्रद्योत एवं ११. अरण सूत्र॥ •

देवतासंयुक्त प्रथम समाप्त॥

२. देवपुत्तसंयुत्तं

१. पठमो वग्गो

१. पठमकस्सपसुत्तं

[N.43, B.43, R.46] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो कस्सपो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो कस्सपो देवपुत्तो भगवन्तं एतदवोच– "भिक्खुं भगवा पकासेसि, नो च भिक्खुनो अनुसासं" ति।

"तेन हि कस्सप, तञ्ञेवेत्थ पटिभातू" ति।

"सुभासितस्स सिक्खेथ, समणूपासनस्स च।
एकासनस्स च रहो, चित्तवूपसमस्स चा" ति॥

२. इदमवोच कस्सपो देवपुत्तो; समनुञ्ञो सत्था अहोसि। अथ खो कस्सपो देवपुत्तो "समनुञ्ञो मे सत्था" ति भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

---

२. देवपुत्रसंयुक्त

१. प्रथम वर्ग

१. प्रथम काश्यपसूत्र : : भिक्षु-अनुशासन

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान्(बुद्ध) **श्रावस्ती** में अनाथपिण्डिक द्वारा निर्माणित जेतवन में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कभी देवपुत्र काश्यप चान्दनी रात्रि में समस्त जेतवन को आलोकित करता हुआ भगवान् के सम्मुख जाकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़ा होता हुआ यों निवेदन करने लगा—"भगवान् ने भिक्षुओं को तो साधना में आगे बढ़ाया; परन्तु भिक्षु-अनुशासन पर अभी तक कोई प्रकाश नहीं डाला।"

"तो काश्यप, तुम ही बताओ, जैसा तुमने उस अनुशासन को समझा है?"

(काश्यप ने कहा—) "सदुपदेश एवं सन्तों की सेवा, एकान्तवास एवं चित्त की शान्ति का भिक्षु को अभ्यास करना चाहिये।"

२. काश्यप ने (इस प्रसङ्ग में) यह कहा। भगवान् ने भी इसका अनुमोदन किया। तब काश्यप देवपुत्र ने भगवान् को भी सहमत जानकर उनकी वन्दना एवं प्रदक्षिणा कर वह वहीं अन्तर्धान हो गया॥

२. दुतियकस्सपसुत्तं

३. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठितो खो कस्सपो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"भिक्खु सिया झायी विमुत्तचित्तो, आकङ्खे चे हदयस्सानुपत्तिं।
लोकस्स ञत्वा उदयब्बयं च, सुचेतसो अनिस्सितो तदानिसंसो" ति॥ •

३. माघसुत्तं

४. सावत्थिनिदानं। अथ खो माघो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। [R.47, B.44]

एकमन्तं ठितो माघो देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि— [N.44]

"किंसु छेत्वा सुखं सेति, किंसु छेत्वा न सोचति।
किस्सस्सु एकधम्मस्स, वधं रोचेसि गोतमा" ति?
"कोधं छेत्वा सुखं सेति, कोधं छेत्वा न सोचति।
कोधस्स विसमूलस्स, मधुरग्गस्स वत्रभू।
वधं अरिया पसंसन्ति, तं हि छेत्वा न सोचती" ति॥ •

---

२. द्वितीय काश्यप सूत्र : : भिक्षु-अनुशासन

३. यह सूत्र भी **श्रावस्ती** में उपदिष्ट है। एक तरफ खड़े हुए देवपुत्र काश्यप ने भगवान् से इस गाथा से निवेदन किया—

"यदि कोई भिक्षु ध्यानी विमुक्तचित्त होकर अपना मनःसङ्कल्प (अर्हत्पदप्राप्ति) पूर्ण करना चाहे तो उसे चाहिये कि वह संसार के उत्पाद एवं विनाश स्वभाव को जानकर, पवित्र मन वाला होकर, संसार के प्रति अनासक्त भाव से विचरण करे। इसी में इसकी प्रशंसा है"॥ •

३. माघसूत्र : : किस के नाश से सुख होता है?

४. यह सूत्र भी **श्रावस्ती** में ही...। तब कभी माघ नामक देवपुत्र चान्दनी रात्रि में...भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ खड़ा हो गया। एक तरफ खड़े हुए उस माघ देवपुत्र ने भगवान् को गाथाओं के माध्यम से यों निवेदन किया—

"साधक क्या काट (नष्ट) कर सुख से सो पाता है? क्या काट कर वह शोकमग्न नहीं होता? हे गौतम! आप ऐसे किस एक धर्म का वध (नाश) उचित बताते है?"

(भगवान् ने उत्तर दिया—) "साधक अपने क्रोध को नष्ट करके ही सुख (शान्ति) पूर्वक सो सकता है। ऐसा करने पर उसे सांसारिक वस्तुओं के प्रति शोकमग्न भी नहीं

४. मागधसुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठितो खो मागधो देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"कति लोकस्मिं पज्जोता, येहि लोको पकासति।
भवन्तं पुट्ठुमागम्म, कथं जानेमु तं मयं" ति?
"चत्तारो लोके पज्जोता, पञ्चमेत्थ न विज्जति।
दिवा तपति आदिच्चो, रत्तिमाभाति चन्दिमा॥
"अथ अग्गि दिवारत्तिं, तत्थ तत्थ पकासति।
सम्बुद्धो तपतं सेट्ठो, एसा आभा अनुत्तरा" ति॥ •

५. दामलिसुत्तं

६. सावत्थिनिदानं। अथ खो दामलि देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो दामलि देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

होना पड़ता। यह क्रोध जो कि वर्तमान में बहुत अच्छा लगता है, परन्तु इसका परिणाम भयानक विषसम्पृक्त है, हे वृत्रहा ! इसका नाश करना आर्य पण्डितजनों ने प्रशस्त कहा है। इस नाश से साधक को कहीं भी शोकसंविग्न नहीं होना पड़ता"॥ •

४. मागधसूत्र : : चतुर्विध आलोक

५. यह सूत्र **श्रावस्ती** में उपदिष्ट है। एक ओर खड़े मागध देवपुत्र ने भगवान् से गाथा द्वारा यह प्रश्न किया—

"लोक में कितने प्रकार के प्रकाश हैं? जिनसे यह लोक प्रकाशित होता है? हम लोग यह बात कैसे जानें ?— यह पूछने के लिये ही हम आपके पास आये हैं।"

(भगवान् ने बताया—) "लोक में चार प्रकार के प्रकाश (प्रद्योत) है, पाँचवाँ इनके अतिरिक्त कोई नहीं है। १. दिन में सूर्य तपता है, २. रात्रि में चन्द्रमा शोभित होता है, ३. अग्नि भी जहाँ तहाँ दिन रात प्रकाश करती ही रहती है। तथा ४. भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध इन प्रकाशमान वस्तुओं में सर्वश्रेष्ठ हैं। इन की आभा (दिव्य प्रकाश) अलौकिक है"॥ •

५. दामलिसूत्र : : कृतकृत्य ब्राह्मण

६. सूत्र **श्रावस्ती** में उपदिष्ट। तब दामलि देवपुत्र चान्दनी रात्रि में सपस्त जेतवन को अपने तेज से आलोकित करता हुआ भगवान् के सम्मुख आया। तथा उन्हें प्रणाम करते हुए एक तरफ खड़े होकर उसने अपना अभिमत यों प्रकट किया—

"करणीयमेतं ब्राह्मणेन, पधानं अकिलासुना।
कामानं विप्पहानेन, न तेनासीसते भवं" ति॥
"नत्थि किच्चं ब्राह्मणस्स, (दामली ति भगवा) कतकिच्चो हि ब्राह्मणो।
"याव न गाधं लभति नदीसु, आयूहति सब्बगत्तेभि जन्तु। [B.45]
गाधं च लद्धान थले ठितो यो, नायूहती पारगतो हि सो व॥ [R.48]
"एसूपमा दामलि ब्राह्मणस्स, खीणासवस्स निपकस्स झायिनो। [N.45]
पप्पुय्य जातिमरणस्स अन्तं, नायूहती पारगतो हि सो" ति॥ ●

६. कामदसुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठितो खो कामदो देवपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—
"दुक्करं भगवा, सुदुक्करं भगवा" ति।
"दुक्करं वा पि करोन्ति (कामदा ति भगवा), सेखा सीलसमाहिता।
ठितत्ता अनगारियुपेतस्स, तुट्ठि होति सुखावहा" ति॥

"यहाँ ब्राह्मण को क्रियाशील रहते हुए साधना में वृद्धि का प्रयास करना चाहिये। वासनाओं के सर्वथा प्रहाण से ही उसे यहाँ पुनः जन्म ग्रहण की आवश्यकता नहीं होती॥"

(भगवान् ने कहा—) "दामलि! ब्राह्मण को कोई कृत्य नहीं करना पड़ता। वह कृतकृत्य है।

"जैसे नदी में तैरने वाला जब तक नदी की गम्भीरता (गहराई) का ज्ञान नहीं कर लेता तभी तक वह अपने शरीर के सभी अङ्गों से नदी में तैरने का प्रयत्न करता है। नदी के गाम्भीर्य का ज्ञान होने पर वह स्थल पर आकर बैठ जाता है। तब वह वैसा कोई प्रयत्न नहीं करता, क्योंकि वह नदी का गाम्भीर्य जान चुका है।

"दामलि! नदी का यह दृष्टान्त उस क्षीणास्रव, चतुर ध्यानी ब्राह्मण (भिक्षु) के लिये भी समझ लो। वह जन्म-मरण की वास्तविकता (अन्त) जानने के बाद कोई प्रयत्न नहीं करता; क्योंकि वह इस भवसागर को पार कर चुका है"॥ ●

६. कामदसूत्र : : सुखद सन्तोष

७. इस सूत्र का उपदेश **श्रावस्ती में** ही हुआ है। .....एक तरफ खड़े देवपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया— "भगवन्? यह तो दुष्कर है! अत्यधिक दुष्कर है!" भगवान् बोले— कामद! दुष्कर होने पर भी साधक लोग इसे पूर्ण कर ही लेते हैं। वे शैक्ष्य, शीलसम्पन्न, स्थिरचित्त एवं प्रव्रजित साधक इसे पूर्ण कर अत्यधिक सुखद सन्तोष का अनुभव करते हैं॥"

"दुल्लभं भगवा यदिदं तुट्ठी" ति।
"दुल्लभं वा पि लभन्ति (कामदा ति भगवा), चित्तवूपसमे रता।
येसं दिवा च रत्तो च, भावनाय रतो मनो" ति॥
"दुस्समादहं भगवा यदिदं चित्तं" ति।
"दुस्समादहं वा पि समादहन्ति (कामदा ति भगवा), इन्द्रियूपसमे रता।
ते छेत्वा मच्चुनो जालं, अरिया गच्छन्ति कामदा" ति॥
[B.46] "दुग्गमो भगवा विसमो मग्गो" ति।
"दुग्गमे विसमे वा पि, अरिया गच्छन्ति कामद!
अनरिया विसमे मग्गे, पपतन्ति अवंसिरा।
अरियानं समो मग्गो, अरिया हि विसमे समा" ति॥ •

७. पञ्चालचण्डसुत्तं

८. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठितो खो पञ्चालचण्डो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"भगवन्! जिसे आप सन्तोष कह रहे हैं, यह भी तो दुर्लभ ही है?"

"कामद, इस दुर्लभ को भी वैसे साधक प्राप्त कर ही लेते हैं जिनका चित्त कामादि विकारों से शान्त हो चुका है, तथा जिन का मन दिन रात साधना में ही रमा रहता है"॥

"भगवन्! चित्त को ऐसी साधना में लगाना भी दुष्कर ही ज्ञात होता है?"

"हाँ, कामद, अवश्य दुष्कर लगता है। परन्तु जो साधक, इन्द्रिय संयम में निरन्तर लगे हुए हैं, वे आर्यजन एक न एक दिन मृत्युपाश को काट कर पार चले ही जाते हैं"॥

"भगवन् ! ऐसे चञ्चल चित्त पर स्थायी संयम कर लेना भी तो दुर्गम मार्ग लगता है, विषम मार्ग लगता है?"

(भगवान् ने कहा—)" दुर्गम कहो या विषम, कामद! आर्यजन तो इस मार्ग पर चल कर भवसागर पार कर ही लेते है। हाँ तुम्हारा कहना भी ठीक ही है, क्योंकि अनार्य (पापी) जन इस मार्ग पर चलने का प्रयत्न करने पर औंधे मुँह गिर पड़ते है। अत: यों कहना चाहिये कि यह मार्ग आर्यजनों के लिये सम (सरल) प्रतीत होता है, वही यह मार्ग अनार्यों के लिये विषम है, दुर्गम है॥" •

७. पाञ्चालचण्डसूत्र : : स्मृतिलाभ द्वारा धर्मसाक्षात्कार

८. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही उपदिष्ट है।.....एक ओर खड़े पाञ्चालचण्ड नामक देवपुत्र ने भगवान् के सम्मुख जाकर यह गाथा कही—

"सम्बाधे वत ओकासं, अविन्दि भूरिमेधसो। [N.46]
यो झानमबुज्झि बुद्धो, पटिलीननिसभो मुनी" ति॥
"सम्बाधे वा पि विन्दन्ति (पञ्चालचण्डा ति भगवा), धम्मं निब्बानपत्तिया।
ये सतिं पच्चलत्थंसु, सम्मा ते सुसमाहिता" ति॥ ●

८. तायनसुत्तं

९. सावत्थिनिदानं। अथ खो तायनो देवपुत्तो पुराणतित्थकरो [R.49] अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो तायनो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि—

"छिन्द सोतं परक्कम्म, कामे पनुद ब्राह्मण।
नप्पहाय मुनी कामे, नेकत्तमुप्पज्जति॥
"कयिरा चे कयिराथेनं, दळ्हमेनं परक्कमे।
सिथिलो हि परिब्बाजो, भिय्यो आकिरते रजं॥
"अकतं दुक्कटं सेय्यो, यं कत्वा नानुतप्पति।
कतं च सुकतं सेय्यो, यं कत्वा नानुप्पति॥

"सङ्कीर्ण एवं विषम मार्ग में भी ध्यानाभ्यासरत, ज्ञानी, निरहङ्कार, श्रेष्ठ भूरिप्रज्ञ मुनि लोग आगे बढ़ने का अवसर निकाल ही लेते हैं'॥

भगवान् बोले—"हाँ, पाञ्चालचण्ड! जिन्होंने निर्वाण प्राप्तिहेतु धर्म को जान लिया, वे स्मृतिमान् होकर समाहित मन से सङ्कीर्ण एवं विषम मार्ग में भी आगे वढ़ने का उपाय खोज लेते हैं'॥ ●

८. त्राणसूत्र : : शैथिल्यत्याग

९. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही....। तब तायन देवपुत्र, जो पूर्वजन्म में एक तीर्थङ्कर (सम्प्रदायविशेष का संस्थापक) था, चान्दनी रात्रि में....भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े होकर उसने भगवान् से ये गाथायें कहीं—

"हे ब्राह्मण! (हे भिक्षु) काम-स्रोतों को काट दें, पराक्रम कर। कामभोगों से दूर रह। कामभोगों का त्याग किये विना मुनि(साधक) साधनमार्ग में एकाग्रता की ओर नहीं बढ़ सकता॥

"यदि पराक्रम करना ही है तो उस साधनों में दृढ पराक्रम करना चाहिये। जो प्रव्रजित भिक्षु अपने साधना के उद्देश्य की प्राप्ति में शिथिल है वह कभी (गृहावास की ओर अभिमुख होकर) अपने चित्त को पहले की अपेक्षा अधिक मलयुक्त कर लेता है॥

[B.47] "कुसो यथा दुग्गहितो, हत्थमेवानुकन्तति।
सामञ्ञं दुप्परामट्ठं निरयायूपकड्ढति॥
"यं किञ्चि सिथिलं कम्मं, सङ्किलिट्ठं च यं वतं।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं, न तं होति महप्फलं" ति॥

१०. इदमवोच तायनो देवपुत्तो; इदं वत्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा...।

११. अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन भिक्खू आमन्तेसि—"इमं, [N.47] भिक्खवे, रत्तिं तायनो नाम देवपुत्तो पुराणतित्थकरो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो, खो भिक्खवे, तायनो देवपुत्तो मम सन्तिके इमा गाथायो अभासि—

"छिन्द सोतं परक्कम्म, कामे पनुद, ब्राह्मण! [ध०प०, ३८३ गा०]
नप्पहाय मुनी कामे, नेकत्तमुप्पज्जति॥
'कयिरा चे कयिराथेनं, दळ्हमेनं परक्कमे।
[R.50] सिथिलो हि परिब्बाजो, भिय्यो आकिरते रजं॥ [ध०प०, ३१३ गा०]

"किसी कार्य को मिथ्या पद्धति से करने की अपेक्षा उसे आरम्भ न करना ही अच्छा है। यदि उसे आरम्भ करे तो उस सम्यक् पद्धति से आगे बढ़ाते हुए पूर्ण कर ही विश्राम ले। इससे मन में किसी प्रकार का पश्चात्ताप नहीं होता॥

"यदि कभी किसी कुश के तृण को मिथ्या पद्धति से पकड़ा जाय तो वह हाथ ही काट देगा; इसी तरह श्रमणभाव की साधना भी मिथ्या (विद्वानों द्वारा निन्द्य) पद्धति से आरम्भ की जायगी तो इसका दुष्परिणाम अन्त में नरकपात ही होगा॥

"निष्कर्ष यह है कि जो कुछ भी शिथिल कर्म हैं, जो व्रत कष्टसाध्य हैं, जो धर्माराधना खींच तान कर पूर्ण की है (=सङ्कस्सर)—ये सभी (तीनों ही) अधिक शुभफलप्रद नहीं होते हैं"॥

१०. वह तायन देवपुत्र यों बोला। यों कहकर भगवान् को अभिवादन एवं प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

११. तब भगवान् ने उस रात्रि के बीत जाने पर (दूसरे दिन) भिक्षुओं को बुलाकर यों सम्बोधन किया— "भिक्षुओ ! आज रात्रि में, तायन देवपुत्र ने, जो कि पूर्वजन्म का तीर्थङ्कर था, मेरे पास आकर...एक ओर खड़े होकर ये हितकारी गाथाएँ कहीं—

'अकतं दुक्कटं सेय्यो, पच्छा तपति दुक्कटं।
कतं च सुकतं सेय्यो, यं कत्वा नानुतप्पति॥ [ध०प०, ३१४ गा०]
'कुसो यथा दुग्गहितो, हत्थमेवानुकन्तति। [ध०प०, ३११ गा०]
सामञ्ञं दुप्परामट्ठं, निरयायूपकड्ढति॥
'यं किञ्चि सिथिलं कम्मं, सङ्किलिट्ठं च यं वतं।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं, न तं होति महप्फलं' ति॥ [ध०प०, ३१२ गा०]

१२. "इदमवोच, भिक्खवे, तायनो देवपुत्तो, इदं वत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायि। उग्गण्हाथ, भिक्खवे, तायनगाथा; परियापुणाथ, भिक्खवे, तायनगाथा; धारेथ, भिक्खवे, तायनगाथा। अत्थसंहिता, भिक्खवे, तायन-गाथा आदिब्रह्मचरियिका" ति॥

९. चन्दिमसुत्तं

१३. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन चन्दिमा देवपुत्तो राहुना असुरिन्देन गहितो होति। अथ खो चन्दिमा देवपुत्तो भगवन्तं अनुस्सरमानो तायं वेलायं इमं गाथं अभासि—

[B.48]

"नमो ते बुद्ध वीरत्थु, विप्पमुत्तोसि सब्बधि।
सम्बाधपटिपन्नोस्मि, तस्स मे सरणं भवा" ति॥

अथ खो भगवा चन्दिमं देवपुत्तं आरब्भ राहुं असुरिन्दं गाथाय अज्झभासि—

'हे ब्राह्मण... पूर्ववत्...अधिक शुभफलप्रद नहीं होते॥'

१२. "यों कहकर... अन्तर्धान हो गया। भिक्षुओ ! इन गाथाओं को सीख लो, कण्ठस्थ कर लो, मन में उतार लो, इनके अनुसार अभ्यास करो। भिक्षुओ ! तायन की कही ये गाथाएँ तुम्हारी धर्मसाधना में दृढ़ता लाने वाली होंगी॥"

९. चन्द्रमासूत्र : : चन्द्रग्रहण

१३. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय चन्द्रमा देवपुत्र असुरेन्द्र राहु द्वारा ग्रसा (ग्रहण किया) जा रहा था। तब उस चन्द्रमा देवपुत्र ने भगवान् (बुद्ध) का स्मरण करते हुए यह विनति-गाथा कही—

"हे महावीर बुद्ध! आप को नमस्कार है, आप सर्वथ विमुक्त हैं। मैं इस समय आपद्ग्रस्त हूँ। कृपया आप मेरे शरणस्थल बनिये॥"

तब भगवान् ने चन्द्रमा देवपुत्र को लक्ष्य कर असुरेन्द्र राहु से गाथाओं के माध्यम से यों कहा—

[N.48] "तथागतं अरहन्त, चन्दिमा सरणं गतो।
राहु चन्दं पमुञ्चस्सु, बुद्धा लोकानुकम्पका" ति॥

१४. अथ खो राहु असुरिन्दो चन्दिमं देवपुत्तं मुञ्चित्वा तरमानरूपो येन वेपचित्ति असुरिन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा संविग्गो लोमहट्ठजातो एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो राहु असुरिन्दं वेपचित्तिं असुरिन्दो गाथाय अज्झभासि—

"किं नु सन्तरमानो व, राहु चन्दं पमुञ्चसि।
संविग्गरूपो आगम्म, किं नु भीतो व तिट्ठसी" ति?
"सत्तधा मे फले मुद्धा, जीवन्तो न सुखं लभे।
बुद्धगाथाभिगीतोम्हि, नो चे मुञ्चेय्य चन्दिमं" ति॥ •

१०. सुरियसुत्तं

[R.51] १५. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन सुरियो देवपुत्तो राहुना असुरिन्देन गहितो होति। अथ खो सुरियो देवपुत्तो भगवन्तं अनुस्सरमानो तायं वेलायं इमं गाथं अभासि—

"नमो ते बुद्ध वीरत्थु, विप्पमुत्तोसि सब्बधि।
सम्बाधपटिपन्नोस्मि, तस्स मे सरणं भवा" ति॥

"हे राहु! यह चन्द्रमा देवपुत्र तथागत अर्हत् की शरण में आ चुका है, अतः तूँ इस चन्द्रमा को छोड़ दे। बुद्ध तो लोक पर सहज दयालु होते हैं, इसी दया के कारण तुझसे कह रहे हैं॥"

१४. तब राहु असुरेन्द्र, चन्द्रमा देवपुत्र को छोड़कर, शीघ्र ही वहाँ पहुँचा जहाँ वेपचित्ति असुरराज बैठा था। वहाँ पहुँच कर दुःखसंविग्न एवं भय के कारण रोमाञ्चित होकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस राहु असुरेन्द्र से असुरराज वेपचित्ति ने पूछा—

"हे राहु! क्यों तुम इतनी शीघ्रता (त्वरा) दिखाते हुए चन्द्रमा को छोड़कर चले आये? तथा यहाँ भी भयभीत के सदृश क्यों बैठे हो?"

(उत्तर में राहु ने कहा—) "मेरा मस्तक सात भागों में विभक्त हो जाता, जन्मपर्यन्त मुझे कभी सुख न मिलता, तथागत बुद्ध के कहने पर यदि मैं उस चन्द्रमा को न छोड़ता!" •

१०. सूर्यसूत्र : : सूर्यग्रहण

१५. यह सूत्र **श्रावस्ती में** ही...। उस समय सूर्य देवपुत्र असुरेन्द्र राहु द्वारा ग्रसा (ग्रहण किया) जा रहा था। तब उस सूर्य देवपुत्र ने भगवान् बुद्ध का स्मरण करते हुए यह गाथा कही—

अथ खो भगवा सुरियं देवपुत्तं आरब्भ राहुं असुरिन्दं गाथाहि अज्झभासि—

"तथागतं अरहन्तं, सुरियो सरणं गतो। [B.49]
राहु सुरियं पमुञ्चस्सु, बुद्धा लोकानुकम्पका॥
"यो अन्धकारे तमसि पभङ्करो, वेरोचनो मण्डली उग्गतेजो।
मा राहु गिली चरमन्तलिक्खे, पजं ममं राहु पमुञ्च सुरियं" ति॥

१६. अथ खो राहु असुरिन्दो सुरियं देवपुत्तं मुञ्चित्वा तरमानरूपो येन वेपचित्ति असुरिन्दो तेनुपसङ्कमि; उपङ्कमित्वा संविग्गो लोमहट्ठजातो एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो राहुं असुरिन्दं वेपचित्ति असुरिन्दो गाथाय अज्झभासि—

"किं नु सन्तरमानो व, राहु सुरियं पमुञ्चसि। [N.49]
संविग्गरूपो आगम्म, किन्नु भीतो व तिट्ठसी" ति?
"सत्तधा मे फले मुद्धा, जीवन्तो न सुखं लभे।
बुद्धगाथाभिगीतोम्हि, नो चे मुञ्चेय्य सुरियं" ति॥ •

पठमो वग्गो॥

"हे महावीर बुद्ध! आपको प्रणाम है। आप सर्वथा मुक्त हैं। मैं इस समय भयानक विपत्ति में फँस गया हूँ। कृपया मुझ को अपनी शरण दें!"

तब भगवान् ने सूर्य देवपुत्र की मुक्ति के लिये असुरेन्द्र राहु से गाथाओं में कहा— "हे राहु! यह सूर्य देवपुत्र तथागत अर्हत् की शरण में आ चुका है, अत: इसे तूँ छोड़ दे। बुद्ध तो लोक पर सहज दयालु होते हैं, अत: तुझसे इसकी मुक्ति के लिये कह रहे हैं॥

"जो काले अन्धकार में समस्त संसार को प्रकाश देता है, जो चमकने वाला है। यह मण्डल वाला तथा उग्रतेजस्वी है, आकाशचारी है, राहु! इसे न निगल, राहु! तूँ मेरे पुत्र सूर्य देवपुत्र को छोड़ दे।"

१६. तब वह राहु असुरेन्द्र सूर्यदेवपुत्र को छोड़कर शीघ्र ही असुरराज वेपचित्ति के पास पहुँचा। वहाँ पहुँचकर घबराया हुआ (संविग्न) तथा भय से रोमाञ्चित होकर एक ओर बैठ गया। तब उस राहु को असुरराज वेपचित्ति ने पूछा—

"अरे राहु! तुम इतना शीघ्र सूर्य को छोड़कर कैसे चले आये! यहाँ आ कर भी तुम घबराये हुए तथा भय से रोमाञ्चित दीख रहे हो! इतना भयभीत क्यों हो?"

(राहु ने कहा—) "मेरा मस्तक सात भागों में विभक्त हो जाता, या मैं जीवित रहकर भी अवशिष्ट आयु में सुख से वञ्चित ही रह जाता, यदि मैं सूर्य को न छोड़ देता; क्यों कि वह तथागत बुद्ध के आशीर्वाद से संरक्षित हो चुका था॥" •

प्रथम वर्ग समाप्त॥

तस्सुद्दानं

द्वे कस्सपा च माघो च, मागधो दामलि कामदो।
पञ्चालचण्डो तायनो, चन्दिमसुरियेन ते दसा ति॥

उस वर्ग की विषयसूची—इस वर्ग में इन दश सूत्रों का व्याख्यान हैं, जैसे—१. प्रथम काश्यप, २. द्वितीय काश्यप, ३. माघ, ४. मागध, ५. दामलि, ६. कामद, ७. पञ्चालचण्ड, ८. तायन, ९. चन्द्रमा, एवं १०. सूर्यसूत्र॥

२. अनाथपिण्डिकवग्गो

११. चन्दिमससुत्तं

१७. सावत्थिनिदानं। अथ खो चन्दिमसो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्त अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो चन्दिमसो [R.52, B.50] देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं आभासि—

"ते हि सोत्थि गमिस्सन्ति, कच्छे वामकसे मिगा।
झानानि उपसम्पज्ज, एकोदि निपका सता" ति॥
"ते हि पारं गमिस्सन्ति, छेत्वा जालं व अम्बुजो।
झानानि उपसम्पज्ज, अप्पमत्ता रणञ्जहा" ति॥ •

१२. वेण्डुसुत्तं

१८. एकमन्तं ठितो खो वेण्डु देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"सुखिता व ते मनुजा सुगतं पयिरुपासिय।
युञ्जं गोतमसासने, अप्पमत्ता नु सिक्खरे" ति॥
"ये मे पवुत्ते सिट्ठिपदे (वेण्डू ति भगवा), अनुसिक्खन्ति झायिनो।
काले ते अप्पमज्जन्ता, न मच्चुवसगा सियं" ति॥ •

---

२. अनाथपिण्डिकवर्ग

११. चन्द्रमासूत्र : : पारगामी ध्यानी साधक

१७. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही... । तब चन्द्रमस् देवपुत्र चान्दनी रात्रि में... भगवान् के सम्मुख आ कर खड़ा हो गया। एक तरफ खड़े हुए उसने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"मच्छर मक्खी रहित तडाग में पड़े पशु के समान यहाँ वे ही ध्यानाभ्यासी साधक सुखी रहेंगे जो एकाग्रचित्त, प्रज्ञावान् एवं स्मृतिमान् हैं। तथा वे ही साधक इस संसार से पारगामी होंगे, जो मछली के समान जाल काटकर, ध्यानाभ्यासरत, प्रमादरहित होकर क्लेशत्यागी हो चुके हैं॥ •

१२. वेण्डु (विष्णु) सूत्र : : ध्यानी साधक मृत्यु के वश में नहीं

१८. ...। एक ओर खड़ा विष्णु (वेण्डु) देवपुत्र भगवान् के सम्मुख गाथा के माध्यम से यों निवेदन करने लगा—

"वे ही मनुष्य सुखी हैं, जो बुद्ध की उपासना कर, उनके धर्मोपदेश के अनुसार धर्मसाधना करते हुए अप्रमत्त (सावधान) रहकर शिक्षा ग्रहण करते हैं॥"

१३. दीघलट्ठिसुत्तं

१९. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो दीघलट्ठि देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो [N.50] केवलकप्पं ओभा सेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो दीघलट्ठि देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"भिक्खु सिया झायी विमुत्तचित्तो, आकङ्खे चे हदयस्सानुपत्तिं।
लोकस्स ञत्वा उदयब्बयं च, सुचेतसो अनिस्सितो तदानिसंसो" ति॥ •

१४. नन्दनसुत्तं

[B.51] २०. एकमन्तं ठितो खो नन्दनो देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"पुच्छामि तं गोतम भूरिपञ्ञ, अनावटं भगवतो ञाणदस्सनं।
कथंविधं सीलवन्तं वदन्ति, कथंविधो पञ्ञवन्तं वदन्ति?
कथंविधो दुक्खमतिच्च इरियति, कथंविधं देवता पूजयन्ती" ति?

(भगवान् का उत्तर—) "हे विष्णु! जो ध्यानी मेरे द्वारा उपदिष्ट शिक्षाओं का पालन करते हैं वे यथोचित काल में प्रमाद न करते हुए कभी भी मृत्यु के अधीन नहीं होते"॥ •

१३. दीर्घयष्टिसूत्र : : अनुशासित भिक्षु

१९. ऐसा मैने सुना हैं। एक समय भगवान् बुद्ध **राजगृह** स्थित **वेणुवन** के कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। तब एक दीर्घयष्टि देवपुत्र चान्दनी रात्रि में...भगवान् के सम्मुख खड़े होकर यह गाथा पढने लगा—

"यदि साधक भिक्षु ध्यानी, विमुक्तचित्त वाला हो चुका हो, वह मन की आन्तरिक इच्छा (अभिलाष) के रूप में अर्हत्पद प्राप्त करना चाहे तो उसे चाहिये कि वह संसार के उत्पाद एवं विनाश की वास्तविकता (प्रकृति) जानकर पवित्रमन एवं आसक्तिरहित हो जाय। यही उसका माहात्म्य है।" •

१४. नन्दनसूत्र : : शीलवान्

२०. ...एक तरफ खड़ा नन्दन देवपुत्र भगवान् से यों निवेदन करने लगा—

"हे महाज्ञानी गौतम! मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि आप का ज्ञानदर्शन (धर्मोपदेश) अनावृत (=खुला, स्पष्ट) है। यहाँ यह बतावें कि कैसे साधक को आप 'शीलवान्' कहते हैं, तथा किस को 'प्रज्ञावान्' कहते हैं? कैसा साधक दु:खों से रहित हो सकता है? तथा कैसे गुणसम्पन्न पुरुष की देवता भी पूजा तथा प्रशंसा करते हैं?"

"यो सीलवा पञ्ञवा भावित्तो, समाहितो झानरतो सतीमा।
सब्बस्स सोका विगता पहीना, खीणासवो अन्तिमदेहधारी॥
"तथाविधं सीलवन्तं वदन्ति, तथाविधं पञ्ञवन्तं वदन्ति।
तथाविधो दुक्खमतिच्च इरियति, तथाविधं देवता पूजयन्ती" ति॥ •

१५. चन्दनसुत्तं

२१. एकमन्तं ठितो खो चन्दनो देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"कथंसु तरति ओघं, रत्तिन्दिवमतन्दितो। [N.51]
अप्पतिट्ठे अनालम्बे, को गम्भीरे न सीदती" ति?
"सब्बदा सीलसम्पन्नो, पञ्ञवा सुसमाहितो।
आरद्धविरियो पहितत्तो, ओघं तरति दुत्तरं॥
"विरतो कामसञ्ञाय, रूपसंयोजनातिगो।
नन्दीरागपरिक्खीणो, सो गम्भीरे न सीदति" ति॥ •

(भगवान्—) जो साधक शीलवान्, प्रज्ञावान्, स्थिरचित्त, समाहित, ध्यानरत, स्मृतिमान्, क्षीण आश्रवों वाला, अन्तिम देहधरी तथा सर्वशोकप्रहीण है, ऐसे साधक को 'शीलवान्' कहा जाता है। ऐसे साधक को ही 'प्रज्ञावान्' भी कहते हैं। ऐसा साधक ही सांसारिक दुःखों का अतिक्रमण कर साधना में सचेष्ट रहता है तथा ऐसे गुणवान् साधक की ही देवता भी पूजा एवं प्रशंसा भी करते हैं"॥ •

१५. चन्दनसूत्र : : ओघपारगामी

२१. ...एक तरफ खड़े हुए चन्दन देवपुत्र ने भगवान् से इस गाथा के माध्यम से यह प्रश्न किया—

"दिन रात (साधनारत) रह कर कौन बाढ को पार कर जाता है? अप्रतिष्ठित एवं निराधार गहरे जल में कौन डूब जाता है?"

(भगवान्—) "जो साधक सर्वदा शीलसम्पन्न है, प्रज्ञावान् है, समाहितचित्त है, साधना में सतत उद्योगरत है, ऐसा साधक ही उस भयङ्कर ओघ (बाढ) को पार कर जाता है॥"

"जो साधक कामसंज्ञाओं से विरत हो चुका है, रूपसंयोजन से मुक्त हो चुका है, जिसका नन्दी राग (संसार में स्वाद) पूर्णतः क्षीण हो चुका है, वह गहरे जल (ओघ) का सामना होने पर कोई व्यग्रता नहीं मानता। उसमें उसके डूबने की तो बात ही नहीं!"॥ •

१६. वासुदत्तसुत्तं

[N.52] २२. एकमन्तं ठितो खो वासुदत्तो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानो व मत्थके।
कामरागप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे" ति॥
"सत्तिया विय ओमट्ठो,डय्हमानो व मत्थके।
सक्कायदिट्ठिहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे" ति॥ ●

१७. सुब्रह्मसुत्तं

२३. एकमन्तं ठितो खो सुब्रह्मा देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"निच्चं उत्रस्तमिदं चित्तं, निच्चं उब्बिग्गमिदं मनो।
[R.54] अनुप्पन्नेसु किच्छेसु, अथो उप्पतितेसु च।
सचे अत्थि अनुत्रस्तं, ते मे अक्खाहि पुच्छितो" ति?
"नाञ्ञत्र बोज्झङ्गतपसा, नाञ्ञत्रिन्द्रियसंवरा।
नाञ्ञत्र सब्बनिस्सग्गा, सोत्थिं पस्सामि पाणिनं" ति॥ ●

---

१६. वासुदत्त सूत्र : : कामुकताप्रहाण

२२. ...वासुदत्त देवपुत्र ने भगवान् के सम्मुख एक ओर खड़े हो कर यह गाथा कही—

"जैसे किसी को भाला लग गया हो, या कहीं शिर पर अग्नि प्रज्वलित हो उठी हो, वैसे (ऐसी व्यथा को अनुभव करते हुए) ही भिक्षु को कामभोगों (सांसारिक भोगविलासों) की इच्छा के प्रहाण के लिये स्मृतिमान् हो कर साधनारत रहना चाहिये॥

"जैसे किसी को भाला...पूर्ववत्...सत्काय दृष्टिप्रहाणहेतु साधनारत रहना चाहिये।"●

१७. सुब्रह्मसूत्र : : चित्त की व्यग्रता का निवारण

२३. ...। एक ओर खड़े सुब्रह्मा नामक देवता ने भगवान् से यह गाथा कही—

"नवीन साधक का चित्त नित्य निरन्तर व्यग्र रहता है, उसका मन उद्विग्न रहता है। जिस उपाय से भविष्य के कठिन कर्मों का ध्यान कर या कृत कर्मों के विषय में चित्त की व्यग्रता न हो, उसी उपाय को जानने के लिये हम आप के पास आये हैं, कृपया वह उपाय बताइये?

(भगवान्—) "बोध्यङ्ग के सतत अभ्यास (तप), निरन्तर इन्द्रियसंयम, तथा सभी सांसारिक भोगपदार्थों का त्याग—इन उपायों के अतिरिक्त मैं अन्य उपाय नहीं समझता कि जिससे चित्त की इस व्यग्रता का नाश हो तथा प्राणियों का सर्वथा कल्याण हो॥"

२४. इदमवोच....पे०....तत्थेवन्तरधायी ति॥

१८. ककुधसुत्तं

२५. एवं मे सुतं। एकं समयं साकेते विहरति अञ्जनवने मिगदाये। अथ खो ककुधो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं अञ्जनवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ककुधो देवपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"नन्दसि, [N. 52] समणा" ति?

"किं लद्धा, आवुसो" ति?

"तेन हि, समण, सोचसी" ति?

"किं जीयित्थ, आवुसो" ति?

"तेन हि, समण, नेव नन्दसि न च सोचसी" ति?

"एवमावुसो" ति।

"कच्चि त्वं अनघो भिक्खु, कच्चि नन्दी न विज्जति। [B. 53]
कच्चि तं एकमासीनं, आरती नाभिकीरती" ति?
"अनघो वे अहं यक्ख, अथो नन्दी न विज्जति।
अथो मं एकमासीनं, अरती नाभिकीरती" ति॥

---

२४. यह कहा ...पूर्ववत्... वहीं अन्तर्धान हो गया॥

१८. ककुध सूत्र : :साधक को सतत आनन्द एवं निश्चिन्तता

२५. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) साकेतस्थित अञ्जनवन के मृगदाव में साधनाहेतु विराजमान थे। उसी समय कभी कोई ककुध देवपुत्र चान्दनी रात्रि में समस्त अञ्जनवन को आलोकित कर भगवान् के समीप पहुँच कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े उस देवपुत्र ने भगवान् से पूछा—"श्रमण! आनन्द से तो हो?"

"क्या पा कर?"

"तो, श्रमण! क्या चिन्तन कर रहे हो?"

"क्या हम जीवें भी न, हमने तुम्हारा क्या बिगड़ा है?"

"तो क्या, श्रमण! न आप आनन्दित है, न आप को कोई चिन्ता ही है?"

"ऐसा ही समझो।"

(ककुध—) "श्रमण! न तो आप आनन्दित हैं? न कोई चिन्ता ही कर रहे हैं? तो क्या एकान्त में यों एकाकी बैठे हुए आपका मन उदास नहीं होता?"

"कथं त्वं अनघो भिक्खु, कथं नन्दी न विज्जति।
कथं तं एकमासीनं, अरती नाभिकीरती" ति?
"अघजातस्स वे नन्दी, नन्दीजातस्स वे अघं।
अनन्दी अनघो भिक्खु, एवं जानाहि आवुसो" ति॥
"चिरस्सं वत पस्सामि, ब्राह्मणं परिनिब्बुतं।
अनन्दिं अनघं भिक्खुं, तिण्णं लोके विसत्तिकं" ति॥ •

१९. उत्तरसुत्तं

२६. राजगहनिदानं। एममन्तं ठितो खो उत्तरो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

[R. 55]"उपनीयति जीवितमप्पमायु, जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानी" ति॥
"उपनीयति जीवितमप्पमायु, जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, लोकामिसं पजहे सन्तिपेक्खो" ति॥ •

(भगवान्—) "हे यक्ष! न मुझे कोई आनन्द है, न कोई चिन्ता ही। अत: मेरे मन को एकाकी रहने पर भी, किसी प्रकार की उदासीनता नहीं सताती"॥

(ककुध—) "हे श्रमण! आप किस कारण से निरानन्द हैं? आप कहते हैं कि आपको कोई चिन्ता भी नहीं सताती? फिर भी आपका मन एकान्त पा कर भी, उदास क्यों नहीं होता?"

(भगवान्-) "चिन्तित पुरुष को आनन्द होता है तथा आनन्दित पुरुष को चिन्ता। भिक्षु को जब किसी प्रकार की चिन्ता ही नहीं होती तो उसे आनन्द किस बात का होगा!"

(ककुध-) "बहुत समय के बाद ऐसा परिनिर्वृत (मुक्त) भिक्षु देख रहा हूँ। जिस (भिक्षु) को न कोई चिन्ता है, न कोई आनन्द! ये (तो) भवसागर को पार कर गये हैं॥"

१९. उत्तर सूत्र : : सांसारिक भोगों का त्याग

२६. इस सूत्र का उपदेश **राजगृह** में हुआ था। ...एक ओर खड़े उत्तर देवपुत्र ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"मनुष्य का अनमोल जीवन बीत रहा है, आयु भी अल्प ही है, बुढापे (वृद्धावस्था) से बचने का कोई उपाय नहीं है। अत: (साधक) मृत्यु से भय मानता हुआ जीवन में सुख प्रदान करने वाले पुण्य कर्म करे॥"

(भगवान्—) "हाँ, यह अनमोल जीवन बीत रहा है, आयु भी अल्प ही है, तथा

२०. अनाथपिण्डिकसुत्तं

२७. एकमन्तं ठितो खो अनाथपिण्डिको देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमा [N.53] गाथायो अभासि—

"इदं हि तं जेतवनं, इसिसङ्घनिसेवितं।
आवुत्थं धम्मराजेन, पीतिसञ्जननं मम॥
"कम्मं विज्जा च धम्मो च सीलं जीवितमुत्तमं। [B.54]
एतेन मच्चा सुज्झन्ति, न गोत्तेन धनेन वा॥
"तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो।
योनिसो विचिने धम्मं, एवं तत्थ विसुज्झति॥
"सारिपुत्तो व पञ्ञाय, सीलेन उपसमेन च।
यो पि पारङ्गतो भिक्खु, एतावपरमो सिया" ति॥ (१.५.४८)

२८. इदमवोच अनाथपिण्डिको देवपुत्तो। इदं वत्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायि।

२९. अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन भिक्खू आमन्तेसि—"इमं, भिक्खवे, रत्तिं अञ्ञतरो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो, भिक्खवे, सो देवपुत्तो मम सन्तिके इमा गाथायो अभासि—

बुढ़ापे से बचने का कोई उपाय भी नहीं है। अतः (साधक) मृत्यु का भय मानता हुआ सांसारिक कामभोगों का परित्याग कर दे; यदि उसे अपने जीवन में स्थायी शान्ति (निर्वाण) चाहिये॥" (द्र०—१.१.३ भी)

•

२०. अनाथपिण्डिकसूत्र : : जेतवन

२७. यह सूत्र भी **राजगृह** में उपदिष्ट हुआ था। ...एक ओर खड़े अनाथपिण्डिक देवपुत्र ने भगवान् के सम्मुख ये गाथाएँ कहीं—

"ऋषियों द्वारा सेवित...पूर्ववत्...यही उस का परम पद है॥" (द्र०—१.५.४८)

२८. अनाथपिण्डिक देवपुत्र यह बोला। यह बोलकर वह भगवान् को प्रणाम एवं प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

२९. तब भगवान् ने, उस रात्रि के बीतने पर, भिक्षुओं को बुला कर यों सम्बोधन किया—"भिक्षुओ! बीती हुई रात्रि में कोई देवपुत्र चान्दनी रात्रि में अपने आलोक से

'इदं हि तं जेतवनं, इसिसङ्घनिसेवितं।
आवुत्थं धम्मराजेन, पीतिसञ्जननं मम॥
'कम्मं विज्जा च धम्मो च, सीलं जीवितमुत्तमं।
एतेन मच्चा सुज्झन्ति, न गोत्तेन धनेन वा॥
'तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो।
[R.56] योनिसो विचिने धम्मं, एवं तत्थ विसुज्झति॥
'सारिपुत्तो व पञ्ञाय, सीलेन उपसमेन च।
यो पि पारङ्गतो भिक्खु , एतावपरमो सिया' ति॥

३०. ''इदमवोच, भिक्खवे, सो देवपुत्तो। इदं वत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी'' ति। (द.-१.५.८)

३१. एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—''सो हि नून, भन्ते;
[N.54] अनाथपिण्डिको देवपुत्तो भविस्सति। अनाथपिण्डिको गहपति आयस्मन्ते सारिपुत्ते अभिप्पसन्नो अहोसी'' ति।

''साधु साधु, आनन्द, यावतकं खो, आनन्द, तक्काय पत्तब्बं अनुप्पत्तं तया।
[B.55] अनाथपिण्डिको हि सो, आनन्द, देवपुत्तो'' ति। •

अनाथपिण्डिकवग्गो दुतियो।

समस्त जेतवन को अवभासित करता हुआ मेरे पास आकर मुझे प्रणाम कर एक ओर खड़े होकर ये गाथाएँ बोला—

'ऋषियों द्वारा सेवित यह जेतवन...पूर्ववत्...यही उस का परम पद है॥' (द्र०—१.५.८)

३०. ''भिक्षुओ! वह देवपुत्र यों बोला। इस के बाद वह मुझे प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

३१. भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया—''वह देवपुत्र अवश्य ही अनाथपिण्डिक देवपुत्र रहा होगा; क्योंकि वह अनाथपिण्डिक गृहपति ही आयुष्मान् सारिपुत्र के प्रति इतना अधिक श्रद्धालु था।''

''साधु, आनन्द, साधु! जो बात किसी के द्वारा अनुमान से जानी जा सकती थी उसे तुमने (प्रत्यक्षवत्) जान लिया। आनन्द! वह देवपुत्र अनाथपिण्डिक ही था।'' •

अनाथपिण्डिकवर्ग द्वितीय समाप्त॥

तस्सुद्दानं

चन्दिमसो च वेण्डु च, दीघलट्ठि च नन्दनो।
चन्दनो वासुदत्तो च, सुब्रहा ककुधेन च।
उत्तरो नवमो वुत्तो, दसमो अनाथपिण्डिको ति॥

इस वर्ग की सूत्रसूची—इस वर्ग में इतने सूत्र व्याख्यात हैं; जैसे—१. चन्द्रमस्, २. वेण्डु, ३. दीर्घयष्टि, ४. नन्दन, ५. चन्दन, ६. वासुदत्त, ७. सुब्रह्मा, ८. ककुध, ९. उत्तर, एवं १०. अनाथपिण्डिक सूत्र॥

३. नानातित्थियवग्गो

२१. सिवसुत्तं

३२. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सिवो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सिवो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमा गाथाओ अभासि—

''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सेय्यो होति न पापियो॥
''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, पञ्ञा लब्भति नाञ्ञतो॥
''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्मञ्ञाय, सोकमज्झे न सोचति॥
''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
[R.57] सतं सद्धम्ममञ्ञाय, ञातिमज्झे विरोचति॥
[B.56] ''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं॥
[N.55] ''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सत्ता तिट्ठन्ति सातत'' ति॥(द.१.४.३१)

अथ खो भगवा सिवं देवपुत्तं गाथाय पच्चभासि—

---

३. नानातीर्थिकवर्ग

२१. शिवसूत्र : : **सत्सङ्गति**

३२. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) *श्रावस्ती* के अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित *जेतवन* में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कभी शिव नामक देवपुत्र ने चान्दनी रात्रि में ...भगवान् के सम्मुख आकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़े होकर गाथाएँ कहीं—

''स्वहिताकांक्षी पुरुष सज्जनों के साथ ही...पूर्ववत्...सतत सात्त्विक सुखोपभोग कर सकते हैं॥'' (द्र० १.४.३१)

तब भगवान् ने उस शिव देवपुत्र को यों कहा—

"सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्मञ्ञाय, सब्बदुक्खा पमुच्चती" ति॥ (द्र.१.४.३२)●

२२. खेमसुत्तं

३३. एकमन्तं ठितो खो खेमो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि—

"चरन्ति बाला दुम्मेधा, अमित्तेनेव अत्तना।
करोन्ता पापकं कम्मं, यं होति कटुकप्फलं॥ [ध०प० ६६]
"न तं कम्मं कतं साधु, यं कत्वा अनुतप्पति।
यस्स अस्सुमुखो रोदं, विपाकं पटिसेवति॥ [ध०प० ६७]
"तं च कम्मं कतं साधु, यं कत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो, विपाकं पटिसेवति॥ [ध०प० ६८]
"पटिकच्चेव तं कयिरा, यं जञ्ञा हितमत्तनो।
न साकटिकचिन्ताय, मन्ता धीरो परक्कमे॥
"यथा साकटिको मट्ठं, समं हित्वा महापथं।
विसमं मग्गमारुय्ह, अक्खच्छिन्नो व झायति॥

"स्वहिताकांक्षी पुरुष को चाहिये कि वह सज्जनों के साथ ही...पूर्ववत्...वह धर्माचरण करता हुआ अपने को सभी प्रकार से दु:खों से मुक्त कर लेता है"॥ ●

२२. क्षेमसूत्र : : पापकर्म का निषेध

३३. ...एक ओर खड़े क्षेम देवपुत्र ने भगवान् के सम्मुख ये गाथाएँ कहीं—

"मूर्ख दुर्बुद्धिजन अपना शत्रु स्वयं होकर, पापकर्म करते हुए विचरण किया करते है, जो (पापकर्म) परिणाम में अत्यधिक कटु (कष्ट) फल देने वाला होता है।

"वह कर्म किया हुआ अच्छा नहीं कहलाता, जिसे करने के बाद पश्चात्ताप करना पड़े। जिसका कि फल आँसुओं से साथ (अर्थात् रोते हुए) भोगना पड़े॥

"(इसके विपरीत) वही कर्म अच्छा कहलाता है, जिसको करने के बाद पश्चात्ताप भी न करना पडे, तथा जिसका फलभोग हम आनन्द के साथ करते रहें॥

"बुद्धिमान् पुरुष पहले ही (पटिकच्चेव) वह कार्य आरम्भ कर दे जिसके करने में वह अपना हित मानता हो। तथा उसकी पूर्ति हेतु समग्र तत्परता से लग जाय। अपने विचारों में 'करूँ या न करूँ' इस ऊहापोह से शिथिलता न आने दे॥

"जैसे कोई मूर्ख गाड़ीवान समतल एवं श्लक्ष्ण (निष्कण्टक) राजमार्ग को छोड़कर

"एवं धम्मा अपक्कम्म, अधम्ममनुवत्तिय।
मन्दो मच्चुमुखं पत्तो, अक्खच्छिन्नो व झायती" ति॥

२३. सेरीसुत्तं

३४. एकमन्तं ठितो खो सेरी देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"अन्नमेवाभिनन्दन्ति, उभये देवमानुसा।
[B.57] अथ को नाम सो यक्खो, यं अन्नं नाभिनन्दती" ति!
"ये नं ददन्ति सद्धाय, विप्पसन्नेन चेतसा।
तमेव अन्नं भजति, अस्मिं लोके परम्हि च॥
[N.56] "तस्मा विनेय्य मच्छेरं, दज्जा दानं मलाभिभू।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं" ति॥

[R.58] ३५. "अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावसुभासितमिदं, भन्ते, भगवता—

'ये नं ददन्ति सद्धाय, विप्पसन्नेन चेतसा।
तमेव अन्नं भजति, अस्मिं लोके परम्हि च॥
'तस्मा विनेय्य मच्छेरं, दज्जा दानं मलाभिभू।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं' ति॥

ऊँचे नीचे (विषम) मार्ग पर अपनी गाड़ी चलाकर बैलों से अपनी गाड़ी का धुरा तुड़ा कर चिन्ता में पड़ जाता है॥

"इसी तरह धर्मविरुद्ध, एवं अधर्म के अनुकूल किसी मूर्ख साधक को मृत्युमुख में पड़ कर, धुरा टूट जाने वाले मूर्ख गाड़ीवान की तरह अन्त में पश्चात्ताप ही करना पड़ता है॥"

२३. स्वैरिसूत्र : : दानमाहत्म्य

३४. ...। एक ओर खड़े स्वैरी देवपुत्र ने भगवान् के सम्मुख इन गाथाओं से यों निवेदन किया—

"देवता एवं मनुष्य—दोनों ही अन्न के प्रति अभिनन्दन (हर्ष) प्रकट करते हैं। भला ऐसा कौन बुद्धिमान् प्राणी है जिस को अन्न अभिनन्दनीय न लगता हो!"

(भगवान्—) "जो (आज) इस अन्न को श्रद्धालु मन से दूसरों को देता है तो वही अन्न दूसरे समय इस लोक या परलोक में दाता के उपयोग में आता है॥

"अतः कंजूसी (लोभ) का परित्याग कर, मुक्तहस्त से प्रभूत दान करना चाहिये; क्यों कि पुण्य ही परलोक में प्राणियों का आधार होता है"॥

(देवता—) "भन्ते! आप का वचन आश्चर्यमय है, अद्भुत है! आपने कितना

"भूतपुब्बाहं, भन्ते, सेरी नाम राजा अहोसिं दायको दानपति दानस्स वण्णवादी। तस्स मय्हं, भन्ते, चतूसु द्वारेसु दानं दीयित्थ समणब्राह्मण-कपणद्धिकवनिब्बकयाचकानं। अथ खो मं, भन्ते, इत्थागारं उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'देवस्स खो दानं दीयति, अम्हाकं दानं न दीयति। साधु मयं पि देवं निस्साय दानानि ददेय्याम, पुञ्ञानि करेय्यामा' ति। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—'अहं खोस्मि दायको दानपति दानस्स वण्णवादी। दानं दस्सामा ति वदन्ते किन्ति वदेय्यं' ति? सो ख्वाहं, भन्ते, पठमं द्वारं इत्थागारस्स अदासिं। तत्थ इत्थागारस्स दानं दीयित्थ; मम दानं पटिक्कमि।

"अथ खो मं, भन्ते, खत्तिया अनुयन्ता उपसङ्किमित्वा एतदवोचुं—'देवस्स खो दानं दीयति; इत्थागारस्स दानं दीयति; अम्हाकं दानं न दीयति। साधु मयं पि देवं निस्साय दानानि ददेय्याम, पुञ्ञानि करेय्यामा' ति। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—'अहं खोस्मि दायको दानपति दानस्स वण्णवादी। दानं दस्सामा ति वदन्ते किन्ति वदेय्यं' ति? सो ख्वाहं, भन्ते, दुतियं द्वारं खत्तियानं अनुयन्तानं अदासिं। तत्थ [B.58] खत्तियानं अनुयन्तानं दानं दीयित्थ, मम दानं पटिक्कमि।

उचित कहा है कि जो आज इस अन्न को श्रद्धालु मन से...पूर्ववत्...प्राणियों का आधार होता है।"

"भन्ते! बहुत पहले मैं स्वैरी नामक राजा था। मैं स्वयं दानी था, तथा अन्य दानपतियों एवं उनके द्वारा किये गये दान की प्रशंसा करता था। मेरे नगर के चारों द्वारों पर श्रमणों, ब्राह्मणों, दरिद्रों, यात्रियों एवं विकलाङ्गों तथा याचकों को नित्यदान किया जाता था।

"भन्ते! जब मैं अन्त:पुर में जाता था तो मेरी रानियाँ कहती थीं—'आप तो दान कर रहे हैं, हम नहीं कर पा रही हैं। अच्छा होता कि किसी उपाय से हम भी दान कर पातीं। आपके आधार पर हम भी पुण्यार्जन कर लेतीं।'

"भन्ते! तब मुझे यह विचार मन में आया— मैं दान देता हूँ, दान की प्रशंसा करता हूँ। जो ये स्वयं कह रहीं हैं—'हम भी दान करेंगी', तो मैं इनकी कितनी प्रशंसा करूँ! आज से मैं नगर के चार द्वारों में से एक द्वार 'स्त्रीद्वार' प्रख्यात कर देता हूँ। यों मैने नगर का प्रथम द्वार दानहेतु अपने अन्त:पुर को दे दिया। (१)

"तब कभी, भन्ते! मेरे अनुगामी सामन्त मेरे पास आये, वे भी मुझसे बोले—'देव! आप भी दान करते हैं, आप का अन्त:पुर भी दान करता है, परन्तु हमें दान करने का अवसर नहीं मिलता। अच्छा हो कि हम भी आप के सहारे से कुछ दान कर लिया

"अथ खो मं, भन्ते, बलकायो उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'देवस्स खो दानं दीयति; इत्थागारस्स दानं दीयति; खत्तियानं अनुयन्तानं दानं दीयति; अम्हाकं दानं न [R.59] दीयति। साधु मयं पि देवं निस्साय दानानि ददेय्याम, पुञ्ञानि करेय्यामा' ति। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—'अहं खोस्मि दायको दानपति दानस्स वण्णवादी। [N.57] दानं दस्सामा ति वदन्ते किन्ति वदेय्यं' ति? सो ख्वाहं भन्ते, ततियं द्वारं बलकायस्स अदासिं। तत्थ बलकायस्स दानं दीयित्थ, मम दानं पटिक्कमि।

"अथ खो मं, भन्ते, ब्राह्मणगहपतिका उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं—'देवस्स खो दानं दीयति; इत्थागारस्स दानं दीयति; खत्तियानं अनुयन्तानं दानं दीयति; बलकायस्स दानं दीयति; अम्हाकं दानं न दीयति। साधु मयं पि देवं निस्साय दानानि ददेय्याम, पुञ्ञानि करेय्यामा' ति। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—'अहं खोस्मि दायको दानपति दानस्स वण्णवादी। दानं दस्सामा ति वदन्ते किन्ति वदेय्यं' ति? सो ख्वाहं, भन्ते, चतुत्थं द्वारं ब्राह्मणगहपतिकानं अदसिं। तत्थ ब्राह्मणगहपतिकानं दानं दीयित्थ, मम दानं पटिक्कमि।

"अथ खो मं, भन्ते, पुरिसा उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं—'न खो दानि देवस्स कोचि दानं दीयति' ति। एवं वुत्ताहं, भन्ते, ते पुरिसे एतदवोचं—'तेन हि, भणे, यो बाहिरेसु जनपदेसु आयो सञ्जायति ततो उपड्ढं अन्तेपुरे पवेसेथ, उपड्ढं तत्थेव दानं देथ समण-ब्राह्मण-कपणद्धिकवनिब्बकयाचकानं' ति। सो ख्वाहं, भन्ते, एवं दीघरत्तं

करें, यों हम भी कुछ पुण्य कमा लें।' तब भी मेरे मन में वही विचार आया...पूर्ववत्...। तब मैने नगर का दूसरा द्वार दानहेतु अपने अनुगामी क्षत्रियों को दे दिया। (२)

"तब कभी, भन्ते! मेरी सेना के बड़े अधिकारी मेरे पास आये, वे भी बोले—...पूर्ववत्...तब मैने नगर का तीसरा द्वार अपनी सेना के बड़े अधिकारियों को दानहेतु दे दिया। (३)

"तब कभी, भन्ते! मेरे नगर कुछ प्रमुख ब्राह्मण मेरे पास आये तथा बोले—...पूर्ववत्...। तब मैने नगर का चतुर्थ द्वार उन ब्राह्मणगृहपतियों को दान हेतु दे दिया। (४)

"तब, भन्ते! मेरे राजकोष के अधिकारियों ने आकर मुझसे कहा—'देव! अब आपकी ओर से कोई दान नहीं हो रहा है।' ऐसा कहे जाने पर मैने उनको आदेश दिया—'तो तुम ऐसा करो कि बाह्य जनपदों से आगत आय का आधा भाग अन्त:पुर में भेजा करो तथा आधा भाग वहीं श्रमणों, ब्राह्मणों, दरिद्रों, यात्रियों एवं विकलाङ्गों एवं याचकों को

कतानं पुञ्ञानं एवं दीघरत्तं कतानं कुसलानं धम्मानं परियन्तं नाधिगच्छामि—'एत्तकं पुञ्ञं ति वा, एत्तको पुञ्ञविपाको ति वा, एत्तकं सग्गे ठातब्बं ति वा' ति। अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावसुभासितमिदं, भन्ते, भगवता—

'ये नं ददन्ति सद्धाय, विप्पसन्नेन चेतसा।
तमेव अन्नं भजति, अस्मिं लोके परम्हि च॥
'तस्मा विनेय्य मच्छेरं, दज्जा दानं मलाभिभू।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं''' ति॥

२४. घटीकारसुत्तं

३६. एकमन्तं ठितो खो घटीकारो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं [B.59]
अभासि— [R.60]

''अविहं उपपन्नासे, विमुत्ता सत्त भिक्खवो।
रागदोसपरिक्खीणा, तिण्णा लोके विसत्तिकं'' ति॥
''के च ते अतरुं पङ्कं, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं।
के हित्वा मानुसं देहं, दिब्बयोगं उपच्चगुं''? ति॥
''उपको पलगण्डो च, पुक्कुसाति च ते तयो।
भद्दियो खण्डदेवो च, बाहुरग्गि च सङ्गियो।
ते हित्वा मानुसं देहं, दिब्बयोगं उपच्चगुं'' ति॥
''कुसली भाससी तेसं, मारपासप्पहायिनं।
कस्स ते धम्मञ्ञाय, अच्छिदं भवबन्धनं'' ति॥
''न अञ्ञत्र भगवता, नाञ्ञत्र तव सासना।
यस्स ते धम्ममञ्ञाय, अच्छिदुं भवबन्धनं॥
''यत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झति।
तं ते धम्मं इधञ्ञाय, अच्छिदुं भवबन्धनं'' ति॥

दान कर दिया करो।' इस तरह, भन्ते, मेरा इतना पुण्य है, या इतने पुण्य से मैं कितने काल तक स्वर्ग में रह पाऊँगा इस का अन्त नहीं जान पा रहा हूँ। अतः, भन्ते! आपका यह कथन आश्चर्यमय एवं अद्भुत है।''

'''जो यह अन्नदान, श्रद्धालु चित्त से देते हैं...पूर्ववत्...प्राणियों का आधार होता है'''।

२४. घटीकारसूत्र : : बुद्धधर्मपालन से ही मुक्ति

३६. ...। एक ओर खड़े घटीकार ने भगवान् के समीप आकर यह गाथा कहीं—

"गम्भीरं भाससी वाचं, दुब्बिजानं सुदुब्बुधं।
कस्स त्वं धम्ममञ्ञाय, वाचं भाससि ईदिसं" ति॥
"कुम्भकारो पुरे आसिं, वेकळिङ्गे घटीकरो।
मातापेत्तिभरो आसिं, कस्सपस्स उपासको॥
"विरतो मेथुना धम्मा, ब्रह्मचारी निरामिसो।
अहुवा ते सगामेय्यो, अहुवा ते पुरे सखा॥
"सोहमेते पजानामि, विमुत्ते सत्त भिक्खवो।
रागदोसपरिक्खीणे, तिण्णे लोके विसत्तिकं" ति॥
"एवमेतं तदा आसि, यथा भाससि, भग्गव।
कुम्भकारो पुरे आसि, वेकळिङ्गे घटीकरो॥
[B.60] "मातापेत्तिभरो आसि, कस्सपस्स उपासको।
विरतो मेथुना धम्मा, ब्रह्मचारी निरामिसो।
अहुवा मे सगामेय्यो, अहुवा मे पुरे सखा" ति॥
"एवमेतं पुराणानं, सहायानं अहु सङ्गमो।
उभिन्नं भावितत्तानं, सरीरन्तिमधारिनं" ति॥ ●

२५. जन्तुसुत्तं

[N.59] ३७. एवं मे सुतं। एकं समयं सम्बहुला भिक्खू कोसलेसु विहरन्ति हिमवन्तपस्से अरञ्ञकुटिकाय उद्धता उन्नळा चपला मुखरा विकिण्णवाचा [R.61] मुट्ठस्सतिनो असम्पजाना असमाहिता विब्भन्तचित्ता पाकतिन्द्रिया।

अथ खो जन्तु देवपुत्तो तदहुपोसथे पन्नरसे येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू गाथाहि अज्झभासि—

सात भिक्षु अपने रागद्वेष...पूर्ववत्...अन्तिम देहधारी थे॥ (द्र०- पीछे १.५.५०)●

२५. जन्तुसूत्र : : अप्रमादी को प्रणाम

३७. ऐसा मैने सुना है। एक समय बहुत से भिक्षु कौसल प्रदेश में हिमालय के पार्श्ववर्ती जंगलों में विचरण कर रहे थे। वे उद्धत, उद्दण्ड, वज्रबुद्धि, चपल, व्यर्थ बोलने वाले, परस्पर बहकी बातें करने वाले, मूढस्मृति, असम्प्रज्ञ, असमाहित, चञ्चलचित्त, तथा असंयतेन्द्रिय थे।

तब जन्तु देवपुत्र पूर्णिमा के उपोसथ के दिन जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ आया। आकर उसने उन भिक्षुओं को इन गाथाओं से यों कहा—

"सुखजीविनो पुरे आसुं, भिक्खू गोतमसावका।
अनिच्छा पिण्डमेसना, अनिच्छा सयनासनं।
लोके अनिच्चतं ञत्वा, दुक्खस्सन्तं अकंसु ते॥
"दुप्पोसं कत्वा अत्तानं, गामे गामणिका विय।
भुत्वा भुत्वा निपज्जन्ति, परागारेसु मुच्छिता॥
"सङ्घस्स अञ्जलिं कत्वा, इधेकच्चे वदामहं।
अपविद्धा अनाथा ते, यथा पेता तथेव ते॥
"ये खो पमत्ता विहरन्ति, ते मे सन्धाय भासितं।
ये अप्पमत्ता विहरन्ति, नमो तेसं करोमहं" ति॥ •

२६. रोहितस्ससुत्तं

३८. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठितो खो राहितस्सो देवपुत्तो भगवन्तं एतदवोच— "यत्थ नु खो, भन्ते, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न [B.61] उपपज्जति, सक्का नु खो सो, भन्ते, गमनेन लोकस्स अन्तो ञातुं वा दट्ठुं वा पापुणितुं वा" ति?

"यत्थ खो, आवुसो, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, नाहं तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यं ति वदामी" ति।

"गौतमशिष्य भिक्षु पहले सुखपूर्वक रहते थे, निर्लोभ रहते हुए भिक्षा करते थे। उन्हें अपने शयनासन की भी कोई अपेक्षा नहीं थी। उन्होंने इस लोक की अनित्यता को जानकर अपने सभी दुःखों का अन्त कर लिया था॥

"अवशिष्ट सङ्घ को प्रणाम करता हुआ मैं उन कुछ प्रमत्त भिक्षुओं के लिये यही कहना चाहता हूँ कि उन का जीवन परित्यक्त, अनाथ एवं प्रेत के समान है; क्योंकि वे यथेच्छ अतिमात्रा में भोजन कर गृहस्थों के घरों में पड़े रहते है॥

"इस तरह के भिक्षुओं को लक्ष्य करके ही मैने यह बात कही है। अन्यथा जो भिक्षु वस्तुतः अप्रमत्त होकर साधना में लीन है उन्हें मैं वस्तुतः प्रणाम करता हूँ॥" •

२६. रोहिताश्वसूत्र : : लोक के अन्त का ज्ञान

३८. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही उपदिष्ट हुआ था। ...एक ओर खड़े रोहिताश्व देवपुत्र ने भगवान् से यों कहा—"भन्ते! जहाँ न कोई जनमता है, न वृद्ध होता है, न मरता है, न शरीर त्याग कर पुनः उत्पन्न होता है, ऐसे लोक के उस अन्त को चल चल कर जाना, देखा या पाया जा सकता है?"

"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते ! यावसुभासितमिदं, भन्ते, भगवता—'यत्थ खो, आवुसो, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, नाहं तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यं ति वदामी' ति।

[N.58] "भूतपुब्बाहं, .भन्ते, रोहितस्सो नाम इसि अहोसिं भोजपुत्तो इद्धिमा वेहासङ्गमो। तस्स मय्हं, भन्ते, एवरूपो जवो अहोसि; सेय्यथापि नाम दळ्हधम्मा धनुग्गहो सुसिक्खितो कतहत्थो कतयोग्गो कतूपासनो लहुकेन असनेन अप्पकसिरेनेव तिरियं तालच्छायं अतिपातेय्य। तस्स मय्हं, भन्ते, एवरूपो पदवीतिहारो अहोसि; सेय्यथापि नाम पुरत्थिमा समुद्दा पच्छिमो समुद्दो। तस्स मय्हं, भन्ते, एवरूपं इच्छागतं उप्पज्जि—'अहं गमनेन लोकस्स अन्तं पापुणिस्सामी' त्ति। सो ख्वाहं, भन्ते, एवरूपेन जवेन समन्नागतो एवरूपेन च पदवीतिहारेन अञ्ञत्रेव असितपीतखायितसायिता अञ्ञत्र निद्दाकिलमथपटिविनोदना वस्ससतायुको वस्ससतं गन्त्वा अप्पत्वा व लोकस्स अन्तं अन्तरा व कालङ्कतो।

"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावसुभासितमिदं,भन्ते, भगवता—यत्थ खो, आवुसो, न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति; नाहं तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यं ति वदामी''' ति।

"आयुष्मन्! जहाँ न कोई जनमता है...पूर्ववत्...देखा या पाया जा सकता है—ऐसा मैं नहीं बताता।

"भन्ते! आश्चर्यमय है, यह अद्भुत बात है जो आपने कही कि जहाँ न कोई...पूर्ववत्...देखा या पाया जा सकता है—ऐसा मैं नहीं बताता।

"भन्ते! बहुत पहले मैं रोहिताश्व नामक भोजपुत्र एवं आकाशचारी ऋषि था। उस समय मेरी गति इतनी तीव्र थी जैसे किसी चतुर सुशिक्षित, दृढाभ्यासी धनुर्धर द्वारा सरलता से फेंका गया तीर भी दूरस्थ ताल की छाया तक चला जाय।

"भन्ते! उस समय मेरा पदक्रम (पैरों का रखना) ऐसा था कि मैं एक ही पदक्रम में पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक लाँघ सकता था।

"उस समय मेरी इच्छा हुई कि मैं चल कर (पदक्रम से) इस लोक का अन्त तक पहुँचूँगा। भन्ते! वह मैं पदक्रम से, इस गति से खाना पीना त्याग कर, शौचादिक्रियाएँ छोड़ कर, शयन एवं विश्राम को एकान्ततः त्याग कर सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहकर निरन्तर चलते रह कर भी इस लोक का अन्त प्राप्त किये विना ही मृत्यु को प्राप्त हो गया।

"यह, भन्ते! आश्चर्य ही है, अद्भुत ही है कि आप ने जो कहा—'जहाँ न कोई जनमता है...पूर्ववत्...पाया जा सकता है—मैं नहीं बताता।'''

"न खो पनाहं, आवुसो, अप्पत्वा लोकस्स अन्तं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामि। अपि च ख्वाहं, आवुसो, इमस्मिं येव ब्याममत्ते कळेवरे ससञ्ञिम्हि समणके लोकं च पञ्ञापेमि लोकसमुदयं च लोकनिरोधं च लोकनिरोधगामिनिं च पटिपदं ति।

"गमनेन न पत्तब्बो, लोकस्सन्तो कुदाचनं।
न च अप्पत्वा लोकन्तं, दुक्खा अत्थि पमोचनं॥
"तस्मा हवे लोकविदू सुमेधो, लोकन्तगू वुसितब्रह्मचरियो। [B.62]
लोकस्स अन्तं समिताविजत्वा, नासीसति लोकमिमं परं" ति॥ •

२७. नन्दसुत्तं

३९. एकमन्तं ठितो खो नन्दो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"अच्चेन्ति काला तरयन्ति रत्तियो, वयोगुणा अनुपुब्बं जहन्ति। [N.61]
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानी" ति॥ [R.63]
"अच्चेन्ति काला तरयन्ति रत्तियो, वयोगुणा अनुपुब्बं जहन्ति।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, लोकामिसं पजहे सन्तिपेक्खो" ति॥ •

२८. नन्दिविसालसुत्तं

४०. एकमन्तं ठितो खो नन्दिविसालो देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"परन्तु आयुष्मन्! मेरा कहना यह है 'लोक का अन्त पाये विना दुखों का अन्त करना सम्भव नहीं है'; तथा आयुष्मन्! मैं यह भी कहता हूँ—'इसी व्याम (साढे तीन हाथ) मात्र लम्बे 'शरीर' संज्ञा धारण करने वाले कलेवर में लोक, लोक की उत्पत्ति, लोक का निरोध तथा इस निरोध का मार्ग सभी कुछ विद्यमान है।'

"गमन (पदक्रम) से इस लोक का अन्त प्राप्त नहीं किया जा सकता। लोक का अन्त जाने विना दु:ख से मुक्ति भी नहीं मिल सकती॥

"अत: बुद्धिमान् मनुष्य लोक के अन्त को पहचाने। लोक के अन्त का साक्षात्कार करने वाला, धर्मसाधना करने वाला ही इस लोक के अन्त् को भली भाँति जान कर न इस लोक की आशा करता है, न परलोक की॥" •

२७. नन्दसूत्र : : समय व्यतीत हो रहा है

३९. ...। एक ओर खड़े हुए देवपुत्र ने भगवान् के पास जाकर ये गाथाएँ कहीं—

"समय बीतता जा रहा है...पूर्ववत्...कामभोगों का त्याग कर दो॥" •

"चतुचक्कं नवद्वारं, पुण्णं लोभेन संयुतं।
पङ्कजातं महावीर, कथं यात्रा भविस्सती" ति?
"छेत्वा नद्धिं वरत्तं च, इच्छालोभं च पापकं।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, एवं यात्रा भविस्सती" ति॥

२९. सुसिमसुत्तं

४१. सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं भगवा एतदवोच—"तुय्हं पि नो, आनन्द, सारिपुत्तो रुच्चती" ति?

[B.63] "कस्स हि नाम, भन्ते, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थचित्तस्स आयस्मा सारिपुत्तो न रुच्चेय! पण्डितो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। महापण्डितो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। पुथुपञ्ञो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। हासपञ्ञो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। जवनपञ्ञो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। तिक्खपञ्ञो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। निब्बेधिकपञ्ञो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। अप्पिच्छो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। सन्तुट्ठो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। पविवित्तो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। असंसट्ठो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। आरद्धविरियो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। वत्ता,

---

२८. नन्दिविशालसूत्र : : सरल यात्रा

४०. ...। एक ओर खड़े हुए नन्दिविशाल देवपुत्र ने भगवान् को गाथा के माध्यम से यों निवेदन किया—

"हे महावीर बुद्ध! मेरा यह शरीर रूपी रथ चार चक्रों...पूर्ववत्...यात्रा करोगे तो यह अवश्य सरल होगी॥ (द्र०—१.३.९)

२९. सुसीमसूत्र : : आयुष्मान् सारिपुत्र

४१. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** भगवान् द्वारा उपदिष्ट हुआ है। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये। जाकर भगवान् को **प्रणाम कर** एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द को भगवान् ने पूछा—क्या, आनन्द! तुम्हें भी हमारा (शिष्य) सारिपुत्र अच्छा (प्रिय) लगता है?

(आनन्द—) "भन्ते! मूर्ख, दुष्ट तथा भ्रान्त पुरुष को छोड़कर आयुष्मान् सारिपुत्र किसे अच्छे नहीं लगते! क्यों कि आयुष्मान् सारिपुत्र तो, भन्ते! बुद्धिमान् है, महाप्रज्ञ हैं। आयुष्मान् सारिपुत्र की प्रज्ञा अतिविस्तृत है, ...अत्यधिक प्रसन्न है, ...तीव्र है, ...तीक्ष्ण है, ...प्रज्ञा में किसी अन्य का प्रवेश सरल नहीं है। भन्ते! आयुष्मान् सारिपुत्र सन्तोषी

भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। वचनक्खमो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो।'' चोदको, [N.62] भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। पापगरही, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। कस्स हि नाम, भन्ते, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थचित्तस्स आयस्मा सारिपुत्तो न रुच्चेय्या'' ति!

''एवमेतं, आनन्द, एवमेतं, आनन्द! कस्स हि नाम, आनन्द रुच्चेय्य! पण्डितो, आनन्द, सारिपुत्तो। महापञ्ञो, आनन्द, सारिपुत्तो। पुथुपञ्ञो, [R.64] आनन्द, सारिपुत्तो। तिक्खपञ्ञो, आनन्द, सारिपुत्तो। निब्बेधिकपञ्ञो, आनन्द, सारिपुत्तो। अप्पिच्छो, आनन्द, सारिपुत्तो। सन्तुट्ठो, आनन्द, सारिपुत्तो। पविवित्तो, आनन्द, सारिपुत्तो। असंसट्ठो, आनन्द, सारिपुत्तो। आरद्धविरियो, आनन्द, सारिपुत्तो। वत्ता, आनन्द, सारिपुत्तो। वचनक्खमो, आनन्द, सारिपुत्तो। चोदको, आनन्द, सारिपुत्तो। पापगरही, सारिपुत्तो। कस्स हि नाम, आनन्द, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थचित्तस्स सारिपुत्तो न रुच्चेय्या'' ति!

४२. अथ खो सुसिमो देवपुत्तो आयस्मतो सारिपुत्तस्स वण्णे भञ्ञमाने [B.64] महतिया देवपुत्तरिसाय परिवुतो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सुसिमो देवपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—''एवमेतं, भगवा, एवमेतं सुगत। कस्स हि नाम, भन्ते, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थचित्तस्स आयस्मा सारिपुत्तो न रुच्चेय्य! पण्डितो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। महापञ्ञो, भन्ते...पुथुपञ्ञो, भन्ते...हासपञ्ञो, भन्ते...

(अल्पेच्छ) है, विवेकी (एकान्तसेवी) हैं, अनासक्त हैं, उत्साही हैं, प्रखर वक्ता हैं, दूसरों को समझाने में समर्थ हैं, वे कुशल कर्मों के प्रेरक हैं, आयुष्मान् सारिपुत्र पापकर्म के निन्दक हैं। ऐसे गुणों से सम्पन्न आयुष्मान् सारिपुत्र भला किस बुद्धिमान्, सज्जन या स्थितप्रज्ञ को अच्छे नहीं लगेंगे!"

(भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द के इस कथन का अनुमोदन करते हुए कहा—) ''ऐसा ही है, आनन्द! आयुष्मान् सारिपुत्र...पूर्ववत्...किस को अच्छे नहीं लगेंगे!''

४२. तब *सुसीम* देवपुत्र, आयुष्मान् सारिपुत्र के उपर्युक्त गुणवर्णन के व्याख्यानप्रसङ्ग में, देवों की एक विशाल परिषद् (मण्डली) के साथ जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आया, तथा भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े होकर सुसीम देवपुत्र ने भगवान् से कहा—भगवान्! ऐसी ही बात है; हाँ, सुगत! ऐसी ही बात है। किसी मूर्ख, दुष्ट या भ्रान्तचित्त को छोड़कर किस सज्जन को आयुष्मान् सारिपुत्र को अच्छे नहीं

जवनपञ्ञो, भन्ते...तिक्खपञ्ञो, भन्ते...निब्बेधिकपञ्ञो, भन्ते...आरद्धविरियो, भन्ते ...वत्ता, भन्ते...वचनक्खमो, भन्ते...असंसट्ठो, भन्ते...पापगरही, भन्ते...आयस्मा सारिपुत्तो। कस्स हि नाम, भन्ते, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थच्त्तिस्स आयस्मा सारिपुत्तो न रुच्चेय्य!

''अहं पि हि, भन्ते, अञ्ञदेव देवपुत्तपरिसं उपसङ्कमिं, एतदेव बहुलं सद्दं सुणामि—'पण्डितो आयस्मा सारिपुत्तो, महापञ्ञो आयस्मा, पुथुपञ्ञो आयस्मा, [N.63] हासपञ्ञो आयस्मा, जवनपञ्ञो आयस्मा, तिक्ख पञ्ञो आयस्मा, निब्बेधिकपञ्ञो आयस्मा, अप्पिच्छो आयस्मा, सन्तुट्ठो आयस्मा, पविवित्तो आयस्मा, असंसट्ठो आयस्मा, आरद्धविरियो आयस्मा, वत्ता आयस्मा, वचनक्खमो आयस्मा, चोदको आयस्मा, पापगरही आयस्मा सारिपुत्तो' ति। कस्स हि नाम, भन्ते, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थचित्तस्स आयस्मा सारिपुत्तो न रुच्चेय्या'' ति!

४३. अथ खो सुसिमस्स देवपुत्तस्स देवपुत्तपरिसा आयस्मतो सारिपुत्तस्स वण्णे भञ्ञमाने अत्तमना पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता उच्चावचा वण्णनिभा उपदंसेति।

सेय्यथापि नाम मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो पण्डु- [R.65] कम्बले निक्खित्तो भासते च तपते च विरोचति च; एवमेवं सुसिमस्स देवपुत्तस्स देवपुत्तपरिसा आयस्मतो सारिपुत्तस्स वण्णे भञ्ञमाने अत्तमना पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता उच्चावचा वण्णनिभा उपदंसेति।

लगेंगे; क्यों कि भन्ते! आयुष्मान् सारिपुत्र बुद्धिमान् हैं, महाप्रज्ञ हैं...पूर्ववत्...स्थितप्रज्ञ को अच्छे नहीं लगेंगे!

''मैं भी, भन्ते! जिस किसी देवसभा में जाता हूँ उन सभी सभाओं में मैं यही शब्दावलि सुनता हूँ कि—आयुष्मान् सारिपुत्र पण्डित हैं, महाप्रज्ञ हैं...पूर्ववत्...आयुष्मान् सारिपुत्र किस...स्थितप्रज्ञ को अच्छे नहीं लगेंगे!"

४३. तब सुसीम देवपुत्र के देवसमूह ने आयुष्मान् सारिपुत्र के इस गुणवर्णन को सुनकर सन्तुष्ट प्रमुदित एवं श्रद्धायुक्त होकर प्रसन्न (स्वच्छ) कान्ति उसी तरह धारण की जैसे कोई स्वच्छ सुघड़ तथा उच्च जाति की वैदूर्यमणि सुन्दर लगती है, चमकती है, देदीप्यमान होती है।

अथवा. जैसे कोई सुवर्णकार द्वारा बनाया गया, पीले वस्त्र से आवृत कोई सुवर्ण

सेय्यथापि नाम निक्खं जम्बोनदं दक्खकम्मारपुत्तउक्कामुखसुकुसलसम्पहट्ठं पण्डुकम्बले निक्खित्तं भासते च तपते च विरोचति च; एवमेवं सुसिमस्स देवपुत्तस्स देवपुत्तपरिसा आयस्मतो सारिपुत्तस्स वण्णे भञ्ञमाने अत्तमना पमुदिता पीति-सोमनस्सजाता उच्चावचा वण्णनिभा उपदंसेति।

सेय्यथापि नाम सरदसमये विद्धे विगतवलाहके देवे रत्तिया पच्चूससमयं ओसधितारका भासते च तपते च विरोचति च; एवमेवं सुसिमस्स देवपुत्तस्स देवपुत्तपरिसा आयस्मतो सारिपुत्तस्स वण्णे भञ्ञमाने अत्तमना पमुदिता [B.65] पीतिसोमनस्सजाता उच्चावचा वण्णनिभा उपदंसेति।

सेय्यथापि नाम सरदसमये विद्धे विगतवलाहके देवे आदिच्चो नभं अब्भुस्सक्कमानो सब्बं आकासगतं तमगतं अभिविहच्च भासते च तपते च विरोचति च; एवमेवं सुसिमस्स देवपुत्तस्स देवपुत्तपरिसा आयस्मतो सारिपुत्तस्स वण्णे भञ्ञमाने अत्तमना पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता उच्चवचा वण्णनिभा उपदंसेति।

अथ खो सुसिमो देवपुत्तो आयस्मन्तं सारिपुत्तं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"पण्डितो ति समञ्ञातो, सारिपुत्तो अकोधनो।
अप्पिच्छो सारतो दन्तो, सत्थुवण्णाभतो इसी" ति॥

अथ खो भगवा आयस्मन्तं सारिपुत्तं आरब्भ सुसिमं देवपुत्तं गाथाय [N.64] पच्चभासि—

आभूषण सुन्दर लगता है, चमकता है, देदीप्यमान होता है, उसी तरह आयुष्मान् सारिपुत्र के गुणों का वर्णन सुनकर वह देवपुत्रों की परिषद् प्रसन्नमुख से शोभित हो रही थी।

अथवा, जैसे रात्रि के अन्तिम प्रहर में शुक्र तारा शोभित होता है, वैसे ही...पूर्ववत्...शोभित हो रही थी।

अथवा, जैसे शरत्काल में मेघों के हट जाने पर सूर्य आकाश में ऊपर आता हुआ, समस्त अन्धकार को नष्ट करता हुआ शोभित होता है...पूर्ववत्...शोभित हो रही थी।

तब उस सुसीम देवपुत्र ने आयुष्मान् सारिपुत्र के विशेष गुणवर्णन में भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"पण्डित, महान् ज्ञानी, क्रोधरहित सारिपुत्र सन्तोषी, गुरुभक्त, संयमी एवं ऋषिसदृश हैं, जिन्होंने बुद्ध के उपदेश का लाभ प्राप्त किया है"॥

तदनन्तर, आयुष्मान् सारिपुत्र को लक्ष्य कर भगवान् ने सुसीम देवपुत्र को यह गाथा कही—

"पण्डितो ति समञ्ञातो, सारिपुत्तो अकोधनो।
अप्पिच्छो सारतो दन्तो, कालं कङ्खति सुदन्तो" ति॥ •

३०. नानातित्थियसावकसुत्तं

४४. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो सम्बहुला नानातित्थियसावका देवपुत्ता असमो च सहलि च नीको च आकोटको च वेगब्भरि च माणवगारियो च अभिक्कन्ताय रत्तिया [R.66] अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं वेळुवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; [B.66] उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठितो खो असमो देवपुत्तो **पूरणं कस्सपं** आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"इध छिन्दितमारिते, हतजानीसु कस्सपो।
न पापं समनुपस्सति, पुञ्ञं वा पन अत्तनो।
स वे विस्सासमाचिक्खि, सत्था अरहति माननं" ति॥

अथ खो सहलि देवपुत्तो **मक्खलि गोसालं** आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"तपोजिगुच्छाय सुसंवुतत्तो, वाचं पहाय कलहं जनेन।
समो सवज्जा विरतो सच्चवादी, न हि नून तादिसं करोति पापं" ति॥

"पण्डित, महान् ज्ञानी, अक्रोधी सारिपुत्र अत्यधिक सन्तोषी, गुरुभक्त, संयमी हैं। व साधना करते हुए अपने श्रम का लाभ प्राप्त करने की आशा में हैं॥" •

३०. नानातीर्थिकश्रावकसूत्र : : सभी तीर्थङ्करों में बुद्धश्रेष्ठ

४४. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् **राजगृह** स्थित *वेणुवन* के कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कुछ अपरमतानुयायी श्रावक देवपुत्र एकत्र हुए, जिनमें प्रमुख थे—असम, सहलि, नीक, आकोटक एवं वेगब्भरि तथा माणवगारिय। वे सब एक चान्दनी रात्रि में भगवान् के सम्मुख पहुँचे। पहुँच कर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हुए उन में से असम देवपुत्र ने *पूरणकाश्यप* (तीर्थङ्कर) को लक्ष्य कर भगवान् के सम्मुख यह गाथा पढी—

"यदि कोई पुरुष को मारे या काटे, या किसी को नष्ट कर दे, तो काश्यप तीर्थङ्कर उसमें अपना पाप या पुण्य नहीं मानते। उन्होंने यह बहुत विश्वस्त एवं प्रामाणिक उपदेश किया है। वे गुरु (शास्ता) सदृश सम्मान के पात्र हैं।"

तदनन्तर सहलि देवपुत्र ने *मक्खलिगोसाल* (तीर्थङ्कर) को लक्ष्य कर यह गाथा, भगवान् के सम्मुख कही—

अथ खो नीको देवपुत्तो **निगण्ठं नाटपुत्तं** आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"जेगुच्छी निपको भिक्खु, चातुयामसुसंवुतो। [N.65]
निट्ठं सुतं च आचिक्खं, न हि नून किब्बिसी सिया" ति॥

अथ खो आकोटको देवपुत्तो **नानातित्थिये** आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"पकुधको कातियानो निगण्ठो, ये चापिमे मक्खलिपूरणासे।
गणस्स सत्थारो सामञ्ञप्पत्ता, न हि नून ते सप्पुरिसेहि दूरे" ति॥

अथ खो बेगब्भरि देवपुत्तो आकोटकं देवपुत्तं गाथाय पच्चभासि—

"सहाचरितेन छवो सिगलो, न कोत्थुको सीहसमो कदाचि।
नग्गो मुसावादी गणस्स सत्था, सङ्कस्सराचारो न सतं सरिक्खो" ति॥

अथ खो मारो पापिमा बेगब्भरिं देवपुत्तं अन्वाविसित्वा भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि— [B.67, R.67]

"(हमारे मक्खलि गोसाल) कठिन तपश्चर्या तथा पापजुगुप्सा से संयत, मौनी, कलहत्यागी, शान्तचित्त, दोषों से विरत, सत्यवादी हैं। उन जैसा ज्ञानी कभी पापपङ्क में निमग्न नहीं हो सकता॥"

तब नीक देवपुत्र ने *निगण्ठ नातपुत्र* को लक्ष्य कर भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—"(निगण्ठ नाटपुत्त) पाप से घृणा करने वाले, चतुर, भिक्षु, चारों यामों में सुसंवृत रहने वाले, देखे सुने को ही कहने वाले (सत्यवादी) हैं। अतः उनसे किसी पाप के होने की आशङ्का ही नहीं है॥"

तब आकोटक देवपुत्र भी अनेक तीर्थङ्करों के विषय में यह गाथा बोला—"प्रकुध कात्यायन, निगण्ठ तथा मक्खलि गोसाल या पूरण काश्यप-ये सभी श्रामण्य को पाने वाले गणों के नायक हैं। अवश्य ही ये सत्पुरुषों से दूर नहीं हो सकते!"॥

तब वेगब्भरि देवपुत्र ने आकोटक देवपुत्र को (धमकाते हुए) यह गाथा कही—"जैसे हुआँ हुआँ कर रोने वाले शव के समान साधारण शृगाल किसी सिंह की बराबरी नहीं कर सकता; उसी तरह यह नग्न, असत्यवादी, साधारण (छोटे से) गण का शास्ता, शङ्कास्पद चरित्र वाला यह तीर्थङ्कर सज्जन तीर्थङ्करों की समानता क्या करेगा!"॥

इसी समय पापी मार वेगब्भरि देवपुत्र के शरीर में प्रविष्ट होते हुए भगवान् के सम्मुख यों बोला—

"तपोजिगुच्छाय आयुत्ता, पालयं पविवेकियं।
रूपे च ये निविट्ठासे, देवलोकाभिनन्दियो।
ते वे सम्मानुसासन्ति, परलोकाय मातिया" ति॥

४५. अथ खो भगवा, 'मारो अयं पापिमा' इति विदित्वा, मारं पापिमन्तं गाथाय पच्चभासि—

"ये केचि रूपा इध वा हुरं वा, ये चन्तलिक्खस्मिं पभासवण्णा।
सब्बे व ते ते नमुचिप्पसत्था, आमिसं व मच्छानं वधाय खित्ता" ति॥

४६. अथ खो माणवगामियो देवपुत्तो भगवन्तं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि—

[N.66] "विपुलो राजगहीयानं, गिरिसेट्ठो पवुच्चति।
सेतो हिमवतं सेट्ठो, आदिच्चो अघगामिनं॥
"समुद्दो उदधीनं सेट्ठो, नक्खत्तानं व चन्दिमा।
सदेवकस्स लोकस्स, बुद्धो अग्गो पवुच्चती" ति॥

नानातित्थियवग्गो ततियो॥

"तप और दुष्कर क्रिया में जो संलग्न हैं, जो एकान्त में रहकर उनका दृढता से पालन करते हैं, तथा जो सांसारिक रूप में आसक्त हैं, वे देवलोक में जाकर आनन्द लूटने वाले हैं, वे ही परलोक बनाने का सदुपदेश करते हैं॥

४५. तब भगवान् ने तत्काल समझ लिया—'यह पापी मार बोल रहा है'। मार को लक्ष्य कर उन्होंने यह उत्तर गाथा के माध्यम से ही दिया—

"जितने भी रूप इस लोक या परलोक में या आकाश में चमकदमक वाले दिखायी देते हैं, वे सभी नमुचि (पापी मार) द्वारा प्रशस्त (प्रशंसा प्राप्त) हैं। इन को उसी तरह समझना चाहिये जैसे किसी मछुआरे ने मछली पकड़ने के लिये उन्हें मुग्ध करने के लिये स्थान स्थान पर मांस के टुकड़े फेंक रखे हों"॥

४६. तब माणवगोमिय देवपुत्र ने भगवान् (बुद्ध) को लक्ष्य कर ये गाथाएँ कहीं—

"राजगृह प्रदेश के पर्वतों में विपुल (पर्वत) श्रेष्ठ कहा जाता है। श्वेत पर्वत (कैलाश) हिमालय पर्वतशृङ्खला में श्रेष्ठ कहलाता है। आकाशचारियों में सूर्य श्रेष्ठ कहलाता है।

जैसे जलाशयों में समुद्र श्रेष्ठ कहलाता है, नक्षत्रों में चन्द्रमा श्रेष्ठ कहलाता है; वैसे ही देवताओं सहित समस्त लोक में बुद्ध ही प्रमुख कहलाते हैं॥

नानातीर्थिकवर्ग तृतीय समाप्त॥

तस्सुद्दानं

सिवो खेमो च सेरी च, घटीजन्तु च रोहितो।
नन्दो नन्दिविसालो च, सुसिमो नानातित्थियेन ते दसा ति॥

देवपुत्तसंयुत्तं समत्तं॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. शिव, २. क्षेम, ३. स्वैरी, ४. घटीकार, ५. जन्तु, ६. रोहिताश्व, ७. नन्द, ८. नन्दिविशाल, ९. सुसीम एवं १०. नानातीर्थिकश्रावक सूत्र॥

देवपुत्रसंयुक्त द्वितीय समाप्त॥

३. कोसलसंयुत्तं

१. पठमो वग्गो

१. दहरसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; [N.67, B.68, R.68] उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—"भवं पि नो गोतमो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति पटिजानाती" ति?

"यं हि तं, महाराज, सम्मा वदमानो वदेय्य—'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति, ममेव तं सम्मा वदमानो वदेय्य। अहं हि, महाराज, अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो" ति।

"ये पि ते, गोतम, समणब्राह्मणा सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स, सेय्यथीदं—पूरणो कस्सपो, मक्खलि गोसालो, निगण्ठो नाटपुत्तो, सञ्चयो वेलट्ठपुत्तो, पकुधो कच्चायनो, अजितो केसकम्बलो; ते पि

---

३. कोसलसंयुक्त

१. प्रथम वर्ग

१. दहरसूत्र : : इन चार को हीन न समझें

१. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती** में अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवन में साधनाहेतु विराजमान थे। तब राजा प्रसेनजित् कौसल जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् से मिल कर आनन्दित होकर कुशल-मङ्गल पूछते हुए एक तरफ बैठ गये। एक ओर बैठे कौसलराज प्रसेनजित् ने भगवान् से यह कहा—"आप गौतम भी क्या अनुत्तर (अद्वितीय) पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त कर लेने का दावा (गर्वोक्ति) करते हैं?

"महाराज! यदि कोई किसी को वस्तुतः सम्यक्सम्बुद्ध कहे तो वह मुझ को ही सम्बुद्ध कह सकता है; क्यों कि महाराज! मैंने ही वह अद्वितीय सम्बुद्धत्व प्राप्त किया है।

(राजा—) " भो गोतम! ये जो दूसरे श्रमण ब्राह्मण हैं, ये भी सङ्घ वाले, गणवाले, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, तीर्थङ्कर, साधुजनों द्वारा सम्मानित हैं; जैसे—१. पूरण

मया 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति पटिजानाथा?' ति पुट्ठा समाना 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति न पटिजानन्ति; किं पन भवं गोतमो दहरो चेव जातिया नवो च पब्बज्जाया'' ति?

२. ''चत्तारो खो मे, महाराज, दहरा ति न उञ्ञातब्बा, दहरा ति न परिभोतब्बा। कतमे चत्तारो? खत्तियो खो, महाराज, दहरो ति न उञ्ञातब्बो, [R.69] दहरो ति न परिभातब्बो। उरगो खो, महाराज, दहरो ति न उञ्ञातब्बो, दहरो ति न परिभोतब्बो। अग्गि खो, महाराज, दहरो ति न उञ्ञातब्बो, दहरो ति न परिभोतब्बो। भिक्खु, खो, महाराज, दहरो ति न उञ्ञातब्बो, दहरो ति न परिभोतब्बो। इमे खो, महाराज, चत्तारो दहरा ति न उञ्ञातब्बा, दहरा ति न परिभोतब्बा'' ति।

३. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

(क)''खत्तियं जातिसम्पन्नं, अभिजातं यसस्सिनं। [N.68, B.69]
दहरो ति नावजानेय्य, न नं परिभवे नरो॥
''ठानं हि सो मनुजिन्दो, रज्जं लद्धान खत्तियो।
सो कुद्धो राजदण्डेन, तस्मिं पक्कमते भुसं।
तस्मा तं परिवज्जेय्य, रक्खं जीवितमत्तनो॥

(ख)''गामे वा यदि वा रञ्ञे, यत्थ पस्से भुजङ्गमं।

काश्यप, २. मक्खलि गोसाल, ३. निगण्ठ नाटपुत्र, ४. सञ्जय वेलट्ठिपुत्र, ५. प्रकुध कात्यायन एवं ६. अजित केशकम्बली। वे भी पूछे जाने पर स्वयं के लिये यह नहीं कह पाते कि हमने ही सम्बुद्धत्व प्राप्त कर लिया है; फिर आप तो अभी आयु में युवक ही हैं, प्रवज्या भी आपने अभी ही ली है?''

२. ''महाराज! इन चार को छोटा न समझना चाहिये, न इनके साथ छोटा समझकर व्यवहार करना चाहिये। कौन से चार? १. किसी राजा को 'छोटा है' यह न समझना चाहिये, न छोटा समझकर उसके साथ कोई व्यवहार करना चाहिये। २. किसी विषधर सर्प को छोटा न...पूर्ववत्...। ३. अग्नि को छोटा न...पूर्ववत्...। ४. किसी भिक्षु को छोटा न समझना चाहिये, न उसके साथ 'छोटा' समझकर व्यवहार करना चाहिये। महाराज! इन चार के साथ छोटा जानकर...व्यवहार नहीं करना चाहिये।

३. भगवान् ने यह कहा। यह कहकर सुगत ने पुनः ये गाथाएँ कही—

(क) **क्षत्रिय**—उच्च कुलोत्पन्न, महान्, यशस्वी क्षत्रिय को 'छोटा है'—यह जानकर कम न समझे, न इसका अपमान ही करे॥

क्यों कि वह राजा का अधिकार पाकर प्रजा का अधिपति बनता है। वह क्रुद्ध होने

दहरो ति नावजानेय्य, न नं परिभवे नरो।
"उच्चावचेहि वण्णेहि, उरगो चरति तेजसी।
सो आसज्ज डंसे बालं, नरं नारिं च एकदा।
तस्मा तं परिवज्जेय्य, रक्खं जीवितमत्तनो॥
(ग) "पहूतभक्खं जालिनं, पावकं कण्हवत्तनिं।
दहरो ति नावजानेय्य, न नं परिभवे नरो॥
"लद्धा हि सो उपादानं, महा हुत्वान पावको।
सो आसज्ज डहे बालं, नरं नारिं च एकदा।
तस्मा तं परिवज्जेय्य, रक्खं जीवितमत्तनो॥
"वनं यदग्गि डहति, पावको कण्हवत्तनी।
जायन्ति तत्थ पारोहा, अहोरत्तानमच्चये॥
(घ)"यञ्च खो सीलसम्पन्नो, भिक्खु डहति तेजसा।

पर पूर्ण राजशक्ति से अपना प्रतीकार (बदला) लेता है। अतः आत्मरक्षा चाहने वाला पुरुष उसके क्रोध से दूर ही रहे। तथा उसके विरुद्ध कोई कार्य न करे।

(ख) **विषधर सर्प**—ग्राम या अरण्य, जहाँ भी कहीं किसी विषधर सर्प को देखे तो उसको छोटा समझकर उसकी उपेक्षा या तिरस्कार नहीं करना चाहिये।

जंगल में यहाँ वहाँ अनेक प्रकार के रंग-विरंगे साँप घूमते हैं, जो कि प्रभाव में बहुत प्रतापी होते हैं। असावधान रहने वालों को वे डँस लेते हैं, फिर भले ही वह स्त्री हो या पुरुष। अतः आत्मरक्षाहेतु मनुष्य को सर्प से भी दूर ही रहना चाहिये, न उसका अनादर ही करना चाहिये॥

(ग) **अग्नि**—सर्वभक्षी, लपलपाती ज्वालाओं (लपटों) वाली, काले धूँए वाली अग्नि को भी कम (हीन) न समझे, न उसका अनादर ही करे।

क्यों कि इन्धन पाकर बहुत विशाल रूप धारण करने वाली वह अग्नि किसी भी स्त्री या पुरुष को निरपेक्ष भाव से जला डालती है। अतः स्वप्राणरक्षार्थ पुरुष अग्नि को भी हीन न समझे, न उसका अनादर ही करे।

यह तो उस अग्नि का उपकार ही समझिये कि वह जिस वन को सर्वांशतः जला डालती है, वही वन पुनः कुछ काल बाद, नये पल्लवों, शाखाओं तथा पुष्पों से लहलहा उठना है।

न तस्स पुत्ता पसवो, दायादा विन्दरे धनं।
अनपच्चा अदायादा, तालावत्थू भवन्ति ते॥
[R.70] "तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो।
भुजङ्गमं पावकं च, खत्तियं च यसस्सिनं।
भिक्खुं च सीलसम्पन्नं, सम्मदेव समाचरे" ति॥

४. एवं वुत्ते, राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—[N.69, B.70] "अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जयेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्म च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं, भन्ते, भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति। ●

२. पुरिससुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा

(घ) **भिक्षु**—किन्तु शीलसम्पन्न भिक्षु जिसको स्वतेज से भस्म कर डालता है, उसके न पुत्र बचते हैं, न पशु, न उसका धन ही अवशिष्ट रह पाता है; अपितु उसको स्थाणु (ठूँठ) की तरह अपना अवशिष्ट जीवन यापन करता है॥

अत: बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह अपना हित देखता हुआ राजा, सर्प, अग्नि एवं शीलसम्पन्न भिक्षु के साथ सदा सद्व्यवहार ही करे॥

४. ऐसा कहे जाने पर, राजा प्रसेनजित् कौसल भगवान् से यों बोले—"भन्ते! आपने बहुत उचित कहा, सर्वथा उचित कहा! भन्ते! जैसे कोई ओंधे (उलटे) पात्र को सीधा कर दे, ढके हुए को खोल दे, अज्ञ को मार्ग बता दे, या कोई अन्धकार में दीपक हाथ में लेकर खड़ा हो जाय कि आने जाने वाले लोग भली भाँति मार्ग देख लें; इसी तरह आप ने धर्म (कर्तव्य) को अनेक प्रकार से समझा दिया। अत: मैं, भन्ते! स्वयं आप की शरण में जाता हूँ। आपके द्वारा उपदिष्ट धर्म तथा आपके द्वारा अनुशासित भिक्षुसङ्घ की शरण में जाता हूँ। आज से, भगवान् मुझ को मेरे जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक मानें॥ ●

२. पुरुषसूत्र : : तीन अहितकर धर्म

५. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौसल ने

पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—"कति नु खो, भन्ते, पुरिसस्स धम्मा अज्झत्तं उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अहिताय दुक्खाय अफासुविहारया" ति?

"तयो खो, महाराज, पुरिसस्स धम्मा अज्झत्तं अप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराय। कतमे तयो? **लोभो** खो, महाराज, पुरिसस्स धम्मो अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराय। **दोसो** खो, महाराज, पुरिसस्स धम्मो अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराय। **मोहो** खो, महाराज, पुरिसस्स धम्मो अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराय। इमे खो, महाराज, तयो पुरिसस्स धम्मा अज्झत्तं उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराया" ति।

६. इदमवोच...पे०...।

"लोभो दोसो च मोहो च, पुरिसं पापचेतसं।
हिंसन्ति अत्तसम्भूता, तचसारं व सम्फलं" ति॥ •

३. जरामरणसुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं [R.71] एतदवोच—"अत्थि नु खो, भन्ते, जातस्स अञ्ञत्र जरामरणा" ति?

भगवान् से यों पूछा—"भन्ते! पुरुष के मन (अध्यात्म) में कितने ऐसे धर्म उत्पन्न होते हैं जो उसके अहित, दुःख एवं कष्ट के लिये होते हैं?

(भगवान्—) "महाराज! पुरुष के मन में तीन ऐसे धर्म उत्पन्न होते हैं जो उसके अहित दुःख एवं कष्ट के लिये होते हैं। कौन से तीन? जैसे—१. पुरुष के मन में **लोभ** उत्पन्न होता है जो उसके अहित...। २. पुरुष के मन में **द्वेष** उत्पन्न होता है जो उसके अहित...। एवं ३. पुरुष के मन में **मोह** उत्पन्न होता है जो उसके अहित दुःख एवं कष्ट के लिये होता है। महाराज! पुरुष के मन में यही तीन धर्म उत्पन्न होते हैं जो उसको अहित, दुःख एवं कष्ट के लिये होते हैं"।

६. भगवान् यों बोले। तथा अपने कथन से सम्बद्ध यह गाथा भी कही—

"पाप का चिन्तन करने वाले पुरुष के मन में ये तीन धर्म उत्पन्न होते हैं, जैसे—१. लोभ, २. द्वेष एवं ३. मोह। ये तीनों अपने अधिष्ठान मन में उत्पन्न होकर उसको उसी तरह अपने उत्पाद के बाद नष्ट कर देते हैं, जैसे—केले का फल केला वृक्ष (त्वक्सार) को नष्ट कर देता है॥" •

[N.70] ''नत्थि खो, महाराज, जातस्स अञ्ञत्र जरामरणा। ये पि ते, महाराज, खत्तियमहासाला अड्ढा महद्धना महाभोगा पहूतजातरूपरजता पहूतवित्तूपकरणा पहूतधनधञ्ञा [B.71] तेसं जातानं नत्थि अञ्ञत्र जरामणा। ये पि ते, महाराज, ब्राह्मणमहासाला...पे०...गहपतिमहासाला अड्ढा महद्धना महाभोगा पहूतजातरूपरजता पहूतवित्तूपकरणा पहूतधनधञ्ञा, तेसं पि जातानं नत्थि अञ्ञत्र जरामरणा। ये पि ते, महाराज, भिक्खू अरहन्तो खीणासवा वुसितवन्तो कतकरणीया ओहितभारा अनुप्पत्त-सदत्था परिक्खीणभवसंयोजना सम्मदञ्ञाविमुत्ता, तेसं पायं कायो भेदनधम्मो निक्खेपनधम्मो'' ति।

८. इदमवोच ... पे० ...।

''जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता, अथो सरीरं पि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति, सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ती'' ति॥[ध. प. १५१ गा.]

---

३. जरामरणसूत्र (राजरथसूत्र) : : सद्धर्म जीर्ण नहीं होता

७. यह सूत्र भी **श्रावस्ती** में ही...। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौसल ने भगवान् से पूछा—''क्या संसार में ऐसा भी कुछ है जो जन्म लेकर पुराना (जीर्ण) होता हो, न मरता हो?''

(भगवान्—) ''महाराज! ऐसा कुछ नहीं है जो न पुराना (जीर्ण) होता हो, न मरता हो। महाराज! जो बड़े बड़े वैभवशाली उच्च क्षत्रियपरिवार हैं, जिनके पास प्रभूत धन धान्य है, प्रभूत वैभव (सम्पत्ति) के साधन हैं, जिनके पास अत्यधिक सोना चान्दी का भाण्डागार है, उन को भी जनम लेने के बाद बुढापा एवं मृत्यु दयावश छोड़ दे—ऐसा नहीं होता। जो बड़े बड़े वैभवशाली ब्राह्मण परिवार हैं...पूर्ववत्...गृहपति परिवार एवं भिक्षु है, जो (धर्म-) साधना पूर्ण कर चुके हैं...जिन्होंने अपने सभी कर्तव्य पूर्ण कर लिये हैं, जिनका सांसारिक भार उतर चुका है, जो परमार्थ को प्राप्त कर चुके हैं, जिनके भवबन्धक कट चुके हैं, जो परम ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, ऐसे उन भिक्षुओं का भी शरीर से एक दिन साथ छूट जाता है तथा यह निरर्थक हो जाता है।''

८. भगवान् ने यह कहा। तथा साथ ही उन्होंने अपने इस मत के समर्थन में यह गाथा भी कही—

''अच्छे अच्छे वैभवशाली राजाओं के चित्र विचित्र (सुसज्जित) रथ भी एक दिन जीर्ण हो जाते है, पुराना पड़े जाते हैं। एक दिन सभी का यह शरीर भी वार्धक (बुढापा) को प्राप्त कर लेता है। हाँ, सन्तों का धर्म कभी पुराना (जीर्ण) नहीं होता। सन्त लोग सत्पुरुषों से यही कहते हैं॥'' [ध. प. १५१ गा.]

●

४. पियसुत्तं

९. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– "इध मय्हं,भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि–'केसं नु खो पियो अत्ता, केसं अप्पियो अत्ता' ति? तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि–'ये च खो केचि कायेन दुच्चरितं चरन्ति, वाचाय दुच्चरितं चरन्ति, मनसा दुच्चरितं चरन्ति, तेसं अप्पियो अत्ता'। किञ्चा [R.72] पि ते एवं वदेय्युं–'पियो नो अत्ता' ति, अथ खो तेसं अप्पियो अत्ता। तं किस्स हेतु? यं हि अप्पियो अप्पियस्स करेय्य तं ते अत्तना व अत्तनो करोन्ति; तस्मा तेसं अप्पियो अत्ता। ये च खो केचि कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचाय सुचरितं चरन्ति, मनसा सुचरितं चरन्ति; तेसं पियो अत्ता। किञ्चा पि ते एवं वदेय्यु–'अप्पियो नो अत्ता' ति; अथ खो तेसं पियो अत्ता। तं किस्स हेतु? यं हि पियो पियस्स करेय्य तं ते अत्तना व अत्तनो करोन्ति; तस्मा तेसं पियो अत्ता" ति।

१०. एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! ये हि केचि, महाराज, कायेन दुच्चरितं चरन्ति, वाचाय दुच्चरितं चरन्ति, मनसा दुच्चरितं चरन्ति; तस्मा तेसं अप्पियो [N.71] अत्ता। किञ्चा पि ते एवं वदेय्युं–'पियो नो अत्ता' ति, अथ खो तेसं अप्पियो

---

४. प्रियसूत्र : : **अपना प्रिय कौन?**

९. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौसल ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! यहाँ एकाकी बैठे ध्यान करते हुए मेरे मन में ऐसा वितर्क उठा—'अपने प्रति किसको स्नेह है? किनको स्नेह नहीं है?' तब मुझे (इस के समाधान में) यों लगा—जो पुरुष अपनी काया से दुराचरण करते हैं, वाणी से दुराचरण करते हैं, मन से दुराचरण करते हैं। भले ही वे यह कहते रहें—मुझे अपने प्रति स्नेह है, परन्तु वस्तुतः उनको अपने प्रति कोई स्नेह नहीं है; क्यों कि वे वही दुराचरण कर रहे हैं, जो एक शत्रु शत्रु के प्रति किया करता है। (परिणाम में ये दुराचरण उनको कष्ट ही देंगे, अतः कैसे समझें कि उनको अपने प्रति कोई स्नेह है!) इसके विपरीत, जो पुरुष अपनी काया से, अपनी वाणी से, अपने मन से सदाचरण करता है, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उसे अपने प्रति स्नेह है। भले ही वह कहता रहे—'मुझे अपनी काया आदि के प्रति कोई स्नेह नहीं है। परन्तु वस्तुतः उसको अपने प्रति स्नेह है। तभी तो वह अपनी काया वाणी तथा मन से ऐसा सदाचरण करता है जो एक मित्र अपने मित्र के प्रति किया करता है। अतः यही मानना पड़ता है कि उसको अपने प्रति स्नेह है'।"

१०. "यही बात है, महाराज! यही बात है! जो कोई पुरुष अपनी काया से, अपनी

अत्ता। तं किस्स हेतु। यं हि, महाराज, अप्पियो अप्पियस्स करेय्य तं ते अत्तना व अत्तनो करोन्ति; तस्मा तेसं अप्पियो अत्ता। ये च खो केचि, महाराज, कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचाय सुचरितं चरन्ति, मनसा सुचरितं चरन्ति; तेसं पियो अत्ता। [B.72] किञ्चा पि ते एवं वदेय्युं—'अप्पियो नो अत्ता' ति; तेसं पियो अत्ता। तं किस्स हेतु? यं हि, महाराज, पियो पियस्स करेय्य, तं ते अत्तना व अत्तनो करोन्ति; तस्मा तेसं पियो अत्ता'' ति।

११. इदमवोच ... पे० ...।

''अत्तानं चे पियं जञ्ञा, न नं पापेन संयुजे।
न हि तं सुलभं होति, सुखं दुक्कटकारिना॥
''अन्तकेनाधिपन्नस्स, जहतो मानुसं भवं।
किं हि तस्स सकं होति, किञ्च आदाय गच्छति।
किञ्चस्स अनुगं होति, छाया व अनपायिनी॥
''उभो पुञ्ञं च पापं च, यं मच्चो कुरुते इध।
तं हि तस्स सकं होति, तं व आदाय गच्छति।
तं वस्स अनुगं होति, छाया व अनपायिनी॥
''तस्मा करेय्य कल्याणं, निचयं सम्परायिकं।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं'' ति॥ •

वाणी से अपने मन से दुराचरण करते है, उनको अपने आप से कोई स्नेह नहीं है, भले ही वह कहता रहे...पूर्ववत्...उसको अपने प्रति स्नेह है।''

११.भगवान् ने यह कहा। साथ ही अपने उपदेश के संवर्धन में ये गाथाएँ भी कहीं—

'' जिसे अपने प्रति स्नेह है वह अपने को पाप में न प्रवृत्त करे; क्यों कि पापी (दुराचारी) को कभी सुख सुलभ नहीं होता॥

''इस मानव देह के पात के बाद, मृत्यु के अधीन होने पर उसका अपना क्या रह जाता है, जिसे साथ ले कर वह जा सके! छाया की तरह उसका पीछा करने वाला उस समय कौन होगा!॥

''मनुष्य इस लोक में जो भी पुण्य या पाप करता है वही उसका अपना होता है तथा उसी को साथ लेकर वह जाता है। वही उसके साथ (पीछे पीछे) जाता है, जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली छाया॥

५. अत्तरक्खितसुत्तं

१२. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—"इध मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'केसं नु खो रक्खितो अत्ता, केसं अरक्खितो अत्ता' ति? तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—'ये खो केचि कायेन दुच्चरितं चरन्ति, वाचाय दुच्चरितं चरन्ति, मनसा दुच्चरितं चरन्ति; तेसं अरक्खितो अत्ता। किञ्चा पि ते हत्थिकायो वा रक्खेय्य [R.73] अस्सकायो वा रक्खेय्य रथकायो वा रक्खेय्य पत्तिकायो वा रक्खेय; अथ खो [N.72] तेसं अरक्खितो अत्ता। तं किस्स हेतु? बाहिरा हेसा रक्खा,नेसा रक्खा अज्झत्तिका; तस्मा तेसं अरक्खितो अत्ता। ये च खो केचि कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचाय सुचरितं, मनसा सुचरितं चरन्ति; तेसं रक्खितो अत्ता। किञ्चा पि ते नेव हत्थिकायो रक्खेय्य, न अस्सकायो रक्खेय्य, न रथकायो रक्खेय्य, न पत्तिकायो [B.73] रक्खेय्य; अथ खो तेसं रक्खितो अत्ता। तं किस्स हेतु? अज्झत्तिका हेसा रक्खा, नेसा रक्खा बाहिरा; तस्मा तेसं रक्खितो अत्ता" ति।

१३. "एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! ये हि केचि, महाराज, कायेन दुच्चरितं चरन्ति...पे०...तेसं अरक्खितो अत्ता। तं किस्स हेतु? बाहिरा हेसा रक्खा,

---

"अत: मनुष्य अपना यह लोक तथा परलोक कल्याणमय बनाने के लिये स्थायी कल्याणकर्मों का संग्रह करे; क्यों कि पुण्यकार्य ही प्राणियों का परलोक में आधार (प्रतिष्ठा= सहारा) होता है॥"

•

५. आत्मरक्षितसूत्र : : **आत्मरक्षा**

१२. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। एक ओर बैठे हुए राजा प्रसेनजित् कौसल ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! यहाँ एकाकी बैठकर विचार करते हुए मेरे मन में यह वितर्क उठा—'किसने आत्मरक्षा की है, तथा किसने आत्मरक्षा नहीं की?' तदनन्तर, मेरे मन में इसका यह उत्तर आया—जो पुरुष शरीर से दुराचार करते हैं, वाणी से दुराचार करते हैं, मन से दुराचार करने की सोचते हैं, वे आत्मरक्षा नहीं करते; भले ही उनकी रक्षा के लिये हाथी, घोड़े तथा पदाति सेना नियुक्त हो, फिर भी उनकी वास्तविक रक्षा नहीं होती; क्योंकि ऐसी रक्षा तो बाह्य रक्षा ही होगी, यह आध्यात्मिक रक्षा नहीं होगी। इसके विपरीत, जो काय से वाणी से तथा मन से सच्चरित्र रहते है, भले ही तब उनकी बाह्य रक्षा के लिये हाथी घोड़े या पदाति सैनिक नियुक्त न हों तो भी वे आध्यात्मिक रूप से तो सुरक्षित हैं ही; अत: उनको आध्यात्मिक रूप से सुरक्षित माना ही जाना चाहिये।"

नेसा रक्खा अज्झत्तिका; तस्मा तेसं अरक्खितो अत्ता। ये हि केचि, महाराज, कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचाय सुचरितं चरन्ति, मनसा सुचरितं चरन्ति; तेसं रक्खितो अत्ता। किञ्चा पि ते नेव हत्थिकायो रक्खेय्य, न अस्सकायो रक्खेय्य, न रथकायो [B.73] रक्खेय्य, न पत्तिकायो रक्खेय्य, अथ खो तेसं रक्खितो अत्ता। तं किस्स हेतु? अज्झत्तिका हेसा, महाराज, रक्खा, नेसा रक्खा बाहिरा; तस्मा तेसं रक्खितो अत्ता'' ति।

१४. इदमवोच ... पे० ...।

''कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो लज्जी, रक्खितो ति पवुच्चती'' ति॥[द.—ध. प. ३६१ गा.]

६. अप्पकसुत्तं

१५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—''इध मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि— 'अप्पका ते सत्ता लोकस्मिं ये उळारे उळारे भोगे लभित्वा न चेव मज्जन्ति, न च पमज्जन्ति, न च कामेसु गेधं आपज्जन्ति, न च सत्तेसु विप्पटिपज्जन्ति। अथ खो एतेव बहुतरा सत्ता लोकस्मिं ये उळारे उळारे भोगे लभित्वा मज्जन्ति [R.74] चेव पमज्जन्ति च, कामेसु च गेधं आपज्जन्ति, सत्तेसु च विप्पटिपज्जन्ती''' ति।

---

१३. ''हाँ, महाराज! आपका कथन सर्वथा उचित है कि जो पुरुष शरीर से वाणी से, मन से...पूर्ववत्...आध्यात्मिक रूप से सुरक्षित माना ही जाना चाहिये।''

१४. भगवान् ने यों अनुमोदन किया। तथा इस अनुमोदन से सम्बद्ध यह गाथा कही—

''शरीर से संयम रखना उचित होता है, वाणी का संयम भी उचित है। मन का संयम भी उचित है। इन सबका संयम हमारे मत में सर्वथा उचित है। ऐसा पूर्ण संयमी साधक लज्जावान् तथा अध्यात्मरक्षक कहलाता है''॥ [द्र.—ध. प. ३६१ गा.] •

६. अल्पकसूत्र : : निर्लोभ पुरुष अल्प ही हैं

१५. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। एक ओर बैठे हुए राजा प्रसेनजित् ने भगवान् से कहा—''भन्ते! यहाँ एकाकी बैठकर विचार करते हुए मुझको यह वितर्क उत्पन्न हुआ—''संसार में ऐसे अल्प पुरुष ही हैं जो अत्यधिक वैभव का उपभोग करते हुए भी उसके कारण उन्मत्त न होते हों, लोभी न बन जाते हो, अन्य पुरुषों के प्रति दुराचारी न बन

१६. ''एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! अप्पका ते, महाराज, सत्ता लोकस्मिं ये उळारे उळारे भोगे लभित्वा न चेव मज्जन्ति, न च पमज्जन्ति, न च [N.73] कामेसु गेधं आपज्जन्ति, न च सत्तेसु विप्पटिज्जन्ति। अथ खो एतेव बहुतरा [B.74] सत्ता लोकस्मिं ये उळारे उळारे भोगे लभित्वा मज्जन्ति चेव पमज्जन्ति च, कामेसु च गेधं आपज्जन्ति, सत्तेसु च विप्पटिपज्जन्ती'' ति।

१७. इदमवोच ... पे० ...।

''सारत्ता कामभोगेसु, गिद्धा कामेसु मुच्छिता।
अतिसारं न बुज्झन्ति, मिगा कूटं व ओड्डितं।
पच्छासं कटुकं होति, विपाको हिस्स पापको'' ति॥ •

७. अत्थकरणसुत्तं

१८. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—''इधाहं, भन्ते, अत्थकरणे निसिन्नो पस्सामि खत्तियमहासाले पि ब्राह्मण-महासाले पि गहपतिमहासाले पि अड्ढे महद्धने महाभोगे पहूतजातरूपरजते पहूत-

---

जाते हों। अपितु ऐसे ही पुरुषों की यहाँ बहुलता मिलेगी जो अत्यधिक वैभव की तो बात कौन कहे, साधारण वैभव प्राप्त करके भी उन्मत्त हो जाते हैं, अत्यधिक लोभी बन जाते हैं, तथा दूसरे साधारण लोगों के प्रति दुराचारी बन बैठते हैं!''

१६. ''यही बात है, महाराज! आप उचित ही कह रहे हैं कि संसार में ऐसे पुरुष अल्प ही हैं जो अत्यधिक वैभव का उपभोग करते हुए भी...पूर्ववत्...अन्य प्राणियों के प्रति दुराचार नहीं करते।''

१७. भगवान् ने राजा की बात का यों अनुमोदन किया, तथा अपने इस अनुमोदन के पक्ष में यह गाथा कही—

''कामभोगों में आसक्त, इन कामगुणों के उपभोग में अन्धे बने, किसी भी सीमा की अपेक्षा (परवाह) नहीं करते। जैसे कि माँसखण्ड के लोभ में पड़े मृग व्याध के जाल की परवाह नहीं करते।

इसका परिणाम (विपाक) कटु ही होता है तथा फल भी दुःखदायी ही होता है॥•

७.अर्थकरणसूत्र : : न्यायालय में असत्यभाषण दुःखप्रद

१८. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौसल ने भगवान् से यों निवेदन किया—''भन्ते! जब मैं न्यायालय में निर्णय करने बैठता हूँ तो देखता हूँ कि बड़े बड़े, उच्च कुलोत्पन्न, वैभवशाली, महान् धनवान्, प्रभूत सोना चान्दी

वित्तूपकरणे पहूतधनधञ्ञे कामहेतु कामनिदानं कामाधिकरणं सम्पजानमुसा भासन्ते; तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—'अलं दानि मे अत्थकरणेन, भद्रमुखो दानि अत्थकरणेन पञ्ञायिस्सती'" ति।

१९. "एवमेतं, महाराज, एवमेतं महाराज! ये पि ते, महाराज, खत्तियमहासाला ब्राह्मणमहासाला गहपतिमहासाला अड्ढा महद्धना महाभोगा पहूतजातरूपजता पहूतवित्तूपकरणा पहूधनधञ्ञा कामहेतु कामनिदानं कामाधिकरणं सम्पजानमुसा भासन्ति; तेसं तं भविस्सति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया" ति

२०. इदमवोच ... पे० ...।

"सारत्ता कामभोगेसु, गिद्धा कामेसु मुच्छिता।
अतिसारं न बुज्झन्ति, मच्छा खिप्पं व ओड्डितं।
पच्छासं कटुकं होति, विपाको हिस्स पापको" ति॥ •

८. मल्लिकासुत्तं

२१. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन राजा पसेनदि [R.75, N.74] कोसलो मल्लिकाय देविया सद्धिं उपरिपासादवरगतो होति। अथ खो राजा पसेनदि

तथा अन्य उपकरणों से सम्पन्न एवं धन धान्यमुक्त क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति भी अपने सांसारिक कामभोगों के कारण उन कामभोगों के लिये, कामभोगों के विषय में जानते बूझते हुए असत्यभाषण करते हैं। उस समय मुझ को ऐसा लगने लगता है कि मैं अब न्यायालय में न बैठूँ तभी उचित होगा। अब मेरे अमात्य भद्रमुख ही यह सब देखें तो ठीक रहेगा।"

१९. "यही बात है, महाराज! यही बात है। बड़े बड़े उच्च कुलोत्पन्न...क्षत्रिय...भी अपने काम...जानते बूझते असत्यभाषण करते हैं। यह उनके लिये चिरकाल तक अहितकर एवं दुःखप्रद होता है।"

२०. भगवान् ने यह कहा। तथा अपने कथन के समर्थन में यह गाथा भी कहीं—

"कामभोगों में आसक्त कामभोगों के लोभ में अन्धे बने हुए इसमें किसी सीमा की अपेक्षा नहीं करते। जैसे कि मांसखण्ड के लोभ में पड़कर मछलियाँ मछुआरे की अपेक्षा नहीं करतीं। परिणामस्वरूप, लोगों को इसके अत्यधिक कटु एवं दुःखद फल भोगने पड़ते हैं॥" •

८. मल्लिकासूत्र : : स्व से अधिक कोई प्रिय नहीं

२१. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय राजा प्रसेनजित् कौसल अपनी रानी

कोसलो मल्लिकं देविं एतदवोच—"अत्थि नु खो ते, मल्लिके, कोचञ्ञो अत्तना पियतरो" ति?

"नत्थि खो मे, महाराज, कोचञ्ञो अत्तना पियतरो। तुय्हं पन, महाराज, [B.75] अत्थञ्ञो कोचि अत्तना पियतरो" ति?

"मय्हं पि खो, मल्लिके, नत्थञ्ञो कोचि अत्तना पियतरो" ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो पासादा ओरोहित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—"इधाहं, भन्ते, मल्लिकाय देविया सद्धिं उपरिपासादवरगतो मल्लिकं देविं एतदवोचं- 'अत्थि नु खो ते, मल्लिके, कोचञ्ञो अत्तना पियतरो' ति? एवं वुत्ते, भन्ते, मल्लिका देवी मं एतदवोच—'नत्थि खो मे, महाराज, कोचञ्ञो अत्तना पियतरो। तुय्हं पन, महाराज, अत्थञ्ञो कोचि अत्तना पियतरो' ति? एवं वुत्ताहं, भन्ते, मल्लिकं देविं एतदवोचं—'मय्हं पि खो, मल्लिके, नत्थञ्ञो कोचि अत्तना पियतरो'" ति।

२२. अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं गाथं अभासि—

"सब्बा दिसा अनुपरिगम्म चेतसा, नेवज्झगा पियतरमत्तना क्वचि।
एवं पियो पुथु अत्ता परेसं, तस्मा न हिंसे परमत्तकामो" ति॥ •

मल्लिकादेवी के साथ अपने महल में ऊपरी तल पर बैठे हुए थे। तब राजा ने मल्लिका देवी से पूछा—"मल्लिके! क्या तुम्हें अपने से बढकर कोई अन्य भी प्रिय है?"

"नहीं, महाराज, मुझे तो अपने से बढकर कोई अन्य प्रिय नहीं है। क्या आपको ऐसा है?"

(राजा—) "मल्लिके! मुझे भी अपने से बढकर कोई अन्य प्रिय नहीं है।"

तब राजा प्रसेनजित्, महल से उतर कर, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठकर भगवान् से यों बोले—"भन्ते! मैं अभी रानी मल्लिका देवी के साथ अपने महल के ऊपरी तल पर बैठा था। उससे मैंने पूछा—'मल्लिके! क्या तुम्हें...पूर्ववत्...मुझे भी कोई प्रिय नहीं है'।"

२२. भगवान् ने यह बात सुनकर इस गाथा के माध्यम से यह उत्तर दिया—

"जैसे तुमने सभी दिशाओं में अपने मन को दौड़ाया, परन्तु तुम्हें कहीं भी अपने से बढकर कोई प्रिय नहीं मिला। वैसे ही दूसरों को भी स्व ही अत्यधिक प्रिय होता है। अतः स्वहिताकांक्षी कभी दूसरे को कोई कष्ट न दे"॥ •

९. यञ्ञसुत्तं

२३. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स महायञ्ञो पच्चुपट्ठितो होति, पञ्च च उसभसतानि पञ्च च वच्छतरसतानि पञ्च च वच्छतरिसतानि पञ्च च अजसतानि पञ्च च उरब्भसतानि थूणूपनीतानि होन्ति यञ्ञत्थाय। ये पिस्स ते होन्ति दासा ति वा पेस्सा ति वा कम्मकरा ति वा ते पि दण्डतज्जिता भयतज्जिता अस्सुमुखा रुदमाना परिकम्मानि करोन्ति। [R.76]

अथ खो सम्बहुला भिक्खू पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीरवमादाय सावत्थि पिण्डाय पविसिंसु। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छा भत्तं पिण्डपात-[N.75] पटिक्कन्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"इध, भन्ते, रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स महायञ्ञो पच्चुपट्ठितो होति...पञ्च च अजसतानि पञ्च च उरब्भसतानि थूणूपनीतानि होन्ति यञ्ञत्थाय। ये पिस्स ते होन्ति दासा ति वा [B.76] पेस्सा ति वा कम्मकरा ति वा ते पि दण्डतज्जिता भयतज्जिता अस्सुमुखा रुदमाना परिकम्मानि करोन्ती" ति।

२४. अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि—

"अस्समेधं पुरिसमेधं, सम्मापासं वाजपेय्यं।
निरग्गळं महारब्भा, न ते होन्ति महप्फला॥

---

९. यज्ञसूत्र : : पञ्चविध यज्ञ

२३. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय राजा प्रसेनजित् कौसल ने एक महान् यज्ञ का समारम्भ किया था। उसमें पांच सौ बैल, पाँच सौ बछड़े, पाँच सौ बछडियाँ, पाँच सौ बकरियाँ, पाँच सौ भेड़ें—ये सभी पशु बलिकर्म हेतु खूटों से बन्धे हुए थे। वहाँ उसके जो दास दासी या कर्मकर थे वे दण्ड के भय से डर कर रोते हुए अपना अपना कार्य पूर्ण कर रहे थे।

तभी कुछ भिक्षु किसी दिन प्रात:काल अपने वस्त्र ठीककर, पात्र चीवर लेकर श्रावस्ती में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। भिक्षाकर्म से निवृत्त होकर, भोजन कर भगवान् के सम्मुख गये। वे वहाँ जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे वे भिक्षु भगवान् से यों बोले—"भन्ते! राजा प्रसेनजित् कौसल एक महान् यज्ञ कराने जा रहे हैं। उसमें पाँच सौ बैल...पूर्ववत्...पूर्ण कर रहे थे।"

२४. यह जान कर भगवान् के श्रीमुख से ये गाथाएँ निकलीं—

"अजेळका च गावो च, विविधा यत्थ हञ्ञरे।
न तं सम्मग्गता यञ्ञं, उपयन्ति महेसिनो॥
"ये च यञ्ञा निरारब्भा, यजन्ति अनुकुलं सदा।
एतं सम्मग्गता यञ्ञं उपयन्ति महेसिनो॥
"एतं यजेथ मेधावी, एसो यञ्ञो महप्फलो।
एतं हि यजमानस्स, सेय्यो होति न पापियो।
यञ्ञो च विपुलो होति, पसीदन्ति च देवता" ति॥ •

१०. बन्धनसुत्तं

२५. तेन खो पन समयेन रञ्ञा पसेनदिना कोसलेन महाजनकायो बन्धापितो होति, अप्पेकच्चे रज्जूहि अप्पेकच्चे अन्दूहि अप्पेकच्चे सङ्खलिकाहि।

अथ खो सम्बहुला भिक्खू पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पविसिंसु। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन [R.77] भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"इध, भन्ते, रञ्ञा

"अश्वमेध, पुरुषमेध, सम्यक्पाश, वाजपेय—ऐसे महायज्ञ, जिनकी कोई सीमा नहीं है तथा जिनका आरम्भ बहुत सी हिंसाओं से आरम्भ होता है, ये महायज्ञ बहुत फलदायक नहीं होते॥

"जिनके सम्पादन में बहुत सी भेड़ बकरियों तथा गौ बैलों की हत्या होती है, सम्यग्दृष्टि महर्षि ऐसे यज्ञों के समालम्भ (हिंसा) में सम्मिलित नहीं हुआ करते॥

"परन्तु जो यज्ञ हिंसाविहीन हैं जिनका आरम्भ कुलपरम्परा से होता आया हैं; जिनमें भेड़ बकरी, गौ या बछड़े-बछड़ियों की हत्या नहीं होती ऐसे ही यज्ञों में वे सम्यग्दृष्टि महर्षि सम्मिलित हुआ करते हैं॥

"बुद्धिमान् पुरुष को ऐसे ही यज्ञों का आयोजन करना चाहिये। ऐसे ही विहित यज्ञ फलदायक होते है। इससे यजमान का हित ही होता है, अहित नहीं। तथा यह यज्ञ भी सुगमता से सम्पन्न हो जाता है, तथा इसके फलस्वरूप देवता भी प्रसन्न होते हैं॥" •

१०. बन्धनसूत्र : : दृढबन्धन

२५. ...। उस समय कौसल के राजा प्रसेनजित् ने बहुत से नागरिकों को बन्दी बना लिया था, किसी को रस्सियों के बन्धवा रखा था, किसी को बेड़ियाँ डलवा रखी थी, किसी को लोहे की जञ्जीरों से बांध रखा था।

तब बहुत से भिक्षु प्रात:काल अपने पहनने के वस्त्र ठीक कर पात्र चीवर लेकर

पसेनदिना कोसलेन महाजनकायो बन्धापितो, अप्पेकच्चे रज्जूहि अप्पेकच्चे [N.76] अन्दूहि अप्पेकच्चे सङ्खलिकाही'' ति।

२६. अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि—

''न तं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा, यदायसं दारुजं पब्बजं च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु, पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा॥
''एतं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा, ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं।
एतं पि छेत्वान परिब्बजन्ति, अनपेक्खिनो कामसुखं पहाया'' ति॥

(ध०प०, त०व० ३४५ गा०) •

पठमो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

दहरो पुरिसो जरा, पियं अत्तानरक्खितो।
अप्पका अत्थकरणं, मल्लिका यञ्ञबन्धनं ति॥

श्रावस्ती में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए! वे भोजन करने के बाद...भगवान् से यों निवेदन किया—''भन्ते! राजा प्रसेनजित् कौसल ने बहुत से नागरिकों को बाँध रखा है।''

२६. भगवान् ने यह बात सुनकर उस समय वे गाथाएँ कहीं—

धैर्यवान् पुरुष उसको दृढ बन्धन नहीं कहते जो लौह, काष्ठ या तृण समूह से बना हुआ हो। वस्तुत: जो पुरुष मणि कुण्डल आदि में आसक्त हो जाता है, या स्त्री पुत्रादि में जो अपेक्षा रखता है इसी को पण्डितों ने 'दृढ बन्धन' कहा है।

ऐसा बन्धन पुरुष को अध:पतन की तरफ ले जाता है, यह सूक्ष्म है तथा कठिनता से खुल पाता है। संसार के प्रति अपेक्षा (परवाह) न रखने वाले बुद्धिमान् लोग ऐसे बन्धनों को भी काट कर कामभोगों का त्याग कर प्रव्रजित हो जाते हैं॥

(धम्मपद, तण्हावग्ग, ३४५ गा०) •

प्रथम वर्ग समाप्त॥

इसमें व्याख्यात सूत्रों की सूची—इस वर्ग में ये १० सूत्र व्याख्यात हैं—१. दहर, २. पुरुष, ३. जरामरण, ४. प्रिय, ५. आत्मरक्षित, ६. अल्पक, ७. अर्थकरण, ८. मल्लिकासूत्र, ९. यज्ञसूत्र एवं १०. बन्धनसूत्र॥ •

२. दुतियो वग्गो

११. सत्तजटिलसुत्तं

२७. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। तेन खो पन समयेन भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो बहिद्वारकोट्ठके निसिन्नो होति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

[R.78] तेन खो पन समयेन सत्त च जटिला सत्त च निगण्ठा सत्त च अचेलका सत्त च एकसाटका सत्त च परिब्बाजका परूळ्हकच्छनखलोमा खारिविविधमादाय भगवतो अविदूरे अतिक्कमन्ति। अथ खो राजा पसेनदिकोसलो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दक्खिणजाणुमण्डलं पठवियं निहन्त्वा येन ते सत्त च जटिला सत्त [B.78] च निगण्ठा सत्त च अचेलका सत्त च एकसाटका सत्त च परिब्बाजका [N.77] तेनञ्जलिं पणामेत्वा तिक्खतुं नामं सावेसि—"राजाहं, भन्ते, पसेनदि कोमलो ...पे0 ...राजाहं, भन्ते, पसेनदि कोसलो" ति।

२८. अथ खो राजा पसेनदि कोसलो अचिरपक्कन्तेसु तेसु सत्तसु च जटिलेसु सत्तसु च निगण्ठेसु सत्तसु च अचेलकेसु सत्तसु च एकसाटकेसु सत्तसु च

द्वितीय वर्ग

११. सप्तजटिलसूत्र : : बाह्य आवरण से वस्तुज्ञान असम्भव

२७. एक समय भगवान् **श्रावस्ती** के पूर्वाराम स्थित मृगारमाता प्रासाद में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् सायङ्काल के समय ध्यान साधना से उठकर आराम के बाह्य प्रकोष्ठ के द्वार पर बैठे थे। उसी समय राजा प्रसेनजित् कौसल भगवान् की सेवा में पहुँचे तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

उसी समय सात जटिल (तपस्वी), सात निगण्ठ, सात नग्न साधु, सात एकवस्त्रधारी तथा सात परिव्राजक, विविध वस्तुओं से भरे झोले (खारी) कन्धों पर लटकाये हुए, काँखों के बाल तथा हाथ पैरों के नख बढाये हुए, भगवान् के समीप से ही निकले। राजा प्रसेनजित् कौसल उन्हें देखकर आसन से उठकर, ऊपर का वस्त्र (दुपट्टा) एक कन्धे पर कर, दक्षिण जानु (गोड़ा) पृथ्वी पर टिकाकर, उन सात जटिल आदि साधु वेषधारियों को प्रणाम करते हुए तीन बार अपना नाम सुनाया—"मैं, भन्ते, राजा प्रसेनजित् कौसल हूँ। मैं...कौसल हूँ। मैं...कौसल हूँ।"

२८. तब राजा प्रसेनजित् कौसल उन पैंतीस साधुवेषधारी पुरुषों के कुछ आगे चले

परिब्बाजकेसु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—''ये ते, भन्ते, लोके अरहन्तो वा अरहत्तमग्गं वा समापन्ना एते तेसं अञ्ञतरा'' ति।

''दुज्जानं खो एतं, महाराज, तया गिहिना कामभोगिना पुत्तसम्बाधसयनं अज्झावसन्तेन कासिकचन्दनं पच्चनुभोन्तेन मालागन्धविलेपनं धारयन्तेन जातरूपरजतं सादियन्तेन—'इमे वा अरहन्तो, इमे वा अरहत्तमग्गं समापन्ना' ति।

''संवासेन खो; महाराज, सीलं वेदितब्बं। तं च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन।

संवोहारेन खो, महाराज, सोचेय्यं वेदितब्बं। तं च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन।

आपदासु खो, महाराज, थामो वेदितब्बो। सो च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोत; पञ्ञवता नो दुप्पञ्ञेन। [R.79]

जाने के बाद, पुन: लौटकर भगवान् के पास आये तथा उन साधुओं के विषय में बताया—''भन्ते! ये जो अभी आप के सामने से ३५ साधु गये हैं ये लोक में वर्तमान अर्हत् या अर्हन्मार्ग पर पहुँचे हुए साधुओं में से कुछ थे।''

''महाराज! आप जैसे कामभोगी, बाल बच्चों में घिरे रहने वाले, काशी का चन्दन लगाने वाले, माला गन्धद्रव्य एवं उबटन का प्रयोग करने वाले, सोना चाँदी एकत्र करने वाले गृहस्थों द्वारा यह जानना बहुत कठिन है कि कौन अर्हत् है ? या कौन अर्हन्मार्गारूढ है ?

''महाराज! किसी के साथ रहने से ही उसके आचरण की वास्तविकता जानी जा सकती है, वह भी बहुत काल तक साथ रहा जाय तभी जानी जा सकती है; यों साधारण रूप से दो चार दिन साथ रहकर उसे ठीक से नहीं पहचाना जा सकता। वह भी पूर्ण ध्यान देने पर कोई बुद्धिमान् ही उसे भी जान सकता है, साधारण मूर्ख जन उसे क्या समझ पायेंगे! (१)

''महाराज! व्यवहार करने पर ही किसी की विश्वसनीयता (ईमानदारी) ज्ञात हो पाती है, वह भी बहुत समय तक उसके साथ रहने पर ही। अन्यथा दो चार दिन तो कोई भी इस विश्वसनीयता का अभिनय कर सकता है! (२)

''महाराज! सङ्कटकाल में ही मनुष्य की स्थिरता या शक्ति का ज्ञान होता है; वह भी बहुत समय तक उसके सङ्कटकाल में रहने के बाद ही सचाई ज्ञात हो पाती है, दो चार दिन में नहीं। (३)

साकच्छाय खो, महाराज, पञ्ञा वेदितब्बा। सा च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेना'' ति।

''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं भन्ते! यावसुभासितमिदं, भन्ते, भगवता—'दुज्जानं खो एतं, महाराज, तया गिहिना कामभोगिना पुत्तसम्बाधसयनं अज्झावसन्तेन कासिकचन्दनं पच्चनुभोन्तेन मालागन्धविलेपनं धारयन्तेन जातरूपरजतं सादियन्तेन—'इमे वा अरहन्तो, इमे वा अरहत्तमग्गं समापन्ना' ति। संवासेन खो, महाराज, सीलं वेदितब्बं। तं च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन। आपदासु खो, महाराज, थामो वेदितब्बो। सो च खो दीघेन [N.78] अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन। साकच्छाय खो, महाराज, पञ्ञा वेदितब्बा। सा च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; [B.79] मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेना'' ति।

२९. ''एते, भन्ते, मम पुरिसा चरा ओचरका जनपदं ओचरित्वा आगच्छन्ति। तेहि पठमं ओचिण्णं अहं पच्छा ओसापयिस्सामि। इदानि ते भन्ते, तं रजोजल्लं पवाहेत्वा सुन्हाता सुविलित्ता कप्पितकेसमस्सू ओदातवत्था पञ्चहि कामगुणेहि समप्पिता समङ्गीभूता परिचारेस्सन्ती'' ति।

३०. अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि—

''महाराज! किसी से साक्षात् बातचीत करने पर ही मनुष्य की प्रज्ञा का ज्ञान बुद्धिमान् पुरुष को हो पाता है वह भी बहुत काल तक बहुत तरह से संवाद हो तब। अन्यथा साधारणत: किसी की प्रज्ञासम्बन्धी वास्तविकता जानना मूर्ख मनुष्यों के वश की बात नहीं है।'' (४)

(तब राजा प्रसेनजित् ने कहा—) ''भन्ते! आप का कहा हुआ यह सुभाषित कितना आश्चर्यमय एवं अद्भुत है—'महाराज! आप जैसे कामभोगी...पूर्ववत्...किसी की प्रज्ञासम्बन्धी वास्तविकता जानना मूर्ख मनुष्यों के वश की बात नहीं है।''

२९. ''भन्ते! ये पैंतीस साधुवेषधारी पुरुष जो अभी आप के सामने से गये हैं, वे सब मेरे गुप्तचर हैं, भेदिया (= भेद लेने वाले) है, जनपद में (शत्रुओं का) भेद लेते हुए आ रहे हैं। वे पहले अपने गुप्तचर रूप में रह कर जैसा भेद लाते हैं तदनुसार मैं बाद में बात पर अन्तिम निर्णय करता हूँ। भन्ते! अब वे अपने इस भस्म-भभूत वाले वेष को उतार कर नहा धो कर उबटन लगा, बाल संवार कर, श्वेत वस्त्र धारण कर, गृहस्थों के पञ्चविध कामभोगों का उपभोग करेंगे।''

"न वण्णरूपेन नरो सुजानो, न विस्ससे इत्तरदस्सनेन।
सुसञ्ञतानं हि वियञ्जनेन, असञ्ञता लोकमिमं चरन्ति॥
"पतिरूपको मत्तिकाकुण्डलो व, लोहड्ढमासो व सुवण्णछन्नो।
चरन्ति लोके परिवारछन्ना, अन्तो असुद्धा बहि सोभमाना" ति॥ •

१२. पञ्चराजसुत्तं

३१. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन पञ्चन्नं राजूनं पसेनदिपमुखानं पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितानं समङ्गीभूतानं परिचारयमानानं अयमन्तराकथा उदपादि—"किं नु खो कामानं अग्गं" ति? तत्रेकच्चे एवमाहंसु—"रूपा कामानं अग्गं" ति। [N.79] एकच्चे एवमाहंसु—"सद्दा कामानं अग्गं" ति। एकच्चे एवमाहंसु—"गन्धा [B.80] कामानमग्गं" ति। एकच्चे एवमाहंसु—"रसा कामानं अग्गं" ति। एकच्चे [R.80] एवमाहंसु—"फोट्ठब्बा कामानं अग्गं" ति। यतो खो ते राजानो नासक्खिंसु अञ्ञमञ्ञं सञ्ञापेतुं।

३२. अथ खो राजा पसेनदि कोसलो ते राजानो एतदवोच—"आयाम,

---

३०. राजा से उन साधुवेषधारी पुरुषों की वास्तविकता जान कर भगवान् के श्रीमुख से उस समय ये गाथाएँ निकलीं—

"किसी मनुष्य के बाह्य रूप रंग से, हाव भाव से उसको नहीं पहचाना जा सकता। अत: किसी को देखने मात्र से उस पर विश्वास न करें। अच्छे भले संयमी का अभिनय करते हुए बड़े बड़े धूर्त असंयमी भी इस लोकमें विचरण किया करते हैं॥

"जैसे कोई कृत्रिमं (बनावटी=नकली) मिट्टी का बना, दूर से सुन्दर लगने वाला, कुण्डल के समान या लोहे का बना तथा उस पर सुवर्ण का पानी चढाया हुआ कोई आभूषण हो, इसी तरह कृत्रिम वेष बना कर इस लोक में विचरण करते हैं। वे आन्तरिक चित्त से कलुषित है; परन्तु बाह्य वेश भूषा से वे शोभित होते रहते हैं॥" •

१३. पञ्चराजसूत्र : : जिसे जो प्रिय है वही उसको अच्छा लगता है

३१. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही....। उस समय पाँचों कामगुणों को भोगते हुए, उन्हीं में लिप्त हुए, उन्ही में एकाकार हुए प्रसेनजित् आदि पाँच राजा यह प्रसङ्ग उठा बैठे कि पाँचों कामभोगों में कौन प्रमुख है?" उन राजाओं में से किसी ने कहा— "रूप इन कामगुणों में प्रमुख हैं।" किसी ने कहा—"शब्द कामगुणों में श्रेष्ठ हैं।" किसी ने कहा—"गन्ध कामगुणों में श्रेष्ठ है।" किसी ने कहा—"रस कामगुणों में श्रेष्ठ है।" किसी ने कहा—"स्प्रष्टव्य कामगुणों में अग्र है।" परन्तु वे राजा परस्पर एक दूसरे को अपने से सहमत न कर सके।

मारिसा, येन भगवा तेनुपसङ्कमिस्साम; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतमत्थं पटिपुच्छिस्साम। यथा नो भगवा ब्याकरिस्सति तथा नं धारेस्सामा'' ति। ''एवं, मारिसा'' ति खो ते राजानो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पच्चस्सोसुं।

अथ खो ते पञ्च राजानो पसेनदिपमुखा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पेसनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—''इध, भन्ते, अम्हाकं पञ्चन्नं राजूनं पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितानं समङ्गीभूतानं परिचारयमानानं अयमन्तराकथा उदपादि—'किं नु खो कामानं अग्गं' ति? एकच्चे एवमाहंसु—'रसा कामानं अग्गं' ति। एकच्चे एवमाहंसु-'सद्दा कामानं अग्गं' ति एकच्चे एवमाहंसु—'गन्धा कामानं अग्गं' ति। एकच्चे एवमाहंसु—'रसा कामानं अग्गं' ति। एकच्चे एवमाहंसु—'फोट्ठब्बा कामानं अग्गं' ति। किं नु खो, भन्ते, कामानं अग्गं'' ति?

''मनापपरियन्तं ख्वाहं, महाराज, पञ्चसु कामगुणेसु अग्गं ति वदामि। तेव, महाराज, रूपा एकच्चस्स मनापा होन्ति, तेव रूपा एकच्चस्स अमनापा होन्ति। येहि च यो रूपेहि अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो, सो तेहि रूपेहि अञ्ञं रूपं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न पत्थेति। ते तस्स रूपा परमा होन्ति। ते तस्स रूपा अनुत्तरा होन्ति।

''तेव, महाराज, सद्दा एकच्चस्स मनापा होन्ति, तेव सद्दा एकच्चस्स अमनापा

---

३२. तब राजा प्रसेनजित् कौसल ने उन राजाओं से यों कहा—"महाशयो! आओ, चलो वहाँ चले, जहाँ भगवान् विराजमान हैं। उनसे से इस विषय में पूछा जाय। वे जो निर्णय देंगे उसे हम सब स्वीकार कर लेंगे।'' ''यह तो उचित है'' कहकर वे सब राजा प्रसेनजित् से सहमत हो गये।

तब वे पाँचों राजा, प्रसेनजित् कौसल को आगे कर जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे, तथा वहाँ उन्हें प्रणाम कर सब एक तरफ बैठ गये। तब राजा प्रसेनजित् ने भगवान् से यों निवेदन किया— ''पाँचों कामभोगों में कौन प्रमुख हैं?''... पूर्ववत्....'स्प्रष्टव्य कामगुणों मे अग्र हैं। तो भन्ते! इन पाँचों कामभोगों में कौन श्रेष्ठ है?''

(भगवान्—) ''महाराज! मेरा तो मानना है कि इन पाँच गुणों में जिस को जो प्रिय लगता हो उसके लिये वही श्रेष्ठ है। महाराज़! जो रूप एक के लिये अत्यधिक प्रिय होता है, वही रूप दूसरे के लिये अत्यधिक अप्रिय होता है। जिन रूपों से एक सन्तुष्ट हो जाता है, उसकी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं; तब उस रूप से श्रेष्ठ रूप भी उसे कुछ भी प्रिय नहीं लगता। अत: वही रूप उसके लिये सर्वोत्तम अलौकिक एवं सर्वाधिक प्रिय होता है।

होन्ति। येहि च यो सद्देहि अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो, सो तेहि सद्देहि अञ्ञं सद्दं उत्तरितरं वा पणीतरं वा न पत्थेति। ते तस्स सद्दा परमा होन्ति। ते तस्स सद्दा [B.81] अनुत्तरा होन्ति।

"तेव, महाराज, गन्धा एकच्चस्स मनापा होन्ति, तेव गन्धा एकच्चस्स [N.80] अमनापा होन्ति। येहि च यो गन्धेहि अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो, सो तेहि गन्धेहि अञ्ञं गन्धं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न पत्थेति। ते तस्स गन्धा परमा होन्ति। ते तस्स गन्धा अनुत्तरा होन्ति।

"तेव, महाराज, रसा एकच्चस्स मनापा होन्ति, तेव रसा एकच्चस्स अमनापा होन्ति। येहि च यो रसेहि अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो, सो तेहि रसेहि अञ्ञं रसं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न पत्थेति। ते तस्स रसा परमा होन्ति। ते तस्स रसा अनुत्तरा होन्ति।

"तेव, महाराज, फोट्ठब्बा एकच्चस्स मनापा होन्ति, तेव फोट्ठब्बा एकच्चस्स अमनापा होन्ति। येहि च यो फोट्ठब्बेहि अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो, सो [R.81] तेहि फोट्ठब्बेहि अञ्ञं फोट्ठब्बं उत्तरितरं वा पणीतरं वा न पत्थेति। ते तस्स फोट्ठब्बा परमा होन्ति। ते तस्स फोट्ठब्बा अनुत्तरा होन्ती" ति।

३३. तेन खो पन समयेन चन्दनङ्गलिको उपासको तस्सं परिसायं निसिन्नो होति। अथ खो चन्दनङ्गिलको उपासको उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"पटिभाति मं, भगवा, पटिभाति मं, सुगता" ति। "पटिभातु तं चन्दनङ्गलिका" ति भगवा अवोच।

अथ खो चन्दनङ्गलिको उपासको भगवतो सम्मुखा तदनुरूपाय गाथाय अभित्थवि—

"महाराज! जो शब्द, गन्ध, रस एवं स्पर्श एक के लिये अत्यधिक प्रिय... पूर्ववत्... सर्वाधिक प्रिय होते हैं।"

३३. उस समय चन्दनङ्गलिक उपासक भी उस परिषद् में बैठा था। तब वह उपासक आसन से उठकर उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर जहाँ भगवान् विराजमान थे उधर प्रणाम कर यों निवेदन करने लगा—"इस विषय पर मुझे कहने की इच्छा हो रही है।"

"तो वह कुछ कह कर अपनी इच्छा पूर्ण कर लो।"

तब चन्दनङ्गलिक उपासक ने भगवान् के सम्मुख उस प्रसङ्ग के अनुरूप गाथा कह कर भगवान् की यों स्तुति की—

"पदुमं यथा कोकनदं सुगन्धं, पातो सिया फुल्लमवीतगन्धं।
अङ्गीरसं पस्स विरोचमानं, तपन्तमादिच्चमिवन्तलिक्खे" ति॥

अथ खो ते पञ्च राजानो चन्दनङ्गलिकं उपासकं पञ्चहि उत्तरासङ्गेहि अच्छादेसुं। अथ खो चन्दनङ्गलिको उपासको तेहि पञ्चहि उत्तरासङ्गेहि भगवन्तं [B.82] अच्छादेसी ति।

१३. दोणपाकसुत्तं

३४. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन राजा पसेनदि कोसलो दोणपाककुरं भुञ्जति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो भुत्तावी महस्सासी येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

अथ खो भगवा राजानं पसेनदिं कोसलं भुत्ताविं महस्सासिं विदित्वा तायं वेलायं इमं गाथं अभासि—

"मनुजस्स सदा सतीमतो, मत्तं जानतो लद्धभोजने।
तनुकस्स भवन्ति वेदना, सणिकं जीरति आयुपालयं" ति॥

[R.82] ३५. तेन खो पन समयेन सुदस्सनो माणवो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स

"जैसे सुन्दर कोकनद (पद्म) प्रात:काल विकसित होकर सुगन्ध से भरा रहता है, वैसे ही इन शोभायमान अङ्गिरस् (भगवान् बुद्ध) को देखो जो आकाश में देदीप्यमान सूर्य की तरह प्रकाशित हो रहे हैं।"

तब उन पाँचों राजाओं ने (सत्कारस्वरूप) पाँच वस्त्र उस चन्दनङ्गलिक उपासक को भेंट किये। परन्तु चन्दनङ्गलिक उपासक ने वे पाँचों ही वस्त्र भगवान् को समर्पित कर दिये॥

१३. द्रोणपाकसूत्र : : युद्ध में जय पराजय

३४. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय राजा प्रसेनजित् कौसल द्रोण परिमाण भोजन किया करता था। एक दिन राजा प्रसेनजित् जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आये। आ कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

तब भगवान् ने राजा प्रसेनजित् को, जो कि लम्बे श्वास ले रहा था, देखकर यह गाथा कही—

"सदा स्मृतिमान् रहने वाले तथा सामने आये भोजन की मात्रा जानने वाले पुरुष की वेदनाएँ कम हो जाती हैं। तथा वह भोजन भी उसकी आयु की रक्षा करता हुआ शनै: शनै: जीर्ण हो जाता है"॥

३५. तब राजा ने अपने पीछे खड़े सुदर्शन माणव (राजा का रसोहया) से कहा—

पिट्ठितो ठितो होति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो सुदस्सनं माणवं आमन्तेसि—"एहि त्वं, तात सुदस्सन, भगवतो सन्तिके इमं गाथं परियापुणित्वा मम भत्ताभिहारे भत्ताभिहारे भास। अहं च ते देवसिकं कहापणसतं कहापणसतं निच्चं भिक्खं पवत्तयिस्सामी" ति। "एवं, देवा" ति खो सुदस्सनो माणवो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पटिस्सुत्वा भगवतो सन्तिके इमं गाथं परियापुणित्वा रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स भत्ताभिहारे सुदं भासति—

"मनुजस्स सदा सतीमतो, मत्तं जानतो लद्धभोजने।
तनुकस्स भवन्ति वेदना, सणिकं जीरति आयुपालयं" ति॥

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो अनुपुब्बेन नाळिकोदनपरमताय सण्ठासि। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो अपरेन समयेन सुसल्लिखितगत्तो पाणिना [B.83] गत्तानि अनुमज्जन्तो तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—"उभयेन वत मं सो भगवा अत्थेन अनुकम्पि—दिट्ठधम्मिकेन चेव अत्थेन सम्परायिकेन चा" ति। •

१४. पठमसङ्गामसुत्तं

३६. सावत्थिनिदानं। अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं पसेनदिं कोसलं अब्भुय्यासि येन कासि। अस्सोसि खो [R.83] राजा पसेनदि कोसलो—"राजा किर मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं

"तात सुदर्शन! तुम भगवान् द्वारा कथित यह गाथा सीख लो तथा तुम प्रतिदिन मेरे भोजन करते समय यह गाथा मुझे सुना दिया करो। इसके बदले में मैं तुम्हें एक सौ कार्षापण प्रतिदिन दिया करूँगा। "ठीक है, महाराज" कह कर उस सुदर्शन माणव ने भगवान् की कही वह गाथा कण्ठस्थ कर, राजा द्वारा भोजन किये जाते समय उनको प्रतिदिन सुनाना आरम्भ किया—...पूर्ववत्...।

तब राजा शनैः शनैः क्रमशः नाड़ी परिमाण भोजन पर आ गया। उस समय राजा ने अपने शरीर के अङ्गों को हाथ से स्पर्श करते हुए अपने शरीर को सुगठित देखा तो प्रसन्न मुद्रा में यह हर्षोद्गार प्रकट किया—"भगवान् की इस कृपा से मेरे दोनों ही प्रयोजन सिद्ध हो गये— ऐहलौकिक भी तथा पारलौकिक भी।" •

१४. प्रथमसंग्रामसूत्र : : राजा प्रसेनजित् की पराजय

३६. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय राजा मागध वैदेहिपुत्र अजातशत्रु ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना सन्नद्ध कर काशी जनपद पर, जो कि राजा प्रसेनजित् कौसल के आधीन था, आक्रमण कर दिया। राजा प्रसेनजित् ने जब अपने काशी जनपद पर राजा

सन्नय्हित्वा ममं अब्भुय्यातो येन कासी'' ति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं पच्चुय्यासि येन कासि। अथ खो राजा च मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजा च पसेनदि कोसलो सङ्गमेसुं। तस्मिं खो पन सङ्गामे राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजानं पसेनदिं कोसलं पराजेसि। पराजितो च राजा पसेनदि कोसलो सकमेव राजधानिं सावत्थिं पच्चुय्यासि।

३७. अथ खो सम्बहुला भिक्खू पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पविसिंसु। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपात-पटिक्कन्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—

''इध, भन्ते, राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं पसेनदिं कोसलं अब्भुय्यासि येन कासि। अस्सोसि खो, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो—'राजा किर मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा ममं अब्भुय्यातो येन कासी' ति। अथ खो, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं पच्चुय्यासि येन कासि। अथ खो, [B.84] भन्ते, राजा च मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजा च पसेनदि सोसलो सङ्गमेसुं। तस्मिं खो पन, भन्ते, सङ्गामे राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजानं पसेनदिं कोसलं पराजेसि। पराजितो च, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो सकमेव राजधानिं सावत्थिं पच्चुय्यासी'' ति।

३८. ''राजा, भिक्खवे, मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो पापमित्तो पापसहायो पापसम्पवङ्को; राजा च खो, भिक्खवे, पसेनदि कोसलो कल्याणमित्तो कल्याण-

---

अजातशत्रु द्वारा कृत आक्रमण का समाचार सुना तो वह भी, अपनी चतुरङ्गिणी सेना सन्नद्ध कर काशी की ओर चला। तदनन्तर राजा अजातशत्रु एवं राजा प्रसेनजित् कौसल की सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। परन्तु अन्त में राजा अजातशत्रु ने राजा प्रसेनजित् कौसल को पराजित कर दिया। पराजित राजा प्रसेनजित् पुनः अपनी राजधानी लौट आया।

३७. तब बहुत से भिक्षु...पूर्ववत्...भगवान् से यों निवेदन करने लगे—''भन्ते! राजा मागध अजातशत्रु ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना...पूर्ववत्...पराजित राजा प्रसेनजित् अपनी राजधानी पुनः लौट आया।''

३८. (यह सुनकर भगवान् ने कहा—) ''भिक्षुओ! यह राजा मागध अजातशत्रु

सहायो कल्याणसम्पवङ्को। अज्जेव, भिक्खवे, राजा पसेनदि कोसलो इमं रत्तिं दुक्खं सेति पराजितो'' ति।

३९. इदमवोच ... पे० ...।

''जयं वेरं पसवति, दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति, हित्वा जयपराजयं'' ति॥ [ध. प., २०१ गा.] ●

१५. दुतियसङ्गामसुत्तं

४०. अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं पसेनदिं कोसलं अब्भुय्यासि येन कासि। अस्सोसि खो राजा पसेनदि [R.84] कोसलो—''राजा किर मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेन सन्नय्हित्वा ममं अब्भुय्यातो येन कासी'' ति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं पच्चुय्यासि येन कासि। अथ खो राजा च मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजा च पसेनदि कोसलो सङ्गामेसुं। तस्मिं खो पन सङ्गामे राजा पसेनदि कोसलो राजानं मागधं अजातसत्तु वेदेहिपुत्तं पराजेसि, जीवग्गाहं च नं अग्गहेसि। अथ खो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स एतदहोसि—''किञ्चा पि खो म्यायं राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो अदुब्भन्तस्स दुब्भति, अथ च पन [B.85] मे भागिनेय्यो होति। यन्नूनाहं रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुनो वेदेहिपुत्तस्स सब्बं

पापी लोगों की संगति करने वाला तथा स्वयं भी पाप करने वाला है। (इसके विपरीत) राजा प्रसेनजित् कौशल सज्जनों की सङ्गति करने वाला तथा स्वयं सत्कर्म करने वाला है। भिक्षुओ! परन्तु पराजित राजा प्रसेनजित् कौसल आज की रात्रि कष्ट में ही बितायगा।''

३९. भगवान् ने यह कहा।... पूर्ववत्...।

''विजय वैर की वृद्धि करता है तथा पराजित पुरुष अपनी रात्रि कष्ट में ही बिताता है। (वस्तुत:) विजय-पराजय की चिन्ता छोड़कर शान्तचित्त पुरुष ही 'सुख की नींद' सो पाता है॥'' [ध.प., २०१ गा.] ●

१५. द्वितीय संग्रामसूत्र : : अजातशत्रु की पराजय

४०. कभी राजा मागध अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने चतुरङ्गिणी...पूर्ववत्.... सेनाओं में युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजा प्रसेनजित् कौसल ने राजा मागध अजातशत्रु में युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजा प्रसेनजित् कौसल ने राजा मागध अजातशत्रु को पराजित कर दिया। परन्तु सम्बन्धी होने के कारण उसको जीवनदान दे दिया। उसने विचार किया—''यद्यपि यह वैदिहिपुत्र राजा मागध अजातशत्रु मेरा विश्वासघाती शत्रु बना हुआ है, परन्तु है तो मेरा

हत्थिकायं परियादियित्वा सब्बं अस्सकायं परियादियित्वा सब्बं रथकायं परियादियित्वा सब्बं पत्तिकायं परियादियित्वा जीवन्तमेव नं ओसज्जेय्यं'' ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुनो वेदहिपुत्तस्स सब्बं हत्थिकायं परियादियित्वा सब्बं अस्सकायं परियादियित्वा सब्बं रथकायं परियादियित्वा सब्बं पत्तिकायं परियादियित्वा जीवन्तमेव नं ओसज्जि।

४१. अथ खो सम्बहुला भिक्खू पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पविसिंसु। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपात-पटिक्कन्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—

[N.84, R.85] ''इध, भन्ते, राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं पसेनदिं कोसलं अब्भुय्यासि येन कासि। अस्सोसि खो, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो—'राजा किर मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा ममं अब्भुय्यातो येन कासी' ति। अथ खो, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं पच्चुय्यासि येन कासि। अथ खो, भन्ते, राजा च मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजा च पसेनदि कोसलो सङ्गामेसुं। तस्मिं खो पन, भन्ते, सङ्गामे राजा पसेनदि कोसलो राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं पराजेसि, जीवग्गाहं च नं अग्गहेसि। अथ खो, भन्ते, रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स एतदहोसि—'किञ्चा पि खो म्यायं राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो अदुब्भन्तस्स दुब्भति, अथ च पन मे भागिनेय्यो होति। यन्नूनाहं रञ्ञो मागधस्स आजातसत्तुनो सब्बं हत्थिकायं परियादियित्वा सब्बं अस्सकायं...सब्बं रथकायं...पत्तिकायं परियादियित्वा जीवन्तमेव नं ओसज्जेय्यं' ति।

भागिनेय (भानजा) ही। अत: क्यों न मैं इसकी समस्त हस्तिसेना, अश्वसेना एवं पदातिसेना छीन कर इसे जीवित ही छोड़ दूँ।''

तब उस राजा प्रसेनजित् कौसल ने उस राजा...अजातशत्रु की उपर्युक्त समस्त सेनाएँ छीन कर जीवित ही छोड़ दिया।

४१. उसी समय बहुत से भिक्षु प्रात:काल अपने पहनने के वस्त्र सुव्यवस्थित कर पात्र चीवर ले कर श्रावस्ती में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। वे श्रावस्ती में भिक्षाचार्या कर भोजनकर्म से निवृत्त होकर भगवान् के समीप गये। समीप जाकर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ कर, उन्होंने भगवान् से यों निवेदन किया—

"अथ खो, भन्ते राजा पसेनदि कोसलो रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुनो [B.86] वेदेहिपुत्तस्स सब्बं हत्थिकायं परियादियित्वा सब्बं अस्सकायं परियादियित्वा सब्बं रथकायं परियादियित्वा सब्बं पत्तिकायं परियादियित्वा जीवन्तमेव नं ओसज्जी'' ति।

४२. अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि—

"विलुम्पतेव पुरिसो, यावस्स उपकप्पति।
यदा चञ्ञे विलुम्पन्ति, सो विलुत्तो विलुम्पति॥
"ठानं हि मञ्ञति बालो, याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं, अथ दुक्खं निगच्छति॥
"हन्ता लभति हन्तारं, जेतारं लभते जयं।
अक्कोसको च अक्कोसं, रोसेतारं च रोसको।
अथ कम्मविवट्टेन, सो विलुत्तो विलुम्पती'' ति॥

१६. मल्लिकासुत्तं

४३. सावत्थिनिदानं। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन [N.85,R.86] भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। अथ खो अञ्ञतरो पुरिसो येन राजा पसेनदि कोसलो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा रञ्ञो

"यहाँ, भन्ते! मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु ने... पूर्ववत... जीवित ही छोड़ दिया।"

४२. तब भगवान् ने यह घटना सुनकर, उस समय ये गाथाएँ कहीं—

"पहले तो कोई पुरुष दूसरों से अपने लिये उपयोगी वस्तुएं लूटता है; परन्तु जब दूसरा कोई उसे लूटने लगता है तो वह ठगा सा रह जाता है॥

"पहले तो वह मूर्ख जब तक कि उसके पाप का घड़ा भर नहीं जाता; समझता है कि मैं बहुत उचित कर रहा हूँ; परन्तु जब उसके पाप का फल (परिणाम) सम्मुख आने लगता है तब उस को दु:ख ही दु:ख भोगना पड़ता है॥

"मारने वाले को एक न एक दिन उसका मारने वाला भी मिल ही जाता है, तथा विजयी को भी पराजित करने वाला। अपशब्द बोलने वाले को अपशब्द बोलने वाला मिल जाता है, तथा क्रोध करने वाले को उस पर अन्य क्रोध करने वाला मिल जाता है। इस तरह वह कर्मबन्धन में बद्ध पुरुष दूसरों को लूटता हुआ स्वयं भी कभी न कभी लूटा ही जाता है!"॥

१६. मल्लिकासूत्र : : नारी की पुरुष से श्रेष्ठता

४३. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। किसी समय राजा प्रसेनजित् कौसल भगवान्

पसेनदिस्स कोसलस्स उपकण्णके आरोचेसि—"मल्लिका, देव, देवी धीतरं विजाता" ति। एवं वुत्ते, राजा पसेनदि कोसलो अनत्तमनो अहोसि।

अथ खो भगवा राजानं पसेनदिं कोसलं अनत्तमनतं विदित्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि—

"इत्थी पि हि एकच्चिया, सेय्या पोस जनाधिप।
मेधाविनी सीलवती, सस्सुदेवा पतिब्बता॥
तस्सा यो जायति पोसो, सूरो होति दिसम्पति।
तादिसा सुभगिया पुत्तो, रज्जं पि अनुसासती" ति॥ •

१७. अप्पमादसुत्तं

४४. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि [B.87] कोसलो भगवन्तं एतदवोच—"अत्थि नु खो, भन्ते, एको धम्मो यो उभो अत्थे समधिग्गय्ह तिट्ठति—दिट्ठधम्मिकं चेव अत्थं सम्परायिकं चा" ति?

"अत्थि खो, महाराज, एको धम्मो यो उभो अत्थे समधिग्गय्ह तिट्ठति—दिट्ठधम्मिकं चेव अत्थं सम्परायिकं चा" ति।

"कतमो पन, भन्ते, एको धम्मो, यो उभो अत्थे समधिग्गय्ह तिट्ठति—दिट्ठधम्मिकं चेव अत्थं सम्परायिकं चा" ति?

के समीप जाकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। उसी समय राजा प्रसेनजित् कौसल का एक अनुचर उसके कान मे यों निवेदन करने लगा— "देव! मल्लिका देवी ने एक पुत्री को जन्म दिया है।" यह सूचना पाकर राजा उद्विग्न हो गया।

भगवान् ने राजा...को इस तरह उद्विग्न देखकर यह गाथा कही—

"हे प्रजापालक! कोई कोई स्त्रियाँ भी पुरुषों से उत्कृष्ट, बुद्धिमती, शीलवती, सास ससुर की सेवा करने वाली तथा पातिव्रत्य का पालन करने वाली होती हैं (हो सकता है—यह भी ऐसी ही बने,) अत: इसका पालन कर॥

"उस सौभाग्यशालिनी से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह भी महान् शूर वीर, चारों दिशाओं (के राजाओं) को जीतने वाला तथा प्रजा का सुदृढ़ अनुशासक होता है॥ •

१७. अप्रमादसूत्र : : अप्रमाद का माहात्म्य

४४. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे राजा **प्रसेनजित् कौसल** ने भगवान् से यह प्रश्न किया—"क्या, भन्ते! ऐसा कोई एक धर्म है, जो दोनों स्थानों पर समान रूप से आवश्यक हो, इस लोक में भी तथा परलोक में भी?"

"हाँ, महाराज! ऐसा एक धर्म है, जो दोनों ही स्थानों पर...परलोक में भी?"

"अप्पमादो खो, महाराज, एको धम्मो, यो उभो अत्थे समधिग्गय्ह तिट्ठति—दिट्ठधम्मिकं चेव अत्थं सम्परायिकं चा ति। सेय्यथापि, महाराज, यानि कानिचि जङ्गलानं पाणानं पदजातानि सब्बानि तानि हत्थिपदे समोधानं गच्छन्ति, हत्थिपदं तेसं अग्गमक्खायति—यदिदं महन्तत्तेन; एवमेव खो, महाराज, अप्पमादो एको [R.87] धम्मो, यो उभो अत्थे समधिग्गय्ह तिट्ठति—दिट्ठधम्मिकं चेव अत्थं सम्परायिकं चा" ति।

४५. इदमवोच....पे०.... [N.86]

"आयुं आरोगियं वण्णं, सग्गं उच्चाकुलीनतं।
रतियो पत्थयन्तेन, उळारा अपरापरा॥
"अप्पमादं पसंसन्ति, पुञ्ञकिरियासु पण्डिता।
अप्पमत्तो उभो अत्थे, अधिग्गण्हाति पण्डितो॥
"दिट्ठे धम्मे च यो अत्थो, यो चत्थो सम्परायिको।
अत्थाभिसमया धीरो, पण्डितो ति पवुच्चती" ति॥

१८. कल्याणमित्तसुत्तं

४६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं

"भन्ते! वह कौन सा एक धर्म है जो दोनों ही स्थानों पर... परलोक में भी?"

"महाराज! अप्रमाद (=सावधानता) जो दोनों ही स्थानों पर समान रूप से आवश्ययक है—इस लोक में भी तथा परलोक में भी। जैसे, महाराज! सभी जङ्गली प्राणियों के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में अन्तर्भूत हो जाते है, अर्थात् हाथी का पदचिह्न सभी जङ्गली प्राणियों के पदचिह्नों से बड़ा होता है; वैसे ही, महाराज, यह अप्रमाद एक ऐसा धर्म है जो दोनों ही स्थानों इस लोक में तथा परलोक में भी समान रूप से आवश्यक है।

४५. भगवान् ने यह कहा...पूर्ववत्...।

"आयु, आरोग्य, वर्ण, स्वर्ग, उच्च कुल तथा अधिक से अधिक उदार सुख पाने की इच्छा रखने वालों के लिये पण्डितजन पुण्य कर्मों में अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं। बुद्धिमान् पुरुष अप्रमत्त (सावधान) रहता हुआ ही इस लोक तथा परलोक में अधिकतम सुख प्राप्त कर सकता है॥

"इस लोक या परलोक में जो कर्तव्य कर्म हैं उनकी वास्तविकता ज्ञात कर लेना ही बुद्धिमान् पुरुष का प्रथम कर्तव्य होता है। इस कर्तव्य का ज्ञाता ही 'धीर' एवं 'पण्डित' कहलाता है"॥

एतदवोच—"इध मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो। सो च खो कल्याणमित्तस्स कल्याण-सहायस्स कल्याणसम्पवङ्कस्स, नो पापमित्तस्स नो पापसहायस्स नो पाप-सम्पवङ्कस्सा'" ति।

४७. "एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! स्वाक्खातो, महाराज, मया धम्मो। सो च खो कल्याणमित्तस्स कल्याणसहायस्स कल्याणसम्पवङ्कस्स, नो [B.88] पापमित्तस्स नो पापसहायस्स नो पापसम्पवङ्कस्सा" ति।

"एकमिदाहं, महाराज, समयं सक्केसु विहरामि नगरकं नाम सक्यानं निगमो। अथ खो, महाराज, आनन्दो भिक्खु येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो, महाराज, आनन्दो भिक्खु मं एतदवोच—'उपड्ढमिदं, भन्ते, ब्रह्मचरियस्स—यदिदं कल्याणमित्तता कल्याणसहायता कल्याण-सम्पवङ्कता' ति।

"एवं वुत्ताहं, महाराज, आनन्दं भिक्खुं एतदवोचं—'मा हेवं, आनन्द, मा हेवं, आनन्द! सकलमेव हिदं, आनन्द, ब्रह्मचरियं—यदिदं कल्याणमित्तता कल्याण-[R.88] सहायता कल्याणसम्पवङ्कता। कल्याणमित्तस्सेतं, आनन्द, भिक्खुनो पाटिकङ्खं

---

१८. कल्याणमित्रसूत्र : : अप्रमाद के गुण

४६. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौसल ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! एकान्त में वितर्क करते हुए मेरे ध्यान में **यह** आया—"भगवान् ने अपना साक्षात्कृत धर्म जिज्ञासुओं को समीचिन रीति से समझाया है। किन्तु वह सज्जनों तथा मिलने जुड़ने वालों के लिये ही उपयोगी है; दुर्जनों तथा उनसे मिलने जुड़ने वालों के लिये उसका कोई उपयोग नहीं है।"

४७. "यही बात है, महाराज! यही बात है! मैने अपना साक्षात्कृत धर्म...पूर्ववत्...उसका कोई उपयोग नहीं है।

"महाराज! एक समय मैं शाक्य जनपद के किसी नगरक (बड़े ग्राम) में साधनारत था। महाराज! उस समय आनन्द भिक्षु मेरे पास आया...उस ने मुझसे कहा—"इस धर्म का आधा अंश (=उपड्ढ=उपार्ध) तो सज्जनों के साथ मिलने जुड़ने पर ही टिका हुआ है।"

"उसके द्वारा ऐसा कहे जाने पर मैने उसको बताया—'ऐसा न कहो, आनन्द! ऐसा न कहो; क्योंकि यह मेरा धर्म तो पूर्णतः सज्जनों के साथ मिलने जुड़ने पर ही टिका हुआ है। आनन्द! सज्जनों के साथ मिलने जुड़ने वाले भिक्षु से ही आशा की जा सकती है

कल्याणसहायस्स कल्याणसम्पवङ्कस्स अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं भावेस्सति [N.87] अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं बहुलीकरिस्सति।

'कथं च, आनन्द, भिक्खु कल्याणमित्तो कल्याणसहायो कल्याणसम्पवङ्को अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं भावेति, अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं बहुलीकरोति? इधानन्द, भिक्खु सम्मादिट्ठिं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्ग-परिणामिं, सम्मासङ्कप्पं भावेति, सम्मावाचं भावेति, सम्माकम्मन्तं भावेति, सम्मा-आजीवं भावेति, सम्मावायामं भावेति, सम्मासतिं भावेति, सम्मासमाधिं भावेति, विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं। एवं खो, आनन्द, भिक्खु कल्याणमित्तो कल्याणसहायो कल्याणसम्पवङ्को अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं भवेति अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं बहुलीकरोति। तदमिनापोतं, आनन्द, परियायेन वेदितब्बं यथा सकलमेविदं ब्रह्मचरियं—यदिदं कल्याणमित्तता कल्याणसहायता कल्याणसम्पवङ्कता ति।

'ममं हि, आनन्द, कल्याणमित्तं आगम्म जातिधम्मा सत्ता जातिया परिमुच्चन्ति, जराधम्मा सत्ता जराय परिमुच्चन्ति, ब्याधिधम्मा सत्ता ब्याधितो परिमुच्चन्ति, मरणधम्मा सत्ता मरणेन परिमुच्चन्ति, सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सु-पायासधम्मा सत्ता सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासेहि परिमुच्चन्ति। इमिना खो एतं,

---

कि वह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग के अभ्यास में निरन्तर दत्तचित्त रहेगा और उसमें पूर्णता प्राप्त करेगा।

"कैसे, आनन्द! उस सज्जनों से मिलने जुड़ने वाले भिक्षु से यह आशा... उसमें पूर्णता प्राप्त करेगा? आनन्द वह भिक्षु विवेक, वैराग्य, निरोध तथा त्याग वाली सम्यग्दृष्टि की भावना करता है...सम्यक्सङ्कल्प की... सम्यग्वाणी की...सम्यक्कर्मान्त की...सम्यगाजीव की...सम्यग्व्यायाम की...सम्यक्स्मृति की एवं...सम्यक्समाधि की भावना करता है। इस तरह, आनन्द! वह भिक्षु सज्जनों के साथ मिल जुड़कर रहता हुआ आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अभ्यास करता है। आनन्द ! इस प्रकार यह समझना चाहिये कि मेरा यह धर्म पूर्णत: सज्जनों के साथ मिलने जुड़ने पर ही आधृत है।

"आनन्द! मुझ कल्याणमित्र का आश्रय लेकर इस संसार में जन्म लेने वाले प्राणी जन्म परम्परा (बारबार जन्म लेना) से मुक्त हो जाते हैं बार बार वृद्ध होने से... बार बार रोगी होने से... बार बार मृत्यु को प्राप्त होने से मुक्त हो जाते हैं। तथा बार बार शोक, विलाप, दु:ख, दौर्मनस्य, उपायास (चिन्ता) करने से मुक्त हो जाते हैं। आनन्द! इस

आनन्द, पारियायेन वेदितब्बं यथा सकलमेविदं ब्रह्मचरियं- यदिदं कल्याणमित्तता [B.89] कल्याणसहायता कल्याणसम्पवङ्कता' ति।

"तस्मातिह ते, महाराज, एवं सिक्खितब्बं—'कल्याणमित्तो भविस्सामि कल्याणसहायो कल्याणसम्पवङ्को' ति। एवं हि ते, महाराज, सिक्खितब्बं।

"कल्याणमित्तस्स ते, महाराज, कल्याणसहायस्स कल्याणसम्पवङ्कस्स अयं [R.89] एको धम्मो उपनिस्साय विहातब्बो—अप्पमादो कुसलेसु धम्मेसु।

"अप्पमत्तस्स ते, महाराज, विहरतो अप्पमादं उपनिस्साय इत्थागारस्स अनुयन्तस्स एवं भविस्सति—'राजा खो अप्पमत्तो विहरति, अप्पमादं उपनिस्साय। हन्द मयं पि अप्पमत्ता विहराम, अप्पमादं उपनिस्साया' ति।

"अप्पमत्तस्स ते, महाराज, विहरतो अप्पमादं उपनिस्साय, खत्तियानं पि [N.88] अनुयन्तानं एवं भविस्सति—' राजा खो अप्पमत्तो विहरति अप्पमादं उपनिस्साय। हन्द मयं पि अप्पमत्ता विहराम, अप्पमादं उपनिस्साया' ति।

"अप्पमत्तस्स ते, महाराज, विहरतो अप्पमादं उपनिस्साय, बलकायस्स पि एवं भविस्सति—'राजा खो अप्पमत्तो विहरति अप्पमादं उपनिस्साय। हन्द मयं पि अप्पमत्ता विहराम, अप्पमादं उपनिस्साया' ति।

"अप्पमत्तस्स ते, महाराज, विहरतो अप्पमादं उप्पनिस्साय, नेगमजानपदस्स

प्रकार जानना चाहिये कि यह मेरा धर्म एकान्ततः कल्याणमित्रों के आश्रय पर ही टिका हुआ (आधृत) है।"

"अतः, महाराज! यहाँ यह सीखना चाहिये—'कल्याणमित्रों (भले लोगों) के साथ ही मिलूँगा, जुड़ूँगा तथा उन्ही के साथ रहूँगा।' आपको भी यही सीखना चाहिये।

"महाराज! ऐसे कल्याणमित्रों के साथ मिलने जुड़ने वाले तथा रहने वाले के लिये यही एक धर्म साधनाहेतु रह जाता है कि वह अप्रमाद के साथ कुशल धर्मों के अभ्यास (बार बार दुहराना) करे।

"महाराज! इस तरह आपके द्वारा अप्रमाद के साथ कुशल धर्मों का अभ्यास करने से आपके अधीनस्थ अन्तःपुर की रानियों के मन में भी यह धारणा बनेगी कि हमारे राजा जब अप्रमत्त होकर धर्मो का अभ्यास कर रहे हैं तो हम भी अप्रमत्त होकर ऐसा ही क्यों न करें।

"महाराज! इस तरह आप के द्वारा अप्रमाद के साथ कुशल धर्मों का अभ्यास करने से आप के अधीनस्थ क्षत्रियों के मन में भी...पूर्ववत्...क्यों न करं।

पि एवं भविस्सति—'राजा खो अप्पमत्तो विहरति, अप्पमादं उपनिस्साय। हन्द मयं पि अप्पमत्ता विहराम, अप्पमादं उपनिस्साया' ति?

"अप्पमत्तस्स ते, महाराज, विहरतो अप्पमादं उपनिस्साय अत्ता पि गुत्तो रक्खितो भविस्सति, इत्थागारं पि गुत्तं रक्खितं भविस्सति, कोसकोट्ठागारं पि गुत्तं रक्खितं भविस्सती" ति।

४८. इदमवोच... पे०...।

"भोगे पत्थयमानेन, उळारे अपरापरे।
अप्पमादं पसंसन्ति, पुञ्ञकिरियासु पण्डिता॥
अप्पमत्तो उभो अत्थे, अधिग्गण्हाति पण्डितो।
दिट्ठे धम्मे च यो अत्थो, यो चत्थो सम्परायिको। [B.90]
अत्थाभिसमया धीरो, पण्डितो ति पवुच्चती" ति॥ •

१९. पठमअपुत्तकसुत्तं

४९. सावत्थिनिदानं। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो दिवादिवस्स येन भगवा तेनुपसङ्कमि; भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो राजानं

"महाराज! इस तरह....अभ्यास करने से आपके अधीनस्थ सेना के अधिकारियों के मन में भी यह होगा कि ...पूर्ववत्...क्यों न करें।

"महाराज! इस तरह अप्रमत्त होकर साधना करने से आप स्वयं संयमी बनेंगे, आप की रानियां भी, आपके अधीनस्थ क्षत्रिय (राजा लोग), अधीनस्थ सेनाधिकारी, अधीन ग्रामवासी एवं आपके वित्तकोष तथा धान्यागार आदि सभी कुछ संयत एवं सुरक्षित एवं संयत रहेगा।"

४८. भगवान्...पूर्ववत्...।

"अधिक से अधिक भोगों की कामना करने वाले के लिये अप्रमादपूर्वक आचरण करना ही विद्वानों ने श्रेष्ठ बताया है।

"इस तरह अप्रमादपूर्वक आचरण करने वाला साधक दोनों ही लोकों के समस्त अभीप्सित भोगों को अनायास ही प्राप्त कर सकता है।

"इस लोक या परलोक में जो कर्तव्य कर्म है उनकी वास्तविकता का ज्ञान कर लेना ही बुद्धिमान् का प्रथम कर्तव्य होता है। इस का ज्ञाता ही 'धीर' एवं 'पण्डित' कहलाता है"॥ •

१९. प्रथमअपुत्रकसूत्र : : अतिलोभ (कंजूसी) का त्याग

४९. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। तब एक दिन राजा प्रसेनजित् कौसल मध्याह्न

पसेनदिं कोसलं भगवा एतदवोच—"हन्द कुतो नु त्वं, महाराज, आगच्छसि दिवादिवस्सा" ति?

"इध, भन्ते, सावत्थियं सेट्ठि गहपति कालङ्कतो। तमहं अपुत्तकं सापतेय्यं [N.89,R.90] राजन्तेपुरं अतिहरित्वा आगच्छामि। असीति, भन्ते, सतसहस्सानि हिरञ्ञस्सेव, को पन वादो रूपियस्स! तस्स खो पन, भन्ते, सेट्ठिस्स गहपतिस्स एवरूपो भत्तभोगो अहोसि—कणाजकं भुञ्जति विलङ्गदुतियं। एवरूपो वत्थभोगो अहोसि—साणं धारेति तिपक्खवसनं। एवरूपो यानभागो अहोसि—जज्जररथकेन याति पण्णछत्तकेन धारियमानेना" ति।

५०. "एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! असप्पुरिसो खो, महाराज,उळारे भोगे लभित्वा नेवत्तानं सुखेति पीणेति, न मातापितरो सुखेति पीणेति, न पुत्तदारं सुखेति पीणेति, न दासकम्मकरपोरिसे सुखेति पीणेति, न मित्तामच्चे सुखेति पीणेति,न समणब्राह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठापेति सोवग्गिकं सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं। तस्स ते भोगे एवं सम्मा अपरिभुञ्जियमाने राजानो वा हरन्ति, चोरा वा

में भगवान् के सम्मुख पहुँचे। वहाँ पहुँच कर, प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे राजा से भगवान् ने पूछा—"राजन्! आज इस भरी दुपहरी में कहाँ से आ रहे हैं?"

"भन्ते! यहाँ श्रावस्ती में नगरश्रेष्ठी गृहपति का देहावसान हो गया है। वह सन्तानहीन था, अत: उसकी समस्त सम्पत्ति राजकोष में भिजवा कर आ रहा हूँ। भन्ते! उसके पास अस्सी लाख केवल सोने की मुद्रायें (अशर्फियाँ) थीं, चाँदी की तो बात ही क्या कही जाय! परन्तु आप उस अतिलोभी (कञ्जूस) का भोजन सुनेंगे तो आश्चर्य करेंगे। वह खट्टी छाछ (मट्ठा) के साथ खुद्दी का भात खाता था। कपड़े भी वह ऐसे प्रहनता था जो टाट के बने हुए तथा स्थान स्थान पर सिले हुए होते थे। तथा ऐसे यान पर चलता था कि या तो कोई पुराना जीर्ण शीर्ण रथ होता था जिस का ऊपर छत्र पत्तों से छाया रहता था, या फिर कोई टूटी पुरानी पालकी।"

५०."ऐसा ही होता है, महाराज! ऐसा ही होता है! ऐसे असत् पुरुष अतुल भोग्य सामग्री पाकर भी न तो स्वयं उसका सुखपूर्वक उपभोग कर पाते हैं, न उससे अपने माता पिता को ही कोई सुख पहँचा सकते हैं। न अपने पुत्र या स्त्री को..., न अपने नौकर चाकरों को..., न अपने मित्रों या साथियों को कोई सुख पहुँचा पाते हैं। न उस में से किसी श्रमण ब्राह्मण को ही ऐसा कुछ दान कर पाते है कि जो आगे जन्म में उस के लिये पुण्य का आलम्बन बने, या इससे स्वर्गप्राप्ति हो सके। इस तरह उनकी इस अतुल सम्पत्ति को, स्वयं न उपभोग करने के कारण, या तो राजा लोग छीन लेते हैं, या चोर चुरा ले जाते हैं,

हरन्ति, अग्गि वा डहति, उदकं वा वहति, अप्पिया वा दायदा हरन्ति। एवंस ते, महाराज, भोगा सम्मा अपरिभुञ्जियमानो परिक्खयं गच्छन्ति नो परिभोगं।

''सेय्यथापि, महाराज, अमनुस्सट्ठाने पोक्खरणी अच्छोदका सीतोदका सातोदका सेतोदका सुपतित्था रमणीया। तं जनो नेव हरेय्य न पिवेय्य न नहायेय्य न यथापच्चयं वा करेय्य। एवं हि तं, महाराज, उदकं सम्मा अपरिभुञ्जियमानं परिक्खयं गच्छेय्य नो परिभोगं। एवमेव खो, महाराज, असप्पुरिसो उळारे भोगे लभित्वा [B.91] नेवत्तानं सुखेति पीणेति, न मातापितरो सुखेति पीणेति, न पुत्तदारं सुखेति पीणेति, न दासकम्मकरपोरिसे सुखेति पीणेति, न मित्तामच्चे सुखेति पीणेति, न समणब्रह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठापेति सोवग्गिकं सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं। तस्स ते भोगे एवं सम्मा अपरिभुञ्जियमाने राजानो वा हरन्ति चोरा व हरन्ति अग्गि वा डहति उदकं वा वहति अप्पिया वा दायदा हरन्ति। एवंस ते, महाराज, भोगा सम्मा अपरिभुञ्जियमाना परिक्खयं गच्छन्ति नो परिभोगं।

''सप्पुरिसो च खो, महाराज, उळारे भोगे लभित्वा अत्तानं सुखेति पीणेति, मातापितरो सुखेति पीणेति, पुत्तदारं सुखेति पीणेति, दासकम्मकरपोरिसे सुखेति पीणेति, मित्तामच्चे सुखेति पीणेति, समणब्राह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं [N.90] पतिट्ठापेति सोवग्गिकं सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं। तस्स ते भोगे एवं सम्मा

या अग्नि जला देती है, या वह बाढ़ में बह जाती है, या फिर अन्त में वह सम्पत्ति ऐसे सम्बन्धी लोगों के हाथ लग जाती है जिन्हें वह कभी फूटी आँखों से भी न देखना चाहता हो। इस तरह, महाराज, उस असत् पुरुष की वह अतुल सम्पत्ति उसके उपभोग के बिना ही क्षीण हो जाती है।

''जैसे, महाराज! किसी निर्जन स्थान में एक पुष्करणी (बावड़ी) हो जिसका जल स्वच्छ, शीतल, स्वास्थ्यप्रद हो तथा जिस की सीढ़ियां या घाट मनोरम हो। उसके इस जल को न तो कोई आदमी अपने उपयोग के लिये ले जाय, न पीये, न उससे स्नान करे। महाराज! इस तरह उसका जल उपयोग में लाये विना निरर्थक हो जाय; इसी तरह, महाराज! असत् पुरुष भोग्य सामग्री पाकर उसका कोई सुखप्रद उपयोग नही कर पाते हैं...पूर्ववत्...उसके उपभोग के बिना ही क्षीण हो जाती है।

''इसके विपरीत, महाराज! सत् पुरुष अतुल भोग्य सामग्री पा कर स्वयं तो उसका सुखप्रद उपयोग करते ही हैं; साथ ही वे उसके माध्यम से अपने माता पिता को भी प्रसन्न तथा सुखी रखते हैं; मित्रों को, साथियों को, अपने नौकर चाकरों को भी उसका कुछ अंश प्रदान कर सुखी एवं प्रसन्न रखते हैं। यथासमय श्रमण एवं ब्राह्मणों को भी यज्ञादि की

[R.91] परिभुञ्जियमाने नेव राजानो हरन्ति, न चोरा हरन्ति, न अग्गि डहति, न उदकं वहति, न अप्पिया दायादा हरन्ति। एवंस ते, महाराज, भोगा सम्मा परिभुञ्जियमाना परिभोगं गच्छन्ति नो परिक्खयं।

"सेय्यथापि, महाराज, गामस्स वा निगमस्स वा अविदूरे पोक्खरणी अच्छोदका सीतोदका सातोदका सेतोदका सुपतित्था रमणीया। तं च उदकं जनो हरेय्य पि पिवेय्य पि नहायेय्य पि यथापच्चयं पि करेय्य। एवं हि तं, महाराज, उदकं सम्मा परिभुञ्जियमानं परिभोगं गच्छेय्य नो परिक्खयं। एवमेव खो, महाराज, सप्पुरिसो उळारे भोगे लभित्वा अत्तानं सुखेति पीणेति,. मातापितरो सुखेति पीणेति, पुत्तदारं सुखेति पीणेति, दासकम्मकरपोरिसे सुखेति पीणेति, मित्तामच्चे सुखेति पीणेति, समणब्राह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठापेति सोवग्गिकं सुखविपाकं सग्ग-संवत्तनिकं। तस्स ते भोगे एवं सम्मा परिभुञ्जियमाने नेव राजानो हरन्ति, न चोरा हरन्ति, न अग्गि डहति, न उदकं वहति, न अप्पिया दायादा हरन्ति। एवंस ते, महाराज, भोगा सम्मा परिभुञ्जियमाना परिभोगं गच्छन्ति नो परिक्खयं" ति।

[B.92] ५१. इदमवोच भगवा...पे०...।

"अमनुस्सट्ठाने उदकं व सीतं, तदपेय्यमानं परिसोसमेति।
एवं धनं कापुरिसो लभित्वा, नेवत्तना भुञ्जति नो ददाति॥

समाप्ति पर अधिक से अधिक दान दक्षिणा देते रहते है। इस तरह वे अपनी उस अतुल्य सम्पत्ति का उचित उपयोग करते रहते हैं। इसी लिये उनकी सम्पत्ति को न राजा लोग छीन सकते हैं, न चोर चुरा सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न उसे जल की बाढ बहा सकती है। इस तरह, महाराज, सत्पुरुषों की वह अतुल सम्पत्ति उचित उपभोग के कारण कभी व्यर्थ नहीं जाती।

"जैसे, महाराज! किसी ग्राम का या कस्बे के समीप कोई पुष्करणी बनी हुई हो। उसका जल स्वच्छ शीतल तथा स्वास्थ्यकर हो; उसके घाट तथा सीढ़ियाँ भी मनोरम हों। उस जल को ग्राम वाले अपने किसी उपयोग के लिये ले भी जायँ, स्वयँ उसे पीयें भी, उससे स्नान भी करे या उसका यथोचित कोई अन्य उपयोग भी करें। यों महाराज! उस पुष्करणी का वह जल निरन्तर जनता के किसी न किसी उपयोग में ही आता रहता है, कभी व्यर्थ नहीं जाता। इसी तरह, महाराज! जो सत्पुरुष अतुल भोग्य सामग्री प्राप्त कर उसका सतत सुखप्रद उपयोग, उपभोग करते रहते हैं...पूर्ववत्...कभी व्यर्थ नहीं जाती।"

५१. भगवान् यह बोले...पूर्ववत्...

"जैसे निर्जन स्थान में शीतल जल, किसी के द्वारा पान किये विना ही सूख जाता

धीरो च विञ्ञू अधिगम्म भोगे, सो भुञ्जति किच्चकरो च होति।
सो ञातिसङ्घं निसभो भरित्वा, अनिन्दितो सग्गमुपेति ठानं'' ति॥ •

२०. दुतियअपुत्तकसुत्तं

५२. अथ खो राजा पसेनदि कोसलो दिवादिवस्स येन भगवा तेनुसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं निसिन्नं खो राजानं पसेनदिं कोसलं भगवा एतदवोच-''हन्द, कुतो नु त्वं, महाराज, आगच्छसि दिवादिवस्सा'' ति? [N.91]

''इध, भन्ते, सावत्थियं सेट्ठि गहपति कालङ्कतो। तमहं अपुत्तकं सापतेय्यं राजन्तेपुरं अतिहरित्वा आगच्छामि। सतं, भन्ते, सतसहस्सानि हिरञ्ञस्सेव, को वादो रूपियस्स! तस्स खो पन, भन्ते, सेट्ठिस्स गहपतिस्स एवरूपो भत्तभोगो अहोसि—कणाजकं भुञ्जति बिलङ्गदुतियं। एवरूपो वत्थभोगो अहोसि—साणं धारेति तिपक्खवसनं। एवरूपो यानभोगो अहोसि—जज्जररथकेन याति पण्णछत्तकेन [R.92] धारियमानेना'' ति।

५३. ''एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! भूतपुब्बं सो, महाराज,सेट्ठि गहपति तग्गरसिखिं नाम पच्चेकसम्बुद्धं पिण्डपातेन पटिपादेसि। 'देथ समणस्स

है; ऐसे ही असत् पुरुष अतुल धन पा कर भी उसका न स्वयं उपभोग कर पाता है, न अन्य किसी को दान में ही देता है॥

''परन्तु धीर एवं विज्ञ पुरुष उक्त अतुल धन सम्पत्ति प्राप्त कर उसका स्वयं भी यथेष्ट उपभोग करता है, तथा साथ ही अपने अन्य कार्यों में भी लगाता है। तथा वह उससे अपने माता पिता एवं अन्य सम्बन्धीजनों का भी पालन पोषण करता हुआ इस लोक में प्रशंसा पाता हुआ तथा दान आदि द्वारा स्वर्ग में भी अपना सुखमय स्थान बना लेता है''॥

२०. द्वितीय अपुत्रकसूत्र : : अतिलोभ हीन पुण्य कर्म

५२. ...किसी समय राजा प्रसेनजित् कौसल पूर्ण मध्याह्न में भगवान् के सम्मुख पहुँचे। पहुँचकर... एक ओर बैठे हुए राजा से भगवान् ने पूछा—''महाराज! आज इस भरी दोपहर में आपका कहाँ से आना हो रहा है?''

''यहाँ, भन्ते! श्रावस्ती में एक नगरश्रेष्ठी गृहपति का देहावसान हो गया, सम्पत्ति के नाम पर उसके पास अस्सी लाख सुवर्ण मुद्राएँ ही थीं...पूर्ववत्...या फिर कोई टूटी पुरानी पालकी।''

५३. ''ऐसा ही होता है, महाराज! ऐसा ही होता है। महाराज! पहले जन्म में इस नगरश्रेष्ठी ने तगरशिखी नामक प्रत्येकबुद्ध को भिक्षा का निमन्त्रण दिया था। यह उस समय

पिण्डं' ति वत्वा उट्ठायासना पक्कामि। दत्वा च पन पच्छा विप्पटिसारी अहोसि— 'वरमेतं पिण्डपातं दासा वा कम्मकरा वा भुञ्जेय्यं' ति। भातु च पन एकपुत्तकं सापतेय्यस्स कारणा जीविता वोरोपेसि।

"यं खो सो, महाराज, सेट्ठि गहपति तग्गरसिखिं पच्चेकसम्बुद्धं पिण्डपातेन पटिपादेसि, तस्स कम्मस्स विपाकेन सत्तक्खत्तुं सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जि। तस्सेव [B.93] कम्मस्स विपाकावसेसेन इमिस्सायेव सावत्थिया सत्तक्खत्तुं सेट्ठित्तं कारेसि। यं खो सो, महाराज, सेट्ठि गहपति दत्वा पच्छा विप्पटिसारी अहोसि—'वरमेतं पिण्डपातं दासा व कम्मकरा वा भुञ्जेय्युं' ति, तस्स कम्मस्स विपाकेन नास्सुळाराय भत्तभोगाय चित्तं नमति, नास्सुळाराय वत्थभोगाय चित्तं नमति, नास्सुळाराय यानभोगाय चित्तं नमति, नास्सुळारानं पञ्चन्नं कामगुणानं भोगाय चित्तं नमति। यं खो सो, महाराज, सेट्ठि गहपति भातु च पन एकपुत्तकं सापतेय्यस्स कारणा जीविता वोरोपेसि, तस्स कम्मस्स विपाकेन बहूनि वस्ससतसहस्सानि निरये पच्चित्थ। तस्सेव कम्मस्स विपाकावसेसेन [N.92] इदं सत्तमं अपुत्तकं सापतेय्यं राजकोसं पवेसेति। तस्स खो, महाराज, सेट्ठिस्स गहपतिस्स पुराणं च पुञ्ञं परिक्खीणं, नवं च पुञ्ञं अनुपचितं। अज्ज पन, महाराज, सेट्ठि गहपति महारोरुवे निरये पच्चति" ति।

'श्रमण को भिक्षा दो' कह कर आसन से उठकर चल दिया था। भिक्षा देने के बाद इसने पश्चात्ताप भी किया—'अच्छा होता कि भिक्षा में दिया हुआ यह अन्न किसी नौकर चाकर को ही दिया जाता तो वह इसे खा कर अपना कार्य अधिक बलपूर्वक करता।' तथा इसने अपने भाई के एक पुत्र को भी धन के लोभ में मार डाला था।

"महाराज! उस श्रेष्ठी ने तगरशिखी नामक प्रत्येकबुद्ध को जो भिक्षादान किया उस पुण्य के फलस्वरूप उसको सात बार सुगतिमय स्वर्गलोक में वास मिला। इसी कर्म के अवशिष्ट फल से वह सात बार श्रावस्ती नगर का श्रेष्ठी भी बना। परन्तु उस दान के बाद इसने जो पश्चात्ताप किया कि वह अन्न किसी नौकर चाकर को ही दे दिया जाता तो वह इसे खा कर अपना कार्य अधिक बलपूर्वक करता—इस पाप के फलस्वरूप, अतुल सम्पत्ति प्राप्त कर के भी न तो उसके उचित उपभोग हेतु इसका मन करता था, न इसका मन अच्छे वस्त्र पहनने या अच्छे यान का उपयोग करने का या पाँचों कामभोगों को भोगने का होता था। और फिर महाराज! इस श्रेष्ठी ने सम्पत्ति के लोभ में अपने भाई के पुत्र की अकारण हत्या कर दी थी, उस पाप के फलस्वरूप यह बहुत वर्षों तक, सैकड़ों ,हजारों वर्षों तक नरक में गिर कर अनेकविध कष्ट भोगता रहा। उसी कर्म के अवशिष्ट फल के कारण यह इस जन्म में सन्तानविहीन रहा। इसीलिये इसके जन्मभर की अर्जित सम्पत्ति राजकोष में

"एवं, भन्ते, सेट्ठि गहपति महारोरुवं निरयं उपपन्नो" ति?

"एवं, महाराज, सेट्ठि गहपति महारोरुवं निरयं उपपन्नो" ति। [R.93]

५४. इदमवोच...पे०...।

"धञ्ञं धनं रजतं जातरूपं, परिग्गहं वा पि यदत्थि किञ्चि।
दासा कम्मकरा पेस्सा, ये चस्स अनुजीविनो।
सब्बं नादाय गन्तब्बं, सब्बं निक्खिप्पगामिनं॥
"यं च करोति कायेन, वाचाय उद चेतसा।
तं हि तस्स सकं होति, तं व आदाय गच्छति।
तं वस्स अनुगं होति, छाया व अनपायिनी॥
"तस्मा करेय्य कल्याणं, निचयं सम्परायिकं।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं" ति॥ •

दुतियो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

जटिला पञ्च राजानो, दोणपाककुरेन च।
सङ्गामेन द्वे वुत्तानि, मल्लिका द्वे अप्पमादेन च।
अपुत्तकेन द्वे वुत्ता, वग्गो तेन पवुच्चती ति॥ •

चली गयी। महाराज! उस श्रेष्ठी का पुराना पुण्य क्षीण हो चुका था, नया उसने कुछ संग्रह नहीं किया। उसका फल यह है कि आज वह महारौरव नरक में गिर कर दण्ड भोग रहा है।"

"तो क्या, भन्ते! उस श्रेष्ठी का इन्ही कारणों से महारौरव नरक में पात हुआ?"

"हाँ, महाराज! इन्हीं कारणों से ...पात हुआ।"

५४. भगवान् यों बोले...पूर्ववत्...।

"धन, धान्य सोना, चाँदी, तथा अन्य जो कुछ भी महार्घ द्रव्य है, नौकर चाकर तथा अन्य अनुजीवी (आश्रित रहने वाले) जन, इन सब में से किसी को भी साथ लेकर नहीं जाया जाता। सबको यहीं छोड़कर चले जाना होता है।

"मनुष्य जो कुछ अपने शरीर, वाणी या मन से कुशल या अकुशल करता है वही उसका अपना धन होता है। उसे ही साथ ले कर वह जाता है, छाया की तरह एकमात्र वही उसका अनुग (पीछे जाने वाला) होता है॥

"अत: कुशल कर्म करने चाहिये, जिनसे अपना परलोक सुधरे; क्यों कि पुण्यमय कर्म ही प्राणियों के लिये परलोक में आधार (प्रतिष्ठा) बनते है॥" •

द्वितीय वर्ग समाप्त॥

इस द्वितीय वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की नामावलि—१. सत्तजटिलसूत्र, २. पञ्चराजसूत्र, ३. द्रोणपाकसूत्र, ४. प्रथमसंग्रामसूत्र, ५. द्वितीयसंग्रामसूत्र, ६. मल्लिकासूत्र, ७. अप्रमादसूत्र, ८. कल्याणमित्रसूत्र, ९. प्रथमअपुत्रकसूत्र एवं १०. द्वितीयअपुत्रकसूत्र॥ •

३. ततियो वग्गो

२१.पुग्गलसुत्तं

५५. सावत्थिनिदानं। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो [B.94] राजानं पसेनदिं कोसलं भगवा एतदवोच—"चत्तारोमे, महाराज, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? तमोतमपरायनो, तमोजोतिपरायनो, जोतितम-परायनो, जोतिजोतिपरायनो।

१. तमोतमपरायनो पुग्गलो

५६. "कथं च, महाराज, पुग्गलो तमोतमपरायनो होति? इध, महाराज, एकच्चो पुग्गलो नीचे कुले पच्चाजातो होति, चण्डालकुले वा वेनकुले वा [N.93] नेसादकुले वा रथकारकुले वा पुक्कुसकुले वा दलिद्दे अप्पन्नपानभोजने कसिरवुत्तिके, यत्थ कसिरेन घासच्छादो लब्भति। सो च होति दुब्बण्णो दुद्दसिको [R.94] ओकोटिमको बव्हाबोधो काणो वा कुणी वा खञ्जो वा पक्खहतो वा, न लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। सो कायेन दुच्चरितं

तृतीय वर्ग

२१. पुद्गलसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

५५. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही उपदिष्ट हुआ है। किसी समय राजा प्रसेनजित् कौसल भगवान् के सम्मुख...एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे राजा को भगवान् यों उपदेश करने लगे—"महाराज! इस लोक में चार प्रकार के लोग दिखायी देते हैं। कौन से चार प्रकार के? (क) तमस्तम:परायण, (ख) तमो ज्योति:परायण, (ग) ज्योतिस्तम:परायण, (घ) ज्योतिर्ज्योति:-परायण।

५६."महाराज! उनमें कोई **तमस्तम:परायण** पुद्गल कैसे होता है? यहाँ, महाराज! कोई पुरुष नीचकुल में, या पुक्कुसकुल में, चाण्डालकुल में, वेनकुल में, निषादकुल या रथकारकुल में । ये सब ऐसे दरिद्र कुल हैं, जहाँ जीवनयापन के लिये दैनिक भोजन भी बहुत कठिनता से अर्जित हो पाता है। वहाँ उत्पन्न पुरुष प्राय: दुर्वर्ण, न देखने योग्य (कुरूप), लम्बाई में नीचा (वामन) एवं रोगी होता है; जैसे—काण, कुब्ज, लगड़ा या पक्षघात (लकवा) से ग्रस्त विकलाङ्ग। उसको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला, गन्धविलेपन, शय्या एवं प्रकाशमय आवास (गृह) मिलना अतिदुर्लभ होता है। वह शरीर से, वाणी से,

चरित्वा, मनसा दुच्चरितं चरित्वा,कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपजति।

''सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो अन्धकारा वा अन्धकारं गच्छेय्य, तमा व तमं गच्छेय्य, लोहितमला वा लोहितमलं गच्छेय्य। तथूपमाहं, महाराज, इमं पुग्गलं वदामि। एवं खो, महाराज, पुग्गलो तमोतमपरायनो होति।

२. तमोजोतिपरायनो पुग्गलो

५७. ''कथं च, महाराज, पुग्गलो तमोजोतिपरायनो होति? इध, महाराज, एकच्चो पुग्गलो नीचे कुले पच्चाजातो होति चण्डालकुले वा वेनकुले वा नेसादकुले वा रथकारकुले वा पुक्कुसकुले वा, दलिद्दे अप्पन्नपानभोजने कसिरवुत्तिके, यत्थ [B.95] कसिरेन घासच्छादो लब्भति। सो च खो होति दुब्बण्णो दुद्दसिको ओकोटिमको बव्हाबाधो, काणो वा कुणी वा खञ्जो वा पक्खहतो वा, न लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। सो कायेन सुचरितं चरित्वा, वाचाय सुचरितं चरित्वा, मनसा सुचरितं चरित्वा, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति।

''सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो पठविया वा पल्लङ्कं आरोहेय्य, पल्लङ्का वा अस्सपिट्ठिं आरोहेय्य, अस्सपिट्ठिया वा हत्थिक्खन्धं आरोहेय्य, हत्थिक्खन्धा वा

मन से दुराचरण करता है। ऐसा दुराचरण करते करते एक दिन यहाँ से देहच्युति पा कर मरणानन्तर दुर्गतिमय अपाय (नरक) योनि में जा गिरता है।

"जैसे, महाराज! कोई पुरुष एक अन्धकारमय स्थान से निकल कर दूसरे अन्धकारमय स्थान में पहुँच जाता है, एक तमोमय स्थान से निकलकर दूसरे तमोमय स्थान में, या एक रक्तमिश्रित मल से निकल कर दूसरे रक्तमिश्रित मलयुक्त स्थान में चला जाता है, वैसी ही गति इस तमस्तम:परायण पुरुष की होती है। (क)

५७."फिर, महाराज! उनमें कोई **तमोज्योति:परायण पुद्गल** कैसे होता है? यहाँ, महाराज! कोई पुरुष नीच कुल में...पूर्ववत्... अतिदुर्लभ होता है। वह शरीर से, वाणी से तथा मन से सदाचारी होता है। ऐसा सदाचरण करते करते यहाँ से देहच्युति के बाद मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में पहुँच जाता है।

''महाराज! जैसे कोई पुरुष भूमि से उठ कर किसी शय्या पर चला जाय, शय्या, में घोड़े की पीठ पर , घोड़े की पीठ से हाथी के कन्धे पर तथा हाथी के कन्धे से किसी

पासादं आरोहेय्य। तथूपमाहं, महाराज, इमं पुग्गलं वदामि। एवं खो, महाराज, पुग्गलो तमोजोतिपरायनो होति।

३. जोतितमपरायनो पुग्गलो

५८. "कथं च, महाराज, पुग्गलो जोतितमपरायनो होति? इध, महाराज, एकच्चो पुग्गलो उच्चे कुले पच्चाजातो होति, खत्तियमहासालकुले वा [N.94] ब्राह्मणमहासालकुले वा गहपतिमहासालकुले वा, अड्ढे महद्धने महाभोगे पहूतजात-रूपरजते पहूतवित्तूपकरणे पहूतधनञ्ञे। सो च होति अभिरूपो दस्सनीयो [R.95] पासादिको, परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो, लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। सो कायेन दुच्चरितं चरित्वा, वाचाय दुच्चरितं चरित्वा, मनसा दुच्चरितं चरित्वा, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति।

"सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो पासादा वा हत्थिक्खन्धं ओरोहेय्य, हत्थिक्खन्धा वा अस्सपिट्ठिं आरोहेय्य, अस्सपिट्ठिया वा पल्लङ्कं ओरोहेय्य, पल्लङ्का वा पठविं ओरोहेय्य, पठविया वा अन्धकारं पविसेय्य। तथूपमाहं, महाराज, इमं पुग्गलं वदामि। एवं खो, महाराज, पुग्गलो जोतितमपरायनो होति।

ऊँचे महल पर चढ जाय; उसी तरह की समानता मैं इस पुद्गल की मानता हूँ। महाराज! ऐसा पुरुष ही तमोज्योतिः परायण कहलाता है। (ख)

५८. "महाराज! यहाँ कोई **ज्योतिस्तमःपरायण पुद्गल** कैसे होता है? यहाँ महाराज! कोई पुद्गल उच्च कुल में उत्पन्न होता है; जैसे—वैभवशाली क्षत्रिय कुल में, वैभवशाली ब्राह्मणकुल में या वैभवशाली गृहपतिकुल में। जहाँ प्रभूत धन सम्पत्ति हो, अपरिमित भोगसाधन हों, अत्यधिक सुवर्ण एवं रजत की राशि हो, कोशागार एवं धान्यागार धन-धान्य से परिपूर्ण हों। वह देखने में शुभाकृति, मनोहर, नयनाभिराम हो, वर्णपुष्कलता से सम्पन्न हो, अन्न पान वस्त्र यान माला गन्धविलेपन शय्या प्रदीपमय आवास जिसको अनायास सुलभ हों। वह काया, वाणी एवं मन से दुशचरित (असत्कर्म) करता है। यों वह असत्कर्म करता हुआ एक दिन इस देहपात के बाद मरणानन्तर दुर्गतिमय अपाय योनि में चिर काल तक दुःख भोगने के लिये जन्म लेता है।

"जैसे, महाराज! कोई पुरुष ऊँचे प्रसाद से उतर कर हाथी के कन्धे पर आ जाय, हाथी के कन्धे से भी घोड़े की पीठ पर उतर जाय, घोड़े की पीठ से शय्या पर उतर आये,

४. जोतिजोतिपरायनो पुग्गलो

५९. ''कथं च, महाराज, पुग्गलो जोतिजोतिपरायनो होति? इध, महाराज, [B.96] एकच्चो पुग्गलो उच्चे पच्चाजातो होति, खत्तियमहासालकुले वा ब्राह्मण-महासालकुले वा गहपतिमहासालकुले वा, अड्ढे महद्धने महाभोगे पहूतजातरूपरजते पहूतवित्तूपकरणे पहूतधनधञ्ञे। सो च होति अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो, लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्ध-विलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। सो कायेन सुचरितं चरित्वा वाचाय सुचरितं चरित्वा मनसा सुचरितं चरित्वा, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति।

''सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो पल्लङ्का वा पल्लङ्कं सङ्कमेय्य, अस्सपिट्ठिया वा [N.95] अस्सपिट्ठिं सङ्कमेय्य, हत्थिक्खन्धा वा हत्थिक्खन्धं सङ्कमेय्य, पासादा वा पासादं सङ्कमेय्य। तथूपमाहं, महाराज, इमं पुग्गलं वदामि। एवं खो, महाराज, पुग्गलो [R.96] जोतिजोतिपरायनो होति। इमे खो, महाराज, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति।

६०. इदमवोच...पे०...।

''दलिद्दो पुरिसो राज, अस्सद्धो होति मच्छरी।
कदरियो पापसङ्कप्पो, मिच्छादिट्ठि अनादरो॥

तथा शय्या से भी उतर कर भूमि पर आ जाय-वही स्थिति मैं इस पुद्गल की मानता हूँ। महाराज! इस तरह का पुद्गल 'ज्योतिस्तमःपरायण' कहलाता है। (ग)

५९. ''महाराज! यहाँ कोई **पुद्गल ज्योतिर्ज्योतिःपरायण** कैसे होता है? यहाँ, महाराज! कोई पुद्गल उच्चकुल में उत्पन्न होता है...पूर्ववत्...जिको अनायास सुलभ हों। वह काया, वाणी एवं मन से सत्कर्म करता है। यों निरन्तर सत्कर्म करता हुआ एक दिन देहपात के बाद मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में जाकर उत्पन्न होता है।

''महाराज! जैसे कोई पुरुष एक शय्या से दूसरी शय्या पर, या एक घोड़े की पीठ से दूसरे घोड़े की पीठ पर या एक हाथी के कन्धे से दूसरे हाथी के कन्धे पर, या एक प्रासाद से दूसरे प्रासाद पर चला जाय, इसी पुरुष के समान मैं इस पुद्गल को मानता हूँ। यों, महाराज! यह पुद्गल 'ज्योतिर्ज्योतिःपरायण' कहलाता है। अतः महाराज ये चार पुद्गल लोक में देखे जाते हैं''। (घ)

६०. भगवान् यों बोले...पूर्ववत्...''महाराज! संसार में चार प्रकार के पुरुष होते

"समणे ब्राह्मणे वा पि, अञ्ञे वा पि वनिब्बके।
अक्कोसति परिभासति, नत्थिको होति रोसको॥
"ददमानं निवारेति, याचमानान भोजनं।
तादिसो पुरिसो राज, मीयमानो जनाधिप!
उपेति निरयं घोरं, **तमोतमपरायनो**॥ (१)
"दलिद्दो पुरिसो राज, सद्धो होति अमच्छरी।
ददाति सेट्ठसङ्कप्पो, अब्यग्गमनसो नरो॥
"समणे ब्राह्मणे वा पि, अञ्ञे वा पि वनिब्बके।
उट्ठाय अभिवादेति, समचरियाय सिक्खति॥
"ददमानं न वारेति, याचमानान भोजनं।
तादिसो पुरिसो राज, मीयमानो जनाधिप।
उपेति तिदिवं ठानं, **तमोजोतिपरायनो**॥ (२)
"अड्ढो चे पुरिसो राज, अस्सद्धो होति मच्छरी। [B.97]
कदरियो पापसङ्कप्पो, मिच्छादिट्ठि अनादरो॥
"समणे ब्राह्मणे वा पि, अञ्ञे वा पि वनिब्बके।
अक्कोसति परिभासति, नत्थिको होति रोसको॥

हैं; जैसे—हे राजन्! कोई दरिद्र पुरुष श्रद्धारहित, अतिलोभी, कंजूस, पाप सङ्कल्प वाला, मिथ्यादृष्टि तथा पुण्यकर्मों में आदर न रखने वाला होता है॥

वह श्रमण ब्राह्मण तथा अन्य याचकों की निन्दा करने वाला उनको अपशब्द बोलने वाला, नागरिक एवं क्रोधी होता है॥

वह याचकों के लिये दान करने वाले पुरुष को रोकता है। हे राजन्! जनाधिप! वैसा पुरुष मरने पर **तमस्तमःपरायण** कहलाता है॥ (१)

"...भोजन याचकों के दाता को वह दान से रोकता नहीं है। हे राजन्! हे जनाधिप! वैसा पुरुष **तमोज्योतिःपरायण** कहलाता है। वह यहाँ से देहपात के बाद सुगतिमय स्वर्ग में पहुँचता है॥ (२)

हे राजन्! कोई पुरुष वैभवशाली होता हुआ भी श्रद्धारहित अतिलोभी, कंजूस, पापसङ्कल्प वाला, मिथ्यादृष्टि, पुण्यकर्मों में आदर न रखने वाला होता है॥

वह श्रमण ब्राह्मण एवं दूसरे याचकों की निन्दा करने वाला, उनको अपशब्द बोलने वाला, नास्तिक एवं क्रोधी होता है॥

"ददमानं निवारेति, याचमानान भोजनं।
तादिसो पुरिसो राज, मीयमानो जनाधिप।
उपेति निरयं घोरं, **जोतितमपरायनो**॥ (३)

"अड्ढो चे पुरिसो राज, सद्धो होति अमच्छरी।
ददाति सेट्ठसङ्कप्पो, अव्यग्गमनसो नरो॥

[N.96] "समणे ब्राह्मणे वा पि, अञ्ञे वा पि वनिब्बके।
उट्ठाय अभिवादेति, समचरियाय सिक्खति॥

"ददमानं न वारेति, याचमानान भोजनं।
तादिसो पुरिसो राज, मीयमानो जनाधिप!
उपेति तिदिवं ठानं, **जोतिजोतिपरायनो**" ति॥ (४)

२२. अय्यिकासुत्तं

६१. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो राजानं पसेनदिं कोसलं भगवा [R.97] एतदवोच—"हन्द, कुतो नु त्वं, महाराज, आगच्छसि दिवादिवस्सा" ति?

"अय्यिका मे, भन्ते, कालङ्कता जिण्णा वुड्ढा महल्लिका अद्धगता वयोअनुप्पत्ता वीसवस्ससतिका जातिया। अय्यका खो पन मे, भन्ते, पिया होति मनापा। हत्थिरतनेन चे पाहं, भन्ते, लभेय्यं—'मा मे अय्यिका कालमकासी' ति,

---

वह याचकों के लिये दाता को दान करने से रोकता रहता है। यह **ज्योतिस्तमःपरायण** कहलाता है॥ (३)

तथा, हे राजन्! कोई पुरुष वैभवशली होता हुआ भी श्रद्धालु, निर्लोभ, उदार, दानी, शुभसङ्कल्प तथा शान्तचित्त होता है॥

श्रमण ब्राह्मण तथा अन्य याचकों के आने पर उनका उठकर अभिवादन करता है तथा संयम का अभ्यास करता है॥

माँगने वालों के लिये भिक्षा देने वाले को रोकता नहीं है। हे राजन्! हे जनाधिप! ऐसा पुरुष **ज्योतिर्ज्योतिःपरायण** कहलाता है। तथा यह देहपात के बाद सुगतिमय स्वर्ग का वासी होता है"॥ (४)

२२. आर्यिकासूत्र : : मृत्यु नियत है

६१. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...।...एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौसल को भगवान् ने यह पूछा —"महाराज! इस मध्याह्न में कहाँ से चले आ रहे हैं?"

(राजा बोले—) "भन्ते! मेरी दादी का देहपात हो गया है। यह बहुत समय प्राप्त, जीर्ण वृद्धा, पुरानी, आयुकी पूर्णता प्राप्त की हुई, तथा जन्म से एक सौ बीस वर्ष की थी।

हत्थिरतनम्पाहं ददेय्यं—'मा मे अय्यिका कालमकासी' ति। अस्सरतनेन चे पाहं, भन्ते, लभेय्यं—'मा मे अय्यिका कालमकासी' ति, अस्सरतनं चाहं ददेय्यं—'मा मे अय्यिका कालमकासी' ति। गामवरेन चे पाहं भन्ते, लभेय्यं 'मा मे अय्यिका कालमकासी' ति, गामवरम्पाहं ददेय्यं—'मा मे अय्यिका कालमकासी' ति। [B.98] जनपदपदेसेन चे पाहं, भन्ते, लभेय्यं 'मा मे अय्यिका कालमकासी' ति, जनपदपदेसम्पाहं ददेय्यं—'मा मे अय्यिका कालमकासी''' ति।

६२. ''सब्बे सत्ता,महाराज, मरणधम्मा मरणपरियोसाना मरणं अनतीता'' ति।

''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावसुभासितमिदं, भन्ते, भगवता—'सब्बे सत्ता मरणधम्मा मरणपरियोसाना मरणं अनतीता''' ति।

''एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! सब्बे सत्ता मरणधम्मा मरणपरियोसाना मरणं अनतीता। सेय्यथापि, महाराज, यानि कानिचि कुम्भकारभाजनानि आमकानि चेव पक्कानि च, सब्बानि तानि भेदनधम्मानि भेदनपरियोसानानि भेदनं अनतीतानि; एवमेव खो, महाराज, सब्बे सत्ता मरणधम्मा मरणपरियोसाना मरणं [N.97] अनतीता'' ति।

भन्ते! मुझ को मेरी दादी बहुत प्रिय थी, मैं उसको हृदय से चाहता था। यदि कोई श्रेष्ठ हाथी देने से मुझ को ऐसा आश्वासन दे कि मेरी दादी मुझको पुनः मिल जायगी तो मैं उसे हस्तिरत्न दे कर अपनी दादी पुनः लेना चाहूँगा। इसी तरह यदि कोई श्रेष्ठ अश्व देने से...पूर्ववत्...श्रेष्ठ ग्राम देने से..श्रेष्ठ जनपद देने से मुझको ऐसा आश्वासन दे कि...मेरी दादी को पुनः लेना चाहूँगा। उनका देहपात न होता—यही मेरी हार्दिक इच्छा थी और है।''

(भगवान्—) ६२. ''महाराज! सभी जीव मरणस्वभाव वाले हैं। एक न एक दिन सभी का देहपात होना है। मृत्युमुख में जाने से वे किसी भी दशा में बच नहीं सकते; क्यों कि मरण ही उनका अन्त है।''

''आश्चर्यमय वचन कहा, भन्ते! आपने। आप का वचन अद्भुत है कि सभी जीव मरणस्वभाव है, मरण ही इन का अन्त है।''

''हाँ, महाराज! यही बात है। सभी जीव मरणस्वभाव हैं, मरण ही इनका अन्त है। जैसे, महाराज! कुम्हार द्वारा बनाये मिट्टी के सभी घड़े, फिर भले ही वे कच्चे हो या पकाये जा चुके हों, उनको एक न एक दिन फूटना ही है; क्यों कि फूटना (भेदन) उनका स्वभाव है, धर्म है, प्रकृति है तथा यों फूटना ही इनको अन्त है। इसी तरह सभी प्राणी मरणधर्मा हैं, मरणप्रकृतिक हैं तथा मरण ही उनका अन्त है।''

६३. इदमवोच ... पे० ...।

"सब्बे सत्ता मरिस्सन्ति, मरणन्तं हि जीवितं।
यथाकम्मं गमिस्सन्ति, पुञ्ञपापफलूपगा॥
तस्मा करेय्य कल्याणं, निचयं सम्परायिकं।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं" ति॥

२३. लोकसुत्तं

६४. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं [R.98] एतदवोच—"कति नु खो, भन्ते, लोकस्स धम्मा उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराया" ति?

"तयो खो, महाराज, लोकस्स धम्मा उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराय। कतमे तयो? **लोभो** खो, महाराज, लोकस्स धम्मो उप्पज्जमानो उप्पज्जति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराय। **दोसो** खो, महाराज, लोकस्स धम्मो उप्पज्जमानो उप्पज्जति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराय। **मोहो** खो, महाराज, लोकस्स धम्मो उप्पज्जमानो उप्पज्जति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराय।

---

६३. भगवान् यों बोले। साथ ही...पूर्ववत्...

"इस संसार में जन्मे हुए सभी प्राणियों की एक न एक दिन मृत्यु होनी ही है; क्यों कि जीवन का अन्त मरण में ही समाहित है। वे जैसा कर्म करेंगे उनके फलस्वरूप पाप पुण्य उनके पीछे लग जायँगे। तदनुसार ही उनकी गति होगी।

"उसके पापकर्म नरक की ओर ले जाते है. तो पुण्य कर्म सुगतिमय स्वर्ग की ओर। अत: बुद्धिमान् पुरुष को कल्याणकर्मों में ही प्रवृत्त रहना चाहिये। इनसे परलोक का संग्रह होता है। यह वस्तुसत्य है कि प्राणियों का परलोक (स्वर्ग) में वास एकन्ततः पुण्यकर्मों पर ही आधृत है"॥

२३. लोकसूत्र : : तीन अहितकर दुर्गुण

६४. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौसल ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! लोक में उत्पन्न होते हुए कितने धर्म प्राणियों के अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये होते हैं?"

"महाराज! ये तीन धर्म लोक में उत्पन्न होते हुए प्राणियों के अहित, कष्ट तथा दुःख के लिये होते हैं। कौन से तीन? महाराज! **लोभ** धर्म लोक में प्राणियों के अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होता है। महाराज! **द्वेष** धर्म...। महाराज! **मोह** धर्म लोक

इमे खो, महाराज, तयो लोकस्स धम्मा उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराया'' ति।

६५. इदमवोच ... पे० ...

"लोभो दोसो च मोहो च, पुरिसं पापचेतसं। [B.99]
हिंसन्ति अत्तसम्भूता, तचसारं व सम्फलं'' ति॥

●

२४. इस्सत्तसुत्तं

६६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—"कत्थ नु खो, भन्ते, दानं दातब्बं'' ति?

"यत्थ खो, महाराज, चित्तं पसीदती'' ति।

"कत्थ पन, भन्ते, दिन्नं महप्फलं'' ति?

"अञ्ञं खो एतं महाराज, कत्थ दानं दातब्बं, अञ्ञं पनेतं कत्थ दिन्नं महप्फलं ति। सीलवतो खो, महाराज, दिन्नं महप्फलं,नो तथा दुस्सीले। तेन हि, महाराज, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा न ब्याकरेयासि। [N.98] तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध त्यस्स युद्धं पच्चुपट्ठितं सङ्गामो समुपब्यूळ्हो। अथ

में प्राणियों के अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होता है। महाराज! ये तीन धर्म...उत्पन्न होते हैं।''

६५. भगवान् यों बोले...पूर्ववत्...

"पापमय चिन्तन करने वाले पुरुष को लोभ, द्वेष एवं मोह ये तीन धर्म अपने अन्दर ही उत्पन्न होकर, नष्ट कर देते हैं; जैसे कदली (केला) वृक्ष का फल ही उस को नष्ट कर देता है॥ (द्र० पीछे ३.१.२ में भी)

●

२४. इष्वर्थसूत्र : : दानपात्र एवं दानफल

६६. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौसल ने भगवान से यह प्रश्न किया—"भन्ते! कहाँ दान देना चाहिये?''

"जहाँ महाराज! आपका चित्त श्रद्धालु हो।''

"भन्ते! कहाँ दिया हुआ दान अपेक्षाकृत अधिक फलदायी होता है?''

"महाराज! ये दोनों प्रश्न पृथक् हैं। पहला प्रश्न अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण है तथा वही दान किस को देने पर अधिक फलदायी होता है? यह प्रश्न अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण है। महाराज! शीलवान् पात्र को दिया हुआ दान जितना अधिक फलदायी होता है उतनी किसी दुःशील को दिया दान फलदायी नहीं होता। इस प्रसङ्ग में, महाराज! मैं आप से ही पूछता हूँ, आप जैसा उचित समझें उत्तर दें। तो क्या मानते हो, महाराज! यहाँ

[R.99] आगच्छेय्य खत्तियकुमारो असिक्खितो अकतहत्थो अकतयोग्गो अकतूपासनो भीरु छम्भी उत्रासी पलायी। भरेय्यासि तं पुरिसं, अत्थो च ते तादिसेन पुरिसेना'' ति?

''नाहं, भन्ते, भरेय्यं तं पुरिसं, न च मे अत्थो तादिसेन पुरिसेना'' ति।

''अथ आगच्छेय्य ब्राह्मणकुमारो असिक्खितो...अथ आगच्छेय्य वेस्सकुमारो असिक्खितो...अथ आगच्छेय्य सुद्दकुमारो असिक्खितो...न च अत्थो तादिसेन पुरिसेना'' ति।

''तं किं मञ्ञसि महाराज, इध त्यस्स युद्धं पच्चुट्ठितं सङ्गामो समुपब्यूळ्हो। अथ आगच्छेय्य खत्तियकुमारो सुसिक्खितो कतहत्थो कतयोग्गो कतूपासनो अभीरु अच्छम्भी अमुत्रासी अपलायी। भरेय्यासि तं पुरिसं, अत्थो च ते तादिसेन पुरिसेना'' ति?

''भरेय्याहं, भन्ते, तं पुरिसं, अत्थो च मे तादिसेन पुरिसेना'' ति।

''अथ आगच्छेय्य ब्राह्मणकुमारो सुसिक्खितो कतहत्थो कतयोग्गो कतूपासनो

किसी विरोधी राजा से युद्ध आरम्भ हो जाय, दोनों ओर से सेना युद्धहेतु सन्नद्ध हों। उसी समय कोई क्षत्रिय कुमार आ जाय वह धनुर्विद्या में शस्त्रविद्या में अशिक्षित हो, अकुशल हो, अयोग्य हो, अनभ्यस्त हो; युद्ध देखकर काँप जाने वाला हो, भय खाने वाला हो, भाग खड़ा होने वाला हो। तो क्या आप उसे अपनी सेना में किसी पद पर रखेंगे? वैसे पुरुष से आप का कोई प्रयोजन सिद्ध होगा?''

''नहीं, भन्ते! मैं ऐसे पुरुष को किसी पद पर नियुक्त नहीं करूँगा; क्यों कि उससे मेरा कोई प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है।''

"तो उसी समय कोई ब्राह्मणकुमार...वैश्यकुमार...शूद्रकुमार...मेरा प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है।

(इसके विपरीत) ''मैं आप से यह पूछता हूँ, महाराज! आपका किसी विरोधी राजा से युद्ध छिड़ जाय, दोनों ओर से सेनाएँ युद्ध के लिये तत्पर हों, उसी समय कोई क्षत्रियकुमार आ जाय जो धनुर्विद्या में शस्त्रविद्या में शिक्षित हो, कुशल हो, योग्य हो, अभ्यस्त हो, युद्ध से भागने वाला न हो, तो क्या आप उसे अपनी सेना में किसी पद पर रखेंगे? वैसे पुरुष से आपका कोई प्रयोजन सिद्ध होगा?''

''हाँ, भन्ते! ऐसे पुरुष को मैं किसी पद पर नियुक्त कर लूँगा; क्यों कि मेरा उससे कोई न कोई प्रयोजन सिद्ध हो ही जायगा।

अभीरु अच्छम्भी अनुत्रासी अपलायी। भरेय्यासि तं पुरिसं, अत्थो च ते तादिसेन पुरिसेना'' ति?

''भरेय्याहं, भन्ते, तं पुरिसं, अत्थो च मे तादिसेन पुरिसेना'' ति।

'एवमेव खो, महाराज, यस्मा कस्मा चे पि कुला अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति, सो च होति पञ्चङ्गविप्पहीनो पञ्चङ्गसमन्नागतो तस्मिं दिन्नं महप्फलं होति। कतमानि पञ्चङ्गानि पहीनानि होन्ति? कामच्छन्दो पहीनो होति, [B.100] ब्यापादो पहीनो होति, थीनमिद्धं पहीनं होति, उद्धच्चकुक्कुच्चं पहीनं होति, विचिकिच्छा पहीना होति। इमानि पञ्चङ्गानि पहीनानि होन्ति। कतमेहि पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो होति? असेक्खेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति, असेक्खेन [N.99] समाधिक्खन्धेन समन्नागतो होति, असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो होति, [R.100] असेक्खेन विमुत्तिक्खन्धेन समन्नागतो होति, असेक्खेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति। इमेहि पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो होति। इति पञ्चङ्गविप्पहीने पञ्चङ्ग-समन्नागते दिन्नं महप्फलं'' ति।

६७. इदमवोच भगवा...पे०...सत्था—

''इस्सत्तं बलविरियं च, यस्मिं विज्जेथ माणवे।
तं युद्धत्थो भरे राजा, नासूरं जातिपच्चया॥

उसी समय कोई ब्राह्मणकुमार...वैश्यकुमार...शूद्रकुमार...मेरा प्रयोजन सिद्ध होने वाला है।

(भगवान्—) ''इसी तरह, महाराज! जिस किसी कुल (परिवार) के घर से बेघर होकर कोई प्रव्रजित हो, तथा वह पाँच अङ्गों (दोषों) से मुक्त एवं पाँच अङ्गों (गुणों) से युक्त हो तो उसको दिया हुआ दान महान् फलप्रद होता है।

"वह किन पाँच अङ्गों (दोषों) से मुक्त होना चाहिये? वह **कामच्छन्द** (कामभोगों में स्वेच्छाचार) मुक्त हो, **व्यापाद** (क्रोध या द्वेष) से, **स्त्यानमृद्ध** (आलस्य) से, **औद्धत्य कौकृत्य** (धृष्टता एवं पश्चात्ताप) से, **विचिकित्सा** (सन्देह) से मुक्त हो। तथा वह किन पाँच अङ्गों से युक्त (समन्वागत) होना चाहिये? वह अशैक्ष्य (अर्हत्सम्बद्ध) **शीलस्कन्ध** से अशैक्ष्य **समाधिस्कन्ध** से, अशैक्ष्य **प्रज्ञास्कन्ध** से अशैक्ष्य **विमुक्तिज्ञानदर्शन** से युक्त होना चाहिये। यों वह दानपात्र साधक इन पाँच अङ्गों से युक्त होना चाहिये। ऐसे उक्त पाँच अङ्गों से मुक्त तथा पाँच अङ्गों से युक्त साधक को दिया हुआ दान महान् फलदायक होता है।''

६७. भगवान् यों बोले...पूर्ववत्...

"तथेव खन्तिसोरच्चं, धम्मा यस्मिं पतिट्ठिता।
अरियवुत्तिं मेधाविं, हीनजच्चं पि पूजये॥
"कारये अस्समे रम्मे, वासयेत्थ बहुस्सुते।
पपं च विजने कयिरा, दुग्गे सङ्कमनानि च॥
"अन्नं पानं खादनीयं, वत्थसेनासनानि च।
ददेय्य उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा॥
"यथा हि मेघो थनयं, विज्जुमाली सतक्ककु।
थलं निन्नं च पूरेति, अभिवस्सं वसुन्धरं॥
"तथेव सद्धो सुतवा, अभिसङ्खच्च भोजनं।
वनिब्बके तप्पयति, अन्नपानेन पण्डितो॥
"आमोदमानो पकिरेति, देथ देथा ति भासति।
तं हिस्स गज्जितं होति, देवस्सेव पवस्सतो।
सा पुञ्ञधरा विपुला, दातारं अभिवस्सती"ति॥ •

"जो युवक धनुर्विद्या में निपुण हो, बलवान् एवं शक्तिसम्पन्न हो उसी को राजा लोग अपनी सेना में नियुक्त करते हैं; क्षत्रिय या ब्राह्मण हो तथा धनुर्विद्या आदि में अनिपुण हो उसे, केवल उच्च जाति के कारण, अपनी सेना में नियुक्त नहीं करते॥

"इसी तरह, जो साधक भिक्षु क्षमाशील तथा नम्र हो, ऐसे गुणवान् को भले ही फिर वह हीन जाति का ही क्यों न हो, पूजा करनी चाहिये; यदि वह आर्य वृत्ति से रहने वाला हो तथा मेधावी (प्रज्ञावान्) भी हो॥ •

सद्गृहस्थ के दानविषयक कुछ पवित्र कर्तव्य—

"रमणीय साधनायोग्य आश्रमों का निर्माण कराना चाहिये। उनमें बहुश्रुत विद्वानों को रहने के लिये प्रेरित करना चाहिये। निर्जन स्थानों में प्याऊ या कूप आदि का निर्माण कराना चाहिये। दुर्गम जंगलों में सुगम मार्ग (सड़क) बनवाने चाहिये॥

सीधी सरल वृत्ति वाले लोगों को अन्न, पान, भोजन, वस्त्र, शयनासन आदि का श्रद्धापूर्वक दान करना चाहिये॥

"जैसे मेघ गड़गड़ाते तथा बिजली चमकाते हुए सैकड़ों शिखरों पर बरस कर नीचे स्थानों वाली भूमि को जल से भर देता है॥

"वैसे ही बुद्धिमान् एवं श्रद्धालु पुरुष को चाहिये कि वह सभी याचकों को भोजन का दान कर उन्हें खाने पीने के पदार्थों से तृप्त कर दे॥

"इस तरह प्रसन्न (श्रद्धापूर्वक) चित्त से स्वयं याचकों को बाँटता हुआ अपने

२५. पब्बतूपमसुत्तं

६८. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो राजानं पसेनदिं कोसलं भगवा एतदवोच—"हन्द, कुतो नु त्वं, महाराज, आगच्छसि दिवादिवस्सा" ति? [B.101]

"यानि तानि, भन्ते, रञ्ञं खत्तियानं मुद्धावसित्तानं इस्सरियमदमत्तानं कामगेधपरियुट्ठितानं जनपदत्थावरियप्पत्तानं महन्तं पठविमण्डलं अभिविजिय अज्झावसन्तानं राजकरणीयानि भवन्ति तेसु ख्वाहं, एतरहि उस्सुक्कमापन्नो" [N.100] ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध ते पुरिसो आगच्छेय्य पुरत्थिमाय [R.101] दिसाय सद्धायिको पच्चयिको। सो तं उपसङ्कमित्वा एवं वदेय्य—'यग्घे, महाराज, जानेय्यासि, अहं आगच्छामि पुरत्थिमाय दिसाय। तत्थद्दसं पब्बतं अब्भसमं सब्बे पाणे निप्पोथेन्तो आगच्छति। यं ते, महाराज, करणीयं तं करोही' ति। अथ दुतियो पुरिसो आगच्छेय्य पच्छिमाय दिसाय...पे०...अथ ततियो पुरिसो आगच्छेय्य उत्तराय दिसाय...अथ चतुत्थो पुरिसो आगच्छेय दक्खिणाय दिसाय सद्धायिको पच्चयिको।

अधीनस्थ अनुचरों को भी 'देओ' 'और देओ' यों गर्जना भी करता रहे, जैसे बरसता हुआ मेघ गर्जना करता है। अन्त में, परिणामस्वरूप, यह पुण्यधारा दाता पर ही चारों ओर से बरसने लगती है"॥

•

२५. पर्वतोपमसूत्र : : मृत्यु से मुक्तिप्राप्तिहेतु धर्माचरण

६८. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही... ।...एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौसल से भगवान् ने पूछा—"महाराज! इस प्रचण्ड मध्याह्न में आप कहाँ से चले आ रहे हैं?"

"भन्ते! मैं राज्यसम्बन्धी कार्यों में अत्यधिक व्यस्त था। क्षत्रिय, अभिषेकप्राप्त, ऐश्वर्यमदोन्मत्त, सांसारिक कामभोगों की प्राप्ति के अत्यधिक इच्छुक, अन्य राज्यों के प्रदेशों पर विजयाभिलाषुक, अनेक राजाओं के विशाल भूप्रदेश को जीत कर उन पर शासन करने वाले राजा लोग व्यस्त ही रहा करते हैं। इन कार्यों में मेरा भी औत्सुक्य (उत्साह) आज कल बढा हुआ है।"

"तो क्या मानते हो, महाराज! पूर्व दिशा से आपका कोई श्रद्धालु एवं विश्वस्त पुरुष आवे, तथा वह आप से यों निवेदन करे—'माननीय! (=यग्घे) आप यह जान लें कि मैं अभी अब पूर्व दिशा से आ रहा हूँ। वहाँ मैंने देखा कि एक मेघ के समान विशाल पर्वत सभी प्राणियों को पीसता दबाता हुआ आगे बढा चला आ रहा है। इसके निराकरण हेतु आप जो उचित समझें करें'। इसी तरह दूसरा पुरुष पश्चिम दिशा से...पूर्ववत्... । फिर तीसरा पुरुष उत्तर दिशा से...पूर्ववत्...। फिर चौथा पुरुष दक्षिण दिशा से...पूर्ववत्...।

सो तं उपसङ्कमित्वा एवं वदेय्य—'यग्घे, महाराज, जानेय्यासि, अहं आगच्छामि दक्खिणाय दिसाय। तत्थद्दसं महन्तं पब्बतं अब्भसमं सब्बे पाणे निप्पोथेन्तो आगच्छति। यं ते, महाराज, करणीयं तं करोही' ति। एवरूपे ते, महाराज, महति महब्भये समुप्पन्ने दारुणे मनुस्सक्खये दुल्लभे मनुस्सत्ते किमस्स करणीयं'' ति ?

''एवरूपे मे, भन्ते, महति महब्भये समुप्पन्ने दारुणे मनुस्सक्खये दुल्लभे मनुस्सत्ते किमस्स करणीयं अञ्ञत्र धम्मचरियाय अञ्ञत्र समचरियाय अञ्ञत्र कुसलकिरियाय अञ्ञत्र पुञ्ञकिरियाया'' ति।

''आरोचेमि खो ते, महाराज, पटिवेदेमि खो ते, महाराज! अधिवत्तति खो तं, महाराज, जरामरणं। अधिवत्तमाने चे ते, महाराज, जरामरणे किमस्स करणीयं'' ति ?

''अधिवत्तमाने च मे, भन्ते, जरामरणे किमस्स करणीयं अञ्ञत्र धम्मचरियाय समचरियाय कुसलकिरियाय पुञ्ञकिरियाय! यानि तानि, भन्ते, रञ्ञं खत्तियानं [B.102] मुद्धावसित्तानं इस्सरियमदमत्तानं कामगेधपरियुट्ठितानं जनपदत्थावरिरयप्पत्तानं महन्तं पठविमण्डलं अभिविजिय अज्झावसन्तानं हत्थियुद्धानि भवन्ति; तेसं पि, भन्ते, [N.101] हत्थियुद्धानं नत्थि गति नत्थि विसयो अधिवत्तमाने जरामरणे। यानि पि तानि, भन्ते, रञ्ञं खत्तियानं मुद्धावसित्तानं...पे०...अज्झावसन्तानं अस्सयुद्धानि भवन्ति

महाराज! इस महान् संकट के समय समस्त मानव जाति के क्षय का भय उपस्थित होने पर मानवता की रक्षा के लिये आप क्या करना चाहेंगे?''

''भन्ते! ऐसा महान् भय उपस्थित होने पर इस सङ्कटापन्न स्थिति में मानवता की रक्षा के लिये इसके अतिरिक्त अन्य क्या कर्म किया जा सकता है कि हम निष्ठापूर्वक धर्माचरण करें, काय वाक् एवं मन से संयत रहें, तथा निरन्तर पुण्यात्मक कुशल कर्म करते रहें।''

''महाराज! मैं भी (एक विश्वस्त पुरुष की तरह) आपको बताता हूँ, कहता हूँ कि महाराज! जरा एवं मरण (रूपी मेघतुल्य पर्वत) सभी प्राणियों को पीसता दबाता हुआ आगे बढा चला आ रहा है। इस सङ्कट के समय आप क्या करना चाहेंगे?''

''भन्ते! आपके द्वारा बताये गये जरा मरण सङ्कट के उपस्थित होने पर भी अन्य क्या कुछ किया जा सकता है, अतिरिक्त इसके कि हम धर्माचरण करें,...पुण्यमय कुशल कर्म करें। भन्ते! यहाँ बड़े बड़े क्षत्रिय, अभिषेकप्राप्त, ऐश्वर्यमदोन्मत्त, सांसारिक कामभोगों की प्राप्ति के अत्यधिक इच्छुक, अन्य राज्यों के प्रदेशों पर विजयाभिलाषुक, अनेक राजाओं के विशाल भूप्रदेशों को जीतकर उन पर शासन करने वाले राजाओं के परस्पर हस्तियुद्ध होते हैं, वे हस्तियुद्ध भी इस जरामरण भय के सम्मुख तुच्छ ही हैं। वे इसकी

...पे०...रथयुद्धानि भवन्ति...पे०...पत्तियुद्धानि भवन्ति, तेसं पि, भन्ते, पत्तियुद्धानं नत्थि विसयो अधिवत्तमाने जरामरणे। सन्ति खो पन, भन्ते, इमस्मिं राजकुले मन्तिनो महामत्ता ये पहोन्ति आगते पच्चत्थिके मन्तेहि भेदयितुं। तेसं पि, भन्ते, [R.102] मन्तयुद्धानं नत्थि गति नत्थि विसयो अधिवत्तमाने जरामरणे संविज्जति खो पन इमस्मिं राजकुले पहूतं हिरञ्ञसुवण्णं भूमिगतं चेव वेहासट्ठं च, येन मयं पहोम आगते विसयो अधिवत्तमाने जरामरणे। अधिवत्तमाने च मे, भन्ते, जरामरणे किमस्स करणीयं अञ्ञत्र धम्मचरियाय समचरियाय कुसलकिरियाय पुञ्ञकिरियाया'' ति।

''एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! अधिवत्तमाने जरामरणे किमस्स करणीयं अञ्ञत्र धम्मचरियाय समचरियाय कुसलकिरियाय पुञ्ञकिरियाया'' ति।

६९. इदमवोच... पे०...सत्था—

''यथा पि सेला विपुला, नभं आहच्च पब्बता।
समन्तानुपरियायेय्युं, निप्पोथेन्तो चतुद्दिसा॥

समता नहीं कर सकते। इसी तरह उन...राजाओं के परस्पर अश्वयुद्ध होते हैं...पूर्ववत्... रथयुद्ध होते हैं...पदाति (पैदल सेना) युद्ध होते हैं वे भी इस जरामरण भय की समता नहीं कर सकते। वे युद्ध इस भय के सम्मुख तुच्छ ही हैं।

''भन्ते! इन्हीं राजाओं के ऐसे अनेक गुणवान् तथा बुद्धिमान् मन्त्री भी हैं जो अपने बुद्धि वैभव से बड़े बड़े शत्रुओं को पीछे हटा देते हैं, पराजित कर देते हैं; परन्तु उनका यह अनुपम बुद्धिवैभव भी इस जरामरणभय के सम्मुख परास्त हो जाता है, वे इस के सामने पूर्णतः विवश हो जाते हैं।

''भन्ते! इन राजकुलों में असीम चल अचल सम्पत्ति है, राजकोषागार सोना चान्दी से भरे पड़े हैं, जिनके सहारे वे बड़े बड़े विरोधी को भी अपने अनुकूल बना सकते हैं; परन्तु यह जरामरणभय उस सोने चान्दी के युद्ध से भी नहीं जीता जा सकता। अब तो इस जरामरणभय के उपस्थित होने पर इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है कि हम धर्माचरण करें, अपने पर संयम रखें, कुशल कर्म करें, पुण्य क्रियाओं का सम्पादन करें।''

''ऐसी ही बात है, महाराज! ऐसी ही बात है। इस जरामरणभय के उपस्थित होने पर...पूर्ववत्...पुण्य क्रियाओं का सम्पादन करें।

६९. भगवान् ने यह कहा। साथ ही...पूर्ववत्...

''जैसे बड़े बड़े विशाल शिलाखण्ड, गगनचुम्बी पर्वत चारों दिशाओं (के प्राणियों) को पीसते, दबाते हुए सभी ओर से आते हों॥

"एवं जरा च मच्चु च, अधिवत्तन्ति पाणिनो।
खत्तिये ब्राह्मणे वेस्से, सुद्दे चण्डालपुक्कुसे॥
न किञ्चि परिवज्जेति, सब्बमेवाभिमद्दति।
न तत्थ हत्थीनं भूमि, न रथानं न पत्तिया॥
"न चा पि मन्तयुद्धेन, सक्का जेतुं धनेन वा।
[B.103] तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो॥
"बुद्धे धम्मे च सङ्घे च, धीरो सद्धं निवेसये।
यो धम्मं चरि कायेन, वाचाय उद चेतसा।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती" ति॥ •

ततियो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

पुग्गलो अय्यिका लोको, इस्सत्तं पब्बतूपमा।
देसितं बुद्धसेट्ठेन, इमं कोसलपञ्चकं ति॥ •

कोसलसंयुत्तं समत्तं॥

"इसी तरह जरा एवं मृत्यु का प्राणियों पर चढते आना समझना चाहिये। इन दोनों से क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, पुक्कुस-आदि कोई भी जाति में जन्म लिया हुआ प्राणी नहीं बचता॥

"ये दोनों किसी भी प्राणी को नहीं छोड़ते। सभी को पीसते हुए आगे बढते जाते हैं। न वे दोनों हस्तिसेना से पीछे हटाये जा सकते है, न अश्वसेना या पदातिसेना द्वारा पीछे हटाये जा सकते हैं॥

"न कोई अतिचतुर बुद्धिमान् मन्त्री अपने मन्त्र (बुद्धि) वैभव से इन्हें परास्त कर सकता है, न इन्हें धन का प्रलोभन दिया जा सकता है। अतः बुद्धिमान् पुरुष को अपना हितचिन्तन करते हुए॥

"स्वचित्त को बुद्ध धर्म एवं सङ्घ की सेवा में धैर्य एवं श्रद्धा पूर्वक लगाते हुए, शरीर वाणी एवं मन से निरन्तर धर्माचरण करना चाहिये॥

"जो मन वचन एवं काया से धर्माचरण करता है, उसकी इस लोक में तो प्रशंसा होती ही है। वह देहपात के बाद स्वर्ग में भी असीम काल तक आनन्दोपभोग करता है"॥•

तृतीयवर्ग सम्पन्न॥

इस कौसल संयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—[इस संयुक्त का तीन वर्गों में विभाजन कर (१०+१०+५=२५) पच्चीस सूत्रों का व्याखान पञ्चकरूप से किया गया है। पहले दो वर्गों की सूची पीछे यथास्थान दी जा चुकी है, जिसमें चार पञ्चकों का परिगणन किया जा चुका है। अब] अन्तिम सूत्र-पञ्चक की सूची यह है--

१. पुद्गलसूत्र, २. आर्यिकासूत्र, ३. लोकसूत्र, ४. इष्वर्थसूत्र एवं ५. पर्वतोपम सूत्र। [इस कौसलसंयुक्त में भगवान् का राजा प्रसेनजित् कौसल से संवाद हुआ है, अतः कौसल से सम्बद्ध होने के कारण इस संयुक्त का नाम 'कौसलसंयुक्त' उचित ही रखा गया है।]

●

कौसलसंयुक्त भी सम्पन्न॥

४. मारसंयुत्तं

१. पठमो वग्गो

१.तपोकम्मसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय [N.103, B.104, R.103] तीरे अजपालनिग्रोधमूले पठमाभिसम्बुद्धो। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"मुत्तो वतम्हि ताय दुक्करकारिकाय। साधु मुत्तो वतम्हि ताय अनत्थसंहिताय दुक्करकारिकाय। साधु वतम्हि मुत्तो बोधिं समज्झगं" ति।

अथ खो मारो पापिमा भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"तपोकम्मा अपक्कम्म, येन सुज्झन्ति माणवा।
असुद्धो मञ्ञसि सुद्धो, सुद्धिमग्गा अपरद्धो" ति॥

२. अथ खो भगवा "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि अज्झभासि—

---

४. मारसंयुक्त

प्रथम वर्ग

१. तपःकर्मसूत्र : : **व्यर्थ कठिन तपस्या**

१. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) उरुवेला में निरञ्जना (नेरञ्जरा) नदी के तट पर अजपाल न्यग्रोधवृक्ष के नीचे प्रथम सम्बोधि प्राप्त कर चुके थे। तब एकान्त में विराजमान भगवान् के चित्त में यह विचार उद्भूत हुआ—"अब मैं दुष्कर (कठिन) क्रियाओं से मुक्त हो चुका हूँ। यह अच्छा ही हुआ कि मैं इन दुष्कर क्रियाओं से मुक्त हो गया। यह भी अच्छा ही हुआ कि मैंने उससे मुक्त होकर सम्बोधि प्राप्त कर ली।"

उसी समय पापी मार भगवान् का यह मनोविचार अपने मन से जान कर, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। पहुँच कर, उसने भगवान् से यह गाथा कही—

"जिस तपःकर्म से मनुष्य (का चित्त) शुद्ध हो सकता है उसे त्याग कर तुम अपने आपको अशुद्ध (दोषयुक्त) होते हुए भी स्वयं को दोषमुक्त समझते हो! चित्तशुद्धि का यह सरल मार्ग छोड़ कर तुम ने एक प्रकार का अपराध ही किया है"॥

२. तब भगवान् ने तत्काल उसको "यह पापी मार है"—ऐसा समझकर उस (पापी मार) से ये गाथाएँ कहीं—

"अनत्थसंहितं ञत्वा, यं किञ्चि अमरं तपं।
सब्बं नत्थावहं होति, पियारित्तं व धम्मनि॥
"सीलं समाधिपञ्ञं च, मग्गं बोधाय भावयं।
पत्तोस्मि परमं सुद्धिं, निहतो त्वमसि अन्तका!" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति, दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

२. हत्थिराजवण्णसुत्तं

३. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्ज- [B.105] राय तीरे अजपालनिग्रोधमूले पठमाभिसम्बुद्धो। तेन खो पन समयेन भगवा रत्तन्धकारतिमिसायं अब्भोकासे निसिन्नो होति, देवो च एकमेकं फुसायति। [R.104] अथ खो मारो पापिमा, भगवतो भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो, महन्तं हत्थिराजवण्णं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि। सेय्यथापि [N.104] नाम महाअरिट्ठको मणि एवमस्स सीसं होति। सेय्यथापि नाम सुद्धं रूपियं एवमस्स दन्ता होन्ति। सेय्यथापि नाम महती नङ्गलीसा एवमस्स सोण्डो होति। अथ खो भगवा "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासि—

"मुक्तिलाभहेतु सभी प्रकार की तपश्चर्याओं को व्यर्थ निष्प्रयोजन समझ कर मैने इनको उसी प्रकार त्याग दिया है, जैसे कोई बुद्धिमान् पुरुष भूमि पर पड़ी, डाँड-पतवार रहित नाव को त्याग दिया करता है॥

"मैने तो शील, समाधि एवं प्रज्ञा द्वारा बुद्धत्वप्राप्ति का अभ्यास कर परम चित्तशुद्धि प्राप्त कर ली है। इस तरह ओ पापी मार! मैने तुम पर विजय प्राप्त कर ली॥"

तब वह पापी मार, यह समझकर कि मुझको भगवान् ने पहचान लिया, दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया॥ •

२. हस्तिराजवर्णसूत्र : : मार के जाल से मुक्त बुद्ध

३. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) ऊरुवेला में निरञ्जना नदी के तट पर अजपाल न्यग्रोध वृक्ष के नीचे अभिसम्बोधि प्राप्त कर चुके थे। उस समय भगवान् घोर अन्धकारमयी रात्रि में खुले आकाश के नीचे बैठे थे। आकाश से कुछ बूँदाबाँदी भी हो रही थी। उसी समय पापी मार, भगवान् को डराने तथा उद्विग्न करने हेतु एक विशाल विकराल हाथी का रूप धर कर भगवान् के सम्मुख पहुँचा। उसका शिर इतना लम्बा चौड़ा था मानों कोई काले पर्वत की चट्टान हो। उसके दाँत शुद्ध रजत के समान चमक रहे थे। उसकी सूँड ऐसी दिखायी दे रही थी मानो कोई लम्बा चौड़ा हल हो। परन्तु भगवान्

"संसरं दीघमद्धानं, वण्णं कत्वा सुभासुभं।
अलं ते तेन पापिम, निहतो त्वमसि अन्तका!" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥

३. सुभसुत्तं

४. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजपालनिग्रोधमूले पठमाभिसम्बुद्धो। तेन खो पन समयेन भगवा रत्तन्धकार-तिमिसायं अब्भोकासे निसिन्नो होति, देवो च एकमेकं फुसायति। अथ खो मारो पापिमा, भगवतो भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो, येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो अविदूरे उच्चावचा वण्णनिभा उपदंसेति, सुभा चेव असुभा च। अथ खो भगवा "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"संसरं दीघमद्धानं, वण्णं कत्वा सुभासुभं।
अलं ते तेन पापिम, निहतो त्वमसि अन्तक!॥

[B.106] "ये च कायेन वाचाय, मनसा च सुसंवुता।
न ते मारवसानुगा, न ते मारस्स पच्चगू" ति॥

अथ खो मारो...पे०...तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

ने समझ लिया कि पापी मार ही हाथी के रूप में सामने खड़ा है। यों समझ कर भगवान् ने उस पापी मार को यह गाथा कही—

"अरे पापी! तूँ इस विशल संसार में नानाविध भले बुरे घर कर फिरता रहता है। अब तूँ अपने इस दुष्कर्म को समाप्त कर दे। अब तेरे दुर्दिन आ चुके हैं॥"

तब पापी मार ने समझ लिया कि भगवान् उसको पहचान गये हैं। अत: वह उद्विग्नचित्त होकर वहीं अन्तर्हित हो गया॥

३. शुभसूत्र : : जितेन्द्रिय मार के वश में नहीं होते

४. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान्...पूर्ववत्...बूँदाबाँदी भी हो रही थी। उसी समय पापी मार वहाँ आया, तथा भगवान् को डराने तथा उद्विग्न करने के लिये उनके सम्मुख भले बुरे रूपों में, आकृतियों में प्रकट होने लगा। परन्तु भगवान् ने समझ लिया ...पूर्ववत्...अब तेरे दुर्दिन आ गये॥

"जो साधक शरीर वाणी एवं चित्त से संयत रहते हैं, वे मार के वश में नहीं होते, वे मार के बन्धन में नहीं बन्धते॥

४. पठममारपाससुत्तं

५. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच— [R.105]

"मय्हं खो भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा योनिसो सम्मप्पधाना अनुत्तरा विमुत्ति अनुप्पत्ता, अनुत्तरा विमुत्ति सच्छिकता। तुम्हे पि, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा योनिसो सम्मप्पधाना अनुत्तरं विमुत्तिं अनुपापुणाथ, अनुत्तरं [N.105] विमुत्तिं सच्छिकरोथा" ति।

६. अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"बद्धोसि मारपासेन, ये दिब्बा ये च मानुसा।
मारबन्धनबद्धोसि, न मे, समण, मोक्खसी" ति॥
"मुत्तोहं मारपासेन, ये दिब्बा ये च मानुसा।
मारबन्धनमुत्तोम्हि, निहतो त्वमसि अन्तका" ति॥

तब पापी मार ने...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्हित हो गया॥ •

४. प्रथम मारपाशसूत्र : : मारपाश से मुक्त भगवान्

५. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् **वाराणसी** के ऋषिपतन मृगदाव (सारनाथ) में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं का आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ!" "भदन्त" कहकर भिक्षुओं ने उत्तर दिया। तब भगवान् बोले—

"भिक्षुओ! अपने चित्त को उचित मार्ग में लगा कर तथा उचित उत्साह के साथ साधना कर मैने यह अलौकिक विमुक्ति पायी है, अलौकिक विमुक्ति का साक्षात्कार किया है। (अत:) तुम भी, भिक्षुओ! अपने चित्त को उचित मार्ग पर लगाकर उचित उत्साह के साथ साधना करते हुए इस अलौकिक विमुक्ति को प्राप्त करो, इस अलौकिक विमुक्ति का साक्षात्कार करो।"

६. तब पापी मार भगवान् के सम्मुख आया तथा यों बोला—

"तुम मेरे पाश (जाल) में बँधे हुए हो, ये जाल दिव्य और मनुष्य दोनों लोकों में फैले हुए हैं। क्यों कि तुम मेरे (मारके) बन्धन में बंध चुके हो, अत: हे श्रमण! तुम्हारी किसी भी दशा में मुक्ति नहीं हो सक्ती॥"

(भगवान्—) "दिव्य एवं मनुष्य लोकों में फैले हुए सभी प्रकार के मारबन्धनों से

अथ खो मारो पापिमा...पे०...तत्थेवन्तरधायी ति॥

५. दुतियमारपाससुत्तं[१]

७. एकं समयं भगवा बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"मुत्तोहं, भिक्खवे, सब्बपासेहि ये दिब्बा ये च मानुसा। तुम्हे पि, भिक्खवे, मुत्ता सब्बपासेहि ये दिब्बा ये च मानुसा। चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय [B.107] बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। मा एकेन द्वे अगमित्थ। देसेथ, भिक्खवे, धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसान- [R.105] कल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं। केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति। भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो। अहं पि, भिक्खवे, येन उरुवेला सेनानिगमो तेनुपसङ्कमिस्सामि धम्मदेसनाया" ति।

मैं मुक्त हो चुका हूँ। क्यों कि मैं उनसे मुक्त हो चुका हूँ, अत: हे अन्तक! तुम जीत लिये गये। तुम पराजित हो चुके॥"

तब पापी मार ने...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्हित हो गया॥

५. द्वितीयमारपाशसूत्र : : बहुजनहिताय चारिका का आदेश

७. एक समय भगवान् (बुद्ध) वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में साधनाहेतु विराजमान थे।...पूर्ववत्...। भगवान् बोले—

"भिक्षुओ! मैं मनुष्य तथा स्वर्ग लोक के जितने भी बन्धन है उन सभी से मुक्त हो चुका हूँ। तुम सब भी इन बन्धनों से अब मुक्त हो चुके हो। (अत:) भिक्षुओ! बहुजनों के हित के लिये, बहुजनों के सुख के लिये, लोक पर दया करने हेतु, देवताओं तथा मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये लोक में विचरण करो। एक साथ दो भिक्षु न जाना। वैसा करते हुए, भिक्षुओ! तुम आदि मध्य तथा अन्त में सर्वदा सर्वत्र कल्याणकारक इस मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म का प्रचार करो। अर्थ एवं व्यञ्जन सहित, एकान्तत: पूर्ण, परिशुद्ध इस धर्मसाधना का प्रकाश करो। संसार में अल्प दोष वाले भी प्राणी हैं। तुम्हारे द्वारा ऐसा उत्साह न करने से उनकी, धर्मश्रवण न करने से, हानि ही

---

१. ये दोनों (४-५) सूत्र विनयपिटक के **महावग्ग** में भी आ चुके हैं। अत: (पृष्ठ ३४ से ३६ तक) वहाँ भी देखें (बौ० भा० सं०)।—स०।

८. अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"बद्धोसि सब्बपासेहि, ये दिब्बा ये च मानुसा।
महाबन्धबद्धोसि, न मे, समण, मोक्खसी" ति॥
"मुत्तोहं सब्बपासेहि, ये दिब्बा ये च मानुसा। [N.106]
महाबन्धनमुत्तोम्हि, निहतो त्वमसि अन्तका" ति॥

अथ खो मारो पापिमा...पे०...तत्थेवन्तरधायी ति॥

६. सप्पसुत्तं

९. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन भगवा रत्तन्धकारतिमिसायं अब्भोकासे निसिन्नो होति, देवो च एकमेकं फुसायति।

अथ खो मारो पापिमा भगवतो भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो महन्तं सप्पराजवण्णं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि। सेय्यथापि नाम महती एकरुक्खिका नावा, एवमस्स फणो होति। सेय्यथापि नाम महन्तं सोण्डिकाकिळञ्जं, एवमस्स फणो होति। सेय्यथापि नाम महती कोसलिका कंसपाति, एवमस्स

होगी। तुमसे सुनकर वे धर्मज्ञ बन पायेंगे। भिक्षुओ! मैं भी ऊरुवेला के निकट सेनानी ग्राम है वहाँ धर्मदेशनाहेतु जाऊँगा"॥

८. तब पापी मार भगवान् के सम्मुख आया तथा उसने भगवान् से यह गाथा कही—

"तुम सभी बन्धनों में बँधे हुए हो।...किसी भी दशा में तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती॥"

(भगवान्—) "मैं तो सभी बन्धनों से मुक्त हो चुका हूँ,...मैं देख रहा हूँ, पापी मार तुम्हारे ही दुर्दिन आये हैं!"

तब उस पापी मार ने...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया॥

६. सर्पसूत्र : : एकान्तवास में निर्भयता

९. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में...पूर्ववत्...बूँदाबाँदी हो रही थी।

तब पापी मार भगवान् को भयभीत करने के लिये, रोमाञ्चित करने के लिये, उद्विग्न करने के लिये एक भयङ्कर विशाल सर्प का रूप धारण कर उनके सम्मुख आया। जैसे किसी एक ही बड़े वृक्ष के तख्ते से बनी कोई विशाल नौका हो ऐसा उसका शरीर

अक्खीनि भवन्ति। सेय्यथापि नाम देवे गळगळायन्ते विज्जुल्लता निच्छरन्ति, एवमस्स मुखतो जिव्हा निच्छरति। सेय्यथापि नाम कम्मारगग्गरिया धममानाय सद्दो होति, एवमस्स अस्सासपस्सासानं सद्दो होति।

१०. अथ खो भगवा "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"यो सुञ्ञगेहानि सेवति, सेय्यो सो मुनि अत्तसञ्ञतो।
वोस्सज्ज चरेय्य तत्थ सो, पतिरूपं हि तथाविधस्स तं॥
[B.108] "चरका बहू भेरवा बहू, अथो डंससरीसपा बहू।
[R.107] लोमम्पि न तत्थ इञ्जये, सुञ्ञागारगतो महामुनि॥
"नभं फलेय्य पठवी चलेय्य, सब्बे पि पाणा उद सन्तसेय्युं।
सल्लम्पि चे उरसि पकप्पयेय्युं, उपधीसु ताणं न करोन्ति बुद्धा" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

७. सुपतिसुत्तं

११. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो

था। तथा पर्वतों के बीच बने प्राकृतिक जलाशय की भाँति उसका विस्तृत फन था। जैसे लौहकार की भाथी तीव्र वेग से वायु फेंकती है वैसी उसकी फुफकार थी।

१०. तब भगवान् ने उस सर्प को पापी मार के रूप में पहचान कर ये गाथाएँ कहीं—

"जो आत्मसंयत मुनि एकान्तवास करता है, वही श्रेष्ठ कहलाता है। सभी सांसारिक वस्तुओं का मोह त्याग कर वहाँ विचरण करे, वैसे पुरुष के लिये ऐसा आचरण सर्वथा अनुकूल है॥

"वहाँ नानाविध जीव मच्छर, डांस, साँप, विच्छू आदि विचरण करते हैं, उन्हें देखकर उनके भय से वह एकान्तवासप्रिय मुनि अपना एक रोम भी नहीं हिलाता डुलाता!"॥

"भले ही आकाश फट पड़े, पृथ्वी काँपने लगे, सभी प्राणी किसी कारण भयभीत होने लगें। यदि उसकी छाती में भाले से भी आघात किया जाय तो भी बुद्ध (ज्ञानी जन) सांसारिक वस्तुओं (उपाधियों) में अपना शरणस्थल नहीं मान बैठते!"॥

तब पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्हित हो गया॥ •

७. स्वपितिसूत्र : : **वीततृष्ण बुद्ध**

११. एक समय भगवान् **राजगृह** के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु

भगवा बहुदेवरत्तिं अब्भोकासे चङ्कमित्वा रत्तिया पच्चूससमयं पादे पक्खालेत्वा विहारं पविसित्वा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि पादे पादं अच्चाधाय सतो [N.107] सम्पजानो उट्ठानसञ्ञं मनसि करित्वा। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"किं सोप्पसि किं न सोप्पसि, किमिदं सोप्पसि दुब्भगो विय।
सुञ्ञमगारं ति सोप्पसि, किमिदं सोप्पसि सुरिये उग्गते" ति॥

"यस्स जालिनी विसत्तिका, तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे।
सब्बूपधिपरिक्खया बुद्धो, सोप्पति किं तवेत्थ मारा" ति॥

अथ खो मारो पापिमा...पे०...तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

८. नन्दतिसुत्तं

१२. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने [B.109] अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

विराजमान थे। उस समय, भगवान् बहुत प्रहर तक खुले आकाश के नीचे चंक्रमण करते रहे। रात्रि के अन्तिम प्रहर में चरण धोकर विहार में प्रविष्ट होकर दक्षिण से सिंहशय्या से लेकर पैर पर पैर कुछ हटाते हुए रखकर स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होकर मन में उत्थानसंज्ञा की भावना करते हुए लेट गये। उसी समय पापी मार ने आकर भगवान् से ये गाथाएँ कहीं—

"श्रमण! तुम सो रहे हो या जाग रहे हो? यदि सो रहे हो तो ऐसे संज्ञाहीन के समान क्या सो रहे हो? क्या शून्य गृह पा कर सोये पड़े हो! अरे, सूर्योदय के बाद भी, तुम सो ही रहे हो!"

(भगवान् बोले—) "जिनको बहकाने के लिये सांसारिक बन्धनों में बाँधने वाली तथा विषसम्पृक्त तृष्णा कहीं आस पास भी नहीं है, जो सभी सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति की आशा से वितृष्ण होकर बुद्ध हो चुके हैं, वे लेटे हैं! रे पापी मार! इसमें तुम्हारा क्या बन बिगड़ रहा है!"॥

तब पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया॥ •

नन्दतिसूत्र : : चिन्ताविहीन अनासक्त

१२. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती** में अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उसी समय पापी मार ने भगवान् के सम्मुख आकर यह गाथा कही—

"नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा, गोमा गोभि तथेव नन्दति।
[R.108] उपधीहि नरस्स नन्दना, न हि सो नन्दति यो निरूपधी" ति॥
"सोचति पुत्तेहि पुत्तिमा, गोमा गोभि तथेव सोचति।
उपधीहि नरस्स सोचना, न हि सो सोचति यो निरूपधी" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥

९. पठमआयुसुत्तं

१३. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"अप्पमिदं, भिक्खवे, मनुस्सानं आयु। गमनीयो सम्परायो, कत्तब्बं कुसलं,चरितब्बं ब्रह्मचरियं। नत्थि जातस्स अमरणं। यो, भिक्खवे, चिरं जीवति सो [N.108] वस्ससतं अप्पं वा भिय्यो" ति।

अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"पुत्रों वाला पुत्रों से आनन्द मानता है, तथा वैसे ही गौओं वाला गौओं से आनन्द मानता है। संसार में आसक्त पुरुष सांसारिक वस्तुओं से आनन्द मानता है। परन्तु वह अकिञ्चन क्या आनन्द मनायगा जिसके पास अपना कहने को कुछ है ही नहीं!"

(भगवान्—) "पुत्रों वाला पुत्रों की चिन्ता में रहता है तथा गौओं वाला गौओं की चिन्ता में। संसार में आसक्त पुरुष भी सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति की चिन्ता में रहता है। परन्तु जिसकी किसी सांसारिक वस्तु में आसक्ति ही नहीं है वह किसकी चिन्ता करेगा!"

तब पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया॥

९. प्रथम आयुःसूत्र : : आयु की अल्पता

१३. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् राजगृह के वेणुवन में...पूर्ववत्...। भगवान् बोले—"भिक्षुओ! मनुष्यों की आयु अल्प ही है। शीघ्र ही परलोक जाना है। अतः पुण्य का अर्जन करना चाहिये। धर्मसाधना करनी चाहिये। जो यहाँ जन्म लेता है वह मृत्यु से बच नहीं सकता। भिक्षुओ! यहाँ जो बहुत जीता है सौ वर्ष जीता है; उससे कुछ कम या कुछ अधिक।"

तब वह पापी मार...भगवान् से गाथा में यों कहने लगा—

"दीघमायु मनुस्सानं, न नं हीळे सुपोरिसो।
चरेय्य खीरमत्तो व, नत्थि मच्चुस्स आगमो" ति॥
"अप्पमायु मनुस्सानं, हीळेय्य नं सुपोरिसो।
चरेय्यादित्तसीसो व, मच्चुस्स आगमो" ति॥

अथ खो मारो...पे०...तत्थेवन्तरधायी ति॥ ●

१०. दुतियआयुसुत्तं

१४. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने [B.110] कलन्दकनिवापे। तत्र खो भगवा...पे०...एतदवोच—

"अप्पमिदं, भिक्खवे,मनुस्सानं आयु। गमनीयो सम्परायो, कत्तब्बं कुसलं, चरितब्बं ब्रह्मचरियं। नत्थि जातस्स अमरणं। यो, भिक्खवे, चिरं जीवति सो वस्ससतं अप्पं वा भिय्यो" ति।

१५. अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"नाच्चयन्ति अहोरत्ता, जीवितं नूपरुज्झति। [R.109]
आयु अनुपरियायति, मच्चानं नेमीव रथकुब्बरं" ति॥
"अच्चयन्ति अहोरत्ता, जीवितं उपरुज्झति।
आयु खीयति मच्चानं, कुन्नदीनं व ओदकं" ति॥

"मनुष्यों की आयु बहुत लम्बी है, सत्पुरुष इस (आयु) की चिन्ता न करें। दूध पीते बच्चे की तरह रहें; क्यों कि मृत्यु अभी नहीं आ रही है॥"

(उत्तर में भगवान् ने कहा—) "मनुष्यों की आयु बहुत अल्प है, अतः सत्पुरुष इस (आयु के विषय) में सचेत रहें। वे यही समझें कि शिर पर अग्नि प्रज्वलित है। मृत्यु के आगमन की कोई समयसीमा नहीं है कि वह अमुक समय ही आयेगी॥"

तब पापी मार...पूर्ववत्. वहीं अन्तर्धान हो गया॥ ●

१०. द्वितीय आयुःसूत्र : : आयु की क्षीणता

१४. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् बुद्ध...पूर्ववत्...यों बोले— "भिक्षुओ! मनुष्यों की बहुत अल्प ही है...पूर्ववत्...या कुछ अधिक"॥

१५. तब वह पापी मार...भगवान् से गाथा में यों बोला—

"रात्रि एवं दिन चले नहीं जा रहे हैं, जीवन का प्रवाह कभी रुकता नहीं है। मनुष्यों की आयु उनके चारों ओर उसी तरह धूमती रहती है जैसे गाड़ी का पहिया धुरे पर धूमता है॥"

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो'' ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

पठमो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

[N.109] तपोकम्मं च नागो च, सुभं पासेन ते दुवे।
सप्पो सुपति नन्दनं, आयुना अपरे दुवे ति॥ •

(भगवान्—) ''रात्रि एवं दिन व्यतीत होते जा रहे हैं। जीवन का प्रवाह भी (निर्वाण में जा कर) रुक जाता है। मनुष्यों की आयु उसी तरह क्षीण होती जा रही है जैसे छोटी (क्षुद्र) नदियों का बाढ में चढा हुआ जल क्षीण हो जाया करता है॥''

तब पापी मार...वहीं अन्तर्धान हो गया॥ •

प्रथम वर्ग समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. तप:कर्म सूत्र, २. हस्तिराजवर्ण सूत्र, ३. शुभ सूत्र, ४. प्रथम मारपाशसूत्र, ५. द्वितीय मारपाशसूत्र, ६. सर्पसूत्र, ७. स्वपितिसूत्र, ८. नन्दतिसूत्र, ९. प्रथम आयु:सूत्र एवं १०. द्वितीय आयु:सूत्र॥ •

२. दुतियो वग्गो

११. पासाणसुत्तं

१६. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। तेन खो पन समयेन भगवा रत्तन्धकारमितिसायं अब्भोकासे निसिन्नो होति, देवो च एकमेकं फुसायति। अथ खो मारो पापिमा भगवतो भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो अविदूरे महन्ते पासने पदालेसि। [B.111]

१७. अथ खो भगवा "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासि—

"सचे पि केवलं सब्बं, गिज्झकूटं चलेस्ससि।
नेव सम्माविमुत्तानं, बुद्धानं अत्थि इञ्जितं" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ ●

१२. किन्नुसीहसुत्तं

१८. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन भगवा महतिया परिसाय परिवुतो धम्मं देसेति।

द्वितीय वर्ग

११. पाषाणसूत्र : : चञ्चलताविहीन बुद्ध

१६. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** में गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय अन्धकारमय रात्रि थी। भगवान् खुले आकाश के नीचे विराजमान थे। कुछ बूँदाबाँदी भी हो रही थी। तभी पापी मार भगवान् को भयत्रस्त तथा रोमाञ्चित करने के लिये उनके पास आकर पर्वत से बड़े बड़े शिलाखण्ड लुढकाने लगा।

१७. तब भगवान् ने...पूर्ववत्... यह गाथा कही—

"पापिन्! मार! यदि तूँ इस समस्त गृध्रकूट पर्वत को मुझ पर ढकेल दे तो भी मेरा मन विचलित नहीं होगा; क्यों कि सम्यग्विमुक्त बुद्धों (ज्ञानियों) का चित्त किसी बड़े से बड़े कारण से भी विचलित (डाँवाडोल) नहीं हुआ करता"॥

तब उस पापी मार ने...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया॥ ●

१२. 'किं नु सिंह' सूत्र : : परिषदों में बुद्धगर्जन

१८. एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती** में जेतवन में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय वे भगवान् विशाल धर्मपरिषद् में जिज्ञासुओं से घिरे हुए धर्मोपदेश कर रहे थे।

[R.110] अथ खो मारस्स पापिमतो एतदहोसि—"अयं खो समणो गोतमो महतिया परिसाय परिवुतो धम्मं देसेति। यन्नूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं विचक्खुकम्माया" ति। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"किन्नु सीहो व नदसि, परिसायं विसारदो।
पटिमल्लो हि ते अत्थि, विजितावी नु मञ्ञसी" ति॥

[N.110] "नदन्ति वे महावीरा, परिसासु विसारदा।
तथागता बलप्पत्ता, तिण्णा लोके विसत्तिकं" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

१३. सकलिकसुत्तं

१९. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति मद्दकुच्छिस्मिं मिगदाये। [B.112] तेन खो पन समयेन भगवतो पादो सकलिकाय खतो होति, भुसा सुदं भगवतो वेदना वत्तन्ति सारीरिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा। ता सुदं भगवा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो। अथ खो भगवा चतुग्गुणं

तब पापी मार को यह विचार हुआ—"यह श्रमण गौतम इस विशाल धर्मपरिषद् में परिवृत होकर धर्मोपदेश कर रहे हैं। तो क्यों न मैं इस समय इन श्रमण गौतम को अपमानित करने के लिये जिज्ञासुओं की मति भ्रान्त कर दूँ!" यह सोच कर उस पापी मार ने भगवान् के सम्मुख जा कर यह गाथा कही—

"अरे श्रमण गौतम! इस सभा में बैठकर तूँ क्या सिंह के समान गर्जन कर रहा है! क्या तूँ समझता है कि तेरा यहाँ कोई प्रतिद्वन्द्वी (पराजित करने वाला) नहीं है!"॥

(भगवान् बोले—)"जो निर्भय होते हैं वे ऐसी धर्मसभाओं में इसी तरह निर्भय होकर सिंह के समान गर्जन किया करते हैं; क्यों कि बलशाली बुद्ध विगततृष्ण होकर इस भवसागर को पार कर चुके हैं॥"

तब पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया॥ •

१३. शकलिकसूत्र : : बुद्ध के चरणों पर पाषाणक्षत

१९. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** के मद्रकुक्षि मृगदाव में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् केश्रीचरण में एक पाषाण के टुकड़े से आघात लग गया। उससे भगवान् के शरीर में दु:खद, तीव्र, कठोर एवं कष्टप्रद पीड़ा होने लगी। परन्तु भगवान् ने उस पीड़ा को स्थिरता से स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होते हुए सहन कर

सङ्घाटिं पञ्ञापेत्वा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि पादे पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"मन्दिया नु खो सेसि उदाहु कावेय्यमत्तो, अत्था नु ते सम्पचुरा न सन्ति।
एको विवित्ते सयनासनम्हि, निद्दामुखो किमिदं सोप्पसे वा" ति॥
"न मन्दिया सयामि ना पि कावेय्यमत्तो, अत्थं समेच्चाहमपेतसोको।
एको विवित्ते सयनासनम्हि, सयामहं सब्बभूतानुकम्पी॥
"येसं पि सल्लं उरसि पविट्ठं, मुहुं मुहुं, हदयं वेधमानं।
ते पीध सोप्पं लभरे ससल्ला, तस्मा अहं न सुपे वीतसल्लो॥[R.111]
"जग्गं न सङ्के न पि भेमि सोत्तु, रत्तिन्दिवा नानुतपन्ति मामं।
हानिं न पस्सामि कुहिञ्चि लोके, तस्मा सुपे सब्बभूतानुम्पी" ति॥[N.111]

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

लिया। तब भगवान् अपनी चतुर्गुण सङ्घाटि बिछा कर सिंहशय्या से पैर पर पैर रखकर विश्राम करने लगे। उसी समय पापी मार ने भगवान् के सम्मुख आकर यह गाथा कही—

"श्रमण! इतने शिथिल (मन्द) क्यों पड़े हो? क्या कुछ विचार कर रहे हो! क्या तुम्हारी कोई आवश्यकता पूर्ण नहीं हुई! एकाकी होकर इस निर्जन स्थान में निद्रामग्न समान होकर क्यों लेटे हो?"

(भगवान् बोले—) "मैं शिथिल होकर नहीं पड़ा हूँ, न कोई विचार ही कर रहा हूँ। मैने परम तत्त्व (निर्वाण) को प्राप्त कर लिया है, मैं वीतशोक हो चुका हूँ। मेरी कोई आवश्यकता अपूर्ण नहीं रह गयी है। मैं तो एकाकी होकर इस निर्जन स्थान में सभी जीवों पर अनुकम्पा करने के ध्येय से लेटा हुआ हूँ॥

"जिनके वक्षःस्थल (छाती) में बाण लग जाता है, जिसकी पीड़ा रह रह कर हृदय को फाड़ती रहती है, वैसे बाणों से आहत पुरुष भी निद्रामग्न हो जाते हैं, तो फिर मैं क्यों न सोऊँ!॥

"जागने से मुझे कोई शङ्का नहीं है, न निद्रा लेने से भयभीत ही हूँ। रात्रि या दिन का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं है। संसार में मैं कहीं भी अपनी हानि नहीं देखता; अतः मैं अपने हृदय में सब जीवों के प्रति अनुकम्पा की भावना रखता हुआ सुखपूर्वक सो रहा हूँ"॥

तब पापी मार ...पूर्ववत्...अन्तर्धान हो गया॥ •

१४. पतिरूपसुत्तं

२०. एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति एकसालायं ब्राह्मणगामे। तेन खो पन समयेन भगवा महतिया गिहिपरिसाय परिवुतो धम्मं देसेति।

[B.113] अथ खो मारस्स पापिमतो एतदहोसि—"अयं खो समणो गोतमो महतिया गिहिपरिसाय परिवुतो धम्मं देसेति। यन्नूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं विचक्खुकम्माया" ति। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"नेतं तव पतिरूपं, यदञ्ञमनुसाससि।
अनुरोधविरोधेसु, मा सज्जित्थो तदाचरं" ति॥

"हितानुकम्पी सम्बुद्धो, यदञ्ञमनुसासति।
अनुरोधविरोधेहि, विप्पमुत्तो तथागतो" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

१५. मानससुत्तं

२१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ-

---

१४. प्रतिरूपसूत्र : : अनुरोधविरोधमुक्त बुद्ध

२०. एक समय भगवान् (बुद्ध) कोसल प्रदेश के **एकशाला** नामक ब्राह्मण ग्राम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् के चारों तरफ बहुत से जिज्ञासु गृहस्थ धर्मोपदेश श्रमण हेतु बैठे हुए थे। उन्हें भगवान् धर्मोपदेश कर रहे थे।

उस समय पापी मार को यह विचार उत्पन्न हुआ—"यह श्रमण गौतम इस समय गृहस्थ जिज्ञासुओं से घिरा हुआ उन्हें धर्मोपदेश कर रहा है। तो क्यों न मैं अभी इसके श्रोताओं की मति को भ्रान्त करने हेतु वहाँ पहुँचूँ!" तब वह पापी मार भगवान् के सम्मुख जाकर उनसे गाथा के माध्यम से यों बोला—

"जो तुम दूसरों को यह उपदेश कर रहे हो—ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं; क्यों निरर्थक ही इस अनुरोध-विरोध के जाल में स्वयं भी फँस रहे हो तथा दूसरों को भी फँसा रहे हो! जो आचरण में नहीं लाया जा सकता उसको बोलने से क्या लाभ होगा!"

"तथागत दूसरों के हितार्थ उन पर अनुकम्पा कर, अनुरोध-विरोध से मुक्त रह कर उपदेश करते हैं॥"

तब पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया॥ •

पिण्डिकस्स आरामे। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"अन्तलिक्खचरो पासो, य्वायं चरति मानसो।
तेन तं बाधयिस्सामि, न मे समण मोक्खसी" ति॥

"रूपा सद्दा रसा गन्धा, फोट्ठब्बा च मनोरमा।
एत्थ मे विगतो छन्दो, निहतो त्वमसि अन्तका" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ [N.112] ●

१६. पत्तसुत्तं

२२. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं [R.112] उपादाय भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता [B.114] धम्मं सुणन्ति।

अथ खो मारस्स पापिमतो एतदहोसि—"अयं खो समणो गोतमो पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं उपादाय भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा

---

१५. मानससूत्र : : इच्छा-नाश

२१. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती** के जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उसी समय पापी मार भगवान् के सम्मुख पहुँच कर यह गाथा बोला—

"मन की उडान रूप आकाश में उडने वाला यह जाल (मन के सङ्कल्प विकल्प) है। इससे मैं तुम्हें बाँधूँगा। श्रमण! इस से तुम छुटकारा नहीं पा सकते!"॥

(भगवान्—)"रूप, शब्द, रस, गन्ध एवं स्पर्श—इन्द्रियों के इन प्रिय विषयों में मेरा अब कोई राग नहीं रह गया है। अन्तक! तुम मेरे द्वारा जीत लिये गये हो"॥

तब पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया॥ ●

१६. पात्रसूत्र : : बलीवर्द के रूप में मार का आगमन

२२. यह सूत्र भी **श्रावस्ती** में ही उपदिष्ट हुआ है। उस समय भगवान् पाँच उपादान स्कन्धों के विषय में भिक्षुओं को धर्मोपदेश कर रहे थे। तथा भिक्षु जन भी बहुत ध्यानपूर्वक मन की एकाग्रता से यह उपदेश सुन रह थे।

अहितसोता धम्मं सुणन्ति। यन्नूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं विचक्खु-कम्माया'' ति।

तेन खो पन समयेन सम्बहुला पत्ता अब्भोकासे निक्खित्ता होन्ति। अथ खो मारो पापिमा बलीवद्दवण्णं अभिनिम्मिनित्वा येन ते पत्ता तेनुपसङ्कमि। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु अञ्ञतरं भिक्खुं एतदवोच—''भिक्खु, भिक्खु, एसो बलीबद्दो पत्ते भिन्देय्या'' ति। एवं वुत्ते, भगवा तं भिक्खुं एतदवोच—''न सो, भिक्खु, बलीबद्दो। मारो एसो पापिमा तुम्हाकं विचक्खुकम्माय आगतो'' ति। अथ खो भगवा ''मारो अयं पापिमा'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासि—

''रूपं वेदयितं सञ्ञा, विञ्ञाणं यं च सङ्खतं।
नेसोहमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति॥
''एवं विरत्तं खेमत्तं, सब्बसंयोजनातिगं।
अन्वेसं सब्बट्ठानेसु, मारसेना पि नाज्झगा'' ति॥

अथ खो मारो पापिमा...पे०...तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

१७. छफस्सायतनसुत्तं

२३. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। तेन खो
[R.113] पन समयेन भगवा छन्नं फस्सायतनानं उपादाय भिक्खूनं धम्मिया कथाय

उसी समय पापी मार इस धर्मोपदेश में विघ्न डालने के वहाँ आ पहुँचा। उस समय भिक्षुओं के बहुत से पात्र खुले मैदान में सुखाने के रखे हुए थे। उसी समय पापी मार एक बैल (बलीवर्द) के रूप में उन पात्रों के पास पहुँचा। उसे देखकर किसी भिक्षु ने दूसरे भिक्षु से कहा—''भिक्षु! देखो, यह बैल यहाँ आ गया है, कहीं यह इन पात्रों को न फोड़ दे!'' उसी समय भगवान् का ध्यान उधर गया, वे उस भिक्षु से कहा—''नहीं, भिक्षु! यह बैल नहीं है, यह तो बैल के रूप में पापी मार है। यह तुम लोगों का ध्यान धर्मोपदेश से हटाने हेतु यह चेष्टा कर रहा है!''

तब भगवान् ने उस पापी मार को लक्ष्य कर ये गाथाएँ कहीं—

''जो साधक रूप वेदना संज्ञा एवं संस्कार तथा विज्ञान के विषय में 'यह मैं नहीं हूँ' या 'यह मेरा नहीं है'—ऐसा जानकर उनके प्रति विरक्त रहता है।''

''ऐसे विरक्त, शान्त तथा सभी बन्धनों से मुक्त पुरुष को प्रयास करके सर्वत्र खोजते रहने पर भी समस्त मारसेना उसके पास नहीं पहुँच सकती''॥

तब वह पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया॥ •

सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा [N.113] मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति।

अथ खो मारस्स पापिमतो एतदहोसि—"अयं खो समणो गोतमो छन्नं फस्सायतनानं उपादाय भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति [B.115] समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। यन्नूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं विचक्खुकम्माया" ति। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो अविदूरे महन्तं भयभेरवं सद्दमकासि, अपिस्सुदं पठवी मञ्ञे उन्द्रीयति। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु अञ्ञतरं भिक्खुं एतदवोच—"भिक्खु, भिक्खु, एसा पठवी मञ्ञे उन्द्रीयती" ति। एवं वुत्ते, भगवा तं भिक्खुं एतदवोच—"नेसा भिक्खु पठवी उन्द्रीयति। मारो एसो पापिमा तुम्हाकं विचक्खुकम्माय आगतो" ति। अथ खो भगवा "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासि—

"रूपा सद्दा रसा गन्धा, फस्सा धम्मा च केवला।
एतं लोकामिसं घोरं, एत्थ लोको विमुच्छितो॥

---

१७. षट्स्पर्शायतनसूत्र : : आयतनों में भय

२३. एक समय भगवान् (बुद्ध) **वैशाली** के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् छह स्पर्शायतनों को आधार बना कर भिक्षुओं को धर्मोपदेश कर रहे थे। भिक्षुजन भी वह धर्मोपदेश बहुत ध्यानपूर्वक एकाग्र मन से श्रवण कर रहे थे।

तब पापी मार को यह विचार आया—"यह श्रमण गौतम छह स्पर्शायतनों के आधार पर भिक्षुओं को उपदेश कर रहे हैं। वे भिक्षु भी उसे ध्यानपूर्वक सुन रहे हैं। तो क्यों न मैं इस समय इनमें मतिभ्रम उत्पन्न करने के लिये श्रमण गौतम के पास पहुँचूँ।" तब वह पापी मार भगवान् के पास पहुँचा। पहुँच कर ऐसा भीषण शब्द करने लगा मानो भूकम्प (पृथ्वी का फटना) हो रहा हो। उसे सुनकर एक भिक्षु ने किसी दूसरे भिक्षु से कहा—"भिक्षु! देखो, भूकम्प हो रहा है।" यह सुनकर भगवान् ने कहा—"नहीं, भिक्षुओ! यह भूकम्प नहीं हो रहा, यह पापी मार तुम लोगों का मन विचलित (ध्यानभङ्ग) करने के लिये यहाँ आ पहुँचा है।" फिर भगवान् ने उस पापी मार को लक्ष्य कर ये गाथाएँ कहीं—

"रूप, शब्द, रस, स्पर्श एवं गन्ध या अन्ध जो भी संसार में धर्म हैं वे सभी परिणाम में भयोत्पादक हैं। इनके कारण समस्त संसार मूर्च्छित (पागल) हो गया है।

"एतं च समतिक्कम्म, सतो बुद्धस्स सावको।
मारधेय्यं अतिक्कम्म, आदिच्चो व विरोचती" ति॥

अथ खो मारो पापिमा...पे०...तत्थेवन्तरधायी ति॥

१८. पिण्डसुत्तं

२४. एकं समयं भगवा मगधेसु विहरति पञ्चसालायं ब्राह्मणगामे। तेन खो पन समयेन पञ्चसालायं ब्राह्मणगामे कुमारिकानं पाहुनकानि भवन्ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय पञ्चसालं ब्राह्मणगामं पिण्डाय पाविसि। तेन [B.114] खो पन समयेन पञ्चसालेय्यका ब्राह्मणगहपतिका मारेन पापिमता अन्वाविट्ठा भवन्ति—'मा समणो गोतमो पिण्डमलत्था' ति।

अथ खो भगवा यथाधोतेन पत्तेन पञ्चसालं ब्राह्मणगामं पिण्डाय पाविसि [N.114] तथाधोतेन पत्तेन पटिक्कमि। अथ खो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; [B.116] उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"अपि त्वं, समण, पिण्डमलत्था" ति?

"तथा नु त्वं, पापिम, अकासि यथाहं पिण्डं न लभेय्यं" ति।

"तेन हि, भन्ते, भगवा दुतियं पि पञ्चसालं ब्राह्मणगामं पिण्डाय पविसतु। तथाहं करिस्सामि यथा भगवा पिण्डं लच्छती" ति।

परन्तु बुद्ध का शिष्य इन सबको अतिक्रान्त कर, मृत्यु को भी पार कर सूर्य के समान इस लोक में अवभासित होता है"॥

तब पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्हित हो गया॥

१८. पिण्डसूत्र : : भगवान् बुद्ध को भिक्षा नहीं मिली

२४. एक समय भगवान् (बुद्ध) मगध देश के **पञ्चशाल** नामक ब्राह्मण ग्राम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय उस पञ्चशाल ब्राह्मण ग्राम में कुमारियों को भेंट देने का उत्सव हो रहा था। उस अवसर पर भगवान् प्रात:काल वस्त्रों को व्यवस्थित कर पात्र चीवर लेकर ग्राम में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। परन्तु उन्हें कहीं भिक्षा न मिली; क्यों कि पापी मार ने वहाँ के निवासियों का चित्त भ्रान्त कर दिया था कि श्रमण गौतम को भिक्षा न दी जाय।

तब भगवान् जैसा धोया पात्र लेकर ग्राम में प्रविष्ट हुए थे वैसा ही पात्र लेकर पुन: लौट आये। उसी समय पापी मार भगवान् के सम्मुख पहुँचा और पूछने लगा—"क्या श्रमण! तुम्हें कहीं भिक्षा मिली?"

भगवान् ने उसको उत्तर दिया—"पापिन्! तूँ ने ही तो ऐसा कर दिया था कि मुझे भिक्षा न मिले।"

"अपुञ्ञं पसवि मारो, आसज्ज नं तथागतं।
किं नु मञ्ञसि पापिम, न मे पापं विपच्चति॥
"सुसुखं वत जीवाम, येसं नो नत्थि किञ्चनं।
पीतिभक्खा भविस्साम, देवा आभस्सरा यथा" ति॥(ध०प० २०० गा०)

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥

●

१९. कस्सकसुत्तं

२५. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन भगवा भिक्खूनं निब्बानपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति।

अथ खो मारस्स पापिमतो एतदहोसि—"अयं खो समणो गोतमो भिक्खूनं निब्बानपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय...पे०...यन्नूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं विचक्खुकम्माया" ति। अथ खो मारो पापिमा कस्सकवण्णं अभि-[R.115] निम्मिनित्वा महन्तं नङ्गलं खन्धे करित्वा दीघपाचनयट्ठिं गहेत्वा हटहटकेसो

"तो, भन्ते, आप पुनः ग्राम में जायँ; मैं ऐसी व्यवस्था कर दूँगा कि इस बार आपको भिक्षा मिल जायगी!"

(भगवान् बोले—) "मार! तूँने बहुत अपुण्य (पाप) कमाया कि तथागत के साथ ऐसा विश्वासघात किया। पापिन्! तूँ क्या समझता है कि तेरे पाप का फल तुझे नहीं मिलेगा!

"हम अकिञ्चन तो सुखपूर्वक जीवित रह लेंगे। हम तो (भूखे रह कर भी) आभास्वर देवों के समान समाधिजन्य प्रीतिसुख से सन्तुष्ट रह लेंगे"॥ (ध.प., २०० गा.)

तब पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया॥

●

१९. कृषकसूत्र : : मार कृषक रूप में

२५. यह सूत्र भी **श्रावस्ती** में ही...। उस समय भगवान् भिक्षुओं को निर्वाण से सम्बद्ध धर्मोपदेश कर उन्हें साधना का मार्ग दिखा रहे थे, सम्प्रहृष्ट एवं धर्म के प्रति समुत्तेजित कर रहे थे। भिक्षु भी ध्यान दे कर मन को एकाग्र कर उक्त धर्म का सावधानतया श्रमण कर रहे थे।

उसी समय पापी मार को यह सूझा—"यह श्रमण गौतम भिक्षुओं को...पूर्ववत्...तो क्यों न मैं वहाँ जाकर उनमें मतिभ्रम उत्पन्न कर दूँ!" तब वह पापी मार एक निर्धन किसान की आकृति में, कन्धे पर एक बड़ा हल रखे हुए, हाथ में बैल हाँकने की लम्बी

साणसाटिनिवत्थो कद्दममक्खितेहि पादेहि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"अपि, समण, वलीबद्दे अद्दसा" ति?

"किं पन, पापिम, ते बलीबद्देही" ति?

"ममेव, समण, चक्खु, मम रूपा, मम चक्खुसम्फस्सविञ्ञाणायतनं। कुहिं मे, समण, गन्त्वा मोक्खसि? ममेव, समण, सोतं, मम सद्दा...पे०...ममेव, समण, [N.115] घानं, मम गन्धा च ममेव; समण, जिव्हा, मम रसा; ममेव, समण, कायो, मम फोट्ठब्बा; ममेव समण, मनो, मम धम्मा मम मनोसम्फस्सविञ्ञाणायतनं। कुहिं मे, समण, गन्त्वा मोक्खसी" ति?

"तवेव, पापिम, चक्खु, तव रूपा, तव चक्खुसम्फस्सविञ्ञाणायतनं। यत्थ [B.117] च खो, पापिम, नत्थि चक्खु नत्थि चक्खुसम्फस्सविञ्ञाणायतनं, अगति तव तत्थ, पापिम। तवेव, पापिम, सोतं, तव सद्दा, तव सोतसम्फस्सविञ्ञाणायतनं। यत्थ च खो, पापिम, नत्थि सोतं नत्थि सद्दा नत्थि सोतसम्फस्सविञ्ञाणायतनं, अगति तव तत्थ, पापिम। तवेव, पापिम, घानं, नत्थि गन्धा, तव घानसम्फस्सविञ्ञाणायतनं, [R.116] अगति तव तत्थ, पापिम। तवेव, पापिम, जिव्हा, तव रसा, तव जिव्हासम्फस्सविञ्ञाणायतनं...पे०...तवेव, कायो, तव फोट्ठब्बा, तव कायसम्फस्स-विञ्ञाणायतनं। तत्थ च खो, पापिम, नत्थि मनो नत्थि धम्मा नत्थि मनोसम्फस्स-विञ्ञाणायतनं, अगति तव...पे०...तवेव, पापिम, मनो, तव धम्मा, तव मनो-सम्फस्सविञ्ञाणायतनं यत्थ, पापिमा" ति।

छड़ी लिये हुए, बिखरे हुआ बालों से, जीर्ण शीर्ण धोती पहने हुए, कीचड़ में सने हुए पैरों से भगवान् के समीप पहुँचा। वहाँ पहुँच कर भगवान् से यों बोला—"क्या श्रमण! आपने मेरे बैलों को देखा है?"

"पापिन्! तुझे बैलों से क्या प्रयोजन है!"

(इस उत्तर में मार समझ गया कि भगवान् ने मुझको पहचान लिया है। फिर भी वह बोला—) "श्रवण! ये आँखें ये रूप तथा इनकेविज्ञानायतन सब कुछ मेरे वश में हैं, मुझसे बचकर कहाँ जाओगे? इसी तरह, ये श्रोत्र, ये शब्द तथा इनके विज्ञानायतन....ये घ्राण, ये गन्ध, तथा इनके विज्ञानायतन...ये जिह्वा, ये रस तथा इनके विज्ञानायतन...ये काय, ये स्प्रष्टव्य तथा इनके विज्ञानायतन...ये मन, ये मन द्वारा चिन्तनीय धर्म तथा इनके विज्ञानायतन-सब कुछ मेरे वश में हैं, श्रमण! मुझसे बचकर कहाँ जाओगे!॥

(भगवान्—) "पापी! ठीक है ये आँखें, ये रूप... तेरे ही अधीन है; परन्तु जहाँ न आँखें, न रूप, न विज्ञानायतन है वहाँ तुम्हारी गति नहीं है। ये श्रोत्र...ये घ्राण...ये जिह्वा,

"यं वदन्ति मम यिदं ति, ये वदन्ति ममं ति च।
एत्थ चे ते मनो अत्थि, न मे समण मोक्खसी" ति॥
"यं वदन्ति न तं मय्हं, ये वदन्ति न ते अहं।
एवं पापिम जानाहि, न मे मग्गं पि दक्खसी" ति॥

अथ खो मारो पापिमा...पे०...तत्थेवन्तरधायी ति।

२०. रज्जसुत्तं

२६. एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति हिमवन्तपदेसे अरञ्ञकुटिकायं। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"सक्का नु खो रज्जं कारेतुं अहनं अघातयं अजिनं अजापयं असोचं असोचापयं धम्मेना" ति?

अथ खो मारो पापिमा असोचं असोचापयं चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोचं—"कारेतु, भन्ते, भगवा रज्जं, कारेतु, सुगतो, रज्जं अहनं अघातयं अजिनं अजापयं, असोचं असोचापयं धम्मेना" [N.116] ति।

ये रस....ये काय, ये स्प्रष्टव्य....यह मन, ये धर्म...,परन्तु पापिन्, जहाँ ये श्रोत्र... यह मन...नहीं हैं, पापी! वहाँ तेरी गति नहीं है"।

(मार—) "जो लोग कहते हैं-- 'यह मेरा है'; या जिसे लोग कहते है— 'यह मेरा है' उन दोनों में से किसी में भी यदि तुम हो तो मुझ से बचकर कहाँ जाओगे?"

(भगवान्—) "जो लोग कहते हैं यह मेरा नहीं है; या जिसे लोग कहते हैं— 'यह मेरा नहीं है,' रे पापी उसे भी जान ले। मेरे मार्ग को तूँ कभी नहीं देख (जान) पायगा।"

तब पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया॥

२०.राज्यसूत्र : : **सांसारिक लाभों पर विजय**

२६.एक समय भगवान् कोसल राज्य के **हिमालय प्रदेश** की अरण्यकुटी में साधनाहेतु विराजमान थे। तब एकान्त में विराजमान भगवान् के मन में यह वितर्क उत्पन्न हुआ— "किसी को विना मारे, या किसी को मारने की प्रेरणा दिये विना; किसी को विना जीते या किसी को जीतने की प्रेरणा दिये विना; किसी को कष्ट दिये विना या किसी को कष्ट देने की प्रेरणा दिये विना धर्मपूर्वक राज्य किया जा सकता है?"

तब पापी मार भगवान् के इस वितर्क को अपने मन से जान कर भगवान् के समीप आया और यों बोले— 'भन्ते! भगवान् राज्य करें, किसी को विना मारे... पूर्ववत्...कष्ट देने की प्रेरणा दिये विना धर्मपूर्वक राज्य करें।"

"किं पन मे त्वं, पापिम, पस्ससि यं मं त्वं एवं वदेसि—'कारेतु, भन्ते, [B.118] भगवा रज्जं, कारेतु सुगतो, रज्जं अहनं अघातयं अजिनं अजापयं, असोचं असोचापयं धम्मेना''' ति?

"भगवता खो, भन्ते, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा। आकङ्खमानो च, भन्ते, भगवा हिमवन्तं पब्बतराजं सुवण्णं त्वेव अधिमुच्चेय्य सुवण्णं च पनस्सा" ति।

[R.117] "पब्बतस्स सुवण्णस्स, जातरूपस्स केवलो।
द्वित्ता व नालमेकस्स, इति विद्वा समं चरे॥

"यो दुक्खमद्दक्खि यतोनिदानं, कामेसु सो जन्तु कथं नमेय्य।
उपधिं विदित्वा सङ्गो ति लोके, तस्सेव जन्तु विनयाय सिक्खे" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥

दुतियो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

पासाणो सीहो सकलिकं, पतिरूपं च मानसं।
पत्तं आयतनं पिण्डं, कस्सकं रज्जेन ते दसा ति॥

अरे पापी! तूँ ने ऐसी क्या विशेषता देख ली जिसके कारण तूँ मुझसे कह रहा है—'भन्ते! भगवान् राज्य करे... पूर्ववत्... धर्मपूर्वक?"

"भन्ते! आप भगवान् ने चारों ऋद्धिपादों भावना कर ली है, उनका अभ्यास कर लिया है, उन पर पूर्ण अधिकार कर लिया है, उनको सफल बना लिया है, उनका अनुष्ठान कर लिया है, उनका परिचय कर लिया है, उनका पूर्ण प्रयोग कर लिया है। भन्ते! यदि आप चाहें कि यह हिमालय पर्वत सुवर्णमय हो जाय तो आपके द्वारा ऐसा अधिष्ठान किये जाते ही यह समस्त पर्वत सुवर्णपर्वत हो जायगा।"

(भगवान्—) "सर्वथा वास्तविक सोने के पर्वत का द्विगुण भाग भी एक सांसारिक कामनाधीन पुरुष के लिये पर्याप्त नहीं है। विद्वान् को ऐसा समझते हुए लोक में आचरण करना चाहिये।

"जिसने जिसके कारण लोक में दुःख भोग लिया है, वही मनुष्य उन कामभागों की ओर पुनः कैसे झुक सकता है! वह तो सांसारिक लाभों को बन्धन जानकर उन पर विजय पाना ही सीखना चाहेगा।"

यह सुनकर पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान् हो गया॥

दुतियवग्ग समाप्त॥

इस द्वितीय वर्ग में वर्णित सूत्रों की सूची--१. पाषाण सूत्र, २. किनुसिंहसूत्र, ३. शकलिकसूत्र, ४. प्रतिरूपसूत्र, ५. मानससूत्र, ६. पात्र सूत्र ७. षट्स्पर्शायतनसूत्र, ८. पिण्डसूत्र, ९. कृषकसूत्र एवं १०. राज्यसूत्र॥

३. ततियो वग्गो

२१. सम्बहुलसुत्तं

२७. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति सिलावतियं। तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू भगवतो अविदूरे अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरन्ति। अथ खो मारो पापिमा ब्राह्मणवण्णं अभिनिम्मिनित्वा, महन्तेन जटण्डुवेन अजिनक्खिपनिवत्थो जिण्णो गोपानसिवङ्को घुरुघुरुपस्सासी उदुम्बरदण्डं गहेत्वा येन [N.117] ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच—"दहरा भवन्तो [B.119] पब्बजिता सुसू काळकेसा भद्रेन योब्बनेन समन्नागता पठमेन वयसा अनिक्कीळितावितो कामेसु। भुञ्जन्तु भवन्तो मानुसके कामे। मा सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावित्था" ति।

"न खो मयं, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावाम। कालिकं च खो मयं, ब्राह्मण, हित्वा सन्दिट्ठिकं अनुधावाम। कालिका हि, ब्राह्मण, कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। सन्दिट्ठिको अयं धम्मो अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही" ति।

---

३. तृतीय वर्ग

२१. सम्बहुलसूत्र : : मार का भ्रमजाल

२७. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्यदेश की **शिलावती नगरी** में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय बहुत से भिक्षु भगवान् के समीप ही सावधान हो कर उद्योगपूर्वक इन्द्रियसंयम के साथ साधनारत थे।

उसी समय पापी मार ब्राह्मण का रूप धारण कर, सिर पर बहुत बड़े जटाजूट तथा शरीर पर मृगचर्म डाले हुए, बूढ़ा, पुरानी धरन की तरह झुका हुआ, घुर्र घुर्र श्वास लेता हुआ तथा गूलर का दण्ड हाथ में लिये भिक्षुओं के पास आया। तथा उनसे यों बोला—"आप लोग बहुत अल्प अवस्था में ही प्रव्रज्या ले बैठे हो! अभी तो आप कुमार ही दिखायी दे रहे हैं, आपके केश भी अभी काले है, आपका पूर्ण यौवन है, अभी आप लोगों ने सांसारिक कामभोगों का स्वाद भी नहीं लिया है, अतः आप पहले कामभोगों का आनन्द लें। वर्तमान की उपेक्षा कर भविष्य की ओर न दौड़ें?"

(भिक्षुओं ने उत्तर दिया—)"नहीं, ब्राह्मण! हम वर्तमान की उपेक्षा कर भविष्य की ओर नहीं दौड़ रहे हैं। अपितु भविष्यत् की झूठी आशा छोड़कर अपने वर्तमान को सुधारने में लगे हुए है। ब्राह्मण! भगवान् ने संसार के कामभोगों को परिणाम में दुःखद एवं पश्चात्तापमय बताया है। ये दोप से परिपूर्ण हैं। तथा यह भगवदुपदिष्ट धर्म तो प्रत्यक्ष

एवं वुत्ते, मारो पापिमा सीसं ओकम्पेत्वा जिव्हं निल्लालेत्वा तिविसाखं, नलाटे नलाटिकं वुट्ठापेत्वा दण्डमोलुब्भ पक्कामि। [R.118]

अथ खो ते भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"इध मयं, भन्ते, भगवतो अविदूरे अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहराम। अथ खो, भन्ते, अञ्ञतरो ब्राह्मणो महन्तेन जटण्डुवेन अजिनक्खिपनिवत्थो जिण्णो गोपानङ्कमित्वा अम्हे एतदवोच—'दहरा भवन्तो पब्बजिता सुसू काळकेसा भद्रेन योब्बनेन समन्नागता पठमेन वयसा अनिक्खीळितावेिनो कामेसु। भुञ्जन्तु भवन्तो मानुसके कामे। मा सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावित्था' ति। एवं वुत्ते, मयं, भन्ते, तं ब्राह्मणं एतदवोचुम्हं—'नं खो मयं, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिकं अनुधावाम। कालिकं च खो मयं, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावाम। कालिकं च खो मयं, ब्राह्मण, हित्वा सन्दिट्ठिकं अनुधावाम। कालिका हि, ब्राह्मण, कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। सन्दिट्ठिको अयं अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। एवं वुत्ते, भन्ते, सो ब्राह्मणो सीसं ओकम्पेत्वा जिव्हं निल्लालेत्वा तिविसाखं नलाटे नलाटिकं वुट्ठापेत्वा दण्डमोलुब्भ पक्कन्तो" ति।

"नेसो, भिक्खवे, ब्राह्मणो। मारो एसो पापिमा तुम्हाकं विचक्खुकम्माय आगतो" ति। [N.118]

फलप्रद (सान्दृष्टिक), शीघ्रपरिणामी, हस्तामलकवत् साक्षात् फल देने वाला, मुक्ति (निर्वाण) की ओर ले जाने वाला तथा विज्ञ पुरुषों द्वारा अध्यात्म रूप से ज्ञेय है"।

भिक्षुओं द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह पापी मार उपेक्षापूर्वक सिर हिलाता हुआ; जिह्वा ओठों पर फिराता हुआ, ललाट पर तीन सिकुड़न डालता हुआ, लाठी का सहारा लेकर वहाँ से चल दिया।

तदनन्तर, वे भिक्षु जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये। वहाँ जाकर, उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे वे भिक्षु भगवान् से यों बोले— "यहाँ, भन्ते! हम लोग आपके समीप ही सावधान होकर....पूर्ववत्...लाठी का सहारा लेता हुआ चल दिया।"

तब भगवान् ने उन भिक्षुओं को बताया कि वह वृद्ध ब्राह्मण के रूप में पापी मार तुम लोगों को साधना से विचलित करने हेतु तुम लोगों में मतिभ्रम पैदा करने आया था"।

अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं गाथं अभासि—

[B.120] "यो दुक्खमद्दक्खि यतोनिदानं, कामेसु सो जन्तु कथं नमेय्य।
उपधिं विदित्वा सङ्गो ति लोके, तस्सेव जन्तु विनयाय सिक्खे" ति॥ •

२२. समिद्धिसुत्तं

२८. एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति सिलावतियं। तेन खो पन समयेन [R.119] आयस्मा समिद्धि भगवतो अविदूरे अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरति। अथ खो आयस्मतो समिद्धिस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, यस्स मे सत्था अरहं सम्मासम्बुद्धो। लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, य्वाहं एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजितो। लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, यस्स मे सब्रह्मचारिनो सीलवन्तो कल्याणधम्मा" ति।

अथ खो मारो पापिमा आयस्मतो समिद्धिस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय येनायस्मा समिद्धि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मतो समिद्धिस्स अविदूरे महन्तं भयभेरवं सद्दमकासि, अपिस्सुदं पठवी मञ्ञे उन्द्रीयति।

अथ खो आयस्मा समिद्धि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं

तब भगवान् ने उस समय यह प्रसङ्गानुकूल गाथा भी कही—

"जिसने जिसके कारण लोक में दु:ख देख लिया है, वही मनुष्य उन कामभोगों की ओर पुन: कैसे झुक सकता है! वह तो सांसारिक लाभों को बन्धन जान कर उन पर विजय पाना ही सीखना चाहेगा॥" •

२२. समृद्धिसूत्र : : समृद्धि को भयभीत करना

२८. एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्य प्रदेश की शिलावती नगरी में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् समिद्धि (समृद्धि) भगवान् के समीप ही सावधानीपूर्वक उद्योगरत होकर इन्द्रियसंयम के साथ साधनारत थे। तब कभी आयुष्मान् समृद्धि के मन में यह विचार उठा—"मेरा यह बहुत अधिक लाभ हुआ, मेरा बड़ा भाग्य हुआ कि मेरे शास्ता (गुरु) अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हुए, यह भी मेरा सौभाग्य है कि मुझे उनका धर्मोपदेश सुनने को मिला, तथा यह भी मेरा लाभ ही है कि मेरे सभी गुरुभाई शीलवान् एवं पुण्यात्मा हैं।"

तब पापी मार आयुष्मान् के इस चित्तवितर्क को अपने मन से जान कर आयुष्मान समृद्धि के पास आया। आकर आयुष्मान् समृद्धि के सम्मुख महाभयानक शब्द करने लगा जैसे पृथ्वी फटने के समय भयानक शब्द हुआ करता है।

उस समय आयुष्मान् समृद्धि भगवान् के सम्मुख आकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर

अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा समद्धि भगवन्तं एतदवोच—"इधाहं, भन्ते, भगवतो अविदूरे अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरामि। तस्स मय्हं, भन्ते, भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, यस्स मे सत्था अरहं सम्मासम्बुद्धो। लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, य्वाहं एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजितो। लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, यस्स मे सब्रह्मचारिनो सीलवन्तो कल्याणधम्मा' ति। तस्स मय्हं भन्ते, अविदूरे महाभयभेरवसद्दो अहोसि, अपिस्सुदं पठवी मञ्ञे उन्द्रीयती" ति।

"नेसा, समिद्धि, पठवी उन्द्रीयति। मारो एसो पापिमा तुय्हं विचक्खुकम्माय आगतो। गच्छ त्वं, समिद्धि, तत्थेव अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहराही" [N.119] ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा समिद्धि भगवतो पटिस्सुत्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। दुतियं पि आयस्मा समिद्धि [B.121, R.120] तत्थेव अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहासि। दुतियं पि खो आयस्मतो समिद्धिस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स...पे०...दुतियं पि खो मारो पापिमा आयस्मतो समिद्धिस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय...पे०...अपिस्सुदं गाथाय अज्झभासि—

"सद्धायाहं पब्बजितो, अगारस्मा अनगारियं।
सति पञ्ञा च मे बुद्धा, चित्तं च सुसमाहितं।
कामं करस्सु रूपानि, नेव मं ब्याधयिस्ससी" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं समिद्धि भिक्खू" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥

बैठ गये। एक ओर बैठे हुए समृद्धि ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! मैं भगवान् के समीप ही सावधानीपूर्वक...पूर्ववत्...भयानक शब्द हुआ करता है।"

यह सब सुनकर भगवान् ने समृद्धि को बताया —"यह पृथ्वी नहीं फटी थी, अपितु तुम्हें भयभीत तथा भ्रान्त करने के लिये पापी मार का किया हुआ महागर्जन था। समृद्धि जाओ, अपनी साधना में पूर्ववत् लगे रहो।"....

दूसरी बार भी, आयुष्मान् समृद्धि वहीं समीप ही ... भयानक शब्द हुआ करता है।

तब आयुष्मान् समृद्धि जान गये कि यह पापी मार की चेष्टा है। इसका उत्तर देते हुए वे गाथा में यों बोले—

"मैं घर से बेघर हो कर श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित हुआ हूँ। स्मृति और प्रज्ञा को मैने जान लिया है। अब मेरा चित्त सुष्ठतया समाहित है। तुम जैसी इच्छा हो, अपने रूप दिखाते रहो, उससे मेरा कोई हानि होने वाली नहीं है॥"

२३. गोधिकसुत्तं

२९. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दनिवापे। तेन खो पन समयेन आयस्मा गोधिको इसिगिलिपस्से विहरति काळसिलायं। अथ खो आयस्मा गोधिको अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो सामयिकं चेतोविमुत्तिं फुसि। अथ खो आयस्मा गोधिको तम्हा सामयिकाय चेतोविमुत्तिया परिहायि। दुतियं पि खो आयस्मा गोधिको अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो सामयिकं चेतोविमुत्तिं फुसि। दुतियं पि खो आयस्मा गोधिको अप्पमत्तो चेतोविमुत्तिया परिहायि। ततियं पि खो आयस्मा गोधिको अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो सामयिकं चेतोविमुत्तिं फुसि। ततियं पि खो आयस्मा गोधिको तम्हा...पे०...परिहायि। चतुत्थं पि खो आयस्मा गोधिको अप्पमत्तो...पे०...विमुत्तिं फुसि। चतुत्थं पि खो आयस्मा गोधिको [R.121] तम्हा...पे०...परिहायि। पञ्चमं पि खो आयस्मा गोधिको...पे०...चेतोविमुत्तिं फुसि। पञ्चमं पि खो आयस्मा...पे०...विमुत्तिया परिहायि। छट्ठं पि खो आयस्मा [N.120] गोधिको अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो सामयिकं चेतोविमुत्तिं फुसि। छट्ठं पि खो आयस्मा गोधिको तम्हा सामयिकाय चेतोविमुत्तिया परिहायि। [B.122] सत्तमं पि खो आयस्मा गोधिको अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो सामयिकं चेतोविमुत्तिं फुसि।

अथ खो आयस्मतो गोधिकस्स एतदहोसि—"याव छट्ठं ख्वाहं सामयिकाय चेतोविमुत्तिया परिहीनो। यन्नूनाहं सत्थं आहरेय्यं" ति। अथ खो मारो पापिमा

तब पापी मार... पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया॥

२३. गोधिकसूत्र : : गोधिक की आत्महत्या

२९. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेणुवन में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् गोधिक इसिगिलि (ऋषिगिरि) के पास कालशिला पर साधना कर रहे थे। यों क्रमशः आयुष्मान् गोधिक ने अप्रमत्त एवं उद्योगरत रहते हुए समाधि से शक्य विमुक्ति को स्पर्श कर लिया। परन्तु आयुष्मान् गोधिक की वह सामयिक चेतोविमुक्ति कुछ ही समय बाद नष्ट हो गयी। दूसरी बार भी...नष्ट हो गयी। तीसरी बार भी... चौथी बार भी... पाँचवी बार भी... वह सामयिक चेतोविमुक्ति कुछ ही समय बाद क्षीण हो गयी। छठी बार भी....। सातवीं बार भी चेतोविमुक्ति का स्पर्श किया।

तब आयुष्मान् गोधिक के मन में यह विचार हुआ—"छह बार मैने इस चेतोविमुक्ति का स्पर्श किया तब वह चेतोविमुक्ति आगे चलकर कुछ समय बाद नष्ट हो गयी। तो क्यों न मैं आत्महत्या कर लूँ।"

आयस्मतो गोधिकस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"महावीर महापञ्ञ, इद्धिया यससा जल।
सब्बवेरभयातीत, पादे वन्दामि चक्खुम॥
"सावको ते महावीर, मरणं, मरणाभिभू।
आकङ्खति चेतयति, तं निसेध जुतिन्धर॥
"कथं हि भगवा तुय्हं, सावको सासने रतो।
अप्पत्तमानसो सेक्खो, कालं कयिरा जनेसुता" ति॥

तेन खो पन समयेन आयस्मतो गोधिकेन सत्थं आहरितं होति। अथ खो भगवा "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासि—

"एवं हि धीरा कुब्बन्ति, नावकङ्खन्ति जीवितं।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, गोधिको परिनिब्बुतो" ति॥

अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"आयाम, भिक्खवे, येन इसिगिलिपस्सं काळसिला तेनुपसङ्कमिस्साम यत्थ गोधिकेन कुलपुत्तेन सत्थं आहरितं" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं।

पापी मार, आयुष्मान् गोधिक के इस विचार को अपने मन से जानकर, वह तत्काल भगवान् के पास पहुँचा। पहुँचकर गाथाओं के माध्यम से भगवान् से यों बोला—

"हे महावीर! हे महाप्रज्ञ! आप अपनी ऋद्धि से दीप्त हो रहे हैं। हे सभी वैर एवं भय से मुक्त! हे सर्वज्ञ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥

"हे महावीर! आपका शिष्य (गोधिक) आपके उपदिष्ट धर्म का अभ्यास करता हुआ अब मरने की इच्छा कर रहा है, हे मृत्युञ्जय! हे तेजस्विन्! उसे रोकें।

"हे लोकविख्यात! आपके शासन में रत कोई आप का शिष्य निर्वाण प्राप्त किये विना शैक्ष्य ही रहते हुए कैसे मृत्यु को प्राप्त हो जायगा?"

उस समय तक आयुष्मान् गोधिक आत्महत्या कर चुका था। तब भगवान् ने जान लिया कि यह सूचना देने वाला पापी मार है, अत: भगवान् ने उसको यह गाथा कही—

"धीर पुरुष ऐसा ही किया करते हैं, क्यों कि जीवन में कोई आशा नहीं रहती। तृष्णा को मूलत: नष्ट कर गोधिक ने निर्वाण प्राप्त कर लिया॥"

तब भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाया, और उनको आदेश दिया—"आओ, भिक्षुओ! जहाँ ऋषिगिरिपर्वत के पास कालशिला है वहाँ चला जाय। जहाँ गोधिक कुलपुत्र ने आत्महत्या कर ली है।" "अच्छा, भन्ते" कह कर भिक्षुओं ने वहाँ जाना स्वीकार किया।

३०. अथ खो भगवा सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं येन इसिगिलिपस्सं काळसिला तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो भगवा आयस्मन्तं गोधिकं दूरतो व मञ्चके [R.122] विवत्तक्खन्धं सेमानं। तेन खो पन समयेन धूमायितत्तं तिमिरायितत्तं गच्छतेव [N.121] पुरिमं दिसं, गच्छति पच्छिमं दिसं, गच्छति उत्तरं दिसं, गच्छति दक्खिणं दिसं, गच्छति उद्धं, गच्छति अधो, गच्छति अनुदिसं।

अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, एतं [B.123] धूमायितत्तं तिमिरायितत्तं गच्छतेव पुरिमं दिसं, गच्छति पच्छिमं दिसं, गच्छति उत्तरं दिसं, गच्छति दक्खिणं दिसं, गच्छति उद्धं, गच्छति अधो, गच्छति अनुदिसं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"एसो खो, भिक्खवे, मारो पापिमा गोधिकस्स कुलपुत्तस्स विञ्ञाणं समन्वेसति—'कत्थ गोधिकस्स कुलपुत्तस्स विञ्ञाणं पतिट्ठितं' ति? अप्पतिट्ठितेन च, भिक्खवे, विञ्ञाणेन गोधिको कुलपुत्तो परिनिब्बुतो" ति।

अथ खो मारो पापिमा बेलुवपण्डुवीणं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"उद्धं अधो च तिरियं, दिसा अनुदिसास्वहं।
अन्वेसं नाधिगच्छामि, गोधिको सो कुहिं गतो" ति?

---

३०. तब भगवान् बहुत भिक्षुओं के साथ ऋषिगिरिपर्वत की कालशिला पहुँचे। वहाँ भगवान् ने दूर से ही आयुष्मान् गोधिक को शय्या पर शिथिल शरीर से सोते हुए देखा। उस समय धुएँ या अन्धकार का एक वृत्ताकार के समान कुछ पूर्व दिशा की ओर जाते देखा। फिर पश्चिम दिशा की ओर फिर उत्तर दिशा की ओर, तथा अन्त में दक्षिण दिशा की ओर जाते हुए उस वृत्ताकार को देखा।

तब भगवान् ने भिक्षुओं को भी उस वृत्ताकार के विषय में जैसा उन्होंने देखा पूछा तो भिक्षुओं ने भी कहा— "ऐसा वृत्ताकार दिखायी तो दे रहा है।"

भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! यह पापी मार गोधिक कुलपुत्र के विज्ञान को खोज रहा है कि उसका विज्ञान अब कहाँ जाकर प्रतिष्ठित हुआ है? परन्तु, भिक्षुओ! गोधिक कुलपुत्र का विज्ञान कहीं भी प्रतिष्ठित नहीं है। वह तो परिनिर्वृत हो चुका है।"

उसी समय पापी मार अपनी बाँस की पीली वीणा (तानपुरा) लिये हुए भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुआ तथा गाथा के माध्यम से यों बोला—

"यो धीरो धितिसम्पन्नो, झायी झानरतो सदा।
अहोरत्तं अनुयुञ्जं, जीवितं अनिकामयं॥
"जेत्वान मच्चुनो सेनं, अनागन्त्वा पुनब्भवं।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, गोधिको परिनिब्बुतो" ति॥
तस्स सोकपरेतस्स, वीणा कच्छा अभस्सथ।
ततो सो दुम्मनो यक्खो, तत्थेवन्तरधायथा ति॥

२४. सत्तवस्सानुबन्धसुत्तं

३१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजपालनिग्रोधे। तेन खो पन समयेन मारो पापिमा सत्तवस्सानि भगवन्तं अनुबन्धो होति ओतारापेक्खो ओतारं अलभमानो। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"सोकावतिण्णो नु वनम्हि झायसि, वित्तं नु जीनो उद पत्थयानो। [N.122, R.123]
आगुं नु गामस्मिमकासि किञ्चि, कस्मा जनेन न करोसि सक्खिं।
सक्खी न सम्पज्जति केनचि ते?" ति॥

"ऊपर, नीचे, आड़े, तिरछे—सभी दिशाओं तथा अनुदिशाओं में मैने सभी तरफ खोज डाला, परन्तु मुझे ज्ञात नहीं हुआ कि गोधिक कुलपुत्र कहाँ गया?"

(भगवान्—) "वह गोधिककुलपुत्र धीर, धृतिसम्पन्न, ध्यायी, सततध्यानरत, अहर्निश साधनाभ्यास में लगा हुआ, जीवन की अपेक्षा न करता हुआ, मृत्युसेना को जीत कर, पुनर्जन्म का ग्रहण न कर, तृष्णा का समूल नाश कर निर्वाण प्राप्त कर गया"॥

यह सुन कर पापी मार चिन्तामग्न हो गया। उसके पार्श्व से उसकी वीणा खिसक गयी। इससे वह खिन्न एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया॥

२४. सप्तवर्षानुबन्ध सूत्र : : मार द्वारा भगवान् का अनुगमन

३१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् ऊरुबेला में निरञ्जना नदी के तट पर ऊजपाल न्यग्रोध वृक्ष के नीचे साधनाहेतु विराजमान थे।

उस समय पापी मार सात वर्ष से निरन्तर भगवान् के पीछे लगा हुआ (अनुबद्ध) था कि उनका कोई दोष दृष्टि में आवे; किन्तु उसे उनमें कोई दोष नहीं मिला। तब पापी मार ने भगवान् से यों कहा—

"तुम किस चिन्ता या शोक में मग्न हो कि इस निर्जन वन में ध्यानरत हो? क्या तुम्हारा धन नष्ट हो गया है कि जिसकी चिन्ता कर रहे हो? या अपने आवासग्राम में कोई

[B.124] "सोकस्स मूलं पलिखाय सब्बं, अनागु झायामि असोचमानो।
छेत्वान सब्बं भवलोभजप्पं, अनासवो झायामि पमत्तबन्धू" ति॥
"यं वदन्ति मम यिदं ति, ये वदन्ति ममं ति च।
एत्थ चे ते मनो अत्थि, न मे समण मोक्खसी" ति॥
"यं वदन्ति न तं मय्हं, ये वदन्ति न ते अहं।
एवं पापिम जानाहि, न मे मग्गं पि दक्खसी" ति॥
"सचे मग्गं अनुबुद्धं, खेमं अमतगामिनं।
अपेहि गच्छ त्वमेवेको, किमञ्ञमनुसाससी" ति॥
"अमच्चुधेय्यं पुच्छन्ति, ये जना पारगामिनो।
तेसाहं पुट्ठो अक्खामि, यं सच्चं तं निरूपधि" ति॥

३२. "सेय्यथापि, भन्ते, गामस्स वा निगमस्स वा अविदूरे पोक्खरणी। तत्रस्स कक्कटको। अथ खो, भन्ते, सम्बहुला कुमारका वा कुमारिकायो वा तम्हा गामा वा निगमा वा निक्खमित्वा येन सा पोक्खरणी तेनुपसङ्कमेय्युं; उपसङ्कमित्वा तं कक्कटकं

अपराध कर डाला है कि जिसके कारण छिप कर यहाँ बैठे हो? क्यों तुम किसी अन्य पुरुष से मिलते जुड़ते नहीं हो? क्या तुम्हें किसी से मित्रता करना अच्छा नहीं लगता?"

(भगवान्—)"मैने तो शोक के कारण को ही मूलतः नष्ट कर दिया। विना कहीं कोई उत्पात किये, मैं तो निश्चिन्त सतत ध्यानमग्न रहता हूँ। हे प्रमत्तों के बान्धव! मैं जीवन के सर्वविध लोभ लालच को नष्ट कर, आश्रवरहित (निर्विकार) होकर ध्यान भावना में रत रहता हूँ।

(मार—) "लोग जिसे कहते हैं—'यह मेरा है ', या जो कहते हैं 'यह मेरा है'; श्रमण! इन बातों में तुम्हारा मन रमा हुआ है तो मुझ से तुम्हारा मोक्ष नहीं।"

(भगवान्—) "जिसे लोग कहते हैं—'ये मेरा नहीं है', या जो कहते हैं—' मैं नहीं हूँ', रे पापी! ऐसा मुझ को जान। मेरी साधना को तूँ कभी नहीं देख पायगा"॥

(मार—) "यदि तुम्हें अजर अमर पद तक पहुँचाने वाले मार्ग का ज्ञान हो गया है तो उस पर तुम अकेले चलो, दूसरो को क्या अनुशासन (उपदेश) करते फिरते हो?"

(भगवान्—) "लोग पूछते हैं कि मृत्यु के राज्य का पार कहाँ हैं? जो उसके पार जाने के इच्छुक हैं, वे जब पूछते हैं तो मैं उनको बताता हूँ कि उपधियों (चित्तविकारों) का सर्वथा अन्त कहाँ और कैसे हो सकता है!"

(मार—) ३२."जैसे, भन्ते! किसी ग्राम या कस्बे के निकट कोई पुष्करणी हों, उसमें कोई कर्कटक (कैंकड़ा) रहता हो। तब, भन्ते! उस ग्राम के वासी कुछ बालक या

उदका उद्धरित्वा थले पतिट्ठपेय्यं। यं यदेव हि सो, भन्ते, कक्कटको अळं अभिनिन्नामेय्य तं तदेव ते कुमारका वा कुमारिकायो वा कट्ठेन वा कथलाय वा सच्छिन्देय्युं सम्भुञ्जेय्युं सम्पलिभञ्जेय्युं। एवं हि सो, भन्ते, कक्कटको सब्बेहि [N.123] अळेहि सञ्छिन्नेहि सम्भग्गेहि सम्पलिभग्गेहि अभब्बो तं पोक्खरणिं ओतरितुं। एवमेव खो भन्ते, यानि कानिचि विसूकायिकानि विसेवितानि [N.123, R.124] विप्फन्दितानि, सब्बानि तानि भगवता सञ्छिन्नानि सम्भग्गानि सम्पलिभग्गानि। अभब्बो दानाहं, भन्ते, पुन भगवन्तं उपसङ्कमितुं यदिदं ओतारापेक्खो'' ति। अथ खो मारो पापिमा भगवतो सन्तिके इमा निब्बेजनीया गाथायो अभासि—

''मेदवण्णं च पासाणं, वायसो अनुपरियगा।
अपेत्थ मुदुं विन्देम, अपि अस्सादना सिया॥
''अलद्धा तत्थ अस्सादं, वायसेत्तो अपक्कमे। [B.125]
काको व सेलमासज्ज, निब्बिज्जापेम, गोतमा'' ति॥

अथ खो मारो पापिमा भगवतो सन्तिके इमा निब्बेजनीया गाथायो भासित्वा तम्हा ठाना अपक्कम्म भगवतो अविदूरे पठवियं पल्लङ्केन निसीदि तुण्हीभूतो मङ्कुभूतो पत्तक्खन्धो अधोमुखो पज्झायन्तो अप्पटिभानो कट्ठेन भूमिं विलिखन्तो॥ ●

बालिकाएँ गांवों से निकल कर उस पुष्करणी पर आ जायँ, तथा उस पुष्करणी के जल में से कर्कटक को जल में से निकाल कर भूमि पर डाल दें। भन्ते ! तब वह कर्कटक जल की ओर चलने के लिये जो जो पैर निकाले उस उस को वे बालक या बालिकाएँ किसी काष्ठ से या मिट्टी के टुकड़े से या किसी पत्थर से तोड़ दें, काट दें या मसल दें। इस प्रकार भन्ते! वह कर्कटक सभी पैरों के टूट जाने पर कट जाने पर या मसले जाने पर उस पुष्करणी में उतरने में पूर्णत: असमर्थ हो जाता है। इसी तरह, भन्ते ! जो मेरे पुष्ट अङ्ग प्रत्यङ्ग थे उन सबको भगवान् ने तोड़ दिया, काट दिया, मसल दिया। अन्त में आप में दोष खोजने के लिये पुन: आने में असमर्थ हो गया।''

तब वह पापी मार भगवान् के सम्मुख दीनतापूर्ण वचनों में यों बोला—''मेद (चर्बी) के समान श्वेत पत्थर पर किसी कौए ने झपट्टा मारा कि यह वस्तु बहुत स्वादिष्ट होगी॥

''परन्तु वहाँ कोई स्वाद न पा कर कौआ उड़ गया। उसी तरह मैं भी, हे गौतम! आप को छोड़कर दूर हट जाऊँ इसी में मेरा हित है''॥

वह पापी मार भगवान् के सम्मुख ये दीनतापूर्ण वचन कह कर, वहाँ से हट कर,

२५. मारधीतुसुत्तं

३३. अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो येन मारो पापिमा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासिंसु—

"केनासि दुम्मनो तात, पुरिसं कं नु सोचसि?
मयं तं रागपासेन, आरञ्ञमिव कुञ्जरं।
बन्धित्वा आनयिस्साम, वसगो ते भविस्सती" ति॥

"अरहं सुगतो लोके, न रागेन सुवानयो।
मारधेय्यं अतिक्कन्तो, तस्मा सोचामहं भुसं" ति॥

३४. अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोचुं—"पादे ते, समण, परिचारेमा" ति। अथ खो भगवा न मनसाकासि, यथा तं अनुत्तरे उपधिसङ्खये विमुत्तो।

अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो एकमन्तं अपक्कम्म एवं [N.124] समचिन्तेसुं—"उच्चावचा खो पुरिसानं अधिप्पाया। यन्नून मयं एकसतं

भगवान् के समीप ही पद्मासन (पालथी) लगा कर बैठ गया। यों वह गूँगे के समान चुप होकर, लज्जा के कारण अपने कन्धे गिरा कर भूमि को तृण से खोदने लगा॥ ●

२५. मारधीतासूत्र : : मारकन्याओं की पराजय

३३. तब तृष्णा, अरति एवं रगा नामक तीन मारकन्याएँ पापी मार के पास पहुँची। पहुँच कर पापी मार से गाथा के माध्यम से पूछने लगी—

"पिताजी! आप खिन्न क्यों हैं? किस पुरुष के विषय में शोक कर रहे है? हम उसे अपने राग के जाल में उसी तरह फँसा कर ले आवेंगी जैसे जंगली हाथी जाल में फँसा कर लाया जाता है। फिर वह सदा आपके वश में रहेगा।"

(मार—) "पुत्रियो ! संसार में अर्हत् बुद्ध इतनी सरलता से राग में नहीं फँसाये जा सकते; क्यों कि वे मार की राज्यसीमा से बाहर हो चुके हैं। इसीलिये मैं इतना चिन्तित हूँ"॥

३४. तब तृष्णा, अरति एवं रगा—मार की ये तीनों पुत्रियाँ भगवान् के पास गयीं। वहाँ जाकर भगवान् से यों बोली—"हे श्रमण! हम आप के चरणों की सेवा करना चाहती है'। परन्तु भगवान् ने उनके कथन पर कोई ध्यान नहीं दिया; क्यों कि वे आसक्ति (=उपधि) क्षय होने से अनुत्तर विमुक्ति प्राप्त कर चुके थे।

तब वे तृष्णा, अरति एवं रगा—ये तीनों मारकन्याएँ एकान्त में जाकर विचार (मन्त्रणा) करने लगीं — "इस संसार में पुरुषों की इच्छाएँ अनेक प्रकार की होती हैं, तो

एकसतं कुमारिवण्णसतं अभिनिम्मिनेय्यामा'' ति। अथ खो तण्हा च अरति च रगा मारधीतरो एकसतं एकसतं कुमारिवण्णसतं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा [R.125] तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोचुं—''पादे ते समण, परिचारेमा'' ति। तं पि भगवा न मनसाकासि, यथा तं अनुत्तरे उपधिसङ्ख्ये विमुत्तो।

अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो एकमन्तं अपक्कम्म एवं समचिन्तेसुं—''उच्चावचा खो पुरिसानं अधिप्पाया। यन्नून मयं एकसतं [B.126] एकसतं अविजातवण्णसतं अभिनिम्मिनेय्यामा'' ति। अथ खो तण्हा च अरति च रगा मारधीतरो एकसतं एकसतं अविजातवण्णसतं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोचुं—''पादे ते, समण, परिचारेमा'' ति। तं पि भगवा न मनसाकासि, यथा तं अनुत्तरे उपधिसङ्ख्ये विमुत्तो।

अथ खो तण्हा च...पे०...यन्नून मयं एकसतं एकसतं सकिं विजातवण्णसतं अभिनिम्मिनित्वा ति। अथ खो तण्हा च...पे०...सकिं विजातवण्णसतं अभि-निम्मिनित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोचुं—''पादे ते, समण, परिचारेमा'' ति। तं पि भगवा न मनसाकासि, यथा तं अनुत्तरे उपधिसङ्ख्ये विमुत्तो।

अथ खो तण्हा च...पे०...यन्नून मयं एकसतं एकसतं दुविजातवण्णसतं अभिनिम्मिनेय्यामा ति। अथ खो तण्हा च...पे०...दुविजातवण्णसतं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा...पे०...यथा तं अनुत्तरे अपधिसङ्ख्ये विमुत्तो। अथ खो तण्हा च...पे०... मज्झिमित्थिवण्णसतं अभिनिम्मिनेय्यामा ति। अथ खो तण्हा च...पे०... मज्झिमित्थिवण्णसतं अभिनिम्मिनित्वा...पे०...अनुत्तरे उपधिसङ्ख्ये विमुत्तो।

हम लोग क्यों न एक एक सौ कुमारियों के रूप धारण कर उनके पास चलें ।'' तब वे...तीनों कन्याएँ एक एक सौ कुमारियों के रूप धारण कर भगवान् के सम्मुख पहुचीं। आकर भगवान् से उन्होंने एक स्वर में यही बात कही—''हम आपके चरणों की सेवा करना चाहती हैं।'' परन्तु उन पर भी भगवान् ने कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उनकी संसारविषयक आसक्ति के क्षीण हो जाने से वे उससे छुटकारा पा चुके थे।

तब उन मारकन्याओं ने पुन: एकान्त में बैठकर मन्त्रणा की तथा निश्चय किया कि ''इस संसार में पुरुषों की इच्छाएँ नानाविध हुआ करती हैं तो क्यों न हम पृथक् पृथक् एक एक सौ एक बार प्रसूताओं...पूर्ववत्...एक एक सौ दो बार प्रसूताओं...पूर्ववत् एक एक सौ मध्यम आयु वाली स्त्रियों...पूर्ववत्...एक एक सौ वृद्धा स्त्रियों का रूप धारण कर

अथ खो तण्हा च...पे०...महित्थिवण्णसतं अभिनिम्मिनेय्यामा ति। अथ खो तण्हा च...पे०...महित्थिवण्णसतं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा...पे०...अनुत्तरे उपधिसङ्खये विमुत्तो। अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो एकमन्तं अपक्कम्म एतदवोचुं—''सच्चं किर नो पिता अवोच—

'अरहं सुगतो लोके, न रागेन सुवानयो।
[N.125] मारधेय्यं अतिक्कन्तो, तस्मा सो वामहं भुसं' ति॥

''यं हि मयं समणं वा ब्राह्मणं वा अवीतरागं इमिना उपक्कमेन उपक्कमेय्याम हदयं वास्स फलेय्य उण्हं लोहितं वा मुखतो उग्गच्छेय्य उम्मादं वा पापुणेय्य चित्तक्खेपं वा। सेय्यथा वा पन नळो हरितो लुतो उस्सुस्सति विसुस्सति मिलायति; [R.126] एवमेव उस्सुस्सेय्य विसुस्सेय्य मिलायेय्या'' ति।

अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो तण्हा मारधीता भगवन्तं गाथाय [B.127] अज्झभासि—

''सोकावतिण्णो नु वनम्हि झायसि, वित्तं नु जीनो उद पत्थयानो।
आगुं नु गामस्मिमकासि किञ्चि, कस्मा जनेन न करोसि सक्खिं।
सक्खी न सम्पज्जति केनचि ते?'' ति॥

उनके पास चलें।'' तदनुसार रूप धारण कर भगवान् के सम्मुख गयीं; परन्तु फिर भी भगवान् ने उन पर कोई ध्यान नहीं दिया...।

तब उन तीनों मारकन्याओं ने वहाँ से एक तरफ हट कर यह कहा—''अपने पिता जी उचित कर रहे थे—

'''संसार में सुगत (तथागत) को राग के माध्यम से आकृष्ट नहीं किया जा सकता; क्योंकि वे मृत्यु के नियन्त्रण को अतिक्रान्त कर चुके हैं। इसी लिये मैं इतना चिन्तित हूँ'।

''यदि हम लोग किसी अन्य श्रमण ब्राह्मण के पास इस तरह जातीं जो वीतराग नहीं हुआ होता तो उसका वक्ष:स्थल विदीर्ण हो जाता, या वह अपने मुख से रुधिर का वमन कर देता, या वह प्रमत्त (पागल) हो जाता, या उन्मत्त हो जाता। या जैसे भूमि से उखाड़ी हुई काटी हुई घास सूख जाती तथा मुर्झा जाती है; वैसे ही वह सूख जाता या मुर्झा जाता।''

तब तृष्णा आदि वे तीनों मारकन्याएँ भगवान् के पास जाकर एक तरफ खड़ी हो गयीं। तथा उनमें से **तृष्णा** ने भगवान् से यों निवेदन किया—

"अत्थस्स पत्तिं हदयस्स सन्तिं, जेत्वान सेनं पियसातरूपं।
एकोहं झायं सुखमनुबोधिं, तस्मा जनेन न करोमि सक्खिं।
सक्खी न सम्पज्जति केनचि मे" ति॥

अथ खो अरति मारधीता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"कथं विहारीबहुलोध भिक्खु, पञ्चोघतिण्णो अतरीध छट्ठं।
कथं झायिं बहुलं कामसञ्ञा, परिबाहिरा होन्ति अलद्ध यो तं" ति॥

"पस्सद्धकायो सुविमुत्तचित्तो, असङ्खरानो सतिमा अनोको। [N.126]
अञ्ञाय धम्मं अवितक्कझायी, न कुप्पति न सरति न थिनो॥

"एवं विहारीबहुलोध भिक्खु, पञ्चोघतिण्णो अतरीध छट्ठं।
एवं झायिं बहुलं कामसञ्ञा, परिवाहिरा होन्ति अलद्ध यो तं" ति॥

"तुम किस शोक या चिन्ता के कारण इस निर्जन वन में एकाकी रूप में बैठे हुए ध्यानमग्न हो। क्या तुम्हारा धन नष्ट हो गया है जिसकी चिन्ता कर रहे हो? या तुमने अपने ग्राम में ऐसा कोई प्रमाद (अपराध) कर डाला है कि जिससे लज्जित होकर लोगों से तुम मिलना भी नहीं चाहते? क्या तुम्हारी किसी से मित्रता नहीं है कि वह तुमसे मिलने भी नहीं आता?"

(भगवान्—) "मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुकने के कारण अपने हृदय में पूर्ण शान्ति अनुभव कर रहा हूँ। मैंने इन भ्रामक तथा मोहक एवं प्रिय लगने वाली सांसारिक वस्तुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है। अब मै इस निर्जन स्थान में एकाकी ध्यानमग्न रहकर सुखानुभव कर रहा हूँ। अतएव मैं किसी से मिलने जुड़ने की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करता। तथा मैं किसी से मित्रता करने की कोई आवश्यकता भी नहीं समझता"। (१)

एतदनन्तर **अरति** नामक दूसरी मारकन्या ने भगवान् से यह गाथा कहते हुए यों पूछा—

"कोई भिक्षु कैसे निरन्तर ध्यानमग्न रह पाता है? वह पाँच ओघों (बाढों) को पार कर छठे को कैसे पार कर पाता है? वैसे सतत ध्यानाभ्यासी को कामसंज्ञा (कामबन्धन) क्यों नहीं जकड़ पाती, वे उसके बाहर ही क्यों टहलती रह जाती हैं?"

(भगवान्—) "जिसकी काया शान्त हो गयी है चित्त दोषों से मुक्त हो गया है, जिसके संस्कार विनष्ट हो चुके हैं, जो स्मृतिमान्, आवासरहित तथा धर्म को जानकर अवितर्क ध्यान में रत रहता हुआ न किसी पर क्रोध करता है, न किसी से वैर बाँधता है, न (साधना में) अनुत्साही होता है।"

[B.128, R.127] अथ खो रगा मारधीता भगवतो सन्तिके गाथाय अज्झभासि—

"अच्छेज्ज तण्हं गणसङ्घचारी, अद्धा चरिस्सन्ति बहू च सद्धा।
बहुं वतायं जनतं अनोको, अच्छेज्ज नेस्सति मच्चुराजस्स पारं" ति॥

"नयन्ति वे महावीरा, सद्धम्मेन तथागता।
धम्मेन नयमानानं, का उसूया विजानतं" ति॥

३५. अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो येन मारो पापिमा तेनुपसङ्कमिंसु। अद्दसा खो मारो पापिमा तण्हं च अरतिं च रगं च मारधीतरो दूरतो व आगच्छन्तियो। दिस्वान गाथाहि अज्झभासि—

"बाला कुमुदनाळेहि, पब्बतं अभिमत्थथ।
गिरिं नखेन खनथ, अयो दन्तेहि खादथ॥

"सेलं व सिरसूहच्च, पाताले गाधमेसथ।
खाणुं व उरसासज्ज, निब्बिज्जापेथ गोतमा" ति॥

"भिक्षु ऐसे ही निरन्तर ध्यानमग्न रहता है, पाँच बाढों को पार कर छठे को भी पार कर जाता है। ऐसे ध्यानाभ्यासी को ये सांसारिक कामसंज्ञायें किसी भी दशा में नहीं बाँध पाती। वे तो उसके पास (बाहर) ही टहलती रह जाती हैं, उसके चित्त को दूषित नहीं कर पातीं।" (२)

तब रगा मारकन्या ने भगवान् से यों गाथाएँ कहीं—

"गण एवं सङ्घ में रहकर साधना करने वाला तृष्णा को छिन्न भिन्न कर (साधना में) आगे बढ जाता है। अन्य बहुत से साधक प्राणी भी (साधना में) आगे बढ जायँगें। यह प्रव्रजित भिक्षु उन बहुत से लोगों को मृत्युराज से छुड़ाकर पार ले जायगा।

" महाबलशाली तथागत अपने सद्धर्मोपदेश द्वारा उन साधक प्राणियों को साधना में आगे बढ़ाते हैं। विवेकी पुरुषों का धर्म के द्वारा साधना को आगे बढाने वालों के साथ ईर्ष्या द्वेष कैसा!" (३)

३५. तब वे तृष्णा आदि तीनों मारकन्याएँ अपने पिता के पास पहुँची। पापी मार ने उन तीनों को दूर से आते हुए देख लिया। देख कर उसने उनको इन गाथाओं के माध्यम से यों कहा—

"अरी मूर्खो! तुम कमल की नाल से पर्वत को मथना चाहती हो, पहाड़ को नखों से खोदना चाहती हो, लोहे को दांत से चबाना चाहती हो!

"पर्वत को अपने सिर से टक्कर मारना चाहती हो! पाताल की गहराई खोजना

"दड्ढमाना आगच्छुं, तण्हा च अरती रगा। [N.127]
ता तत्थ पनुदी सत्था, तूलं भट्ठं व मालुतो" ति॥ •

तततियो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

सम्बहुला समिद्धि च, गोधिक सत्तवस्सानि।
धीतरं देसितं बुद्धसेट्ठेन इमं मारपञ्चकं ति॥ •

मारसंयुत्तं समत्तं॥

चाहती हो! वृक्ष के ठूँठ (स्कन्ध) से अपन वक्षःस्थल टकरा रही हो! अच्छा हुआ, तुम उस श्रमण गौतम का पीछा छोड़कर पुनः लौट आयीं"॥

यों, वे तीनों—तृष्णा, अरति एवं रगा-मारकन्याएँ अपने शरीर के विशिष्ट हाव भाव दिखाती हुई पुनः लौट आयीं। शास्ता ने उनको अपने यहाँ से वैसे ही भगा दिया जैसे वायु रूई को उड़ा देती है, बिखेर देती है॥ •

तृतीय वर्ग समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—[इस संयुक्त में भी, पिछले संयुक्त की तरह, तीन वर्गों में विभाजित कर पचीस सूत्र व्याख्यात हुए हैं। उनमें १०+१०=२० व्याख्यात सूत्र पिछले दो वर्गों में बताये जा चुके हैं, इस वर्ग में व्याख्यात अवशिष्ट पाँच सूत्रों की सूची यह है—]

१. सम्बहुलसूत्र, २. समृद्धि सूत्र, ३. गोधिकसूत्र, ४. सप्तवर्षानुबन्धसूत्र एवं ५. मारधीतासूत्र॥

मारसंयुक्त समाप्त॥

५. भिक्खुनीसंयुत्तं

१. आळविकासुत्तं

[N.128, B.129, R.128] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आळविका भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन अन्धवनं तेनुपसङ्कमि विवेकत्थिनी। अथ खो मारो पापिमा आळविकाय भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो विवेकम्हा चावेतुकामो येन आळविका भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आळविं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि—

''नत्थि निस्सरणं लोके, किं विवेकेन काहसि।
भुञ्जस्सु कामरतियो, माहु पच्छानुतापिनी'' ति॥

अथ खो आळविकाय भिक्खुनिया एतदहोसि—''को नु ख्वायं मनुस्सो वा अमनुस्सो वा गाथं भासती'' ति? अथ खो आळविकाय भिक्खुनिया एतदहोसि— ''मारो खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो विवेकम्हा चावेतुकामो गाथं भासती'' ति। अथ खो आळविका भिक्खुनी ''मारो अयं पापिमा'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि—

---

५. भिक्षुणीसंयुक्त

१. आळविकासूत्र : : कामभोगों की वाण से उपमा

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती** के जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आळविका नामक भिक्षुणी पूर्वाह्ण में वस्त्रों को व्यवस्थित कर, पात्र चीवर लेकर, श्रावस्ती में भिक्षा हेतु प्रविष्ट हुई। वह श्रावस्ती में भिक्षाकर, भोजनक्रिया से निवृत्त होकर साधनाहेतु एकान्तवास खोजती हुई अन्धवन में पहुँची। वहाँ पापी मार उस समय आळविका भिक्षुणी को भयभीत, रोमाञ्चित एवं एकान्त स्थान की खोज से दूर हटाने के लिये उस भिक्षुणी के पास पहुँचा तथा यों बोला—

''अरी, तुम साधनाहेतु क्या एकान्त खोज रही हो! इस संसार में मुक्ति का कोई उपाय नहीं है! अभी तो तुम सांसारिक कामगुणों का उपभोग करो, अन्यथा बाद में इसके लिये तुम्हें पछताना होगा!''

तब आळविका भिक्षुणी ने सोचा—''यह तो किसी मनुष्येतर प्राणी के बोले हुए शब्द हैं! यह कौन बोल रहा है? तब सोचते सोचते उसके ध्यान में आया—''यह तो मुझे

"अत्थि निस्सरणं लोके, पञ्ञाय मे सुफुस्सितं।
पमत्तबन्धु पापिम, न त्वं जानासि तं पदं॥
"सत्तिसूलूपमा कामा, खन्धासं अधिकुट्टना।
यं त्वं कामरतिं ब्रूसि, अरति मय्हं सा अहू" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं आळविका भिक्खुनी" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ [R.129] ●

२. सोमासुत्तं

२. सावत्थिनिदानं। अथ खो सोमा भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं [N.129, B.130] निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन अन्धवनं तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। अन्धवनं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहाराय निसीदि। अथ खो मारो पापिमा सोमाय भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो येन सोमा भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सोमं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि—

"यं तं इसीहि पत्तब्बं, ठानं दुरभिसम्भवं।
न तं द्वङ्गुलपञ्ञाय, सक्का पप्पोतुमित्थिया" ति॥

भयभीत करने के लिये, पापी मार की कुचेष्टा है। इस तरह कहकर यह मुझे एकान्त साधना से च्युत करना चाहता है।" तब आळविका ने उससे प्रत्युत्तर में यों कहा—

"इस संसार से मुक्ति का भी उपाय है, जिसको मैंने प्रज्ञा द्वारा प्राप्त कर लिया है। ओ पापिन्! ओ प्रमत्त पुरुषों के मित्र! तूँ उस पद (स्थान) को नहीं जानता॥

"ये सांसारिक कामभोग तो शूल एवं भालों के समान हैं, जो प्राणियों को चुभते रहते हैं। जिसे तुम कामभोग कहते हो उन्हें प्राप्त करने हेतु मेरी कोई रुचि नहीं रह गयी है"॥

तब पापी मार ने "भिक्षुणी ने मुझको पहचान लिया"—यह जानकर, वह दुःखी एवं उद्विग्न होते हुए वहीं अन्तर्धान हो गया॥

●

२. सोमासूत्र : : स्त्रीभाव क्या करेगा!

यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। तब सोमा भिक्षुणी...पूर्ववत् अन्धवन में किसी वृक्ष के नीचे एकान्त में साधनाहेतु बैठी। तब पापी मार उसको भयभीत...पूर्ववत्...यह बोला—

"ओ साधारण नारि! जो स्थान बड़े बड़े ऋषि मुनियों द्वारा भी बहुत कठिन

अथ खो सोमाय भिक्खुनिया एतदहोसि—"को नु ख्वायं मनुस्सो वा अमनुस्सो वा गाथं भासती" ति? अथ खो सोमाय भिक्खुनिया एतदहोसि—"मारो खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो गाथं भासती" ति। अथ खो सोमा भिक्खुनी "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि—

"इत्थिभावो किं कयिरा, चित्तम्हि सुसमाहिते।
ञाणम्हि वत्तमानम्हि, सम्मा धम्मं विपस्सतो॥
"यस्स नून सिया एवं, इत्थाहं पुरिसो ति वा।
किञ्चि वा पन अञ्ञस्मि, तं मारो वत्तुमरहती" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं सोमा भिक्खुनी" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥

३. किसागोतमीसुत्तं

[R.130] ३. सावत्थिनिदानं। अथ खो किसागोतमी भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं [B.131] पिण्डपातपटिक्कन्ता येन अन्धवनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा दिवाविहाराय

साधना से प्राप्त करने योग्य है, उसे तुम अपनी इस छोटी सी दो अंगुल की प्रज्ञा से प्राप्त करना चाहती हो!"

तब सोमा भिक्षुणी को यों विचार आया कि यह बोलने वाला कोई मनुष्य है या देवता? तब अन्त में उसके समझ में आया कि यह अवश्य पापी मार ही है जो मुझे भयभीत कर साधना से च्युत करना चाहता है। तब सोमा भिक्षुणी ने उसको, जान कर, यों कहा—

"यदि किसी का चित्त भलीभाँति समाहित हो चुका है, तब वह 'स्त्री है या पुरुष'—इससे क्या अन्तर (भेद) आता है! यदि उसने धर्म का साक्षात्कार सम्यक् प्रकार से कर ज्ञान प्राप्त कर लिया है"॥

"हाँ, जिस साधक में 'मैं स्त्री हूँ' या 'पुरुष हूँ'—यह या ऐसा ही कोई अन्य भाव विद्यमान है, हे मार! उस पर तुम्हारा वश चल सकता है"॥

तब पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्हित हो गया॥

३. कृशा गौतमी सूत्र : : अज्ञानान्धकार का नाश

३. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। तब कृशा गौतमी भिक्षुणी पूर्ववत्...अन्धवन में

अन्धवनं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ [N.130] खो मारो पापिमा किसागोतमिया भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो येन किसागोतमी भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा किसागोतमिं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि—

"किं नु त्वं मतपुत्ता व, एकमासि रुदम्मुखी।
वनमज्झगता एका, पुरिसं नु गवेससी" ति?

अथ खो किसागोतमिया भिक्खुनिया एतदहोसि—"को नु ख्वायं मनुस्सो वा अमनुस्सो वा गाथं भासती" ति? अथ खो किसागोतमिया भिक्खुनिया एतदहोसि— "मारो खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो गाथं भासती" ति।

अथ खो किसागोतमी भिक्खुनी "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि—

"अच्चन्तं मतपुत्ताम्हि, पुरिसा एतदन्तिका।
न सोचामि न रोदामि, न तं भायामि, आवुसो॥
"सब्बत्थ विहता नन्दी, तमोक्खन्धो पदालितो।
जेत्वान मच्चुना सेनं, विहरामि अनासवा" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं किसा गोतमी भिक्खुनी" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥

•

किसी वृक्ष के नीचे बैठी हुई साधनारत थी। तब पापी मार उस भिक्षुणी को भयभीत करने के लिये...पूर्ववत्...यह गाथा बोला—

"क्या मृतपुत्रा स्त्री के समान रोना मुख बनाये हुए, यहाँ एकान्त वन में बैठकर किसी पुरुष की प्रतीक्षा कर रही हो?"

तब इस कृशा गौतमी को यों विचार...पूर्ववत्...उत्तर में कहा—

"पुत्रमृत्युशोक से मैं ऊपर उठ चुकी हूँ। वासनापूर्ति के लिये किसी पुरुष की खोज की चाह अब मुझमें नहीं है। न मैं अब किसी के लिये शोक करती हूँ, न उसके लिये रोती कलपती हूँ। अत: आयुष्मन्! अब तुमसे मुझे किसी प्रकार का भय नहीं रह गया है॥

"मेरी सभी सांसारिक तृष्णाएँ (=नन्दी) समाप्त हो चुकी हैं, मेरा अज्ञानान्धकार भी विनष्ट हो चुका है। मैं मृत्युसेना को जीतकर निर्विकारचित्त होकर साधना में रत रहती हूँ॥"

•

४. विजयासुत्तं

४. सावत्थिनिदानं। अथ खो विजया भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा ...पे०...अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा विजयाय भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो येन विजया भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा विजयं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि—

[B.132] "दहरा त्वं रूपवती, अहं च दहरो सुसु।
[R.131] पञ्चङ्गिकेन तुरियेन, एहय्येभिरमामसे" ति॥

अथ खो विजयाय भिक्खुनिया एतदहोसि—"को नु ख्वायं मनुस्सो वा [N.131] अमनुस्सो वा गाथं भासती" ति? अथ खो विजयाय भिक्खुनिया एतदहोसि—"मारो खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो गाथं भासती" ति। अथ खो विजया भिक्खुनी "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि—

"रूपा सद्दा रसा गन्धा, फोट्ठब्बा च मनोरमा।
निय्यातयामि तुय्हे व, मार नाहं तेनत्थिका॥
"इमिना पूतिकायेन, भिन्देनेन पभङ्गुना।
अट्टीयामि हरायामि, कामतण्हा समूहता॥
"ये च रूपूपगा सत्ता, ये च अरूपट्ठायिनो।
या च सन्ता समापत्ति, सब्बत्थ विहतो तमो" ति॥

---

४. विजया सूत्र : : कामतृष्णा का नाश

४. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। कभी विजया भिक्षुणी...पूर्ववत्...पापी मार उससे यों बोला—

"भद्रे! तुम युवती एवं सुन्दरी हो, मैं भी तरुण एवं रूपवान् हूँ, तो क्यों न हम दोनों गाजे बाजे के साथ परस्पर अभिरमण करें॥"

तब विजया भिक्षुणी ने...उसको पापी मार के रूप में पहचान कर यह उत्तर दिया—

"मार! ये मनोहर सांसारिक रूप शब्द, रस, गन्ध एवं स्प्रष्टव्य विषय तुमको ही रुचिकर लगें, मुझको इनकी आवश्यकता नहीं॥

"इस मलिन, विनाशशील एवं क्षणस्थायी शरीर से मैं घृणा करती हूँ, इसमें मेरी कोई आस्था नहीं है। क्यों कि मेरी सभी प्रकार की सांसारिक कामतृष्णाएँ समाप्त हो चुकी हैं॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं विजया भिक्खुनी" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

५. उप्पलवण्णासुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। अथ खो उप्पलवण्णा भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा ...पे०...अञ्ञतरस्मिं सुपुप्फितसालरुक्खमूले अट्ठासि। अथ खो मारो पापिमा उप्पलवण्णाय भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो येन उप्पलवण्णा भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा उप्पलवण्णं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि—

"सुपुप्फितग्गं उपगम्म भिक्खुनि, एका तुवं तिट्ठसि सालमूलं।
न चत्थि ते दुतिया वण्णधातु, बाले न त्वं भायसि धुत्तकानं" ति॥

अथ खो उप्पलवण्णाय भिक्खुनिया एतदहोसि—"को नु [B.133, R.132] ख्वायं मनुस्सो वा अमनुस्सो वा गाथं भासती" ति? अथ खो उप्पल-[N.132] वण्णाय भिक्खुनिया एतदहोसि—"मारो खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो गाथं भासती" ति। अथ खो उप्पलवण्णा भिक्खुनी "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि—

"सतं सहस्सानि पि धुत्तकानं, इधागता तादिसका भवेय्युं।
लोमं न इञ्जामि न सन्तसामि, न मार भायामि तमेकिका पि॥

"जो यह संसार (=रूपलोक) एवं देवलोक (स्वर्ग=अरूपलोक) में रहने वाले प्राणी हैं, तथा जो शान्त समापत्ति (ध्यानावस्था) है इन सभी के विषय में मेरा अज्ञानान्धकार नष्ट हो चुका है॥"

तब पापी मार...वहीं अन्तर्हित हो गया॥ •

५. उत्पलवर्णासूत्र : : उत्पलवर्णा की ऋद्धिमत्ता

५. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही... ।... उत्पलवर्णा भिक्षुणी किसी सुपुष्ट शालवृक्ष के नीचे खड़ी थी। इतने में ही, पापी मार...वहाँ आकर उससे इस गाथा के माध्यम से यों बोला—

"अरे ओ नादान भिक्षुणी! इस सुपुष्पित शालवृक्ष के नीचे एकाकी खड़ी हो। क्या तुम्हारे जैसा सौन्दर्य (=वर्णधातु=सुन्दर शरीर) तुम्हें किसी अन्य में नहीं मिला कि तुम अकेली यहाँ चली आयी हो? क्या तुम्हें दुष्ट जनों से भय नहीं लगता?"

तब उत्पलवर्णा भिक्षुणी...उस पापी मार को पहचान कर यों बोली—

"तुम्हारे समान हजार दुष्ट जन (धूर्त) भी यहाँ चले आवें तो भी मुझे उनसे कोई

"एसा अन्तरधायामि, कुच्छिं वा पविसामि ते।
पखुमन्तरिकायं पि, तिट्ठन्तिं मं न दक्खसि॥
"चित्तस्मिं वसीभूताम्हि, इद्धिपादा सुभाविता।
सब्बबन्धनमुत्ताम्हि, न तं भायामि आवुसो" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं उप्पलवण्णा भिक्खुनी" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

६. चालासुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो चाला भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा...पे०... अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा येन चाला भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा चालं भिक्खुनिं एतदवोच—"किं नु त्वं, भिक्खुनि, न रोचेसी" ति?

"जातिं ख्वाहं, आवुसो, न रोचेमी" ति।

"किं नु जातिं न रोचेसि, जातो कामानि भुञ्जति।
को नु तं इदमादपयि, जातिं मा रोच भिक्खुनी?" ति॥

भय नहीं है। मेरा एक भी रोम नहीं कँपा सकते। मुझे उनसे कोई भय नहीं लगता। मार! मैं तुमसे भी कोई भय नहीं मान रही हूँ॥

("धर्मसाधना के कारण) मैं इतनी ऋद्धि प्राप्त कर चुकी हूँ कि मै अभी यहाँ से अन्तर्धान हो सकती हूँ। तुम्हारे उदर में प्रविष्ट हो सकती हूँ। तुम्हारी भौहों के बीच खड़ी हुई को भी तुम मुझे देख नहीं सकते॥

"चित्त के वश में हो जाने पर ऋद्धियाँ स्वयं प्राप्त हो जाती हैं। मैं स्वयं बन्धनमुक्त हूँ। आयुष्मन्! मुझे तुम से भी किसी प्रकार का भय नहीं लगता"॥

तब पापी मार...पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया॥ •

६. चालासूत्र : : जन्मग्रहण के दोष

यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। तब चाला भिक्षुणी किसी वृक्ष के नीचे साधनारत थी। तब पापी मार...पूर्ववत्...चाला भिक्षुणी से यों पूछने लगा—

"भिक्षुणी! तुम्हें क्या अच्छा नहीं लगता?"

"मुझे जन्मपरम्परा अच्छी नहीं लगती?"

"क्यों जन्मपरम्परा तुम्हें अच्छी नहीं लगती? यहाँ जन्म लेने पर ही मनुष्य कामभोगों का सुख अनुभव कर सकता है। भिक्षुणी! तुम को यह किसने समझा दिया कि संसार में जन्म लेना हितावह एवं सुखकर नहीं हैं!"

"जातस्स मरणं होति, जातो दुक्खानि फुस्सति।
बन्धं वधं परिक्लेसं, तस्मा जातिं न रोचये॥
"बुद्धो धम्ममदेसेसि, जातिया समतिक्कमं। [B.134]
सब्बदुक्खप्पहानाय, सो मं सच्चे निवेसयि॥
"ये च रूपूपगा सत्ता, ये च अरूपट्ठायिनो। [R.133]
निरोधं अप्पजानन्ता, आगन्तारो पुनब्भवं" ति॥

अथ खो मारो पापिमो "जानाति मं चाला भिक्खुनी" ति दुक्खी [N.133] दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

७. उपचालासुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। अथ खो उपचाला भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा ...पे०...अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा येन उपचाला भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा उपचालं भिक्खुनिं एतदवोच— "कत्थ नु त्वं, भिक्खुनि, उप्पज्जितुकामा" ति?

"न ख्वाहं, आवुसो, कत्थचि उप्पज्जितुकामा" ति।

"तावतिंसा च यामा च, तुसिता चा पि देवता।
निम्मानरतिनो देवा, ये देवा वसवत्तिनो।

"जन्म लेने पर मनुष्य की मृत्यु अवश्यम्भावी है। बीच के समय में वह नानाविध दु:खों को भोगता है। नानाविध बन्धन, हत्याएँ, परिक्लेश आदि भी सहन करने पड़ते हैं, अत: मुझे यहाँ जन्म लेना अच्छी नहीं लगता॥

"भगवान् बुद्ध ने मुझको यहाँ जन्म लेने से मुक्ति दिलाने के लिये तथा सभी दु:खों के प्रहाण के लिये धर्मोपदेश कर सत्यपथ पर आरूढ कर दिया॥

"जो प्राणी रूप (मनुष्य लोक) एवं अरूप (देवलोक) में आसक्त हैं वे, निरोध मार्ग को न जानने के कारण, इस तरह यहाँ बार बार जन्म लेते हैं"॥

तब पापी मार...पूर्ववत्...अन्तर्धान हो गया॥ •

७. उपचालासूत्र : : समस्त लोक प्रज्वलित है

यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। किसी दिन उपचाला भिक्षुणी...पूर्ववत्... पापी मार उससे यों पूछने लगा—

"भिक्षुणी! तुम कहाँ उत्पन्न होना चाहती हो?"

(उपचाला ने कहा—) "मैं कहीं भी उत्पन्न होना नहीं चाहती।"

(मार—) ("यहाँ नहीं तो) त्रायस्त्रिंश, याम, तुषित, निर्माणरति एवं वशवर्ती

तत्थ चित्तं पणिधेहि, रतिं पच्चुनुभोस्ससी'' ति॥
''तावतिंसा च यामा च, तुसिता चा पि देवता।
निम्मानरतिनो देवा, ये देवा वसवत्तिनो।
कामबन्धनबद्धा ते, एन्ति मारवसं पुन॥
सब्बो आदीपितो लोको, सब्बो लोको पधूपितो।
सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो॥
''अकम्पितं अपज्जलितं, अपुथुज्जनसेवितं।
अगति यत्थ मारस्स, तत्थ मे निरतो मनो'' ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं उपचाला भिक्खुनी'' ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥

८. सीसुपचालासुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो सीसुपचाला भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा [B.135]...पे०...अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा येन सीसुपचाला भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सीसुपचालं भिक्खुनिं एतदवोच—''कस्स नु त्वं, भिक्खुनि, पासण्डं रोचेसी'' ति?

[N.134] ''न ख्वाहं, आवुसो, कस्सचि पासण्डं रोचेमी'' ति।

देवलोक भी हैं, उनमें मन लगाओ। उनमें तुम यहाँ की अपेक्षा बहुत अधिक सुख का अनुभव करोगी''॥

(उपचाला—) ''त्रायस्त्रिंश, याम, तुषित, निर्माणरति एवं वशवर्ती लोक के देवता आदि सभी मार-बन्धन में बँधे हुए हैं॥

''समग्र संसार जल रहा है, समस्त संसार धूआँ फेंक रहा है। समस्त संसार प्रज्वलित (धधक रहा) है, तथा समस्त संसार भय के कारण काँप रहा है॥

''मेरे मन को तो वही स्थान रुचिकर लगता है जो किसी भय के कारण न काँप रहा हो, न किसी पापवह्नि से प्रज्वलित हो, न धूआँ फेंक रहा हो, जहाँ दुष्टजनों का वास न हो तथा जहाँ मार की किसी भी प्रकार से गति न हो॥''

तब पापी मार...वहीं अन्तर्धान हो गया॥

८. शीर्षोपचाला सूत्र : : बुद्धशासन में रुचि

यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। तब शीर्षोपचाला भिक्षुणी...पूर्ववत्...उससे पापी मार यों पूछने लगा—

''भिक्षुणी! तुम्हें किस धर्मोपदेष्टा का मत (पापण्ड) अच्छा लगता है?''

"कं नु उद्दिस्स मुण्डासि; समणी विय दिस्ससि।
न च रोचेसि पासण्डं, किमिव चरसि मोमूहा?"॥
"इतो बहिद्धा पासण्डा, दिट्ठीसु पसीदन्ति ते।
न तेसं धम्मं रोचेमि, तं धम्मस्स अकोविदा॥
"अत्थि सक्यकुले जातो, बुद्धो अप्पटिपुग्गलो। [R.134]
सब्बाभिभू मारनुदो, सब्बत्थमपराजितो॥
"सब्बत्थ मुत्तो असितो, सब्बं पस्सति चक्खुमा।
सब्बकम्मक्खयं पत्तो, विमुत्तो उपधिसङ्खये।
सो मय्हं भगवा सत्था, तस्स रोचेमि सासनं" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं सीसुपचाला भिक्खुना" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

९. सेलासुत्तं

९. सावत्थिनिदानं। अथ खो सेला भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा... पे०...अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा सेलाय

"आयुष्मन्! किसी भी उपदेष्टा का मत अच्छा नहीं लगाता"॥

"तो तुमने अपना मुण्डन क्यों करा लिया है, वस्त्रों के परिवेश से भिक्षुणी ज्ञात लगती हो। जब तुम्हें किसी का भी मत अच्छा नहीं लगता तो क्यों इधर उधर भटक रही हो?"

(भिक्षुणी—) "मुझे तो मेरे इस स्वीकृत धर्म से बाहर सभी पाषण्ड लगते हैं; क्यों कि उन सभी की आत्मदृष्टि में श्रद्धा है, यों वे धर्म का मूल नहीं जानते; अतः मुझे उनका मत स्वीकार नहीं हैं॥

"भगवान् बुद्ध ही मेरे शास्ता हैं; जो शाक्यकुलसम्भूत हैं, ज्ञानी है, अद्वितीय हैं, सर्वविजयी हैं, मार को दूर भगाने वाले हैं, संसार में सभी से अपराजेय हैं॥

"सर्वथा मुक्त हैं, पूर्ण स्वतन्त्र हैं, परमज्ञानी हैं, सर्वद्रष्टा हैं। सभी कर्मों को क्षीण कर चुके हैं, उपधियों (चित्तविकारों) के क्षीण होने के कारण मुक्त हो चुके हैं। ऐसे वे भगवान् ही मेरे शास्ता हैं। मुझे उन्हीं से उपदिष्ट धर्म अभिमत है॥"

तब पापी मार...पूर्ववत्...वहाँ से अन्तर्हित हो गया॥ •

९. शैलासूत्र : : प्रतीत्यसमुत्पाद

९. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। तब शैला भिक्षुणी...पूर्ववत्... उससे पापी मार यों बोला—

भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो...पे०...सेलं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि—

"केनिदं पकतं बिम्बं, क्वनु बिम्बस्स कारको।
क्वनु बिम्बं समुप्पन्नं, क्वनु बिम्बं निरुज्झती" ति॥

अथ खो सेलाय भिक्खुनिया एतदहोसि—"को नु ख्वायं मनुस्सो वा अमनुस्सो वा गाथं भासती" ति? अथ खो सेलाय भिक्खुनिया एतदहोसि—"मारो [B.136] खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो गाथं भासती" ति। अथ खो सेला भिक्खुनी "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि—

"नयिदं अत्तकतं बिम्बं, नयिदं परकतं अघं।
हेतुं पटिच्च सम्भूतं हेतुभङ्गा निरुज्झति॥
"यथा अञ्ञतरं बीजं, खेत्ते वुत्तं विरूहति।
पठवीरसञ्चागम्म, सिनेहं च तदूभयं॥"
[N.135] "एवं खन्धा च धातुयो, छ च आयतना इमे।
हेतुं पटिच्च सम्भूता, हेतुभङ्गा निरुज्झरे" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं सेला भिक्खुनी" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥ •

१०. वजिरासुत्तं

१०. सावत्थिनिदानं। अथ खो वजिरा भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा

"यह आकृति (=बिम्ब) किसने बनायी? इसको बनाने वाला कौन है? यह आकृति कहाँ से उत्पन्न हुई? तथा अन्त में इस आकृति का कहाँ निरोध हो जाता है?"

तब शैला भिक्षुणी ने... जानकर उसको यों उत्तर दिया—

"न तो यह आकृति स्वयं बन गयी है, न इस पाप का कोई दूसरा बनाने वाला है। यह तो हेतु के होने से बनी हुई दिखायी देती है, तथा हेतु के निरोध (नाश) से यह नष्ट (निरुद्ध) हो जायगी॥

"जैसे किसी बीज के खेत में रोप देने से वह पौधे के रूप में उग आता है, तथा पृथ्वी का रस तथा आर्द्रता पाकर बढने लगता है"॥

"इसी तरह ये स्कन्ध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान) ये धातुएँ, ये छह आयतन हेतु के कारण उद्भूत होते हैं। तथा एक दिन हेतु के नाश से नष्ट हो जाते हैं"॥

तब पापी मार...अन्तर्धान हो गया॥ •

पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातटिक्कन्ता येन अन्धवनं तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। अन्धवनं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा वजिराय [R.135] भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो येन वजिरा भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा वजिरं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि—

"केनायं पकतो सत्तो, कुवं सत्तस्स कारको।
कुवं सत्तो समुप्पन्नो, कुवं सत्तो निरुज्झती" ति?

अथ खो वजिराय भिक्खुनिया एतदहोसि—"को नु ख्वायं मनुस्सो वा अमनुस्सो वा गाथं भासती" ति? अथ खो वजिराय भिक्खुनिया एतदहोसि—"मारो खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो गाथं भासती" ति। अथ खो वजिरा भिक्खुनी "मारो अयं पापिमा" इति विदित्वा, मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि— [B.137]

"किं नु सत्तो ति पच्चेसि, मार दिट्ठिगतं नु ते।
सुद्धसङ्खारपुञ्जोयं, नयिध सत्तुपलब्भति॥
"यथा हि अङ्गसम्भारा, होति सद्दो रथो इति[१]।
एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति सत्तो ति सम्मुति॥

---

१०. वज्रासूत्र : : आत्मा का अभाव

यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। तब शैला भिक्षुणी... अन्धवन में...पापी मार ने यह गाथा कही—

"इस प्राणी को किसने बनाया है? इसको बनाने वाला कहाँ है? कहाँ से यह प्राणी उत्पन्न हो जाता है, तथा कहाँ जाकर यह निरुद्ध (विलीन) हो जाता है?"

तब वह वज्रा भिक्षुणी...मार से ये गाथाएँ बोली—

"'प्राणी'—ऐसा क्यों बोल रहे हो? मार! ज्ञात होता है तुम आत्मदृष्टि से मुग्ध हो। अन्यथा, यह तो संस्कारों का एक पुञ्जमात्र है। वस्तुतः यहाँ 'प्राणी' (आत्मा) कोई नहीं है॥

"जैसे सब अवयवों (=अङ्गों) को मिला देने से वह अवयव समूह 'रथ' इस संज्ञा का बोधक होता है; वैसे ही पाँच स्कन्धों के मिलने से 'प्राणी' यह लोक में व्यवहृत होता है।"

---

१. इसकी विशेष व्याख्या के लिये **मिलिन्दपञ्हपालि** (बौ० भा० सं०) ग्रन्थ देखें।

"दुक्खमेव हि सम्भोति, दुक्खं तिट्ठति वेति च।
नाञ्ञत्र दुक्खा सम्भोति, नाञ्ञं दुक्खा निरुज्झती" ति॥

अथ खो मारो पापिमा "जानाति मं वजिरा भिक्खुनी" ति दुक्खी दुम्मनो [N.136] तत्थेवन्तरधायी ति॥ ●

भिक्खुनीसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

आळविका च सोमा च, गोतमी विजया सह।
उप्पलवण्णा च चाला, उपचाला सीसुपचाला च।
सेला वजिराय ते दसा ति॥ ●

"वस्तुतः दुःख ही उत्पन्न होता है। दुःख ही रहता है, तथा दुःख ही चला जाता है। दुःख को छोड़कर न कोई अन्य उत्पन्न होता है तथा उसे छोड़कर न किसी अन्य का निरोध ही होता है॥"

तब पापी मार...पूर्ववत्... वहीं अन्तर्हित हो गया॥ ●

भिक्षुणीसंयुक्त समाप्त॥

इस संयुक्त के अन्तःपाती सूत्रों की सूची—१. आळविका, २. सोमा, ३. कृशा गौतमी, ४. विजया, ५. उत्पलवर्णा, ६. चाला, ७. उपचाला, ८. शीर्षोपचाला, ९. शैला एवं १०. वज्रासूत्र॥ ●

६. ब्रह्मसंयुत्तं

१. पठमो वग्गो

१.ब्रह्मायाचनसुत्तं[1]

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति [N.137, B.138, R.136] नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजपालनिग्रोधमूले पठमाभिसम्बुद्धो। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"अधिगतो खो म्यायं धम्मो गम्भीरो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावरो निपुणो पण्डितवेदनीयो। आलयरामा खो पनायं पजा आलयरता अलयसम्मुदिता। आलयरामाय खो पन पजाय आलयरताय आलयसम्मुदिताय दुद्दसं इदं ठानं यदिदं इदप्पच्चयता-पटिच्चसमुप्पादो। इदं पि खो ठानं दुद्दसं यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बू-पधिपटिनिस्सग्गो तण्हाक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं। अहं चेव खो पन धम्मं

---

६. ब्रह्मसंयुक्त

प्रथम वर्ग

१. ब्रह्मायाचनसूत्र : : भगवान् से ब्रह्मा का निवेदन

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) उरुवेला में निरञ्जना नदी के तट पर अजपाल नामक न्यग्रोध वृक्ष की छाया में प्रथमाभिसम्बुद्ध के रूप में विराजमान थे। तब एकान्त में विराजमान उनको यह विचार होने लगा—"मैंने यह गम्भीर, कठिनता से साक्षात्करणीय (दुर्दश), एवं कठिनता से ही बोधगम्य (=दुःर्बोध), शान्त, उत्तम, किसी भी तर्क से अखण्डनीय, निपुण एवं पण्डितों द्वारा समझे जाने योग्य धर्म प्राप्त तो कर लिया, परन्तु इस धर्म का जिसको उपदेश करना है वह जनता कामतृष्णा से ही अपने को तृप्त मानती हुई, इन कामभोगों के आस्वाद में ही प्रसन्नता अनुभव कर रही है। कामभोगलिप्त इस जनता के लिये यह प्रत्ययसापेक्ष उत्पत्ति (प्रतीत्यसमुत्पाद) का सिद्धान्त समझ पाना दुरूह ही होगा। साथ ही वह स्थान पाना तो इससे भी अधिक कठिन होगा जिसे सभी संस्कारों का प्रशमन, सभी मानसिक ऊहापोहों का परित्याग, तृष्णाक्षय, वैराग्य, दुःखनिरोध तथा 'निर्वाण' कहा जाता है। अथ च, मैं किसी तरह उसको धर्मोपदेश करूँ, परन्तु वह

---

१. यह सूत्र महावग्गपालि (विनयपिटक) में (पृ० ८) भी अक्षरशः वर्णित हैं। वहाँ (बौ० भा० सं०) भी देखें।—अ०।

देसेय्यं; परे च मे न आजानेय्युं; सो ममस्स किलमथो, सा ममस्स विहेसा'' ति। अपिस्सु भगवन्तं इमा अनच्छरिया गाथायो पटिभंसु पुब्बे अस्सुतपुब्बा—

''किच्छेन मे अधिगतं, हलं दानि पकासितुं।
रागदोसपरेतेहि, नायं धम्मो सुसम्बुधो॥
''पटिसोतगामिं निपुणं, गम्भीरं दुद्दसं अणुं।
रागरत्ता न दक्खन्ति, तमोखन्धेन आवुटा'' ति॥

[R.137] इति ह भगवतो पटिसञ्चिक्खतो अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमति, नो धम्मदेसनाय।

अथ खो ब्रह्मुनो सहम्पतिस्स भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय एतदहोसि—''नस्सति वत भो लोको, विनस्सति वत भो लोको, यत्र हि नाम [B.139] तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमति, नो धम्मदेसनाया'' ति। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो [N.138] सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य एवमेव—ब्रह्मलोके अन्तरहितो भगवतो पुरतो पातुरहोसि। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति एकंसं

उसे समझ ही न पावे तो यह भी मेरे लिये मानसिक कष्ट ही होगा कि मैने धर्मोपदेश किया भी और श्रोता को वह समझ में ही न आया!'' उन्हें उस समय इसी विचार से सम्बद्ध ये गाथाएँ जो पहले कभी सुनी नहीं गयी थीं, ध्यान में आयीं—

''जिस धर्मज्ञान को मैने इतनी कठिनता से अधिगत किया है, उसे ऐसे किसी दूसरे को सहजता से समझा देना सरल नहीं है जो अपने चित्त को रागद्वेष में लिप्त किये बैठा हो॥

''क्यों कि यह धर्म तो अतिनिपुण है अतिगम्भीर है, प्रतिस्रोतोगामी (संसार से विपरीत धारा में चलने वाला) है, तथा दुःखेन साक्षात्करणीय एवं सूक्ष्म है। इसको सांसारिक मायामोह से लिप्त एवं अज्ञानान्धकार से आवृत जनता कहाँ समझ पायगी!''

भगवान् के चित्त में ऐसा विचार उत्पन्न होने के कारण, उनका चित्त धर्म प्रचार की ओर न झुककर अल्प उत्सुकता (धर्म प्रचार में उपेक्षा) की ओर मुड़ गया।

तब इस धर्मोपदेश के प्रति ऐसे विचार जानकर सहम्पति ब्रह्मा के मन में यह विचार हुआ—''अरे! भगवान् के इस निश्चय से तो धर्मप्राण जनता का विनाश ही हो जायगा! इस धर्मोपदेश के प्रति भगवान् की यह उपेक्षा अनुचित है। इन्हें धर्मप्राण जनता के हित में धर्मोपदेश के प्रति उत्साहसम्पन्न रहना ही उचित है।'' तब ब्रह्मा सहम्पति, जैसे कोई बलवान् पुरुप अपनी सिकुड़ी बाहु को सरलता से फैला दे या फैली हुई बाहु को

उत्तरासङ्गं करित्वा दक्खिणजाणुमण्डलं पठवियं निहन्त्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"देसेतु, भन्ते, भगवा धम्मं, देसेतु सुगतो धम्मं। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति। भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो" ति।

२. इदमवोच ब्रह्मा सहम्पति; इदं वत्वा अथापरं एतदवोच—

"पातुरहोसि मगधेसु पुब्बे, धम्मो असुद्धो सकलेहि चिन्तितो।
अपापुरेतं अमतस्स द्वारं, सुणन्तु धम्म विमलेनानुबुद्धं॥
"सेले यथा पब्बतमुद्धनिट्ठितो, यथा पि पस्से जनतं समन्ततो।
तथूपमं धम्ममयं सुमेध, पासादमारुय्ह समन्तचक्खु।
सोकावतिण्णं जनतमपेतसोको, अवेक्खस्सु जातिजराभिभूतं॥
"उट्ठेहि वीर विजितसङ्गाम, सत्थवाह अनण विचर लोके।
देसस्सु भगवा धम्मं, अञ्ञातारो भविस्सन्ती" ति॥

अथ खो भगवा ब्रह्मुनो च अज्झेसनं विदित्वा सत्तेसु च कारुञ्ञतं पटिच्च

समेट ले; वैसे ही वे ब्रह्मलोक से अन्तर्हित होकर भगवान् के सम्मुख प्रकट हुए। वहाँ सहम्पति ब्रह्मा ने अपना अङ्गवस्त्र एक कन्धे पर कर, दक्षिण जानु (घुटना) को पृथ्वी पर टिकाकर, जहाँ भगवान् विराजमान थे उधर हाथ जोड़ कर भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! आप धर्मप्राण जनता को अवश्य उपदेश करें, क्यों कि लोक में अल्प चित्तविकार वाले धार्मिक जन भी हैं। धर्मोपदेश न सुनने से उनकी बहुत हानि होगी। अत: आप उन्हें उपदेश करें। धर्मश्रवण करने वालों की कोई कमी नहीं हैं।"

२. ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् से यों कहा, साथ ही यह गाथा भी कही—

"मगधदेश में पहले मलिनचित्त चिन्तकों (विचारकों) द्वारा चिन्तित धर्म प्रकट किया गया था; परन्तु अब धर्मप्रिय जनता को निर्मलचित्त आप द्वारा साक्षात्कृत अमृतमय धर्म श्रवण करने का अवसर मिल गया है॥

"अत: हे सुमेध! (स्वच्छबुद्धि) सर्वत्र समदृष्टि रखने वाले आप इस दयनीय एवं जन्म मरण से अभिभूत जनता को धर्ममय पर्वत पर चढकर उसी तरह देखें, जैसे कोई ऊँचे प्रासाद (महल) पर चढ़ा हुआ पुरुष नीचे भूमि पर चारों ओर खड़े हुए लोगों को करुणामय दृष्टि से देखा करता है॥

"हे वीतशोक! हे संग्रामजित्! हे वीर! हे सार्थवाह (मार्गदर्शक) हे ऋणी को ऋणरहित करने वाले! आप (धर्मोपदेशहेतु) सन्नद्ध हों, तथा लोक में विचरण करें। अपना धर्मोपदेश आरम्भ करें। उसको सुनने वाले भी मिलेंगे ही"॥

[R.138] बुद्धचक्खुना लोकं वालोकेसि। अद्दसा खो भगवा बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेन्तो सत्ते अप्परजक्खे महारजक्खे तिक्खिन्द्रिये मुदिन्द्रिये स्वाकारे द्वाकारे [B.140] सुविञ्ञापये दुविञ्ञापये, अप्पेकच्चे परलोकवज्जभयदस्साविनो विहरन्ते अप्पेकच्चे न परलोकवज्जभयदस्साविनो विहरन्ते। सेय्यथापि नाम उप्पलिनियं वा पदुमिनियं वा पुण्डरीकिनियं वा अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि [N.139] वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदकानुग्गतानि अन्तो निमुग्गपोसीनि, अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि समोदकं ठितानि,अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदका अच्चुग्गम्म ठितानि अनुपलित्तानि उदकेन; एवमेव भगवा बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेन्तो अद्दस सत्ते अप्परजक्खे महारजक्खे तिक्खिन्द्रिये मुदिन्द्रिये स्वाकारे द्वाकारे सुविञ्ञापये दुविञ्ञापये, अप्पेकच्चे परलोक-वज्जभयदस्साविनो विहरन्ते, अप्पेकच्चे न परलोकवज्जभयदस्साविनो विहरन्ते। दिस्वान ब्रह्मानं सहम्पतिं गाथाय पच्चभासि—

"अपारुता तेसं अमतस्स द्वारा, ये सोतवन्तो पमुञ्चन्तु सद्धं।
विहिंससञ्ञी पगुणं न भासिं, धम्मं पणीतं मनुजेसु ब्रह्मे" ति॥

तब भगवान् ने ब्रह्मा सहम्पति के हार्दिक आशय को समझ कर प्राणियों पर दया दिखाते हुए बुद्ध-(ज्ञान-) चक्षु से लोक पर दृष्टिपात किया। ऐसा करते हुए भगवान् ने देखा कि लोक में कुछ प्राणी अल्प चित्तविकार वाले भी हैं तो कुछ अधिक चित्तविकार वाले। कोई मृदुइन्द्रिय (कोमलबुद्धि) हैं तो कुछ तीक्ष्णबुद्धि। कोई सरलस्वभाव हैं तो कोई उसे कठिनता से समझते हैं। कोई परलोक (नरक) से भय मान कर यथाशक्ति सदाचाररत रहते हैं तो कुछ लोगों को परलोक से कोई भय ही नहीं है। जैसे उत्पलसमूह, पद्मसमूह या पुण्डरीकसमूह वाली पुष्करणियों में कितने ही उत्पल, पद्म या पुण्डीक जल में उत्पन्न हुए, जल में बढते हुए, जल से बाहर न निकल कर जल में डूबे हुए ही पोसित होते रहते हैं, तो कुछ जल में उत्पन्न होकर तथा जल में सम्पृक्त रहते हुए उदक के समान स्तर पर रहते हुए पोषित होते रहते हैं। तथा कोई कोई उत्पल पद्म या पुण्डरीक उदक में उत्पन्न तथा उदक से सम्पृक्त रहकर भी उदक से बहुत ऊपर निकल कर (उदक से अलिप्त रहकर) खड़े रहते हैं; इसी तरह भगवान् ने अपने ज्ञानचक्षु से लोक को देखा जहाँ कुछ प्राणी अल्प चित्तविकार वाले...पूर्ववत्...यथाशक्ति सदाचाररत थे.. भय न था। उन्हें देखकर ब्रह्मा सहम्पति को भगवान् ने यह आश्वासन दिया--

"हे ब्रह्मन्! अब उन लोगों के लिये अमृतद्वार खुल गया ही समझो जो कान

अथ खो ब्रह्मा सहम्पति "कतावकासो खोम्हि भगवता धम्मदेसनाया" ति भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी ति॥

२. गारवसुत्तं

३. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजपालनिग्रोधमूले पठमाभिसम्बुद्धो। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"दुक्खं खो अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, [R.139] कं नु ख्वाहं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं" ति?

अथ खो भगवतो एतदहोसि—"अपरिपुण्णस्स खो सीलक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं [B.141] पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अत्तना सीलसम्पन्नतरं अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं।

(ध्यान) लगाकर मेरा उपदेश सुनेंगे और मुझ पर श्रद्धा रखेंगे। मैं तो पहले अपने लिये होने वाले वृथा कष्ट को ध्यान में रखकर ही प्राणियों को इस उत्तम धर्म का उपदेश न करने की बात कह रहा था॥"

तब ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् से उक्त आश्वासन प्राप्त कर, समझ लिया कि भगवान् ने प्राणियों को धर्मोपदेश करने की स्वीकृति दे दी। अतः वे (ब्रह्मा) भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्हित हो गये॥ (द्र.—वि.पि. के **महावग्ग** का आरम्भिक प्रसङ्ग)।

२. गौरवसूत्र : : सद्धर्म का गौरव (सम्मान)

३. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **ऊरुवेला** में निरञ्जना नदी के तट पर अजपाल नामक न्यग्रोध वृक्ष के नीचे विराजमान थे, जब कि उन्हें बुद्धत्व प्राप्त किये हुआ थोड़ा ही समय बीता था। तब भगवान् को एकान्त में विराजमान रहते हुए यह विचार हुआ—"किसी को अपने ज्येष्ठ माने विना, उसके प्रति अपने हृदय में गौरव रखे विना धर्मसाधना कष्टदायक ही हुआ करती है, अतः मैं किस श्रमण या ब्राह्मण को सम्मानित कर, उसके प्रति श्रद्धा रखते हुए साधनारत रहूँ।"

तब भगवान् ने इस प्रकरण पर और भी अधिक गहनता से विचार किया तो उनके मन में यह हुआ—"अपरिपूर्ण शीलस्कन्ध की पूर्णता के लिये ही किसी अन्य श्रमण या ब्राह्मण को अपने से ज्येष्ठ मान कर साधना करना उचित होता है। परन्तु मेरे समान समस्त शीलस्कन्ध को पूर्ण किया हुआ साधक इस लोक या परलोक में, देवता मनुष्य तथा श्रमण

"अपरिपुण्णस्स खो समाधिक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा [N.140] सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके लोके...पे०...अत्तना समाधिसम्पन्नतरं अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं।

"अपरिपुण्णस्स पञ्ञाक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके...पे०... अत्तना पञ्ञासम्पन्नतरं अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं।

"अपरिपुण्णस्स खो विमुत्तिक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके...पे०... अत्तना विमुत्तिसम्पन्नतरं अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं।

"अपरिपुण्णस्स खो विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अत्तना विमुत्ति-ञाणदस्सनसम्पन्नतरं अञ्ञं समणं वा ब्राह्मं वा यमहं सक्कत्वा गरुं उपनिस्साय विहरेय्यं।

यन्नूनाहं य्वाहं धम्मो मया अभिसम्बुद्धो तमेव धम्मं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं" ति।

ब्राह्मणोंसहित संसार की इस समस्त जनता में मुझे ऐसा कोई पुरुष नहीं दिखायी देता जिसे मैं अपने से श्रेष्ठ मानकर सत्कार या गौरव प्रदान करूँ!"

"इसी तरह अपरिपूर्ण समाधिस्कन्ध की पूर्णता के लिये ही...पूर्ववत्...गौरव प्रदान करूँ!

"इसी तरह अपरिपूर्ण प्रज्ञास्कन्ध की पूर्णता के लिये ही...पूर्ववत्...गौरव प्रदान करूँ!

"इसी तरह अपरिपूर्ण विमुक्तिस्कन्ध की पूर्णता के लिये ही...पूर्ववत्...गौरव प्रदान करूँ!

"इसी तरह अपरिपूर्ण विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध की पूर्णता के लिये ही...पूर्ववत्...गौरव प्रदान करूँ!

"तो क्यों न मैंने स्वयं जिस धर्म का साक्षात्कार किया है, उसे ही अपने से श्रेष्ठ

अथ खो ब्रह्मा सहम्पति भगवतो चेतसा चतोपरिवितक्कमञ्ञाय— सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य एवमेव—ब्रह्मलोके अन्तरहितो भगवतो पुरतो पातुरहोसि। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं [R.140] एतदवोच—"एवमेतं, भगवा, एवमेतं, सुगत! ये पि, भन्ते, अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा ते पि भगवन्तो धम्मञ्ञेव सक्कत्वा गरुं कत्वा [B.142] उपनिस्साय विहरिंसु; ये पि, भन्ते, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा ते पि भगवन्तो धम्मञ्ञेव सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरिस्सन्ति। भगवा पि, भन्ते, एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मञ्ञेव सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरतू" ति।

४. इदमवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा अथापरं एतदवोच—

"ये च अतीता सम्बुद्धा, ये च बुद्धा अनागता। [N.141]
यो चेतरहि सम्बुद्धो, बहुन्नं सोकनासनो॥
"सब्बे सद्धम्मगरुनो, विहंसु विहरन्ति च ।
तथा पि विहरिस्सन्ति, एसा बुद्धान धम्मता॥

मानते हुआ उसका सत्कार कर उसको गौरव एवं श्रद्धा प्रदान कर उसके सहारे से साधना में लगा रहूँ!"

तब ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् के इस चित्तविचार को स्वचित्त से जानकर, जैसे बलवान् पुरुष फैली बाहु को...पूर्ववत्...भगवान् के सम्मुख प्रकट हुए तथा...यों बोले— "यही उचित है, भगवन्! यही उचित है सुगत! पूर्वकाल में भी जो ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध हुए हैं, उन्होंने स्वयं साक्षात्कृत धर्म को ही अपने से श्रेष्ठ मान कर उसी को सत्कार एवं गौरव प्रदान किया था, तथा उसी का आलम्बन कर साधना में रत रहे थे। इसी तरह भविष्य में भी जो ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध होंगे...पूर्ववत्...में रत रहेंगे। इसी तरह वर्तमान में आप भी, भन्ते! ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध होकर स्वसाक्षात्कृत धर्म को ही सत्कार तथा गौरव प्रदान करते हुए, उसी का आलम्बन कर, साधना में तत्पर रहें।"

४. ब्रह्मा सहम्पति ने यों कहा। यह कह कर अपने इसी हृद्गत भाव को गाथाओं के माध्यम से भी इस तरह प्रकट किया—

"पूर्वकाल में जो ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध हुए हैं, भविष्य में जो सम्यक्सम्बुद्ध होंगे, या वर्तमान में आप सम्यक्सम्बुद्ध हैं, जो बहुत से जिज्ञासुओं के शोकविनाशक हैं॥

"तस्मा हि अत्तकामेन, महत्तमभिकङ्खता।
सद्धम्मो गरु कातब्बो, सरं बुद्धान सासनं" ति॥ •

३. ब्रह्मदेवसुत्तं

५. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरिस्सा ब्राह्मणिया ब्रह्मदेवो नाम पुत्तो भगवतो सन्तिके अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति।

अथ खो आयस्मा ब्रह्मदेवो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। "खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया" ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा ब्रह्मदेवो अरहतं अहोसि।

[R.141]अथ खो आयस्मा ब्रह्मदेवो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं सपदानं पिण्डाय चरमानो येन सकमातुनिवेसनं [B.143] तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन आयस्मतो ब्रह्मदेवस्स माता ब्राह्मणी

"सभी ने स्वसाक्षात्कृत धर्म को ही गौरव प्रदान कर उसी को आलम्बन मान कर धर्म साधना की है, तथा आगे भी करेंगे। यह बुद्धों की धर्मता (प्रकृतिगत) स्वभाव है॥

"अत: आत्मज्ञानाभिलाषुक को, साधना में महत्त्वप्राप्ति की इच्छा से बुद्धों के उपदेश का स्मरण करते हुए सद्धर्म को ही गौरव प्रदान करना चाहिये"॥ •

३. ब्रह्मदेवसूत्र : : ब्रह्मा को आहुति नहीं मिलती

५. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती के** जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय किसी ब्राह्मणी का ब्रह्मदेव नाम का पुत्र भगवान् के पास आकर घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो गया।

तब आयुष्मान् ब्रह्मदेव ने एकाकी रह कर एकान्त में अप्रमत्त (सावधान) होकर, उद्योग करते हुए, संयतेन्द्रिय होकर साधना करते हुए उस अद्वितीय परम फल को देखते ही देखते स्वयं साक्षात् कर लिया, जिसके लिये अनेक कुलपुत्र सम्यक् प्रकार से गृहत्याग कर प्रव्रजित हुआ करते हैं। उसने—'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो गयी, मैं कृतकृत्य हो चुका, अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया' यह जान लिया। अन्त में ये आयुष्मान् ब्रह्मदेव अर्हतों में एक हो गये।

तब कभी आयुष्मान् ब्रह्मदेव प्रात:काल अपने वस्त्रों को शरीर पर सुव्यवस्थित कर पात्र चीवर लेकर श्रावस्ती में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। यों, वे श्रावस्ती में सभी घरों में भिक्षा

ब्रह्मुनो आहुतिं निच्चं पग्गण्हाति। अथ खो ब्रह्मुनो सहम्पतिस्स एतदहोसि—"अयं खो आयस्मतो ब्रह्मदेवस्स माता ब्राह्मणी ब्रह्मुनो आहुतिं निच्चं पग्गण्हाति; यन्नूनाहं तं उपसङ्कमित्वा संवेजेय्यं" ति। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य एवमेव— ब्रह्मलोके अन्तरहितो आयस्मतो ब्रह्मदेवस्स मातु निवेसने पातुरहोसि। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति वेहासं ठितो आयस्मतो ब्रह्मदेवस्स मातरं ब्राह्मणिं गाथाय अज्झभासि—

"दूरं इतो ब्राह्मणि ब्रह्मलोको, यस्साहुतिं पग्गण्हासि निच्चं। [B.141]
नेतादिसो ब्राह्मणि ब्रह्मभक्खो, किं जप्पसि ब्रह्मपथं अजानं॥
"एसो हि ते ब्राह्मणि ब्रह्मदेवो, निपधिको अतिदेवपत्तो।
अकिञ्चनो भिक्खु अनञ्ञपोसी, यो ते सो पिण्डाय घरं पविट्ठो॥
"आहुनेय्यो वेदगु भावितत्तो, नरानं देवानं च दक्खिणेय्यो।
बाहित्वा पापानि अनूपलित्तो, घासेसनं इरियति सीतिभूतो॥

करते हुए अपनी माता के घर पहुँचे। उस समय, उस ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी ब्रह्मा को आहुति दे रही थी।

उस समय सहम्पति ब्रह्मा के मन में यह विचार उद्भूत हुआ—"यह आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी ब्रह्मा को आहुति दे रही है, तो क्यों न मैं वहाँ चलकर इसके मन में इस कार्य के प्रति संवेग (वैराग्य) उत्पन्न कर दूँ।"

तब सहम्पति ब्रह्मा, जैसे कोई बलवान् पुरुष...पूर्ववत्...ब्रह्मदेव की माता के घर में प्रकट हुए। वहाँ वह ब्रह्मा सहम्पति, आकाश में ही खड़ा रहता हुआ उस ब्राह्मणी से, इन गाथाओं के माध्यम से, यों बोला—

"हे ब्राह्मणि! यहाँ से ब्रह्मलोक बहुत दूर है, जिसके लिये तुम प्रतिदिन आहुति दे रही हो। हे ब्राह्मणी! ब्रह्मा का तो यह भोज्य भी नहीं है, फिर तूँ ब्रह्ममार्ग को विना जाने क्यों भटक रही है!"

"हे ब्रह्मणि! यह तुम्हारा पुत्र ब्रह्मदेव, जो उपाधियों (चित्तविकारों) से मुक्त हो चुका है, आज देवताओं से भी आध्यात्मिक शक्ति में अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है, संसार में ममत्व त्यागकर अपनी जीवनयात्रा में सब किसी की आशा त्याग चुका है, तुम्हारे द्वार पर भिक्षा हेतु खड़ा है॥"

"यह सत्कार के योग्य है, दुःखमुक्त है, संयतेन्द्रिय है, मनुष्यों और देवताओं का पूजनीय है, पापों को दूर कर संसार से निर्लिप्त शान्त हो कर भिक्षारत में लगा है॥

"न तस्स पच्छा न पुरत्थमत्थि, सन्तो विधूमो अनिघो निरासो।
निक्खित्तदण्डो तसथावरेसु, सो त्याहुतिं भुञ्जतु अग्गपिण्डं॥
"विसेनिभूतो उपसन्तचित्तो, नागो व दन्तो चरति अनेजो।
भिक्खु सुसीलो सुविमुत्तचित्तो, सो त्याहुतिं भुञ्जतु अग्गपिण्डं॥
[B.144] "तस्मिं पसन्ना अविकम्पमाना, पतिट्ठपेहि दक्खिणं दक्खिणेय्ये।
[R.142] करोहि पुञ्ञं सुखमायतिकं, दिस्वा मुनिं ब्राह्मणि ओघतिण्णं" ति॥
तस्मिं पसन्ना अविकम्पमाना, पतिट्ठपेसि दक्खिणं दक्खिणेय्ये।
[N.143] अकासि पुञ्ञं सुखमायतिकं, दिस्वा मुनिं ब्राह्मणी ओघतिण्णं ति॥ ●

४. बकब्रह्मसुत्तं

६. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन बकस्स ब्रह्मुनो एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति—"इदं निच्चं, इदं धुवं, इदं सस्सतं, इदं केवलं, इदं अचवनधम्मं, इदं हि

"न इसके कोई आगे है न पीछे है, वह शान्त है, इसके इन्द्रियविकारों का उपशमन हो चुका है, यह उत्पातरहित है, यह सांसारिक इच्छाओं से दूर हो चुका है, इसने सभी चल अचल प्राणियों के प्रति शस्त्र एवं दण्ड का त्याग कर दिया है। वह तेरी इस आहुति को भिक्षा के रूप में ग्रहण करने का अधिकारी है॥

"वह क्लेश की सेनाओं से परित्यक्त (विसेनिभूतो), शान्तचित्त, शिक्षित हस्ती की तरह गम्भीरता से चलने वाला, भिक्षुगुणसम्पन्न, सुविमुक्तचित्त एवं सुशील है वह तुम्हारी इस आहुति का अधिकारी बने॥

"उसी दक्षिणापात्र के प्रति स्थायी श्रद्धा से दक्षिणा का दान कर भावी पुण्य का संग्रह कर ले॥

"हे ब्रह्मणि! संसारधारा पार किये हुए मुनि के समान इस दक्षिणापात्र के प्रति स्थायी श्रद्धा से दक्षिणा दान कर भावी पुण्यसंग्रह कर ले"॥

तब उस सहम्पति ब्रह्मा के कथन से प्रभावित होकर उस ब्राह्मणी ने दक्षिणापात्र तथा संसारसागर से पार हुए उस मुनि ब्रह्मदेव के दर्शन कर उसको दक्षिणा का दान किया। जिसके फलस्वरूप उसने भावी पुण्यफल प्राप्त किया"॥ ●

४. वकब्रह्मसूत्र : : वकब्रह्मा का मानमर्दन

६. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् **श्रावस्ती के** जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय वकब्रह्मा को ऐसी पापदृष्टि उत्पन्न हुई—"यह नित्य है, ध्रुव है,

न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, इतो च पनञ्ञं उत्तरिं निस्सरणं नत्थी'' ति।

अथ खो भगवा बकस्स ब्रह्मुनो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य एवमेव—जेतवने अन्तरहितो तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहोसि। अद्दसा खो बको ब्रह्मा भगवन्तं दूरतो'व आगच्छन्तं। दिस्वान भगवन्तं एतदवोच—''एहि खो, मारिस, स्वागतं ते, मारिस! चिरस्सं खो मारिस! इमं परियायमकासि यदिदं इधागमनाय। इदं हि, मारिस, निच्चं, इदं धुवं, इदं सस्सतं, इदं केवलं अचवनधम्मं, इदं हि न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति। इतो च पनञ्ञं उत्तरिं निस्सरणं नत्थी'' ति।

एवं वुत्ते, भगवा बकं ब्रह्मानं एतदवोच—''अविज्जागतो वत, भो, बको ब्रह्मा; अविज्जागतो वत, भो, बको ब्रह्मा। यत्र हि नाम अनिच्चं येव समानं [B.145, R.143] निच्चं ति वक्खति, अधुवं येव समानं धुवं ति वक्खति, असस्सतं येव समानं सस्सतं ति वक्खति, अकेवलं येव समानं केवलं ति वक्खति, चवनधम्मं येव समानं अचवनधम्मं ति वक्खति। यत्थ च पन जायति च जीयति च मीयति च चवति च उपपज्जति च तं च तथा वक्खति— 'इदं हि न जायति न मीयति न चवति न

शाश्वत है, अखण्ड है, अच्युतस्वभाव है। यह न यहाँ से च्युत होकर अन्यत्र जन्मता है, न जीर्ण होता है, न मरता है, न इससे बढ़कर कोई दूसरा मुक्तिस्थल ही है।''

तब भगवान् ने स्वँचित्त से वकब्रह्मा के अयुक्त चिन्तन को जान कर जैसे कोई बलवान् पुरुष...पूर्ववत्....जेतवन से अन्तर्हित होकर वे उस ब्रह्मलोक में जाकर प्रकट हुए। उस समय वकब्रह्मा ने भगवान् को दूर से ही देख लिया। तब वह भगवान् से यों बोला—''आइये, मार्ष! आपका स्वागत है! मार्ष! बहुत समय बाद आपने इधर पधारने का समय निकाला। मार्ष! यह नित्य है, ध्रुव है,...पूर्ववत्...कोई दूसरा मुक्तिस्थल नहीं है।''

उस वक ब्रह्मा के ऐसा कहने पर भगवान् ने उससे यह कहा—''अरे तुम वकब्रह्मा! अविद्या के वश में हो गये हो! यह बहुत चिन्ता की बात है।

''तुम अनित्य को 'नित्य' कह रहे हो; अध्रुव को 'ध्रुव' कह रहे हो; अशाश्वत को 'शाश्वत' कह रहे हो; अकेवल को 'केवल' कह रहे हो; च्यवनस्वभाव वाले को 'अच्युत' कह रहे हो; जहाँ लोग जन्मते हैं, जीर्ण भी होते है, मरते भी हैं, उत्पन्न भी होते

उपपज्जति'। सन्तं च पनञ्ञं उत्तरिं निस्सरणं, 'नत्थञ्ञं उत्तरिं निस्सरणं' ति वक्खती'' ति।

''द्वासत्तति गोतम पुञ्ञकम्मा, वसवत्तिनो जातिजरं अतीता।
[N.144] अयमन्तिमा वेदगू ब्रह्मुपपत्ति, अस्माभिजप्पन्ति जना अनेका'' ति॥
''अप्पं हि एतं न हि दीघमायु, यं त्वं बक मञ्ञसि दीघमायुं।
सतं सहस्सानं निरब्बुदानं, आयुं पजानामि तवाहं ब्रह्मे ति॥
''अनन्तदस्सी भगवाहमस्मि, जातिजरं सोकमुपातिवत्तो।
किं मे पुराणं वतसीलवत्तं, आचिक्ख मे तं यमहं विजञ्ञा'' ति॥
''यं त्वं अपायेसि बहू मनुस्से, पिपासिते घम्मनि सम्परेते।
तं ते पुराणं वतसीलवत्तं, सुत्तप्पबुद्धो व अनुस्सरामि॥
''यं एणिकूलस्मिं जनं गहीतं, अमोचयी गय्हकं नीयमानं।
तं ते पुराणं वतसीलवत्तं, सुत्तप्पबुद्धो व अनुस्सरामि॥
[B.146] ''गङ्गाय सोतस्मिं गहीतनावं, लुद्देन नागेन मनुस्सकम्या।
पमोचयित्थ बलसा पसय्ह, तं ते पुराणं वतसीवत्तं, सुत्तप्पबुद्धो व अनुस्सरामि॥

है उसको तुम कह रहे हो—'यहाँ कोई न जन्मता है...न उत्पन्न होता है'; तथा अन्य मुक्तिस्थल के रहते हुए भी कह रहे हो—'इससे बढ़कर कोई मुक्तिस्थल नहीं है'।''

(वकब्रह्मा—) ''हे गौतम! हम बहत्तर (७२) ब्रह्मा अपने पुण्य कर्मों से वशवर्ती हैं तथा जाति तथा जरा से मुक्ति पा चुके हैं। 'ब्रह्मलोक में उत्पन्न होना ही अन्तिम मुक्ति है— यही वेद में कहा गया है। हमें ही लोग अनेक (ईश्वर, कर्त्ता, निर्माता आदि) नामों से पुकारते हैं''॥

(भगवान्—) ''यह आयु भी अल्प ही है बहुत लम्बी भी नहीं ; जैसा कि तुम समझ रहे हो। हे ब्रह्मा! मैं तुम्हारी सैंकड़ों, हजारों तथा करोड़ों वर्षों की आयु जानता हूँ। मैं अनन्तद्रष्टा भगवान् हूँ। जाति जरा एवं शोक को अतिक्रान्त कर चुका हूँ''॥

(वकब्रह्मा—) ''भगवान्! मेरा सर्वप्रथम शीलव्रत क्या था, कृपया आप बताइये तो मुझे भी समझ में आवे?''॥

(भगवान्—) ''जो तुम ने घाम में प्यासे बहुत से मनुष्यों को जल पिलाया था— वही पहला (सर्वप्रथम) तुम्हारा शीलव्रत था। सोकर जागे हुए की तरह वह मुझे स्मरण है॥ (१)

''जो गङ्गा के तट पर बाढ में फँसे प्राणियों को तुमने बचाया था— यह भी तुम्हारा एक पूर्व जन्म का शीलव्रत था। यह भी सोकर जागे हुए की तरह मुझे स्मरण है॥ (२)

"कप्पो च ते बद्धचरो अहोसिं, सम्बुद्धिमन्तं वतिनं अमञ्ञि। [R.144]
तं ते पुराणं वतसीलवत्तं, सुत्तप्पबुद्धो व अनुस्सरामी" ति ॥
"अद्धा पजानासि ममेतमायुं, अञ्ञे पि जानासि तथा हि बुद्धो। [N.145]
तथा हि त्यायं जलितानुभावो, ओभासयं तिट्ठति ब्रह्मलोकं" ति ॥ •

५. अञ्ञतरब्रह्मसुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स ब्रह्मुनो एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति—"नत्थि सो समणो वा ब्राह्मणो वा यो इध आगच्छेय्या" ति। अथ खो भगवा तस्स ब्रह्मुनो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय—सेय्यथापि बलवा पुरिसो...पे०...तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहोसि। अथ खो भगवा तस्स ब्रह्मुनो उपरि वेहासं पल्लङ्केन निसीदि तेजोधातुं समापज्जित्वा।

अथ खो आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स एतदहोसि—"कहं नु खो भगवा एतरहि विहरती" ति? अद्दसा खो आयस्मा महामोग्गल्लानो भगवन्तं दिब्बेन चक्खुना

"मनुष्य के लोभ में एक नागराज द्वारा खींच ले जाती नौका को तुमने बल लगा कर छुड़ा लिया था—यह भी तुम्हारा पूर्वजन्म का एक शील व्रत था। यह भी मुझे सोकर जगे हुए के समान भली भाँति स्मरण है ॥" (३)

"मैं तुम्हारा कल्प नामक अनुगामी शिष्य था, तुमने मुझ को बुद्धिमान् समझा था—यह भी तुम्हारा एक पूर्वजन्म का शीलव्रत था। यह भी मुझको सोकर जागे हुए की तरह भली भाँति स्मरण है"॥ (४)

(वकब्रह्मा—) "अरे! जैसे भगवान् बुद्ध मेरे इतने जन्मों को जानते हैं। वैसे ही ये मेरे विषय में अन्य घटनाओं को भी जानते होंगे। इन का यह देदीप्यमान ज्ञान का प्रकाश समस्त ब्रह्मलोक को आलोकित कर रहा है॥" •

५. अन्यतरब्रह्मसूत्र : : ब्रह्मा की मिथ्यादृष्टि का नाश

७. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय किसी ब्रह्मा को यह पापदृष्टि उत्पन्न हुई—"ऐसा कोई श्रमण या ब्राह्मण (भूलोक में) नहीं है जो इस ब्रह्मलोक में (अपने तपोबल के प्रभाव से) आ सके"। तब भगवान् ने उस ब्रह्मा के इस मानसिक वितर्क को अपने मन से जान कर, जैसे बलवान् पुरुष...पूर्ववत्...ब्रह्मलोक में प्रकट हुए। तब भगवान् स्वकीय तेज:प्रताप से उस ब्रह्मा के सिंहासन पर आकाश में पद्मासन लगाकर विराजमान हुए।

उसी समय आयुष्मान महामौद्गल्यायन के मन में यह विचार हुआ इस समय भगवान् कहाँ विराजमान होंगे!" तब उन्होंने आवर्जन (ध्यान भावना) द्वारा देखा कि

विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन तस्स ब्रह्मुनो उपरि वेहासं पल्लङ्केन निसिन्नं तेजोधातुं समापन्नं। दिस्वान—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, [B.147] पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य एवमेव—जेतवने अन्तरहितो तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहोसि। अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो पुरत्थिमं दिसं निस्साय तस्स ब्रह्मुनो उपरि वेहासं पल्लङ्केन निसीदि तेजोधातुं समापज्जित्वा नीचतरं भगवतो।

अथ खो आयस्मतो महाकस्सपस्स एतदहोसि—"कहं नु खो भगवा एतरहि विहरती" ति? अद्दसा खो आयस्मा महामोग्गल्लानो भगवन्तं दिब्बेन चक्खुना ...पे०...दिस्वान—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो...पे०...एवमेव—जेतवने अन्तरहितो तस्मिं [R.145] ब्रह्मलोके पातुरहोसि। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो दक्खिणं दिसं निस्साय तस्स ब्रह्मुनो उपरि वेहासं पल्लङ्केन निसीदि तेजोधातुं समापज्जित्वा नीचतरं भगवतो।

अथ खो आयस्मतो महाकप्पिनस्स एतदहोसि—"कहं नु खो भगवा एतरहि विहरती" ति? अद्दसा खो आयस्मा महाकप्पिनो भगवन्तं दिब्बेन चक्खुना...पे०... तेजोधातुं समापन्नं। दिस्वान—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो...पे०...एवमेव—जेतवने [N.146] अन्तरहितो तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहोसि। अथ खो आयस्मा महाकप्पिनो पच्छिमं दिसं निस्साय तस्स ब्रह्मुनो उपरि वेहासं पल्लङ्केन निसीदि तेजोधातुं समापज्जित्वा नीचतरं भगवतो।

अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो तं ब्रह्मानं गाथाय अज्झभासि—

"अज्जा पि ते आवुसो सा दिट्ठि, या ते दिट्ठि पुरे अहु।
पस्ससि वीतिवत्तन्तं, ब्रह्मलोके पभस्सरं" ति॥

भगवान् तो ब्रह्मलोक में किसी ब्रह्मा के सिंहासन पर स्वकीय तेज:प्रताप के प्रभाव से पद्मासन (पालथी) लगा कर विराजमान हैं।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भी स्वकीय तेज:प्रभाव से वहाँ जाकर भगवान् से कुछ पूर्व की तरफ आसन लगाकर बैठ गये। उसी समय आयुष्मान् महाकाश्यप को मन में...पूर्ववत्... दक्षिण की तरफ आसन लगाकर बैठ गये। उसी समय आयुष्मान् महाकप्पिन को मन में...पूर्ववत् पश्चिम की ओर आसन लगाकर बैठ गये। तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन इस गाथा के माध्यम से यों बोले—

"आयुष्मन्! क्या आज भी तुम्हारी वही धारणा है जो पहले थी ? क्या सबसे अधिक उत्कृष्ट इस दिव्य लोक में इस महान् तेज:पुञ्ज को नहीं देख पा रहे हो।"

"न मे मारिस सा दिट्ठि, या मे दिट्ठि पुरे अहु।
पस्सामि वीतिवत्तन्तं, ब्रह्मलोके पभस्सरं॥
स्वाहं अज्ज कथं वज्जं, अहं निच्चोम्हि सस्सतो" ति॥

अथ खो भगवा तं ब्रह्मानं संवेजेत्वा—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो [B.148] सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य एवमेव—तस्मिं ब्रह्मलोके अन्तरहितो जेतवने पातुरहोसि।

अथ खो सो ब्रह्मा अञ्ञतरं ब्रह्मपारिसज्जं आमन्तेसि—"एहि त्वं, मारिस, येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एवं वदेहि—'अत्थि नु खो, मारिस मोग्गल्लान, अञ्ञे पि तस्स भगवतो सावका एवंमहिद्धिका एवंमहानुभावा; सेय्यथापि भवं मोग्गल्लानो कस्सपो कप्पिनो [R.146] अनुरुद्धो''' ति? "एवं, मारिसा" ति खो सो ब्रह्मपारिसज्जो तस्स ब्रह्मुनो पटिस्सुत्वा येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपससङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एतदवोच—"अत्थि नु खो, मारिस मोग्गल्लान, अञ्ञे पि तस्स भगवतो [N.147] सावका एवंमहिद्धिका एवंमहानुभावा; सेय्यथापि भवं मोग्गल्लानो कस्सपो कप्पिनो अनुरुद्धो" ति? अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो तं ब्रह्मपारिसज्जं गाथाय अज्झभासि—

"तेविज्जा इद्धिपत्ता च, चेतोपरियायकोविदा।
खीणासवा अरहन्तो, बहू बुद्धस्स सावका" ति॥

(ब्रह्मा—) "मार्ष! आज मेरी वह धारणा नहीं रह गयी है जो पहले थीं; क्योकि मैं अब अपने इस दिव्य लोक में महान् तेज:पुञ्ज को देख रहा हूँ। तो भला, अब मै कैसे कह सकता हूँ कि मैं नित्य एवं शाश्वत हूँ॥"

तब भगवान् उस ब्रह्मा को संवेगयुक्त धर्मोपदेश कर बलवान् पुरुष की तरह...ब्रह्मलोक में अन्तर्हित होकर जेतवन में आ विराजे।

एतदनन्तर, वह ब्रह्मा अपनी ब्रह्मपरिषद् के किसी सदस्य को बुलाकर आदेश देने लगा—"मार्ष! तुम वहाँ जाओ, जहाँ आयुष्मान् महामोग्गल्लान विराजमान हैं, और वहाँ जाकर उनसे पूछो—"क्या आप के समान अन्य बुद्धशिष्य भी ऐसे ही ऋद्धिमान् है; जैसे आप मोग्गल्लान, ये काश्यप तथा कप्पिन एवं अनुरुद्ध ?"' "अच्छा श्रीमन्!" कहकर वह ब्रह्मपार्षद आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के पास गया, तथा उससे ब्रह्मा द्वारा कहा गया प्रश्न पूछा। तब उस पार्षद को उन्होंने गाथा के माध्यम से यह कहा—

अथ खो सो ब्रह्मपारिसज्जो आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा येन सो ब्रह्मा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं ब्रह्मानं एतदवोच— "आयस्मा मारिस, महामोग्गल्लानो एवमाह—

'तेविज्जा इद्धिपत्ता च, चेतोपरियायकोविदा।
खीणासवा अरहन्तो, बहू बुद्धस्स सावका''' ति॥

८. इदमवोच सो ब्रह्मपारिसज्जो। अत्तमनो च सो ब्रह्मा तस्स ब्रह्मपारिसज्जस्स भासितं अभिनन्दी ति॥

६. ब्रह्मलोकसुत्तं

[B.149] ९. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन भगवा दिवाविहारगतो होति पटिसल्लीनो। अथ खो सुब्रह्मा च पच्चेकब्रह्मा सुद्धावासो च पच्चेकब्रह्मा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पच्चेकं द्वारबाहं उपनिस्साय अट्ठंसु। अथ खो सुब्रह्मा [R.147] पच्चेकब्रह्मा सुद्धावासं पच्चेकब्रह्मानं एतदवोच—"अकालो खो ताव, मारिस, भगवन्तं पयिरुपासितुं; दिवाविहारगतो भगवा पटिसल्लीनो च। असुको च ब्रह्मलोको इद्धो चेव फीतो च ब्रह्मा च तत्र पमादविहारं विहरति। आयाम, मारिस,

---

"भगवान् बुद्ध के ऐसे असङ्ख्य शिष्य हैं जो तीनों विद्याओं को जानने वाले, ऋद्धिसम्पन्न, परचित्त के ज्ञाता, आश्रवक्षीण एवं अर्हत् हैं"॥

तब उस पार्षद ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन का यही उत्तर ब्रह्मा को जाकर सुना दिया—

"भगवान् बुद्ध के ऐसे बहुत से शिष्य हैं...पूर्ववत्...एवं अर्हत् हैं"॥

८. सन्तुष्ट होकर उस ब्रह्मा ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के कथन का अभिनन्दन एवं अनुमोदन किया॥

६. ब्रह्मलोकसूत्र : : ब्रह्मा को संविग्न करना

९. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय भगवान् दिन में साधना करते हुए ध्यानमग्न होकर विराजमान थे।

उसी समय सुब्रह्मा एवं शुद्धावास—ये दो प्रत्येकब्रह्मा जहाँ भगवान् साधनामग्न थे वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर ये दोनों द्वार के स्तम्भ के सहारे खड़े हो गये। तब सुब्रह्मा ने शुद्धावास प्रत्येकब्रह्मा को यों कहा—"मार्ष! भगवान् के दर्शन करने का यह सुअवसर नहीं है, क्योंकि भगवान् इस समय ध्याननिष्ठ हैं। हाँ, अमुक ब्रह्मलोक बहुत ऋद्धिसम्पन्न एवं स्फीत (वैभवशाली) सुना जा रहा है। किन्तु वहाँ का ब्रह्मा (शास्त्रविधि के विपरीत)

येन सो ब्रह्मलोको तेनुपसङ्कमिस्साम; उपसङ्कमित्वा तं ब्रह्मानं संवेजेय्यामा'' ति। ''एवं, मारिसा'' ति खो सुद्धावासा पच्चेकब्रह्मा सुब्रह्मुनो पच्चेकब्रह्मुनो पच्चस्सोसि।

अथ खो सुब्रह्मा च पच्चेकब्रह्मा सुद्धावासो च पच्चेकब्रह्मा सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो...पे०...एवमेव—भगवतो पुरतो अन्तरहिता तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहेसुं। अद्दसा खो सो ब्रह्मा ते ब्रह्मानो दूरतो व आगच्छन्ते। दिस्वान ते ब्रह्मानो एतदवोच— ''हन्द कुतो नु तुम्हे, मारिसा, आगच्छथा'' ति? ''आगता खो मयं, मारिस, अम्ह तस्स भगवतो सन्तिका अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। गच्छेय्यासि पन त्वं, [N.148] मारिस, तस्स भगवतो उपट्ठानं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा'' ति?

एवं वुत्ते, खो सो ब्रह्मा तं वचनं अनधिवासेन्तो सहस्सक्खत्तुं अत्तानं अभिनिम्मिनित्वा सुब्रह्मानं पच्चेकब्रह्मानं एतदवोच—''पस्ससि मे नो त्वं, मारिस, एवरूपं इद्धानुभावं'' ति?

''पस्सामि खो त्याहं, मारिस, एवरूपं इद्धानुभावं'' ति।

''सो ख्वाहं, मारिस, एवंमहिद्धिको एवंमहानुभावो कस्स अञ्ञस्स समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा उपट्ठानं गमिस्सामी'' ति?

अथ खो सुब्रह्मा पच्चेकब्रह्मा द्विसहस्सक्खत्तुं अत्तानं अभिनिम्मिनित्वा तं ब्रह्मानं एतदवोच—''पस्ससि मे नो त्वं, मारिस, एवरूपं इद्धानुभाव'' ति?

प्रमादविहार (मिथ्यासाधना) में लगा रहता है। मार्ष! तो आओ, उस ब्रह्मलोक में चलकर उस ब्रह्मा से संलाप करें।'' ''ठीक है, जैसा तुम कह रहे हो वही किया जाय।'' यह कह कर शुद्धावास प्रत्येकब्रह्मा ने सुब्रह्मा प्रत्येकब्रह्मा को उत्तर दिया।

तब वे दोनों प्रत्येकब्रह्मा...भगवान् के साधनास्थल में अन्तर्हित होकर उस ब्रह्मलोक में प्रकट हुए। वहाँ के ब्रह्मा ने उन दोनों प्रत्येकब्रह्माओं को दूर से आते हुए ही देख लिया। देखकर वह उनसे यों बोला—''मार्ष! आप लोग कहाँ से आ रहे हैं?'' ''हम तो इस समय भगवान् बुद्ध के पास से आ रहे हैं। मार्ष! क्या आप भी उन भगवान् के दर्शन करने हेतु जाना चाहेंगे?''

ऐसा कहे जाने पर उस ब्रह्मा ने उन प्रत्येकब्रह्माओं के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए अपने ऋद्धिप्रभाव से अपने समान हजार रूप बनाते हुए सुब्रह्मा प्रत्येकब्रह्मा को यह पूछा—''मार्ष! देख रहे हो मेरा ऋद्धिप्रभाव?''

''हाँ, मार्ष! मैं देख तो रहा हूँ।''

''तो तुम्ही बताओ, मार्ष! ऐसे ऋद्धिप्रभाव के रहते मैं किसी अन्य श्रमण या ब्राह्मण के पास क्यों जाऊँ?''

"पस्सामि खो त्याहं, मारिस, एवरूपं इद्धानुभाव" ति।

"तया च खो, मारिस, मया च स्वेव भगवा महिद्धिकतरो चेव महानुभावतरो च। गच्छेय्यासि त्वं, मारिस, तस्स भगवतो उपट्ठानं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा" ति? अथ खो सो ब्रह्मा सुब्रह्मानं पच्चेकब्रह्मानं गाथाय अज्झभासि—

[B.150] "तयो सुपण्णा चतुरो च हंसा, ब्यग्घीनिसा पञ्चसता च झायिनो।
[R.148] तयिदं विमानं जलते च ब्रह्मे, ओभासयं उत्तरस्सं दिसायं" ति॥

"किञ्चा पि ते तं जलते विमानं, ओभासयं उत्तरस्सं दिसायं।
रूपे रणं दिस्वा सदा पवेधितं, तस्मा न रूपे रमती सुमेधो" ति॥

अथ खो सुब्रह्मा च पच्चेकब्रह्मा सुद्धावासो च पच्चेकब्रह्मा तं ब्रह्मानं संवेजेत्वा तत्थेवन्तरधायिंसु। अगमासि च खो सो ब्रह्मा अपरेन समयेन भगवतो उपट्ठानं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा ति॥ •

७. कोकालिकसुत्तं

१०. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन भगवा दिवाविहारगतो होति

तब सुब्रह्मा प्रत्येकब्रह्मा ने अपने विशिष्ट ऋद्धिप्रभाव से अपने ही समान दो हजार आकृतियाँ बना कर उस ब्रह्मा से पूछा—"मार्ष! क्या आप मेरा यह ऋद्धिप्रभाव देख रहे हैं?"

"हाँ! देख रहा हूँ।"

आप के ऋद्ध्यनुभाव से भी उन भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध का ऋद्ध्यनुभाव विशेष उत्कृष्ट है। क्या आप उनके दर्शन करने हेतु उनके आश्रम पर जायँगें?"

तब उस ब्रह्मा ने अपना विशिष्ट विमान दिखा कर कहा—"तीन सौ गरुड़, चार सौ हंस एवं पाँच सौ बाघिनियों से युक्त मुझ ध्यानी का यह विमान, प्रदीप्त अग्नि के समान उत्तर दिशा में प्रकाशित हो रहा है!"

(सुब्रह्मा ने कहा—) "आपका यह विमान उत्तर दिशा को प्रभासित करता हुआ कैसा भी क्यों न प्रज्वलित होता रहे, रूप के सदैव विनश्वर स्वभाव को मानते हुए, इसी कारण, पण्डितजन रूप में आसक्त नहीं होते।"

तदनन्तर सुब्रह्मा एवं शुद्धावास—दोनों ही प्रत्येकब्रह्मा उस ब्रह्मा को संवेग (वैराग्य) दिलाकर वहीं अन्तर्धान हो गये। तथा वह ब्रह्मा भी किसी दूसरे समय भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के आश्रम में उनकी सेवाहेतु गया॥ •

७. कोकालिक सूत्र : : कोकालिक भिक्षु के सम्बन्ध में

१०. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय भगवान् (बुद्ध) दिन की साधना

पटिसल्लीनो। अथ खो सुब्रह्मा च पच्चेकब्रह्मा सुद्धावासो च पच्चेकब्रह्मा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पच्चेकं द्वारबाहं निस्साय अट्ठंसु। अथ खो सुब्रह्मा पच्चेकब्रह्मा कोकालिकं भिक्खुं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"अप्पमेय्यं पमिनन्तो, कोध विद्वा विकप्पये।
अप्पमेय्यं पमायिनं, निवुतं तं मञ्ञे पुथुज्जनं" ति॥

८. कतमोदकतिस्ससुत्तं

११. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन भगवा दिवाविहारगतो होति पटिसल्लीनो। अथ खो सुब्रह्मा च पच्चेकब्रह्मा सुद्धावासो च पच्चेकब्रह्मा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पच्चेकं द्वारबाहं निस्साय अट्ठंसु। अथ खो सुद्धावासो पच्चेकब्रह्मा कतमोदकतिस्सकं भिक्खुं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"अप्पमेय्यं पमिनन्तो, कोध विद्वा विकप्पये। [B.151]
अप्पमेय्यं पमायिनं, निवुतं तं मञ्ञे अकिस्सवं" ति॥ [R.149]

९. तुदुब्रह्मसुत्तं

१२. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन कोकालिको भिक्खु आबाधिको होति दुक्खितो बाळ्हगिलानो। अथ खो तुदु पच्चेकब्रह्मा अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन कोकालिको भिक्खु

में विराजमान थे। तब सुब्रह्मा एवं शुद्धावास-दोनों प्रत्येकब्रह्मा भगवान् के पास आये। आकर द्वार के स्तम्भ के पास खड़े हो गये।

तब सुब्रह्मा प्रत्येकब्रह्मा ने कोकालिक भिक्षु को उद्देश्य कर यह गाथा कही—

"जिसके गाम्भीर्य का ज्ञान न हो उसके उस गाम्भीर्य का ज्ञान प्राप्त करने की कौन इच्छा करेगा। जिसका पार नहीं है उस का पार (प्रमाण) लगाने का प्रयास करने वाले को मैं पृथग्जन (मूर्ख) ही समझता हूँ॥"

८. कृतमोदकतिष्यसूत्र : : तिष्यक भिक्षु के सम्बन्ध में

११. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय भगवान् (बुद्ध) दिन की साधना में...। तब सुब्रह्मा एवं शुद्धावास...कृतमोदकतिष्य के ने यह गाथा कही—

"जिसके गाम्भीर्य का...पूर्ववत्...मूर्ख ही समझता हूँ॥"

९. तुदुब्रह्मासूत्र : : कोकालिक को सत्परामर्श

१२. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय कोकालिक भिक्षु किसी रोग से बहुत अधिक आक्रान्त था, दु:खी था। अत: तुदु प्रत्येकब्रह्मा उस चान्दनी रात्रि में समस्त जेतवन को आलोकित करता हुआ कोकालिक भिक्षु के पास आया, तथा यों बोला—

तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा वेहासं ठितो कोकालिकं भिक्खुं एदतवोच—"पसादेहि, कोकालिक, सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना" ति।

"कोसि त्वं, आवुसो" ति?

"अहं तुदु पच्चेकब्रह्मा" ति।

"ननु त्वं, आवुसो, भगवता अनागामी ब्याकतो, अथ किं चरहि इधागतो? पस्स, यावं च ते इदं अपरद्धं" ति।

[N.150] "पुरिसस्स हि जातस्स, कुठारी जायते मुखे।
याय छिन्दति अत्तानं, बालो दुब्भासितं भणं॥
"यो निन्दियं पसंसति, तं वा निन्दति यो पसंसियो।
विचिनाति मुखेन सो कलिं, कलिना तेन सुखं न विन्दति॥
"अप्पमत्तको अयं कलि, यो अक्खेसु धनपराजयो।
सब्बस्सा पि सहा पि अत्तना, अयमेव महन्ततरो कलि॥
"सतं सहस्सानं निरब्बुदानं, छत्तिंसति पञ्च च अब्बुदानि;
यमरियगरही निरयं उपेति, वाचं मनं च पणिधाय पापकं" ति॥ •

"कोकालिक! आयुष्मान् सारिपुत्र एवं मोग्गल्लायन के प्रति अपने मन में मैत्रीभाव लाओ। वे दोनों ही पेशल (सदाचरण-युक्त) हैं।"

"तुम कौन हो?"। "मैं तुदु ब्रह्मा हूँ।" "अरे! तुमको तो भगवान् ने 'अनागामी' बता रखा है, फिर तुम यहाँ (इस संसार में) क्यों आये? तुम्हारा यह कितना बड़ा अपराध है?"

"पुरुष के जन्म के साथ ही उसके मुख में एक कुठारी (कुल्हाड़ी) भी पैदा होती हैं, जिससे वह मूर्ख दुर्वचन बोल कर स्वयं को ही काटता रहता है॥

"जो निन्दनीय की प्रशंसा करता है, तथा प्रशंसनीय की निन्दा करता है, मुख से वह पाप का ही अर्जन करता है। उस पाप के कारण उसे कभी सुख नहीं मिलता॥

"किसी मनुष्य का यह दौर्भाग्य तो बहुत छोटा है कि वह जूए में अपना सर्वस्व खो बैठे। हाँ उसका यह सबसे बड़ा दौर्भाग्य है यदि वह बुद्धों तथा बुद्धश्रावकों के प्रति अपना मन मैला करे॥

"वह आर्य पुरुष का निन्दक अपने वाणी और मन को पाप में लगाकर तो सौ, हजार, निरर्बुद, छत्तीस और पाँच अर्बुद वर्षों तक निरन्तर नरक में गिर कर पचता रहता है"॥ •

१०. अपरकोकालिकसुत्तं

१३. सावत्थिनिदानं। अथ खो कोकालिको भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच–"पापिच्छा, भन्ते, सारिपुत्त-[B.152] मोग्गल्लाना, पापिकानं इच्छानं वसं गता" ति। एवं वुत्ते, भगवा कोकालिकं [R.150] भिक्खुं एतदवोच–"मा हेवं, कोकालिक, अवच; मा हेवं, कोकालिक, अवच। पसादेहि, कोकालिक, सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना" ति। दुतियं पि खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच–"किञ्चा पि मे, भन्ते, भगवा सद्धायिको पच्चयिको; अथ खो पापिच्छा व, भन्ते, सारिपुत्तमोग्गल्लाना पापिकानं इच्छानं वसं गता" ति। दुतियं पि खो भगवा कोकालिकं भिक्खुं एतदवोच–"मा हेवं, कोकलिक, अवच; मा हेवं, कोकालिक, अवच। पसादेहि, कोकालिक, सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना" ति। ततियं पि खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच–"किञ्चा पि...पे०...इच्छानं वसं गता" ति। ततियं पि खो भगवा कोकालिकं भिक्खु एतदवोच–"मा हेवं...पे०...[N.151] पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना" ति।

अथ खो कोकालिको भिक्खु उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अचिरपक्कन्तस्स च कोकालिकस्स भिक्खुनो सासपमत्तीहि पीळकाहि

---

१०. अपरकोकालिकसूत्र : : कोकालिका का नरकपात

१३. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। तब कोकालिक भिक्षु भगवान् के सम्मुख पहँचा। पहुँचकर... भगवान् से यों बोला–"भन्ते! ये सारिपुत्र एवं मोग्गल्लान पापमय इच्छा वाले हैं, पापपूर्ण इच्छाओं के वश में है।" ऐसा सुनकर भगवान् ने उसको समझाया–"कोकालिक! ऐसा न कहो। उन दोनों पर श्रद्धा रख। वे दोनों तो अत्यधिक सदाचारी हैं।"

दूसरी बार भी कोकालिक भिक्षु भगवान् से यों बोला–"भन्ते, आप पर मेरी पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास है, परन्तु ये सारिपुत्र मोग्गल्लान तो पापकी इच्छा वाले...पूर्ववत्...अत्यधिक सदाचारी हैं।

तीसरी बार भी कोकालिक भिक्षु...गूर्ववत्...सदाचारी हैं॥

तब कोकालिक भिक्खु आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहाँ से चला गया। जाने के कुछ समय बाद कोकालिकभिक्षु के समस्त शरीर में सरसों जितने बड़े

सब्बो कायो फुटो अहोसि। सासपमत्तियो हुत्वा मुग्गमत्तियो अहेसुं, मुग्गमत्तियो हुत्वा कलायमत्तियो अहेसुं, कलायमत्तियो हुत्वा कोलट्ठिमत्तियो हुत्वा कोलमत्तियो अहेसुं, कोलमत्तियो हुत्वा आमलकमत्तियो अहेसुं, आमलकमत्तियो हुत्वा बेलुवसलाटुकमत्तियो अहेसुं, बेलुवसलाटुकमत्तियो हुत्वा बिल्लमत्तियो अहेसुं, [R.151] बिल्लमत्तियो हुत्वा पभिज्जिंसु। पुब्बं च लोहितं च पग्घरिंसु। अथ खो कोकालिको भिक्खु तेनेव आबाधेन कालमकासि। कालङ्कतो च कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपपज्जि सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा।

अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं [B.153] जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ब्रह्मा सहम्पति भगवन्तं एतदवोच—"कोकालिको, भन्ते, भिक्खु कालङ्कतो। कालङ्कतो च, भन्ते, कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपपन्नो सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा" ति। इदमवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी ति।

अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन भिक्खू आमन्तेसि—"इमं, भिक्खवे, रत्तिं ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो, भिक्खवे, ब्रह्मा सहम्पति मं एतदवोच—'कोकालिको, भन्ते, भिक्खु कालङ्कतो। कालङ्कतो च, भन्ते, कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपपन्नो

व्रण निकल आये। वे कुछ समय बाद बढ़कर मूँग तथा बेर जितने बड़े हो गये। फिर वे ही कलाय जितने बड़े हो गये। अन्त में वे व्रण आँवला एवं विल्वफल जितने बड़े होकर फूट गये। उनमें से असीम पूय एवं दुर्गन्धयुक्त रक्त निकला। और इसके बाद कोकालिक इसी रोग के परिपाक से मरणभाव को प्राप्त हो गया। यों वह मरणभाव प्राप्त कर आर्य सारिपुत्र एवं मोग्गाल्लान के प्रति द्वेष रखने के कारण नरक में जा गिरा।

तब ब्रह्मा सहम्पति उस चान्दनी रात्रि में...पूर्ववत्...भगवान् के पास आकर... यों बोले—"भन्ते! कोकालिक भिक्षु का देहपात हो गया है... सारिपुत्र मौद्गल्यायन के प्रति अपने मन में द्वेष रखने के कारण।" यह कह कर वह ब्रह्मा सहम्पति भगवान् को प्रणामकर वहीं अन्तर्धान हो गये।

तब भगवान् ने उस रात्रि के बीतने पर भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और यों बताया—"भिक्षुओ! विगत रात्रि में ब्रह्मा सहम्पति...मेरे पास आया... और यों बोला—

सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा' ति। इदमवोच, भिक्खवे, ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी'' ति।

एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''कीवदीघं नु खो, भन्ते, पदुमे निरये आयुप्पमाणं'' ति?

''दीघं खो, भिक्खु पदुमे निरये आयुप्पमाणं। तं न सुकरं सङ्खातुं—एत्तकानि वस्सानि इति वा, एत्तकानि वस्ससतानि इति वा, एत्तकानि वस्ससहस्सानि इति वा, एत्तकानि वस्ससतसहस्सानि इति वा'' ति। [N.152]

''सक्का पन, भन्ते, उपमं कातुं'' ति?

''सक्का, भिक्खू'' ति भगवा अवोच— [R.152]

''सेय्यथापि, भिक्खु, वीसतिखारिको कोसलको तिलवाहो। ततो पुरिसो वस्ससतस्स वस्ससतस्स अच्चयेन एकमेकं तिलं उद्धरेय्य; खिप्पतरं खो सो, भिक्खु, वीसतिखारिको कोसलको तिलवाहो इमिना उपक्कमेन परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य, न त्वेव एको अब्बुदो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति अब्बुदा निरया, एवमेको निरब्बुदनिरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति अब्बुदा निरया, एवमेको अबबो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति अबबा निरया, एवमेको अटटो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति अटटा निरया एवमेको अहहो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, [B.154] वीसति अहहा निरया, एवमेको कुमुदो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खवे, वीसति कुमुदा

'भन्ते! कोकालिक भिक्षु का देहपात हो गया है तथा वह 'पद्म' नामक नरक लोक में जा गिरा सारिपुत्र एवं मोग्गाल्लान के प्रति द्वेष रखने के कारण।' यों कह कर वह अन्तर्धान हो गया''॥

भगवान् के इतना कह कर चुप होने पर भिक्षु ने उनसे प्रश्न किया—''भन्ते! इस पद्म नरक में गिरने वाले की कितनी लम्बी आयु होती है? भगवान् ने बताया—''भिक्षुओ! पद्म नरक में गिरने वाले की आयु बहुत लम्बी होती है। उस आयु की गणना वर्षो में नहीं की जा सकती है।''

दश नरकों की आयु—''भन्ते! जैसे कोशल प्रदेश के माप से बीस खारी तिल का कोई भार हो। तब कोई पुरुष सौ वर्ष, हजार वर्ष एक एक तिल का दाना निकाल ले। भिक्षुओ! तो कोसल देश के माप से वह बीस खारी तिल का भार इस क्रम से शीघ्र ही घट कर समाप्त हो जायगा। इतने से एक **अर्बुद** नरक समाप्त नहीं होता। भिक्षु बीस अर्बुद का एक **निरर्बुद** नरक होता है। बीस निरर्बुद का एक **अबब** नरक होता है। बीस अबब का एक **अटट** तथा बीस अटट का एक **अहह** और बीस अहह का एक **कुमुद** हाता है। बीस

निरया, एवमेको सोगन्धिको निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति सोगन्धिका निरया, एवमेको उप्पलनिरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति उप्पला निरया, एवमेको पुण्डरीको निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति पुण्डरीका निरया, एवमेको पदुमो निरयो। पदुमे पन, भिक्खु, निरये कोकालिको भिक्खु उपपन्नो सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा'' ति।

१४. इदमवोच भगवा, इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

''पुरिसस्स हि जातस्स, कुठारी जायते मुखे।
याय छिन्दति अत्तानं, बालो दुब्भासितं भणं॥

[N.153] ''यो निन्दियं पसंसति, तं वा निन्दति यो पसंसियो।
विचिनाति मुखेन सो कलिं, कलिना तेन सुखं न विन्दति॥

''अप्पमत्तको अयं कलि, यो अक्खेसु धनपराजयो।
सब्बस्सा पि सहा पि अत्तना, यो सुगतेसु मनं पदोसये॥

''सतं सहस्सानं निरब्बुदानं, छत्तिंसति पञ्च च अब्बुदानि।
[R.153] यमरियगरही निरयं उपेति, वाचं मनं च पणिधाय पापकं'' ति॥

पठमो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

आयाचनं गारवो ब्रह्मदेवो, बको च ब्रह्मा अपरा च दिट्ठि। [B.155]
पमादकोकालिकतिस्सको च, तुदु च ब्रह्मा अपरो च कोकालिको ति॥

कुमुद का एक **सौगन्धिक** नरक होता है। बीस सौगन्धिक का एक **उत्पल** नरक होता है। बीस उत्पल का एक **पुण्डरीक** नरक होता है। बीस पुण्डरीक नरकों का एक **पद्म** नरक होता है। हे भिक्षु! उसी पद्म नरक में यह कोकालिक भिक्षु उत्पन्न हुआ है, सारिपुत्र एवं मोग्गल्लान के प्रति द्वेष रखता हुआ।''

१४. भगवान् ने यह कहा। तथा उन्होंने यह कहते हुए साथ ही यह भी कहा—

''पुरुष के जन्म के साथ ही उसके मुख में एक कुल्हाड़ी भी उत्पन्न होती है,जिससे वह मूर्ख दुर्वचन बोलता हुआ अपने को काटता रहता है॥

''जो निन्दनीय की प्रशंसा करता है,... पूर्ववत्... सुख नहीं मिलता॥

" किसी मनुष्य का यह दौर्भाग्य तो बहुत छोटा है...पूर्ववत्...बुद्ध श्रावकों के प्रति अपना मन मैला करे॥"

•

प्रथम वर्ग समाप्त॥

"जिस आर्यों के निन्दक ने भगवान् बुद्ध की निन्दा द्वारा अपनी वाणी तथा मन को मलिन कर लिया हो उसके लिये, सैंकड़ों हजारों निरर्बुद नरकों में तथा इकतालीस अर्बुद नरकों में पतन भी, दण्ड के रूप में अल्प ही माना जायगा॥"

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रसूची— १. ब्रह्मयाचनसूत्र, २. गौरव सूत्र, ३. ब्रह्मदेवसूत्र, ४. वकब्रह्मसूत्र, ५. अन्यतरब्रह्मसूत्र, ६. ब्रह्मलोकसूत्र, ७. कोकालिकसूत्र, ८. कृतमोदकतिष्यसूत्र, ९. तुदुब्रह्मसूत्र एवं १०. अपरकोकालिक सूत्र॥ •

दुतियो वग्गो

११. सनङ्कुमारसुत्तं

१५. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति सप्पिनीतीरे। अथ खो ब्रह्मा सनङ्कुमारो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं सप्पिनीतीरं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ब्रह्मा सनङ्कुमारो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मिं, ये गोत्तपटिसारिनो।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सो सेट्ठो देवमानुसे" ति॥ (द०-दी०नि० ३ सु०)

इदमवोच ब्रह्मा सनङ्कुमारो। समनुञ्ञो सत्था अहोसि। अथ खो ब्रह्मा सनङ्कुमारो "समनुञ्ञो मे सत्था" ति भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी ति।

१२. देवदत्तसुत्तं

[N.154] १६. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते [R.154] अचिरपक्कन्ते देवदत्ते। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया

द्वितीय वर्ग

११. सनत्कुमार सूत्र : : बुद्ध की श्रेष्ठता

१५. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृहनगर** के सर्पिणी नदी के तट पर साधनाहेतु विराजमान थे। तब सनत्कुमार ब्रह्मा चान्दनी रात्रि में सर्पिणी नदी के समस्त तट को आलोकित करता हुआ जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा हुआ वह ब्रह्मसनत्कुमार भगवान् से यह गाथा बोला—"जैसे जाति का विचार करने वालों के लिये मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ है; (इसी तरह) विद्या एवं आचरण से सम्पन्न वह (बुद्ध) देवताओं एवं मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं॥" (द्र०—दी.नि., ३ सू०)

सनत्कुमार ब्रह्मा ने यह कहा। बुद्ध भी इससे सहमत रहे। तब वह सनत्कुमार ब्रह्मा 'भगवान् मुझसे सहमत हैं'—यह जानकर, भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया॥ •

१२. देवदत्तसूत्र : : सत्कार से दुर्जन का विनाश

१६. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** के गृध्रकूट पर्वत पर, देवदत्त के कुछ समय पहले वहाँ से चले जाने के बाद, साधनाहेतु विराजमान थे। तब

अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं गिज्झकूटं पब्बतं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ब्रह्मा सहम्पति देवदत्तं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"फलं वे कदलिं हन्ति, फलं वेळुं फलं नळं। [B.156]
सक्कारो कापुरिसं हन्ति, गब्भो अस्सतरिं यथा" ति॥

●

१३. अन्धकविन्दसुत्तं

१७. एकं समयं भगवा मगधेसु विहरति अन्धकविन्दे। तेन खो पन समयेन भगवा रत्तन्धकारतिमिसायं अब्भोकासे निसिन्नो होति, देवो च एकमेकं फुसायति। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं अन्धकविन्दं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ब्रह्मा सहम्पति भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि—

"सेवेथ पन्तानि सेनासनानि, चरेय्य संयोजनविप्पमोक्खा।
सचे रतिं नाधिगच्छेय्य तत्थ, सङ्घे वसे रक्खितत्तो सतीमा॥

ब्रह्मा सहम्पति उस चान्दनी रात्रि में समस्त गृध्रकूट को आलोकित करते हुए भगवान् के पास आये। आकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हुए वे देवदत्त को उद्देश्य कर यों बोले—

"केले का अपना फल ही उस केले के वृक्ष को नष्ट कर देता है। वेणु (वांस) का फल भी वेणु को तथा नरकट का फल नरकट को नष्ट कर देता है। इसी तरह दुर्जन पुरुष को अपना सत्कार ही नष्ट कर देता है; जैसे खच्चरी को उसका अपना गर्भ नष्ट कर देता है"॥

●

१३. अन्धकविन्द सूत्र : : सङ्घवास की महिमा

१७. एक समय भगवान् (बुद्ध) मगध के अन्धकविन्द में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् अन्धेरी रात्रि में खुले आकाश के नीचे विराजमान थे। वर्षा की कुछ बूँदाबाँदी भी हो रही थी। उसी समय ब्रह्मा सहम्पति...पूर्ववत्...भगवान् के सम्मुख ये गाथाएँ बोले—

("साधक को चाहिये कि वह जनसमाज से दूर रहते हुए) एकान्त स्थान में वास करे तथा सांसारिक बन्धनों से मुक्त जीवन बितावे। यदि वहाँ उसका मन न लगे तो सङ्घ के साथ रहता हुआ संयत एवं स्मृतियुक्त जीवन व्यतीत करे॥

"कुलाकुलं पिण्डिकाय चरन्तो, इन्द्रियगुत्तो निपको सतीमा।
सेवेथ पन्तानि सेनासनानि, भया पमुत्तो अभये विमुत्तो॥
"यत्थ भेरवा सिरिंसपा, विज्जु सञ्चरति थनयति देवो।
अन्धकारतिमिसाय रत्तिया, निसीदि तत्थ भिक्खु विगतलोमहंसो॥
[N.155] "इदं हि जातु मे दिट्ठं, न यिदं इतिहीतिहं।
एकस्मिं ब्रह्मचरियस्मिं, सहस्सं मच्चुहायिनं॥
"भिय्यो पञ्चसता सेक्खा, दसा च दसधा दस।
सब्बे सोतसमापन्ना, अतिरच्छानगामिनो॥
[B.157] अथायं इतरा पजा, पुञ्ञभागा ति मे मनो।
सङ्खातुं नो पि सक्कोमि, मुसावादस्स ओत्तपं" ति॥ •

१४. अरुणवतीसुत्तं

१८. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति...पे०...तत्र खो भगवा
[R.155] भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"वह घर घर भिक्षाटन करता हुआ, संयतेन्द्रिय, ज्ञानी, स्मृतिमान् रहता हुआ जनसमाज से दूर एकान्त स्थानों में रहता हुआ भय से मुक्त रहता हुआ निर्भय जीवन बितावे॥

"जहाँ भयानक साँप विच्छु हों, बिजली कड़कती हो, मेघ गर्जते हो, काली अन्धकारमय रात्रि हो, ऐसे स्थानों पर साधक भिक्षु को शान्तचित्त होकर, रोमाञ्च के विना (निर्भय होकर) साधना में रत रहना चाहिये॥

"यह इतिहास में कही सुनी बात नहीं है, अपितु मैने अपनी आँखों से देखा है कि एक ही धर्मसाधना में हजारों साधक इस मृत्यु को पार कर गये हैं॥

"पाँच सौ शैक्ष्यों (साधनोन्नतिपथ पर आरूढ) से अधिक तथा १०, १००, १००० हजार स्रोतआपन्न इस धर्मसाधना में लगे हुए हैं, इन सभी का तिरश्चीन योनि में जाना तो असम्भव है॥

"अन्य जो अवशिष्ट हैं उन्हें भी मैं अत्यधिक पुण्यवान् मानता हूँ। कहीं एकान्ततः ठीक सङ्ख्या में न गिने जाने के कारण, असत्यभाषण का आरोप न लग जाय, इसलिये उनकी गणना नहीं कर रहा हूँ"॥ •

१४. अरुणवती सूत्र : : अभिभू का ऋद्धिप्रदर्शन

१८. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती में...भिक्षुओं को...यों कहा—

''भूतपुब्बं, भिक्खवे, राजा अहोसि अरुणवा नाम। रञ्ञो खो पन, भिक्खवे, अरुणवतो अरुणवती नाम राजधानी अहोसि। अरुणवतिं खो पन, भिक्खवे, राजधानिं सिखी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो उपनिस्साय विहासि। सिखिस्स खो पन, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अभिभूसम्भवं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। अथ खो, भिक्खवे, सिखी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अभिभुं भिक्खुं आमन्तेसि—''आयाम, ब्राह्मण, येन अञ्ञतरो ब्रह्मलोको तेनुपसङ्कमिस्साम, याव भत्तस्स कालो भविस्सती'' ति। 'एवं, भन्ते' ति खो, भिक्खवे, अभिभू सिखिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पच्चस्सोसि। अथ खो, भिक्खवे, सिखी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अभिभू च भिक्खू—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा वाहं सम्मिञ्जेय्य एवमेव—अरुणवतिया राजधानिया अन्तरहिता तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहेसुं।

''अथ खो भिक्खवे, सिखी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अभिभुं भिक्खुं आमन्तेसि—'पटिभातु, ब्राह्मण, तं ब्रह्मुनो च ब्रह्मपरिसाय च ब्रह्मपारिसज्जानं च धम्मी कथा' ति। 'एवं, भन्ते' ति खो, भिक्खवे, अभिभू भिक्खु सिखिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पटिस्सुत्वा ब्रह्मानं च ब्रह्मपरिसं च ब्रह्मपारिसज्जे च धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। तत्र सुदं भिक्खवे, ब्रह्मा च ब्रह्मपरिसा च ब्रह्मपारिसज्जा च उज्झायन्ति विपाचेन्ति—'अच्छरियं [N.156, R.156] वत, भो, अब्भुतं वत भो, कथं हि नाम सत्थरि सम्मुखीभूते सावको धम्मं [B.158] देसेस्सती' ति!

''भिक्षुओ! पहले कभी अरुणवान् नामक राजा हुआ था। उस अरुणवान् की राजधानी का नाम अरुणवती था। इसी अरुणवती में भगवान् शिखी सम्यक्सम्बुद्ध भी साधनाहेतु विराजमान रहते थे। इन शिखी बुद्ध के दो अग्रश्रावक थे, जिनमें एक का नाम अभिभू एवं दूसरे का नाम था सम्भव। तब इन भगवान् ने अभिभू भिक्षु को बुला कर कहा—''आओ, ब्राह्मण! किसी ब्रह्मलोक में चलें। इतने भिक्षा का समय भी हो जायगा।'' तब भगवान्...शिखी अरुणवती में अन्तर्हित होकर ब्रह्मलोक में जाकर प्रकट हुए।

''तब भगवान् शिखी ने अपने शिष्य अभिभू से कहा—'ब्राह्मण! तुमको इन ब्रह्मा तथा इस ब्रह्मपरिषद में बैठे पार्षदों को धर्मकथा सुनानी है।''ठीक है, भन्ते,' कहकर उस अभिभू ने ब्रह्मा एवं उस परिषद् में बैठे ब्रह्मपार्षदों को धार्मिक कथा सुना कर धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। परन्तु वहाँ बैठे कुछ पार्षदों ने यह विचार प्रकट करते हुए कि गुरु के विद्यमान रहते शिष्य क्यों कथा कर रहा है! तब भगवान् शिखी ने अभिभू से

"अथ खो अभिभू भिक्खु सिखिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोच— 'अभिजानामि ख्वाहं, भन्ते, भिक्खुसङ्घस्स मज्झे एवरूपिं वाचं भासिता—पहोमि ख्वाहं आवुसो, ब्रह्मलोके ठितो सहस्सिलोकधातुं सरेन विञ्ञापेतुं' ति। 'एतस्स, ब्राह्मण, कालो, एतस्स, ब्राह्मण, कालो; यं त्वं, ब्राह्मण, ब्रह्मलोके ठितो सहस्सिलोकधातुं सरेन विञ्ञापेय्यसी' ति। 'एवं, भन्ते' ति खो, भिक्खवे, अभिभू भिक्खु सिखिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पटिस्सुत्वा ब्रह्मलोके ठितो इमा गाथायो अभासि—

'आरब्भथ निक्खमथ, युञ्जथ बुद्धसासने।
धुनाथ मच्चुनो सेनं, नळागारं व कुञ्जरो॥
'यो इमस्मिं धम्मविनये, अप्पमत्तो विहस्सति।
[R.157] पहाय जातिसंसारं, दुक्खस्सन्तं करिस्सती' ति॥

"अथ खो, भिक्खवे, सिखी च भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अभिभू च भिक्खु

कहा—'अभिभू! देख रहे हो न, यहाँ कुछ पार्षद मेरे रहते हुए भी तुम्हारे द्वारा कथा सुनाने से अपना खेद एवं उद्वेग प्रकट कर रहे हैं! तो इन्हें कुछ अच्छी तरह संवेग दिला दो।'

"भिक्षुओ! 'बहुत अच्छा, भन्ते' कह कर वह अभिभु अग्रश्रावक अपने ऊपर के दृश्यमान शरीर से भी धर्मकथा करने लगा, अदृश्यमान शरीर से भी...नीचे के आधे दृश्यमान शरीर से भी... नीचे आधे अदृश्यमान शरीर से भी...धर्मकथा करने लगा। यह देख सुन कर वहाँ उपस्थित ब्रह्मा एवं उसके पार्षद—सभी आश्चर्यचकित हो गये कि इस श्रमण की यह ऋद्धिसम्पन्नता कितनी आश्चर्यमय एवं अद्भुत है!

तदनन्तर उस अभिभू भिक्षु ने भगवान् शिखी से निवेदन किया— 'भन्ते! मैं भिक्षुसङ्घ में प्रवचन करते करते ऐसी वाणी बोलना भी जान गया हूँ कि मैं एक ही स्थान पर बैठकर बोलता हुआ हजारों लोकधातुओं को एक साथ धर्मश्रवण करा सकता हूँ।' 'तो ब्राह्मण! वैसी कथा सुनाने का यही अवसर है! तूँ उस तरह से यहाँ बैठकर ही हजारों लोकधातुओं को धर्मश्रमण करा दे।' तब अभिभू भिक्षु ने, भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर यों कहना आरम्भ किया—

"उत्साहसम्पन्न बनो, गृहत्याग कर प्रव्रजित हो जाओ। बुद्धशासन के पालन में मन लगाओ। मृत्यु सेना (मारसेना) को इस तरह नष्ट भ्रष्ट कर दो जैसे कोई मदोन्मत्त हाथी फूस (तृण) की झोपड़ी को नष्ट भ्रष्ट कर देता है।

'जो इस धर्मविनय में सावधानीपूर्वक साधनारत रहेगा वह इस जन्म मरण (संसार में आना जाना) को छोड़कर अपने दुःखों का एक न एक दिन अन्त कर लेगा॥'

ब्रह्मानं च ब्रह्मपरिसं च ब्रह्मपारिसज्जे च संवेजेत्वा—सेय्यथापि नाम...पे०...तस्मिं ब्रह्मलोके अन्तरहिता अरुणवतिया राजधानिया पातुरहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, सिखी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो भिक्खू आमन्तेसि—'अस्सुत्थ नो, तुम्हे, भिक्खवे, अभिभुस्स भिक्खुनो ब्रह्मलोके ठितस्स गाथायो भासमानस्सा' ति ?

'एवं खो मयं, भन्ते, अस्सुम्ह अभिभूस्स भिक्खुनो ब्रह्मलोके ठितस्स गाथायो भासमानस्स—

'आरब्भथ निक्खमथ, युञ्जथ बुद्धसासने।
धुनाथ मच्चुनो सेनं, नळागारं व कुञ्जरो॥
'यो इमस्मिं धम्मविनये, अप्पमत्तो विहस्सति।
पहाय जातिसंसारं, दुक्खस्सन्तं करिस्सती' ति॥

'एवं खो मयं, भन्ते, अस्सुम्ह अभिभुस्स भिक्खुनो ब्रह्मलोके ठितस्स गाथायो भासमानस्सा' ति।

'साधु साधु, भिक्खवे; साधु खो तुम्हे, भिक्खवे! अस्सुत्थ अभिभुस्स भिक्खुनो ब्रह्मलोके ठितस्स गाथायो भासमानस्सा' ति।

१९. इदमवोच भगवा, अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥ ●

''तब भगवान् शिखी अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथा अभिभू भिक्षु ब्रह्मा एवं उसके पार्षदों को धर्म के प्रति संवेग दिलाकर...ब्रह्मलोक से अन्तर्हित होकर अरुणवती राजधानी में आकर प्रकट हुए। तब, भिक्षुओ! भगवान् शिखी ने वहाँ उपस्थित भिक्षुओं से पूछा—'भिक्षुओ! तुमने अभिभू भिक्षु द्वारा ब्रह्मलोक में गाथाओं के माध्यम से किया हुआ उपदेश सुना है ?''

''हाँ, भन्ते! सुना है।'' ''भिक्षुओ! जैसा तुमने सुना है उसको पुनः हमें अक्षरशः यथातरूप में सुनाओ!''

''तब भिक्षु बोले-हमने वह उपदेश इस प्रकार सुना है—

''तुम उत्साहसम्पन्न बनो। गृहत्याग कर प्रव्रजित हो जाओ! बुद्धशासन के पालन में मन लगाओ। मृत्युसेना (मारसेना) को उसी तरह नष्ट भ्रष्ट कर दो जैसे कोई मदोन्मत्त हाथी फूस (तृण) की झोपड़ी नष्ट भ्रष्ट कर देता है॥

'जो इस धर्मविनय में साधवनीपूर्वक साधनारत रहेगा वह इस जन्म मरण (संसार में आना जाना) को छोड़कर अपने दुःखों का एक न एक दिन अन्त कर लेगा'॥

''साधु! भिक्षुजन! साधु!! तुमने ब्रह्मलोक में बैठे हुए अभिभू भिक्षु द्वारा कहा गया धर्मोपदेश सर्वथा ठीक ही सुना है''॥

१५. परिनिब्बानसुत्तं

२०. एकं समयं भगवा कुसिनारायं विहरति उपवत्तेन मल्लानं सालवने अन्तरेन यमकसालानं परिनिब्बानसमये। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''हन्द दानि, भिक्खवे, आमन्तयामि वो—'वयधम्मा सङ्खारा, अप्पमादेन सम्पादेथा' ति। अयं [R.158] तथागतस्स पच्छिमा वाचा''।

अथ खो भगवा पठमं झानं समापज्जि। पठमा झाना वुट्ठहित्वा दुतियं झानं [N.148] समापज्जि। दुतिया झाना वुट्ठहित्वा ततियं झानं समापज्जि। ततिया झाना वुट्ठहित्वा चतुत्थं झानं समापज्जि। चतुत्था झाना वुट्ठहित्वा आकासानञ्चायतनं [N.158] समापज्जि। आकासानञ्चायतना वुट्ठहित्वा विञ्ञाणञ्चायतनं समापज्जि। विञ्ञाणञ्चायतना वुट्ठहित्वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जि। आकिञ्चञ्ञायतना वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समापज्जि। नेवसञ्ञानासञ्ञायतना वुट्ठहित्वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जि। आकिञ्चञ्ञायतना वुट्ठहित्वा विञ्ञाणञ्चायतनं समापज्जि। विञ्ञाणञ्चायतना वुट्ठहित्वा आकासानञ्चायतनं समापज्जि। आकासानञ्चायतना वुट्ठहित्वा चतुत्थं झानं समापज्जि। चतुत्था झाना वुट्ठहित्वा ततियं झानं समापज्जि। ततिया झाना वुट्ठहित्वा दुतियं झानं समापज्जि। दुतिया झाना वुट्ठहित्वा पठमं झानं समापज्जि। पठमा झाना वुट्ठहित्वा दुतियं झानं समापज्जि। दुतिया झाना वुट्ठहित्वा ततियं झानं समापज्जि। ततिया झाना वुट्ठहित्वा चतुत्थं झानं समापज्जि।

---

१९. भगवान् ने यों कहा। उन आप्तमना भिक्षुओं ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

१५. परिनिर्वाणसूत्र : : भगवान् का महापरिनिर्वाण

२०. एक समय भगवान् (बुद्ध) परिनिर्वाण के समय कुशीनगर (कुशीनारा) के मल्ल क्षत्रियों के शालवन स्थित उपवन में दो शाल वृक्षों के मध्य साधनारत थे।

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—''भिक्षुओ! मैं तुम्हें बता रहा हूँ—''सभी संस्कार नष्ट होने वाले हैं। (अत:) अप्रमाद के साथ जीवन लक्ष्य पूर्ण करो। यह तथागत की पश्चिम वाणी (अन्तिम उपदेश) है।''

तदनन्तर, भगवान् प्रथम ध्यान में रत हो गये। पुन: प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान में रत हुए। द्वितीय ध्यान से उठकर तृतीय ध्यान में... चतुर्थ ध्यान में रत हो गये। उसके बाद, आकाशानन्त्यायतन में,... विज्ञानानन्त्यायतन में... आकिञ्चन्यायतन में, ...नैवसंज्ञानासंज्ञायतन में... नैवसंज्ञानासंज्ञायतन से आकिञ्चन्यायतन में... विज्ञानानन्त्यायतन में... आकाशानन्त्यायतन में... चतुर्थ ध्यान में... तृतीय ध्यान में... द्वितीय ध्यान में... प्रथम

चतुत्था झाना वुट्ठहित्वा समनन्तरं भगवा परिनिब्बायि। परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना ब्रह्मा सहम्पति इमं गाथं अभासि—

''सब्बेव, निक्खिपिस्सन्ति, भूता लोके समुस्सयं।
यत्थ एतादिसो सत्था, लोके अप्पटिपुग्गलो।
तथागतो बलप्पत्तो, सम्बुद्धो परिनिब्बुतो'' ति॥

परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना सक्को देवानमिन्दो इमं गाथं अभासि—

''अनिच्चा वत सङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो'' ति॥

परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना आयस्मा आनन्दो इमं गाथं अभासि—

''तदासि यं भिंसनकं, तदासि लोमहंसनं। [B.161]
सब्बाकारवरूपेते, सम्बुद्धे परिनिब्बुते'' ति॥

परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना आयस्मा अनुरुद्धो इमा [N.159, R.159] गाथायो अभासि—

''नाहु अस्सासपस्सासस्सो, ठितचित्तस्स तादिनो।
अनेजो सन्तिमारब्भ, चक्खुमा परिनिब्बुतो॥

ध्यान में रत हो गये। पुनः प्रथम ध्यान में द्वितीय...तृतीय...चतुर्थ ध्यान में रत हो गये। इस चतुर्थ ध्यान से उठते ही वे (भगवान्) परिनिर्वृत हो गये। यों भगवान् के परिनिर्वृत होते ही सहम्पति ब्रह्मा ने यह गाथा कही—

(''यों तो) संसार के सभी जीव एक न एक दिन मरणभाव को प्राप्त होंगे ही; परन्तु लोक में ऐसे जो अनुपम (अद्वितीय) बुद्ध थे, तथागत एवं बलसप्पन्न सम्यक्सम्बुद्ध थे, वे भी परिनिवृत हो गये। (यह खेद का विषय है!'')

भगवान् के परिनिर्वृत होते ही देवराज शक्र ने यह गाथा कही—

''सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पत्ति एवं विनाश स्वभाव वाले हैं। ये उत्पन्न हो कर भी कभी न कभी निरुद्ध हो ही जाते हैं। उन (संस्कारों) का पूर्णतः शान्त होना ही 'सुख' कहलाता है।''

भगवान् के परिनिर्वृत होते ही आयुष्मान् आनन्द यों बोले—

''वह समय भयानक कष्टप्रद था, रोमाञ्चित कर देने वाला था जब इस लोक में सर्वथा श्रेष्ठ सम्बुद्ध परिनिर्वृत हुए।''

भगवान् के परिनिर्वृत होते ही आयुष्मान् अनुरुद्ध ने अपनी हार्दिक वेदना इन गाथाओं के माध्यम से प्रकट की—

"असल्लीनेन चित्तेन, वेदनं अज्झवासयि।
पज्जोतस्सेव निब्बाणं, विमोक्खो चेतसो अहू" ति॥ •

दुतियो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

ब्रह्मासनं देवदत्तो, अन्धकविन्दो अरुणवती।
परिनिब्बानेन च देसितं, इदं ब्रह्मपञ्चकं ति॥ •

ब्रह्मसंयुत्तं समत्त॥

"उन स्थिरचित्त भगवान् बुद्ध के समान किसी अन्य की जीवनयात्रा नहीं थी। वे तो अकम्पित रहते हुए परम शान्त रूप से निर्वाण को प्राप्त हुए॥

उन्होंने निर्विकार चित्त से अपनी वेदनाओं का अन्त कर लिया। जैसे दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार उनके चित्त की विमुक्ति हो गयी"॥ •

द्वितीय वर्ग समाप्त॥

इस वर्ग की व्याख्यात सूत्रसूची—१. ब्रह्मासन (सनत्कुमार), २. देवदत्त, ३. अन्धकविन्द, ४. अरुणवती एवं ५. परिनिर्वाणसूत्र। इस तरह इस ब्रह्मपञ्चक सूत्रसमुदाय की देशना जाननी चाहिये॥ •

ब्रह्मसंयुक्त समाप्त॥

७. ब्राह्मणसंयुत्तं

१. अरहन्तवग्गो पठमो

१. धनञ्जानीसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति [N.160, B.162, R.160] वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स धनञ्जानी नाम ब्राह्मणी अभिप्पसन्ना होति बुद्धे च धम्मे च सङ्घे च। अथ खो धनञ्जानी ब्राह्मणी भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स भत्तं उपसंहरन्ती उपक्खलित्वा तिक्खत्तुं उदानं उदानेसि—

"नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा" ति॥

एवं वुत्ते, भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो धनञ्जानिं ब्राह्मणिं एतदवोच—"एवमेवं पनायं वसली यस्मिं वा तस्मिं वा तस्स मुण्डकस्स समणस्स वण्णं भासति। इदानि त्याहं, वसलि, तस्स सत्थुनो वादं आरोपेस्सामी" ति।

"न ख्वाहं तं, ब्राह्मण, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समण-

---

७. ब्राह्मणसंयुक्त

१. अर्हद्वर्ग

१. धनञ्जानीसूत्र : : **क्रोध का नाश**

१. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय, किसी भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण की धनञ्जानी नाम की धर्मपत्नी बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ के प्रति अत्यधिक श्रद्धालु थी। कभी वह ब्राह्मणी अपने पति को भोजन परोस रही थी कि उसका पैर लड़खड़ा गया। तब वह तीन बार यों बोली—

"उन भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है, उन भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है, उन भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है।"

ऐसा कहे जाने पर, वह भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण उस धनञ्जानी ब्राह्मणी को यों बोला—"यह शूद्रा इसी तरह जिस किसी मुण्डक श्रमण की प्रशंसा करती रहती है! क्यों न आज मैं इसके उस शास्ता से वाद करूँ। (देखूँ, उसके क्या सिद्धान्त हैं!)

(धनञ्जानी—) "तुम जो भी कहो, मैं तो देवताओं ब्रह्माओं, मार, एवं श्रमण

ब्राह्मणियो पजाय सदेवमनुस्साय यो तस्स भगवतो वादं आरोपेय्य अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। अपि च त्वं, ब्राह्मण, गच्छ, गन्त्वा विजानिस्ससी'' ति!

अथ खो भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो कुपितो अनत्तमनो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा [R.161] एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

''किंसु छेत्वा सुखं सेति, किंसु छेत्वा न सोचति।
किस्सस्सु एकधम्मस्स, वधं रोचेसि गोतमा'' ति?

[N.161, B.163] ''कोधं छेत्वा सुखं सेति, कोधं छेत्वा न सोचति।
कोधस्स विसमूलस्स, मधुरग्गस्स ब्राह्मण!
वधं अरिया पसंसन्ति, तं हि छेत्वा न सोचती'' ति॥

एवं वुत्ते, भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—''अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं

ब्राह्मणों सहित इस समस्त प्रजा में ऐसे किसी को समर्थ नहीं समझती जो उनके साथ शास्त्रचर्चा में वाद कर सके। परन्तु ब्राह्मण! तुम कह रहे हो तो तुम भी अपने मन की निकाल लो। स्वयं समझ जाओगे!''

तब वह भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण कुपित एवं उद्विग्न होता हुआ भगवान् के सम्मुख पहुँचा। तथा कुशल संवाद कर एक ओर बैठ गया। फिर एक ओर बैठा वह ब्राह्मण भगवान् से पूछने लगा—

(''मनुष्य) किसका नाश कर सुख से सोता है? तथा उसे किसका नाश करने पर भी शोकमग्न नहीं होना पड़ता? हे गौतम! किस एक धर्म का वध आपको उचित लगता है?''

(भगवान्—) ''मनुष्य अपने क्रोध का नाश कर सुख से सोता है। क्रोध का नाश करने पर उसको शोकमग्न नहीं होना पड़ता। हे ब्राह्मण! विष के मूल रूप इस क्रोध का , जो पहले बहुत अच्छा लगता है, वध करना उत्तम पुरुषों द्वारा प्रशस्त है। उसका नाश कर मनुष्य शोक नहीं करता॥

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण यों बोला—'धन्य है; भो गौतम! धन्य है! जैसे कोई उलटे को सीधा कर दे, ढके हुए को निरावरण कर (खोल) दे, भटके हुए को सही मार्ग बता दे, अन्धकार में तैल का दीपक जला कर खड़ा

धारेय्य--चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं भोतो गोतमस्स सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं'' ति।

अलत्थ खो भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा भारद्वाजो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्ते विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया'' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी ति॥●

२. अक्कोससुत्तं

२. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अस्सोसि खो अक्कोसकभारद्वाजो ब्राह्मणो—''भारद्वाजगोत्तो किर ब्राह्मणो समणस्स गोतमस्स सन्तिके अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो'' ति कुपितो अनत्तमनो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं असब्भाहि फरुसाहि वाचाहि [R.162] अक्कोसति परिभासति।

हो जाय कि आँखों वाले (मार्ग देखना चाहने वाले) मार्ग देख लें, वैसे ही आप गौतम ने धर्म का उपदेश किया! अतः मैं आप गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की भी तथा भिक्षुसङ्घ की भी। (मेरी इच्छा है कि) मैं आप गौतम से प्रव्रज्या पा लूँ, उपसम्पदा पा लूँ''।

एतदनन्तर उस भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण ने भगवान् से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त कर ली। उपसम्पन्न होने के कुछ ही बाद, आयुष्मान् भारद्वाज ने एकान्त में अप्रमत्त एवं उद्योगरत तथा संयतेन्द्रिय होकर साधना करते हुए शीघ्र ही उस धर्मसाधना के चरम निष्कर्ष (अन्तिम परिणाम) को प्राप्त कर लिया, जिसके लिये कोई भी कुलपुत्र श्रद्धापूर्वक, घर छोड़कर, प्रव्रज्या लिया करते हैं। तथा उसने—''मेरी जन्मपरम्परा अब क्षीण हो गयी, मेरी धर्मसाधना भी पूर्ण हो गयी, जो मेरा कर्तव्य था उसको मैने पूर्ण कर लिया, अब मेरे लिये आगे कुछ कर्तव्य शेष नहीं रह गया'—ऐसा जान लिया॥ ●

२. आक्रोशसूत्र : : अपशब्दों का दान

२. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। अपशब्दभाषी (आक्रोशक) भारद्वाज ने जब यह सुना कि भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम से, गृहस्थ धर्म छोड़कर, प्रव्रज्या ग्रहण कर चुका है,

एवं वुत्ते, भगवा अक्कोसकभारद्वाजं ब्राह्मणं एतदवोच—"तं किं मञ्ञसि, ब्राह्मण, अपि नु खो ते आगच्छन्ति मित्तामच्चा ञातिसालोहिता अतिथियो" ति।

[B.164] "अप्पेकदा मे, भो गोतम, आगच्छन्ति मित्तामच्चा ञातिसालोहिता अतिथयो" ति।

"तं किं मञ्ञसि, ब्राह्मण, अपि नु तेसं अनुप्पदेसि खादनीयं वा भोजनीयं वा [N.162] सायनीयं वा" ति?

"अप्पेकदा नेसाहं, भो गोतम, अनुप्पदेमि खादनीयं वा भोजनीयं वा सायनीयं वा" ति।

"सचे खो पन ते, ब्राह्मण, नप्पटिग्गण्हन्ति, कस्स तं होती" ति?

"सचे ते, भो गोतम, नप्पटिग्गण्हन्ति, अम्हाकमेव तं होती" ति।

"एवमेव खो, ब्राह्मण, यं त्वं अम्हे अनक्कोसन्ते अक्कोससि, अरोसेन्ते रोसेसि, अभण्डन्ते भण्डसि, तं ते मयं नप्पटिग्गण्हाम। तवेवेतं, ब्राह्मण, होति; तवेवेतं, ब्राह्मण, होति।

तब वह क्रुद्ध एवं खिन्न होकर भगवान् के पास पहुँचा। वहाँ पहुँच कर भगवान् को कुछ खरी खोटी बातें (अपशब्द) सुनाते हुए उनको गाली गलौज बकने लगा।

ऐसा करने पर, भगवान् ने उस आक्रोशक भारद्वाज से पूछा—"ब्राह्मण! यह तो बताओ—तुम्हारे यहाँ कोई तुम्हारे इष्ट मित्र बन्धु बान्धव या अतिथि आते हैं, या नहीं?"

ब्राह्मण ने कहा—"हाँ, गौतम! मेरे यहाँ भी कभी कभी मेरे इष्ट मित्र बन्धु या अतिथि बान्धव आते ही रहते हैं।"

(भगवान्—) "ब्राह्मण! क्या तुम उनके भोजन आदि के लिये खाने की वस्तुएँ बनवाते हो?"

(ब्राह्मण—) "हाँ, कभी कभी उनके लिये ये सब वस्तुएँ भी बनवानी पड़ती हैं!"

(भगवान्—) "ब्राह्मण! यदि वे लोग उन वस्तुओं का उपयोग न कर पावें तो उन वस्तुओं का क्या होता है? वे वस्तुएँ पुनः किसको मिलती हैं?"

(ब्राह्मण—) "यदि वे उन वस्तुओं का उपयोग नहीं करते तो वे पुनः मुझको ही मिल जाती हैं।"

(भगवान्—) "उसी तरह ब्राह्मण! जो तुम कभी अपशब्द न बोलने वाले मुझको अपशब्द कह रहे हो, कभी क्रोध न करने वाले मुझ पर क्रोध कर रहे हो, कभी किसी को ऊँचा नीचा न बोलने वाले मुझको ऊँचा नीचा बोल रहे हो उसे मैं स्वीकार नहीं करता तो, ब्राह्मण! ये सब तुम्हारी वस्तुएँ तुम्ही को मिल रही हैं ना!

"यो खो, ब्राह्मण, अक्कोसन्तं पच्चक्कोसति, रोसेन्तं पटिरोसेति, भण्डन्तं पटिभण्डति, अयं वुच्चति, ब्राह्मण, सम्भुञ्जति वीतिहरती ति। ते मयं तया नेव सम्भुञ्जाम न वीतिहराम। तवेवेतं, ब्राह्मण, होति; तवेवेतं, ब्राह्मण, होती" ति।

"भवन्तं खो गोतमं सराजिका परिसा एवं जानाति—'अरहं समणो गोतमो' ति। अथ च पन भवं गोतमो कुज्झती" ति।

"अक्कोधस्स कुतो कोधो, दन्तस्स समजीविनो।
सम्मदञ्ञा विमुत्तस्स, उपसन्तस्स तादिनो॥
"तस्सेव तेन पापियो, यो कुद्धं पटिकुज्झति।
कुद्धं अप्पटिकुज्झन्तो, सङ्गामं जेति दुज्जयं॥
"उभिन्नमत्थं चरति, अत्तनो च परस्स च।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मति॥
"उभिन्नं तिकिच्छन्तानं, अत्तनो च परस्स च।
जना मञ्ञन्ति बालो ति, ये धम्मस्स अकोविदा" ति॥

एवं वुत्ते, अक्कोसकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो

"ब्राह्मण! जो अपशब्द करने वाले को अपशब्द कहता है, कुद्ध होने वाले पर क्रोध करता है, ऊँचा नीचा कहने वाले को ऊँचा नीचा कहता है—यह ऐसे अवसरों पर 'परस्पर खिलाना पिलाना' कहा जाता है। मैं तुम्हारे साथ यह परस्पर खिलाने पिलाने वाला व्यवहार नहीं करता। तुम्हारे दिये का मैं उपयोग नहीं करता। तो ब्राह्मण! ये बातें तुम्ही को पुनः मिल रही हैं। तुम्हारा ही इन पर अधिकार हो।"

(ब्राह्मण—) "आप गौतम को तो राजा सहित उसकी समस्त शासनपरिषद् जानती है, कि श्रमण गौतम अर्हत् हैं। वे भला किसी पर क्रोध कैसे कर सकते हैं!

(भगवान्—) "क्रोधरहित को क्रोध कैसा! या जो ऊँच नीच के भाव को अतिक्रान्त कर चुका है, जो इन्द्रियसंयमी है, परमज्ञानी है, विमुक्त है, जिसका चित्त सर्वथा शान्त है, वह किस पर क्या क्रोध करेगा!

"उससे उसी की निन्दा होती है जो बदले में क्रोध करता है। क्रुद्ध के प्रति क्रोध न करने वाला तो अजेय संग्राम जीत लेता है॥

"दूसरों को क्रोध करते हुए देखकर भी जो स्वयं सावधान होकर शान्त रहता है उससे स्वयं को भी तथा दूसरे को भी—दोनों को ही लाभ पहुँचता है॥

"अपनी और दूसरे की—दोनों की चिकित्सा करने वाले ऐसे पुरुष को साधारण जन मूर्ख ही समझते हैं; क्यों कि वे धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं रखते"॥

गोतम...पे०...एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं, [R.163] भन्ते, भोतो गोतमस्स सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं'' ति।

अलत्थ खो अक्कोसकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा अक्कोसकभारद्वाजो एको वूपकट्ठो [N.163, B.165] अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं नापरं इत्थत्ताया'' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी ति॥ •

३. असुरिन्दकसुत्तं

३. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अस्सोसि खो असुरिन्दकभारद्वाजो ब्राह्मणो—''भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो किर समणस्स गोतमस्स सन्तिके अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो'' ति कुपितो अनत्तमनो येन भगवा तेमुपसङ्कमित्वा भगवन्तं असब्भाहि फरुसाहि वाचाहि अक्कोसति परिभासति। एवं वुत्ते, भगवा तुण्ही अहोसि। अथ खो असुरिन्दकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—''जितोसि, समण, जितोसि, समणा'' ति।

''जयं वे मञ्ञति बालो, वाचाय फरुसं भणं।
जयं चेवस्स तं होति. या तितिक्खा विजानतो॥

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह आक्रोशक अपशब्दभाषी भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से यों बोला—''धन्य है, भो गौतम! धन्य है!! जैसे कोई...पूर्ववत्...कर्तव्य शेष नहीं रह गया'' ऐसा जान लिया। ...वह भारद्वाज ब्राह्मण कुछ समय बाद ही अर्हत्त्व प्राप्त कर गया॥ •

३. असुरेन्द्रकसूत्र : : क्षमा उत्तम गुण है

३. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। जब असुरेन्द्रक ब्राह्मण ने सुना—''आक्रोशक भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण गृहस्थधर्म छोड़कर श्रमण गौतम से प्रव्रज्या ले चुका है'' तो वह क्रुद्ध एवं खिन्न होकर भगवान् के पास पहुँचा, तथा वहाँ वह उन्हें कठोर एवं असभ्य वाणी बोलने लगा। यह सब सुनकर भी भगवान् चुप ही रहे। भगवान् की इस चुप्पी एवं सहनशीलता से प्रभावित होकर असुरेन्द्रक भारद्वाज यों बोला—''श्रमण! आपकी जीत हो गयी और मैं हार गया!''

"तस्सेव तेन पापियो, यो कुद्धं पटिकुज्झति।
कुद्धं अप्पटिकुज्झन्तो, सङ्गामं जेति दुज्जयं॥
"उभिन्नमत्थं चरति, अत्तनो च परस्स च।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मति॥
"उभिन्नं तिकिच्छन्तानं, अत्तनो च परस्स च।
जना मञ्ञन्ति बालो ति, ये धम्मस्स अकोविदा" ति॥

एवं वुत्ते, असुरिन्दकभारद्वाजो भगवन्तं एतदवोच—अभिक्कन्तं, भो [R.164]
गोतम...पे०...अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी ति॥ ●

४. विलङ्गिकसुत्तं

४. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। [B.166]
अस्सोसि खो विलङ्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो—"भारद्वाजगोत्तो किर ब्राह्मणो समणस्स गोतमस्स सन्तिके अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो" ति कुपितो अनत्तमनो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तुण्हीभूतो एकमन्तं अट्ठासि। अथ खो भगवा [N.164]
विलङ्गिकस्स भारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय विलङ्गिकं भारद्वाजं ब्राह्मणं गाथाय अज्झभासि—

(भगवान्—) "मूर्ख मनुष्य, अपने मुख से कठोर वचन कह कर अपनी विजय समझ लेता है; परन्तु विजय उसी ज्ञानी की होती है जो उन रूखे वचनों को सहन कर लेता है॥

"उससे उसी की निन्दा होती है जो क्रोध करने वाले के प्रति क्रोध करता है। जो क्रोध करने वाले के प्रति क्रोध करता, उसने मानों अतिदुर्जय संग्राम जीत लिया है॥

"दूसरों को क्रोध करते हुए देखकर भी जो स्वयं सावधान होकर शान्त रहता है उससे स्वयं को भी तथा दूसरे को भी—दोनों को ही लाभ पहुँचता है॥

"अपने तथा दूसरे की इस तरह चिकित्सा करने वाले ऐसे पुरुष को साधारण जन मूर्ख ही समझते है; क्यों कि वे धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं रखते॥"

ऐसा कहे जाने पर असुरेन्द्रक भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से यों बोला—धन्य हैं आप, भो गौतम!...भारद्वाज अर्हत् हो गया॥ ●

४. विलिङ्गकसूत्र : : निर्दोष को दोष नहीं

४. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। तब विलिङ्गिक भारद्वाज ने सुना—"भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम से प्रव्रजित हो गया"। यह सुनकर वह बहुत कुपित एवं खिन्न हुआ और अपनी

"यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति, सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं, सुखमो रजो पटिवातं व खित्तो" ति॥

(ध. प. १२५ गा.)

एवं वुत्ते, बिलङ्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी ति॥ ●

५. अहिंसकसुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। अथ खो अहिंसकभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं [R.165] वीतिसारेत्वा एकन्तं निसीदि। एकन्तं निसिन्नो खो अहिंसकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अहिंसकाहं, भो गोतम, अहिंसकाहं, भो गोतमा" ति।

"यथा नामं तथा चस्स, सिया खो त्वं अहिंसको।
यो च कायेन वाचाय, मनसा च न हिंसति।
स वे अहिंसको होति, यो परं न विहिंसती" ति॥

एवं वुत्ते, अहिंसकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—अभिक्कन्तं, भो

उसी मनोदशा में वह भगवान् के पास पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर भगवान् ने, उसके मन की बात अपने मन से जानकर, विलिङ्गिक भारद्वाज ब्राह्मण से यों पूछा—

"जो मूर्ख मनुष्य निर्दोष, शुद्ध एवं निर्मल तथा निष्पाप पुरुष को दोष लगाता है, वह (दोषरूप) पाप उस मूर्ख मनुष्य का उसी प्रकार पीछा करता है जिस प्रकार सूक्ष्म रज (धूल), विपरीत हवा में फेंके जाने पर, फेंकने वाले पुरुष पर ही आ गिरती है"॥ (द्र०—ध० प०, गा० १२५)

ऐसा कहे जाने पर, विलिङ्गिक भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से यों बोला—"धन्य हैं आप गौतम!...पूर्ववत्...भारद्वाज अर्हत् हो गया॥ ●

५. अहिंसक सूत्र : : अहिंसक कौन?

५. यह सूत्र भी **श्रावस्ती** में ही...। तब **अहिंसक भारद्वाज** ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आ कर भगवान् से कुशल मङ्गल (सम्मोदन) पूछ कर वह एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठा वह ब्राह्मण भगवान् से यों बोला—"हे गौतम! मैं अहिंसक हूँ। भो गौतम! मेरा नाम 'अहिंसक' ब्राह्मण है।"

(भगवान्—) "जैसा तुम्हारा नाम है, कर्म से भी वैसे ही बनो। तुम वस्तुतः अहिंसक (हिंसा न करने वाला) बन जाओ; क्यों कि जो काय वाणी एवं मन से हिंसा नहीं करता वही वस्तुतः अहिंसक होता है। जो दूसरों को कभी कोई कष्ट नहीं देता"॥

गोतम...पे०...अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा अहिंसकभारद्वाजो अरहतं अहोसी ति॥

•

६. जटासुत्तं[1]

६. सावत्थिनिदानं। अथ खो जटाभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो जटाभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं [B.167] गाथाय अज्झभासि—

"अन्तो जटा बहि जटा, जटाय जटिता पजा।
तं तं गोतम पुच्छामि, को इमं विजटये जटं" ति॥
"सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञं च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं॥
"येसं रागो च दोसो च, अविज्जा च विराजिता।
खीणासवा अरहन्तो, तेसं विजटिता जटा॥

भगवान् के ऐसा कहने पर वह अहिंसक भारद्वाज...पूर्ववत्...वह भारद्वाज एक अर्हत् (ज्ञानी) हो गया॥

•

६. जटासूत्र : : जटा (जगज्जाल) को सुलझाने वाला

६. यह सूत्र भी **श्रावस्ती** में ही...। जब कोई **जटाभारद्वाज** नामक ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आया। आकर कुशल मङ्गल पूछ कर एक तरफ बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उसने भगवान् से यह प्रश्न किया—

"अन्दर भी जञ्जाल (उलझन) है, बाहर भी जञ्जाल है, यों इस संसार का यह समस्त प्रजा-(प्राणि)-समूह जञ्जालों से जकड़ा हुआ है। अतः हे गौतम! मैं आप से ही पूछता हूँ कि इस सांसारिक मायाजाल को काटने में कौन समर्थ है?"॥

(भगवान्—) "तपस्वी, प्रज्ञावान् एवं विवेकी पुरुष ही शील में प्रतिष्ठित (अभ्यस्त) होता हुआ, चित्त समाधि एवं प्रज्ञा की भावना करते हुए उत्साहसम्पन्न होकर निपुणता से इस (सांसारिक माया)जाल को सुलझा जा सकता है॥

"जिन साधकों का चित्त रागद्वेषविहीन हो चुका है, अविद्यान्धकार नष्ट हो चुका है ऐसे क्षीणास्रव (निर्मलचित्त) ज्ञानी भिक्षु ही यह जञ्जाल काटने में समर्थ हो सके हैं॥

---

१. यह सूत्र पीछे **देवता संयुक्त** में भी इसी आशय से वर्णित हो चुका है।—स०।

"यत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झति।
पटिघं रूपसञ्ञा च, एत्थेसा छिज्जते जटा" ति॥

एवं वुत्ते, जटाभारद्वाजो भगवन्तं एतदवोच—अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०... अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी ति॥ •

७. सुद्धिकसुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। अथ खो सुद्धिकभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा [R.166] एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सुद्धिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अज्झभासि—

"न ब्राह्मणो सुज्झति कोचि, लोके सीलवा पि तपोकरं।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सो सुज्झति न अञ्ञा इतरा पजा" ति॥

"बहुं पि पलपं जप्पं, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
अन्तोकसम्बु सङ्किलिट्ठो, कुहनं उपनिस्सितो॥

[B.168] "खत्तियो ब्राह्मणो वेस्सो, सुद्दो चण्डालपुक्कुसो।

"जहाँ (जिस ज्ञानी के चित्त में) नाम एवँ रूप नि:शेषतया (सर्वथा) निरुद्ध हो चुके हैं तथा प्रतिघसंज्ञा (कामभव) एवं रूपसंज्ञा (रूपभव) निरुद्ध हो चुकी हैं, वहाँ ये जञ्जाल कटे हुए (विनष्ट) ही समझे जाने चाहिये"॥

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर जटाभारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से यों निवेदन करने लगा—"धन्य हैं आप गौतम...पूर्ववत्...वह आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतों में एक हो गया॥•

७. शुद्धिकसूत्र : : कौन 'शुद्ध' कहलाता है?

७. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। तब कोई शुद्धिक भारद्वाज नामक ब्राह्मण भगवान् के पास गया। जाकर भगवान् से कुशल क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ कर उसने इस गाथा से यह कहा—

"लोक में कोई ब्राह्मण उस जाति में उत्पन्न होने मात्र से शुद्ध नहीं होता अत्यधिक शीलवान्, तपस्वी तथा विद्या एवं आचारण से सम्पन्न पुरुष ही शुद्ध होता है, अन्य कोई नहीं॥"

(भगवान्—) "भले ही कोई कितना ही बड़ा शास्त्रप्रवक्ता हो, जातिमात्र से कोई ब्राह्मण शुद्ध नहीं होता। वह तो सर्वथा मलिन चित्त वाला होने के कारण ढोंगी तथा धूर्त होता है॥

"अथ च, भले ही कोई क्षत्रिय हो, ब्राह्मण हो, वैश्य हो, शूद्र, चाण्डाल या

आरद्धविरियो पहितत्तो, निच्चं दळ्हपरक्कमो।
पप्पोति परमं सुद्धिं, एवं जानाहि ब्राह्मणा'' ति॥

एवं वुत्ते, सुद्धिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी ति॥ ●

८. अग्गिकसुत्तं

८. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन अग्गिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स सप्पिना पायसो सन्निहितो होति—''अग्गिं जुहिस्सामि, अग्गिहुत्तं परिचरिस्सामी'' ति।

अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पिण्डाय पाविसि। राजगहे सपदानं पिण्डाय चरमानो येन अग्गिकभारद्वाजस्स [N.166] ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। अद्दसा खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं पिण्डाय ठितं। दिस्वान भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

''तीहि विज्जाहि सम्पन्नो, जातिमा सुतवा बहू।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सोमं भुञ्जेय्य पायसं'' ति॥
''बहुं पि पलपं जप्पं, न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
अन्तोकसम्बु सङ्किलिट्ठो, कुहना परिवारितो॥

पुल्कस हो, यदि वह उत्साही आत्मसंयमी तथा सदैव उद्यम में तत्पर रहता है तो वह अवश्य एक न एक दिन परम शुद्धि प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मण! तुम इस शुद्धि के विषय में यही निष्कर्ष समझो''॥

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह शुद्धिक भारद्वाज ब्राह्मण से यों निवेदन करने लगा—''धन्य हैं आप गौतम!...पूर्ववत्...आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतों में एक हो गया॥●

८. आग्निकसूत्र : : ब्राह्मण कौन?

८. एक समय भगवान् **राजगृह** में...अग्निक भारद्वाज के घर अग्नि में हवन के लिये घी के साथ खीर बनी थी। उस समय भगवान् राजगृह में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। प्रत्येक घर में भिक्षा करते करते वे अग्निकभारद्वाज के घर पर पहुँचे। पहुँच कर एक ओर खड़े हो गये। उस ब्राह्मण ने भगवान् को भिक्षाहेतु विचरण करते देखा। देखकर उसने भगवान् से यह गाथा कही—

''जो तीन वेदों का ज्ञाता हो, उच्च जाति का हो, प्रसिद्ध विद्वान् हो तथा विद्या एवं आचरण से सम्पन्न हो वही इस खीर को खा सकता है''॥

[R.167] "पुब्बेनिवासं यो वेदी, सग्गापायं च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि॥
"एताहि तीहि विज्जाहि, तेविज्जो होति ब्राह्मणो।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सोमं भुञ्जेय्य पायसं" ति॥

"भुञ्जतु भवं गोतमो। ब्राह्मणो भवं" ति।

[B.169] "गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं,सम्पस्सतं, ब्राह्मण, नेस धम्मो।
गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति, ब्राह्मण वुत्तिरेसा॥
"अञ्ञेन च केवलिनं महेसिं, खीणासवं कुक्कुच्चवूपसन्तं।
अन्नेन पानेन उपट्ठहस्सु, खेत्तं हि तं पुञ्ञपेक्खस्स होति" ति॥

एवं वुत्ते, अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...अञ्ञतरो च पनायस्मा अग्गिकभारद्वाजो अरहतं अहोसी ति॥ ●

(भगवान्—) "भले ही कोई कितना ही महान् वक्ता क्यों न हो, वह ब्राह्मण जाति में उत्पन्न होने मात्र से ब्राह्मण नहीं कहला सकता। वह तो सर्वथा मलिन चित्त वाला होने के कारण ढोंगी तथा धूर्त होता है॥

"जो पूर्व जन्म की बातों को जानता है, स्वर्ग तथा नरक (के हेतुओं) को जानता है, जिसकी जन्ममरणपरम्परा क्षीण हो चुकी है, जो परमज्ञानी तथा मुनि हो चुका है॥

"इन तीन विद्याओं को जानकर ही कोई ब्राह्मण 'त्रैविद्य' कहलाता है, वह त्रैविद्य एवं विद्या तथा आचरण से सम्पन्न पुरुष ही 'ब्राह्मण' कहलाने का अधिकारी है। वही इस खीर को खाने के लिये पात्र (उचित अधिकारी) है"॥

(ब्राह्मण—) "ठीक है आप इस पायस (खीर) का भोजन करें। आप इसके खाने के अधिकारी हैं।"

(भगवान्—) "धर्मोपदेश (गाथाभिगीत) करने पर प्राप्त हुए भोजन को मैं स्वीकार नहीं किया करता। हे ब्राह्मण! ज्ञानियों के लिये यह उचित भी नहीं होता। पूर्वबुद्धों ने भी इस परम्परा को निभाया है। धर्मानुसार जीवनयापन करने वाले को ऐसा ही करना चाहिये॥

"हाँ, तुम दूसरे अन्न से पान से, केवली महर्षि, क्षीणस्रव एवं परमशुद्ध श्रमणों की सेवा कर सकते हो। हे पुण्यार्थिन्! इसी से तुम्हारा पुण्य बढ सकता है। यही पुण्य क्षेत्र है"।

भगवान् द्वारा ऐसा कहा जाने पर...पूर्ववत्...आयुष्मान् भारद्वाज एक अर्हत् हो गये॥ ●

९. सुन्दरिकसुत्तं[१]

९. एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति सुन्दरिकाय नदिया तीरे। तेन खो पन समयेन सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो सुन्दरिकाय नदिया तीरे अग्गिं जुहति, अग्गिहुत्तं परिचरति। अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो अग्गिं जुहित्वा अग्गिहुत्तं [N.167] परिचरित्वा उट्ठायासना समन्ता चतुद्दिसा अनुविलोकेसि—"को नु खो इमं हब्यसेसं भुञ्जेय्या" ति? अद्दसा खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले ससीसं पारुतं निसिन्नं। दिस्वान वामेन हत्थेन हब्यसेसं गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन कमण्डलुं गहेत्वा येन भगवा तेनुपङ्कमि। अथ खो भगवा सुन्दरिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स पदसद्देन सीसं विवरि। अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो [R.168] "मुण्डो अयं भवं, मुण्डको अयं भवं" ति ततो व पुन निवत्तितुकामो अहोसि। अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—"मुण्डा पि हि इधेकच्चे ब्राह्मणा भवन्ति ; यन्नूनाहं तं उपसङ्कमित्वा जातिं पुच्छेय्यं" ति।

अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच--"किंजच्चो भवं" ति?

---

९. सुन्दरिकसूत्र : : दक्षिणायोग्य पुरुष

९. एक समय भगवान् (बुद्ध) **सुन्दरिका नदी** के तट पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण उस सुन्दरिका नदी के तट पर हवन कर उससे अवशिष्ट हविर्भाग को इस उद्देश्य से सुरक्षित रखे हुए था कि कोई इस हविर्भाग का सुयोग्य दक्षिणेय श्रमण या ब्राह्मण अपना भोज्य बना ले। उस सुन्दरिक भारद्वाज ने आसन से उठकर दूर तक देखा तो उसने दूर तट पर भगवान् को देखा जो अपना शिर वस्त्र से आच्छन्न कर साधना में विराजमान थे। तब वह सुन्दरिक भारद्वाज बाँये हाथ में वह हविर्भाग तथा दूसरे (दक्षिण) हाथ के कमण्डलु (जलपात्र) लेकर वहाँ गया जहाँ भगवान् विराजमान थे। उस समय, भगवान् ने वहाँ आते हुए सुन्दरिक भारद्वाज के पदध्वनि सुनकर अपने शिर पर से वस्त्र हटा दिया। तब उन्हें देखते ही वह ब्राह्मण बोल उठा—"अरे यह तो मुण्डित शिर वाला कोई श्रमण है" ("यह इस हविर्भाग के दान के योग्य नहीं है") यह सोचकर पीछे लौट ही रहा था कि उसके ध्यान में आया—"अरे! मुण्डित शिर वाला भी कोई ब्राह्मण हो सकता है, तो क्यों न पहले इसकी जाति ही पूछ ली जाय।"

---

१. सुत्तमिदं **सुत्तनिपाते** पि दट्ठब्बं।—सं०।

"मा जातिं पुच्छ चरणं च पुच्छ, कट्ठा हवे जायति जातवेदो।
नीचाकुलीनो पि मुनि धितिमा, आजानीयो होति हिरीनिसेधो॥
"सच्चेन दन्तो दमसा उपेतो, वेदन्तगू वुसितब्रह्मचरियो।
यञ्ञोपनीतो तमुपव्हयेथ, कालेन सो जुहति दक्खिणेय्ये" ति॥
"अद्धा सुयिट्ठं सुहुतं मम यिदं, यं तादिसं वेदगुमद्दसामि।
तुम्हादिसानं हि अदस्सनेन, अञ्ञो जनो भुञ्जति हब्यसेसं ति॥

"भुञ्जतु भवं गोतमो। ब्राह्मणो भवं" ति।

"गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं, सम्पस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो।
[N.168] गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरेसा॥
"अञ्ञेन च केवलिनं महेसिं, खीणासवं कुक्कुच्चवूपसन्तं।
अन्नेन पानेन उपट्ठहस्सु, खेत्तं हि तं पुञ्ञपेक्खस्स होती" ति॥

"अथ कस्स चाहं, भो गोतम, इमं हब्यसेसं दम्मी" ति?

"न ख्वाहं, ब्राह्मण, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समण-
[R.169] ब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यस्सेसो हब्यसेसो भुत्तो सम्मा परिणामं

तब उस ब्राह्मण ने भगवान् के पास जाकर पूछा—"आपकी क्या जाति है?"

(भगवान् ने उत्तर दिया—) "ब्राह्मण! मेरी जाति न पूछ, (मेरा) आचरण पूछ! क्यों कि प्रत्येक अग्नि काष्ठ से ही उद्भूत होती है। नीच कुल में भी कोई जन्म लेकर, साधना के बल पर, एक उच्च कोटि का मुनि हो सकता है, श्रेष्ठ और लज्जाशील पुरुष हो सकता है॥

सत्य आचरण से मनुष्य इन्द्रियसंयमी बन सकता है, वेदान्तज्ञ तथा धर्मसाधना की परा काष्ठा तक पहुँच सकता है। ऐसे यज्ञोपवीतधारी का तुम आह्वान करो, वही समय पर वास्तविक हवन करता है। वही सच्चा दक्षिणामात्र है"॥

(यह सुनकर सुन्दरिक भारद्वाज बोला—) "अहो! मेरा यह यज्ञ सफल हो गया कि मुझे आप जैसे सुयोग्य ज्ञानी मिल गया। आप जैसे ज्ञानियों के दर्शन न होने के कारण ही अन्य दूसरे तीसरे साधारण लोग इस हवि:शेष को खा जाया करते थे।

"आप इस हवि:शेष का भोग लगावें; क्यों कि आप वास्तविक ब्राह्मण हैं।"

(भगवान्—) "धर्मोपदेश (गाथाभिगीत)...पूर्ववत्...यही पुण्य क्षेत्र है।"

(तब सुन्दरिक भारद्वाज ने पूछा—) "तो, भो गौतम! मैं यह हवि:शेष अब किसको दान करूँ?

(भगवान्-) "ब्राह्मण! मैं इन समस्त मनुष्य देवलोकों में ऐसा कोई मनुष्य नहीं

गच्छेय्य अञ्ञत्र, ब्राह्मण, तथागतस्स वा तथागतसावकस्स वा। तेन हि त्वं, ब्राह्मण, तं हब्यसेसं अप्पहरिते वा छड्डेहि, अप्पाणके वा उदके ओपिलापेही'' ति।

अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो तं हब्यसेसं अप्पाणके उदके ओपिलापेसि। अथ खो सो हब्यसेसो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति [B.171] चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति। सेय्यथापि नाम फालो दिवससन्तत्तो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति; एवमेव सो हब्यसेसो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति।

अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो संविग्गो लोमहट्ठजातो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो सुन्दरिकभारद्वाजं ब्राह्मणं भगवा गाथाहि अज्झभासि—

''मा ब्राह्मण दारु समादहानो, सुद्धिं अमञ्ञि बहिद्धा हि एतं।
न हि तेन सुद्धिं कुसला वदन्ति, यो बाहिरेन परिसुद्धिमिच्छे॥
''हित्वा अहं ब्राह्मण दारुदाहं, अज्झत्तमेवुज्जलयामि जोतिं।
निच्चग्गिनी निच्चसमाहितत्तो, अरहं अहं ब्रह्मचरियं चरामि॥ [N.169]

देखता जो इस हवि:शेष को खाकर पचा सकता हो। अत: तुम इसे लेकर कहीं ऐसे स्थान पर डाल दो जहाँ हरी घास न उगी हो, या इसे जल में ऐसे स्थान में बहा दो जहाँ मछली आदि न हों।''

तब सुन्दरिक भारद्वाज ने उस हव्यशेष को प्राणिरहित जल में बहा दिया। वह हव्यशेष जल में गिरते ही चटचटा उठा, भभक उठा, लहरा उठा; जैसे कि धूप में दिन भर पड़ा हुआ हल का फाल जल में डालते ही चटचटा उठता है, भभक उठता है, लहरा उठता है।

तदनन्तर, सुन्दरिक भारद्वाज आश्चर्यचकित होकर भगवान् के पास गया, तब भगवान् ने उसको यों कहा—

''हे ब्राह्मण! तूँ काष्ठ जला जला कर की गयी अपनी बाह्य शुद्धि पर इतना गर्व न कर। यह तो केवल बाह्य प्रदर्शनमात्र है। पण्डित जन इस बाह्य शुद्धि को वास्तविक शुद्धि नहीं मानते॥

''ब्राह्मण! मैं इस काष्ठदाह की उपेक्षा करता हुआ आभ्यन्तर (अध्यात्म) ज्योति प्रज्वलित करने को ही महत्त्व देता हूँ। मेरी यह अध्यात्म ज्योति नित्य प्रज्वलित रहती है, मैं नित्य समाहित रहता हूँ। मैं ज्ञानपूर्वक सतत धर्मसाधना में निरत रहता हूँ॥

"मानो हि ते ब्राह्मण खारिभारो, कोधो धुमो भस्मनि मोसवज्जं।
जिव्हा सुजा हदयं जोतिठानं, अत्ता सुदन्तो पुरिसस्स जोति॥
"धम्मो रहदो ब्राह्मण सीलतित्थो, अनाविलो सब्भि सतं पसत्थो।
यत्थ हवे वेदगुनो सिनाता, अनल्लगत्ता व तरन्ति पारं॥
"सच्चं धम्मो संयमो ब्रह्मचरियं, मज्झे सिता ब्राह्मण ब्रह्मपत्ति।
[R.170] स तुज्जुभूतेसु नमो करोहि, तमहं नरं धम्मसारी ति ब्रूमी" ति॥

एवं वुत्ते, सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी ति॥ •

१०. बहुधीतरसुत्तं

१०. एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स चतुद्दस बलीवद्दा नट्ठा होन्ति। अथ खो भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणो ते बलीवद्दे गवेसन्तो येन सो वनसण्डो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अद्दस भगवन्तं तस्मिं वनसण्डे निसिन्नं पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठेत्वा। दिस्वान येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि—

"हे ब्राह्मण! अभिमान ही तुम्हारे लिये अन्नरूप है, क्रोध धूप है, असत्य भाषण ही भस्म है। जिह्वा स्रुवा है, हृदय अग्निकुण्ड है, संयत आत्मा ही पुरुष की अन्तर्ज्योति है॥

"धर्म जलाशय है, शील उसका तट है, वह निर्मल है तथा सज्जनों द्वारा प्रशस्त है। ज्ञानिजन उसमें स्नान करते हैं। स्वच्छ हृदय वाले राधक अपना शरीर आर्द्र किये विना इसको पार कर जाते हैं॥

"सत्य, धर्म, संयम एवं सतत धर्माभ्यास करने वाला, मध्यमार्ग स्वीकार करने वाला साधक ही श्रेष्ठ है। अत: ऐसे सन्मार्गारूढ साधक को प्रणाम करो। मेरी दृष्टि में ऐसा सतत धर्माभ्यासी ही श्रेष्ठ है॥"

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण...पूर्ववत्...वह भारद्वाज ब्राह्मण अर्हतों में एक हो गया॥ •

१०. बहुधीतासूत्र : : बैलों की खोज में (गृहस्थ का कष्ट)

१०. एक समय भगवान् (बुद्ध) कौसल देश के किसी वनषण्ड में साधनाहेतु विराजमान थे। उसी समय किसी भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण के चौदह (१४) बैल खो गये। तब वह ब्राह्मण अपने उन चौदह बैलों को खोजता हुआ उसी वनषण्ड में पहुँचा जहाँ भगवान् साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ पहुँच कर उसने भगवान् को उसी वनषण्ड में शरीर को

"न हि नूनिमस्स समणस्स, बलीबद्द चतुद्दस।
अज्जसट्ठिं न दिस्सन्ति, तेनायं समणो सुखी॥
"न हि नूनिमस्स समणस्स, तिलाखेत्तस्मि पापका।
एकपण्णा दुपण्णा च, तेनायं समणो सुखी॥
"न हि नूनिमस्स समणस्स, तुच्छकोट्ठस्मि मूसिका।
उस्सोळिहकाय नच्चन्ति, तेनायं समणो सुखी॥
"न हि नूनिमस्स समणस्स, सन्थारो सत्तमासिको।
उप्पाटकेहि सञ्छन्नो, तेनायं समणो सुखी॥
"न हि नूनिमस्स समणस्स, विधवा सत्त धीतरो।
एकपुत्ता दुपुत्ता च, तेनायं समणो सुखी॥
"न हि नूनिमस्स समणस्स, पिङ्गला तिलकाहता।
सोत्तं पादेन बोधेति, तेनायं समणो सुखी॥
"न हि नूनिमस्स समणस्स, पच्चूसम्हि इणायिका।
देथ देथा ति चोदेन्ति, तेनायं समणो सुखी" ति॥

सीधा कर, स्मृति सँजाये हुए पद्मासन से बैठे हुए देखा। देखकर वह भगवान् के पास गया। तथा वहाँ जाकर वह ये गाथाएँ बोला—

"अवश्य ही इस श्रमण के, मेरी तरह, चौदह बैल नहीं खोये गये हैं, तभी वह आज छह दिन से इसके विषय में कुछ ज्ञात न होने के कारण सुखी एवं निश्चिन्त है!॥

"अवश्य इस श्रमण के खेतों में तिलों आदि का नाश नहीं होता होगा! न इसको यही चिन्ता है कि इसके खेतों के तिल एक एक पत्ते वाले हुए या दो पत्तों वाले ! इसी लिये यह श्रमण सुखी है!॥

"अवश्य ही इस श्रमण के खाली पड़े धान्यागार में चूहे व्यायाम नहीं करते, इसी लिये यह श्रमण सुखी है!॥

"अवश्य ही विगत सात मास से इस श्रमण की शय्या (खाट) में, आसन में जूँ या खटमल नहीं पड़े होंगे, तभी यह श्रमण सुखी है!॥"

"अवश्य ही इस श्रमण की सात विधवा पुत्रियाँ एक बेटे वाली या दो बेटे वाली नहीं हैं, इसी लिये यह ब्राह्मण सुखी है!॥

"अवश्य ही इस श्रमण की (रक्ताल्पता के कारण) पीली पड़ी हुई तथा समस्त शरीर में तिलों वाली स्त्री नहीं होगी जो इसको प्रातःकाल पादप्रहार से जगाती हो, इसी लिये यह सुखी है।

[B.173] "न हि मय्हं ब्राह्मण, बलीवद्दा चतुद्दस।
अज्जसट्ठिं न दिस्सन्ति, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी॥
[R.171] "न हि मय्हं ब्राह्मण, तिला खेत्तामिस्म पापका।
एकपण्णा दुपण्णा च, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी॥
"न हि मय्हं ब्राह्मण, तुच्छकोट्ठस्मि मूसिका।
उस्सोळ्हिकाय नच्चन्ति, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी॥
"न हि मय्हं ब्राह्मण, सन्थारो सत्तमासिको।
उप्पाटकेहि, सञ्छन्नो, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी॥
"न हि मय्हं ब्राह्मण, विधवा सत्त धीतरो।
एकपुत्ता दुपुत्ता च, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी॥
"न हि मय्हं ब्राह्मण, पिङ्गला तिलकाहता।
सोत्तं पादेन बोधेति, तेनाहं ब्राह्मण सुखी॥
"न हि मय्हं ब्राह्मण, पच्चूसम्हि इणायिका।
देथ देथा ति चोदेन्ति, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी" ति॥

एवं वुत्ते, भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो
[N.171] गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेव भोता गोतमेन अनेक-परियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं भोतो गोतमस्स सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं" ति।

अलत्थ खो भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो पनायस्मा भारद्वाजो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी

"अवश्य ही इस श्रमण को प्रतिदिन प्रातः ही प्रातः ऋणदाताओं की 'हमारा ऋण चुकाओ,' 'हमारा कर्ज चुकाओ'—यह कर्कश शब्दावलि नहीं सुननी पड़ती होगी, इसी लिये यह श्रमण 'सुखी' ज्ञात होता है!"॥

(भगवान्—) "हाँ, ब्राह्मण! तुम्हारी यह बात सत्य है कि तुम्हारी तरह मेरे चौदह बैल नहीं खोये गये हैं...पूर्ववत्...मैं सुखी हूँ!"॥

...पूर्ववत्...ऋणदाता भी मुझे अपनी कर्कश वाणी से अद्विग्न नहीं करते, इस लिये मैं 'सुखी' ज्ञात होता हूँ"॥

पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं— ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, [B.174] नापरं इत्थत्ताया'' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी ति॥ •

अरहन्तवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

धनञ्ञानी च अक्कोसं, असुरिन्दं विलङ्गिकं ।
अहिंसकं जटा चेव, सुद्धिकं चेव अग्गिका।
सुन्दरिकं बहुधीतरेन, च ते दसा ति॥ •

ऐसा कहे जाने पर वह भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण यों बोला—''भो गौतम! आप धन्य हैं...पूर्ववत्...। कुछ ही दिनों बाद वह भारद्वाज ब्राह्मण अर्हतों में एक हो गया॥ •

अर्हद्वर्ग प्रथम समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रसूची—इस वर्ग में ये सूत्र व्याख्यात हुए हैं—१. धनञ्ञानीसूत्र, २. आक्रोशसूत्र, ३. असुरेन्द्रकसूत्र, ४. विलिङ्गिकसूत्र, ५. अहिंसकसूत्र, ६. जटासूत्र, ७. शुद्धिकसूत्र, ८. अग्निकसूत्र, ९. सुन्दरिकसूत्र एवं १०. बहुधीतासूत्र॥

२. उपासकवग्गो

११. कसिभारद्वाजसुत्तं[१]

११. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा मगधेसु विहरति दक्खिणागिरिस्मिं [R.172] एकनाळायं ब्राह्मणगामे। तेन खो पन समयेन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स पञ्चमत्तानि नङ्गलसतानि पयुत्तानि होन्ति वप्पकाले। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स कम्मन्तो तेनुपसङ्कमि।

तेन खो पन समयेन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स परिवेसना वत्तति। अथ खो [N.172] भगवा येन परिवेसना तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। अद्दसा खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं पिण्डाय ठितं। दिस्वा भगवन्तं एतदवोच—"अहं खो, समण, कसामि च वपामि च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जामि। त्वं पि, समण, कसस्सु च वपस्सु च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जस्सू" ति।

"अहं पि खो, ब्राह्मण, कसामि च वपामि च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जामी" ति।

"न खो मयं पस्साम भोतो गोतमस्स युगं वा नङ्गलं वा फलं वा पाचनं वा

द्वितीय उपासकवर्ग

११. कृषिभारद्वाजसूत्र

११. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) मगध देश के **दक्षिणागिरि** स्थित एकनाला नामक ब्राह्मण ग्राम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कृषिभारद्वाज नामक ब्राह्मण के खेतों में पाँच सौ हल एक साथ चलते थे। तब कभी भगवान् प्रातः अपने वस्त्रों को व्यवस्थित कर, पात्र चीवर लेकर कृषिभारद्वाज ब्राह्मण के खेतों पर पहुँचे।

उस समय कृषिभारद्वाज ब्राह्मण के कृषिकर्म स्थान पर भोजन दिया जा रहा था। भगवान् भी भोजन लेने वालों की पंक्ति में जाकर एक ओर खड़े हो गये। कृषिभारद्वाज ने जब भगवान् को उस पंक्ति में भिक्षाहेतु खड़े हुए देखा तो वह भगवान् से यों बोला— "श्रमण! मैं खेत जोतता हूँ, बोता हूँ, अन्न पैदा करता हूँ तब खाता हूँ, श्रमण! तुम भी खेत जोतो, बोओ, अन्न पैदा करो तब खाओ!"

(भगवान्—) "मैं भी खेत जोतता हूँ, बोता हूँ; जोत कर, बो कर खाता हूँ।"

(ब्राह्मण—) "हम तो आप गौतम के हाथों न हल देखते हैं, न फाल, न बैलों के

---

१. सुत्तमिदं अविकलं **सुत्तनिपाते** पि पठितं। -सं०।

बलीवद्दे वा, अथ च पन भवं गोतमो एवमाह—अहं पि खो, ब्राह्मण, कसामि च वपामि च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जामी'' ति। [B.175]

अथ खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

''कस्सको पटिजानासि, नच पस्सामि ते कसिं।
कस्सको पुच्छितो ब्रूहि,कथं जानेसु तं कसिं'' ति॥

''सद्धा बीजं तपो वुट्ठि, पञ्ञा मे युगनङ्गलं।
हिरी ईसा मनो योत्तं, सत्ति मे फालपाचनं॥

''कायगुत्तो वचीगुत्तो, आहारे उदरे यतो।
सच्चं करोमि निद्दानं, सोरच्चं मे पमोचनं॥

''विरियं मे धुरधोरय्हं, योगक्खेमाधिवाहनं। [R.173]
गच्छति अनिवत्तन्तं, यत्थ गन्त्वा न सोचति॥

''एवमेसा कसी कट्ठा, सा होति अमतप्फला।
एतं कसिं कसित्वान, सब्बदुक्खा पमुच्चती'' ति ॥

''भुञ्जतु भवं गोतमो। कस्सको भवं। यं हि गोतमो अमतप्फलं पि कसिं कसती'' ति।

हाँकने का दण्ड या आपके पास कोई बैल ही देख रहे हैं, फिर भी आप कह रहे हैं—मैं भी खेत जोतता हूँ...तब खाता हूँ।''

तब, कृषिभारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् से दो गाथाएँ कहीं—

''आप कह तो रहे हैं कि आप कृषक हैं, परन्तु हम आप में खेती करने के कोई चिह्न नहीं देख रहे हैं। यदि आप कृषक हैं तो बताइये कि आप खेती कैसे करते हैं ?''

(भगवान्—) ''मेरे पास श्रद्धा ही बीज है, मेरा तप ही वृष्टि है, मेरी प्रज्ञा ही जूआ तथा हल है। लज्जा (संकोच) ही मेरा हलदण्ड है, मन ही बैलों की रस्सी है। तथा मेरी स्मृति ही वैलों को नियन्त्रित रखने वाला दण्ड है॥

''मैं काय एवं वाणी से संयत रहता हुआ, भोजन की मात्रा जानने वाला, सत्य की निराई करता हूँ। सुरति (विनम्रता) मेरा विश्राम हैं॥

साधना में वीर्य (पराक्रम) रखना ही मेरा बैल है जो मुझे निर्वाण तक ले जाता है। पीछे लौटे विना आगे ही बढता जाता है जहाँ जाकर मनुष्य वीतशोक हो जाता है॥

''इस तरह का मेरा यह कृषिकर्म है। ऐसी कृषि से अमृत का उत्पाद होता है। ऐसी कृषि कर साधक सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है॥''

यह सुन कर वह ब्राह्मण बोला—''पूजनीय गौतम! आप ससम्मान मेरे यहाँ

"गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं, सम्पस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो।
[N.173] गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरेसा ॥
"अञ्ञेन च केवलिनं महेसिं, खीणासवं कुक्कुच्चवूपसन्तं।
अन्नेन पानेन उपट्ठहस्सु, खेत्तं हि तं पुञ्ञपेक्खस्स होती" ति॥

एवं वुत्ते, कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ •

१२. उदयसुत्तं

१२. सावत्थिनिदानं। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवर-
[B.176] मादाय येन उदयस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि। अथ खो उदयो ब्राह्मणो भगवतो पत्तं ओदनेन पूरेसि। दुतियं पि खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन उदयस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि...पे०...ततियं पि खो
[R.174] उदयो ब्राह्मणो भगवतो पत्तं ओदनेन पूरेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"पकट्ठकोयं समणो गोतमो पुनप्पुनं आगच्छती" ति।

"पुनप्पुनं चेव वपन्ति बीजं, पुनप्पुनं वस्सति देवराजा।
पुनप्पुनं खेत्तं कसन्ति कस्सका, पुनप्पुनं धञ्ञमुपेति रट्ठं॥

भोजन करें। आप तो वस्तुत: उत्तम कृषक है, जिन के किये हुए कृषिकर्म से अमृत का उत्पाद होता है"॥

(तब भगवान् बोले—) "धर्मोपदेश करने पर मिला हुआ भोजन मुझे स्वीकार नहीं।...पूर्ववत्...हे पुण्याकांक्षिन्! तुम्हारा पुण्य बढ़े"॥

(भगवान् द्वारा—) ऐसा कहे जाने पर वह कृषि भारद्वाज ब्राह्मण से यों बोला—"धन्य हैं आप, भो गौतम! ...पूर्ववत्...आज से मुझे आप, मेरे प्राण रहने तक, अपना शरणगत उपासक समझें।" •

१२. उदयसूत्र : : पुन: पुन: भिक्षाटन

यह सूत्र भी **श्रावस्ती** में ही...। तब भगवान् प्रात:काल ही, वस्त्र व्यवस्थित कर, पात्र चीवर ले, भिक्षाहेतु उदय ब्राह्मण के घर पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर, उदय ब्राह्मण ने भगवान् का पात्र ओदन (भात) से भर दिया। दूसरी बार भी...पूर्ववत्...तीसरी बार भी भगवान् का पात्र ओदन से भर कर उदय ब्राह्मण ने भगवान् को लक्ष्य कर यह कहा—

"यह श्रमण तो बहुत कठोर है कि प्रतिदिन भिक्षा हेतु द्वार पर आ खड़ा होता है।"

तब इसके उत्तर में भगवान् ने कहा—

"पुनप्पुनं याचका याचयन्ति, पुनप्पुनं दानपती ददन्ति।
पुनप्पुनं दानपती ददित्वा, पुनप्पुनं सग्गमुपेन्ति ठानं॥
"पुनप्पुनं खीरनिका दुहन्ति, पुनप्पुनं वच्छो उपेति मातरं ।
पुनप्पुनं किलमति फन्दति च, पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो॥
"पुनप्पुनं जायति मीयति च, पुनप्पुनं सीवथिकं हरन्ति। [N.174]
मग्गं च लद्धा अपुनब्भवाय, न पुनप्पुनं जायति भूरिपञ्ञो" ति॥

एवं वुत्ते, उदयो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं,भो गोतम...पे०... उपासकं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ •

१३. देवहितसुत्तं

१३. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन भगवा वातेहाबाधिको होति; आयस्मा च उपवाणो उपट्ठाको होति। अथ खो भगवा आयस्मन्तं उपवाणं आमन्तेसि—"इङ्घ मे त्वं, उपवाण, उण्होदकं जानाही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा उपवाणो भगवतो पटिस्सुत्वा निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन देवहितस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तुण्हीभूतो एकमन्तं अट्ठासि। अद्दसा

"लोग बार बार खेत में बीज बोते हैं बार बार मेघों से जल गिरता है। किसान बार बार खेत जोतते हैं, इसके फलस्वरूप राष्ट्र को बार बार अन्न मिलता है॥

"तब याचक भी बार बार भिक्षाहेतु आते रहते हैं, दानी लोग उन्हें बार बार अन्नदान करते रहते हैं। इस तरह वे दानी अन याचकों को बार बार दान देकर बार बार स्वर्ग में अपना सुरक्षित स्थान बनाते हैं॥

"कोई मूर्ख पापी यहाँ बार बार पैदा होता है, बार बार मरता है, बार बार उसकी अर्थी उठायी जाती है। इसके विपरीत, बुद्धिमान् पुरुष पुनर्जन्म से मुक्ति पाने का मार्ग खोज कर अन्त में ज्ञान प्राप्त कर बार बार जन्म मरण के क्रम से मुक्ति पा जाता है॥"

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह उदय ब्राह्मण भगवान् से यों निवेदन करने लगा—"धन्य हैं भो गौतम! आप धन्य हैं! ...पूर्ववत्...मुझको अपना शरणगत उपासक समझिये"॥ •

१३. देवहितसूत्र : : भगवान् बुद्ध की रुग्णता

यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय, भगवान् (बुद्ध) किसी वातरोग से पीडित हो गये। आयुष्मान् उपवाण उस समय भगवान् के उपस्थायक थे। अत: भगवान् ने उपवाण से कहा—"उपवाण! मेरे लिये कहीं से उष्ण जल की व्यवस्था करो।" "अच्छा, भन्ते!" कह कर, वह उपवाण अपने शरीर के वस्त्र व्यवस्थित कर पात्रचीवर

खो देवहितो ब्राह्मणो आयस्मन्तं उपवाणं तुण्हीभूतं एकमन्तं ठितं। दिस्वान आयस्मन्तं उपवाणं गाथाय अज्झभासि—

[B.177] "तुण्हीभूतो भवं तिट्ठं, मुण्डो सङ्घाटिपारुतो।
[R.175] किं पत्थयानो किं एसं, किं नु याचितुमागतो?" ति॥

"अरहं सुगतो लोके, वातेहाबाधिको मुनि।
सचे उण्होदकं अत्थि, मुनिनो देहि ब्राह्मण॥

"पूजितो पूजनेय्यानं, सक्करेय्यान सक्कतो।
अपचितो अपचेय्यानं, तस्स इच्छा नहातवे" ति॥

अथ खो देवहितो ब्राह्मणो उण्होदकस्स काजं पुरिसेन गाहापेत्वा फाणितस्स च पुटं आयस्मतो उपवाणस्स पादासि। अथ खो आयस्मा उपवाणो येन भगवा [N.174] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं उण्होदकेन न्हापेत्वा उण्होदकेन आलोलत्वा भगवतो पादासि। अथ खो भगवतो आबाधो पटिप्पस्सम्भि।

अथ खो देवहितो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो देवहितो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

लेकर देवहित ब्राह्मण के घर गया। जाकर एक ओर खड़ा हो गया। तब देवहित ब्राह्मण ने आयुष्मान् उपवाण को शान्त खड़े देखकर इस गाथा के माध्यम से पूछा—

"हे श्रमण! आप सङ्घाटि धारण कर चुपचाप शान्त खड़े हो, क्या चाहते हैं? हे ब्राह्मण! आप को किस वस्तु की आवश्यकता है?"

(उपवाण बोले—) "हे ब्राह्मण! लोक में प्रसिद्ध मुनिस्वरूप भगवान् सुगत को कोई वातरोग पीड़ित कर रहा है। उन्हें उष्ण जल की आवश्यकता है। यदि आप उसकी व्यवस्था कर सकें तो कर दें।

"क्यों कि वे तथागत पूजनीयों में पूजनीय एवं सत्करणीयों में सत्करणीय हैं। आदरणीयों में आदरणीय भी हैं, उन्हीं को स्नान के लिये उष्णोदक की आवश्यकता है"॥

तब देवहित ब्राह्मण ने अपने भृत्यों से उष्णोदक भरी बालटियों की बहँगी उठवाकर साथ ही उनको फाणित (सीरे) का पुट (दोना) भी दिया। यह सब लेकर आयुष्मान् उपबाण भगवान् के पास लौट आये। तथा भगवान् को उस उष्णोदक से स्नान करा कर, उष्ण जल में ही वह फाणित मिलाकर दिया। इसके प्रयोग से भगवान् का वह वातरोग कुछ शान्त हो गया।

एतदनन्तर, देवहित ब्राह्मण भी कुछ समय बाद भगवान् की सेवा में गया, तथा

"कत्थ दज्जा देय्यधम्मं, कत्थ दिन्नं महप्फलं।
कथं हि यजमानस्स, कथं इज्झति दक्खिणा" ति?
"पुब्बेनिवासं यो वेदी, सग्गापायं च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि॥ [ध. प. ४२३ गा.]
"एत्थ दज्जा देय्यधम्मं, एत्थ दिन्नं महप्फलं।
एवं हि यजमानस्स, एवं इज्झति दक्खिणा" ति॥

एवं वुत्ते, देवहितो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं भो गोतम...पे०...उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ ●

१४. महासालसुत्तं

१४. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो ब्राह्मणमहासालो-लूखो [B.178] लूखपापुरणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। [R.176] सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो तं ब्राह्मणमहासालं भगवा एतदवोच—"किन्नु त्वं, ब्राह्मण, लूखो लूखपापुरणो" ति?

वहाँ जाकर उनसे कुशलक्षेम पूछा। कुशलक्षेम पूछने के बाद, एक ओर बैठे उस ब्राह्मण ने भगवान् से प्रश्न किया—

"कैसे दानपात्र को दिया हुआ दान अधिक फलप्रद होता है? कैसे यजमान को दी गयी दक्षिणा फलवती होती है?"

(भगवान्—) "जो अपने पूर्वजन्मों की बातें जानता है, जो स्वर्ग नरक के विषय में जानता है, जो साधना द्वारा अपनी जन्म-मरणपरम्परा क्षीण कर चुका है, जिसने ज्ञान का साक्षात्कार कर लिया है॥ [ध.प., ४२३ गा.]

"दान करने वाला (यजमान) ऐसे सत्पुरुष को ही दान करे। ऐसे यज्ञ करने वाले की ऐसी ही दक्षिणा सफल होती है"॥

(भगवान् द्वारा—) ऐसा कहे जाने पर, देवहित ब्राह्मण भगवान् से यों निवेदन करने लगा—"धन्य हैं आप, भो गौतम!...पूर्ववत्...मुझ को अपना शरणागत समझें॥"●

१४. महासारसूत्र : : पुत्रों द्वारा निष्कासित पिता

१४. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। तब कोई एक ब्राह्मण जो पहले महान् वैभवशाली था, परन्तु आज फटे पुराने वस्त्र पहने हुए भगवान् के पास आया। आकर भगवान् से कुशलक्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए बुद्ध ब्राह्मण से भगवान् ने यों पूछा—"इतने फटे पुराने वस्त्र क्यों पहने हुए हो?"

"इध मे, भो गोतम, चत्तारो पुत्ता। ते मं दारेहि संपुच्छ घरा निक्खामेन्ती" ति।

"तेन हि त्वं, ब्राह्मण, इमा गाथायो परियापुणित्वा सभायं महाजनकाये सन्निपतिते पुत्तेसु च सन्निसिन्नेसु भासस्सु—

"येहि जातेहि नन्दिस्सं, येसं च भवमिच्छिसं।
ते मं दारेहि संपुच्छ, सा व वारेन्ति सूकरं॥

[N.176] "असन्ता किर मं जम्मा, तात ताता ति भासरे।
रक्खसा पुत्तरूपेन, ते जहन्ति वयोगतं॥

"अस्सो व जिण्णो निब्भोगो, खादना अपनीयति।
बालकानं पिता थेरो, परागारेसु भिक्खति॥

"दण्डो व किर मे सेय्यो, यं च पुत्ता अनस्सवा1
चण्डं पि गोणं वारेति, अथो चण्डं पि कुक्कुरं॥

"अन्धकारे पुरे होति, गम्भीरे गाधमेधति।
दण्डस्स आनुभावेन, खलित्वा पतितिट्ठती" ति॥

"भो गौतम! मेरे चार पुत्र हैं, उन्होंने मुझ को अपनी स्त्रियों के परामर्श से घर से निकाल दिया है।"

"तो, ब्राह्मण! जब तुम्हारी समस्त जाति पूर्णतः एकत्र हो गयी हो तुम्हारे पुत्र भी वहाँ आ चुके हो, तब तुम महाजनों के सम्मुख उस सभा में उच्च स्वर से ये गाथाएँ बोलना—

"जिनके पैदा होने पर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई थी, जिनका चिरायु रहना मुझ को अत्यधिक अभीष्ट था; आज वे अपनी स्त्रियों के परामर्श से मुझ को अपने घर से वैसे ही निकाल दे रहे हैं, जैसे कोई कुत्ता किसी सूअर को घर से निकाल देता है॥

"वे नीच एवं जाल्म (खोटे) यद्यपि मुझे अब भी 'पिता जी' ही कहते हैं; किन्तु वे मेरे लिये अब पुत्र रूप में राक्षस हैं; क्यों कि वे मुझे अब इस बुढापे में अकेला छोड़ रहे हैं॥

"जैसे बुड्ढे घोड़े को उसके स्वामी दाना देना बन्द कर देते हैं, वैसे ही उन पुत्रों का यह बूढा पिता आज दूसरों के द्वार पर भिक्षा माँगता फिर रहा है॥

"मेरा यह दण्ड (लाठी) भी इन (पुत्रों) की अपेक्षा मेरे लिये अधिक हितकर है जो सामने आते हुए भड़के साँड़ को या दुष्ट कुत्तों को दूर हटाने में आज भी समर्थ है।

"यह मेरी लाठी अन्धकार में आगे रहती है, गहरे जल की थाह लगा लेती है। इसी के सहारे से मैं ठोकर लगने पर भी बच जाता हूँ॥"

अथ खो सो ब्रह्मणमहासालो भगवतो सन्तिके इमा गाथायो परियापुणित्वा सभायं महाजनकाये सन्निपतिते पुत्तेसु च सन्निसिन्नेसु अभासि—

"येहि जातेहि नन्दिस्सं , येसं च भवमिच्छिसं।
ते मं दारेहि सम्पुच्छ, सा व वारेन्ति सूकरं॥
"असन्ता किर मं जम्मा, तात ताता ति भासरे।
रक्खसा पुत्तरूपेन, ते जहन्ति वयोगतं॥
"अस्सो व जिण्णो निब्भोगो, खादना अपनीयति। [B.179]
बालकानं पिता थेरो, परागारेसु भिक्खति॥
"दण्डो व किर मे सेय्यो, यं चे पुत्ता अनस्सवा।
चण्डं पि गोणं वारेति, अथो चण्डं पि कुक्कुरं॥
"अन्धकारे पुरे होति, गम्भीरे गाधमेधति।
दण्डस्स आनुभावेन, खलित्वा पतितिट्ठती" ति॥

अथ खो नं ब्राह्मणमहासालं पुत्ता घरं नेत्वा न्हापेत्वा पच्चेकं दुस्स-[R.173] ·युगेन अच्छादेसुं। अथ खो सो ब्राह्मणमहासालो एकं दुस्सयुगं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो ब्राह्मणमहासालो भगवन्तं एतदवोच—"मयं, भो गोतम, ब्राह्मणा नाम आचरियस्स आचरियधनं [N.177] परियेसाम। पटिग्गण्हतु मे भवं गोतमो आचरियधनं" ति। पटिग्गहेसि भगवा

यों, उस वैभवशाली ब्राह्मण ने भगवान् से ये गाथाएँ सीख कर कभी अपनी जाति की सभा में, पुत्रों द्वारा अपना स्थान ग्रहण कर लेने पर, महाजनों के बीच खड़े होकर उन गाथाओं को उच्चस्वर से पढना आरम्भ किया—

"जिनके जन्म लेने पर मुझको अत्यधिक प्रसन्नता हुई थी...पूर्ववत्...इसी के सहारे से मैं ठोकर लगने पर भी बच जाता हूँ"॥

तब उस पूर्ववैभवसम्पन्न ब्राह्मण को उसके पुत्रों ने घर ले जाकर स्नान करा कर उसको प्रत्येक ने दुशाला ओढाया। तब वह वैभवशाली ब्राह्मण एक दुशाला साथ में ले कर भगवान् के सम्मुख गया, तथा उनसे कुशल मङ्गल पूछकर एक तरफ बैठते हुए बोला—"भो गौतम! हम ब्राह्मणों में यह परिपाटी चली आ रही है कि हम लोग अपने आचार्य को आचार्य - धन से सम्मानित करें।" अतः भो गौतम! आप मेरी यह भेंट स्वीकार करें। भगवान् ने अनुकम्पा करते हुए यह भेंट स्वीकार कर ली। तब वह

अनुकम्पं उपादाय। अथ खो सो ब्राह्मणमहासालो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...उपासकं मं भवं, धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ •

१५. मानत्थद्धसुत्तं

१५.सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन मानत्थद्धो नाम ब्राह्मणो सावत्थियं पटिवसति। सो नेव मातरं अभिवादेति, न पितरं अभिवादेति, न आचरियं अभिवादेति, न जेट्ठभातरं अभिवादेति। तेन खो पन समयेन भगवा महतिया परिसाय परिवुतो धम्मं देसेति। अथ खो मानत्थद्धस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—"अयं खो समणो गोतमो महतिया परिसाय परिवुतो धम्मं देसेति। यन्नूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं। सचे मं समणो गोतमो आलपिस्सति, अहं पि तं आलपिस्सामि। नो चे मं समणो गोतमो आलपिस्सति, अहं पि तं नालपिस्सामी" ति। अथ खो मानत्थद्धो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा तुण्हीभूतो एकमन्तं [B.180] अट्ठासि। अथ खो भगवा तं नालपि। अथ खो मानत्थद्धो ब्राह्मणो—"नायं [R.178] समणो गोतमो किञ्चि जानाती" ति ततो व पुन निवत्तितुकामो अहोसि। अथ खो भगवा मानत्थद्धस्स ब्राह्मणस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय मानत्थद्धं ब्राह्मणं गाथाय अज्झभासि—

वैभवशाली ब्राह्मण भगवान् से यों बोला—"आप धन्य है, भो गौतम! ...पूर्ववत्...आज से आप मुझे प्राण रहने तक अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें॥" •

१५. मानस्तब्धसूत्र : : अभिमान का त्याग

१५. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय मानस्तब्ध नामक कोई ब्राह्मण श्रावस्ती में रहता था। वह न तो अपनी माता को प्रणाम करता था, न पिता को। न आचार्य को प्रणाम करता था, न ज्येष्ठ भ्राता को। भगवान् कभी धर्मसभा में विराजे हुए धर्मोपदेश कर रहे थे। उस समय मानस्तब्ध ब्राह्मण के मन में यह विचार आया—"यह श्रमण गौतम इस विशाल सभा में विराजे हुए धर्मोपदेश कर रहे हैं, यहाँ मैं भी चलूँ। तब यदि ये मुझसे कुछ संवाद करेंगे तो मैं भी उनसे कुछ बातचीत करूँगा; अन्यथा पुनः लौट आऊँगा।

तब वह मान्तस्तब्ध ब्राह्मण भगवान् के सम्मुख गया। जाकर भगवान् के सम्मुख खड़ा हो गया। परन्तु भगवान् उससे कुछ न बोले। इस पर उस मानस्तब्ध ब्राह्मण ने सोचा—"अवश्य ये श्रमण कुछ नहीं जानते; इसी लिये ये मुझसे कोई संवाद करने का साहस नहीं कर पा रहे हैं। अतः वह वहाँ से पुनः लौट कर चलने की इच्छा करने लगा। तब भगवान् ने उस मानस्तब्ध से कहा—

"न मानं ब्राह्मण साधु, अत्थिकस्सीध, ब्राह्मण।
येन अत्थेन आगच्छि, तमेवमनुब्रूहये" ति॥

अथ खो मानत्थद्धो ब्राह्मणो—"चित्तं मे समणो गोतमो जानाती" ति तत्थेव भगवतो पादेसु सिरसा निपत्विा भगवतो पादानि मुखेन च परिचुम्बति पाणीहि च परिसम्बाहति, नामं च सावेति—"मानत्थद्धाहं, भो गोतम, मानत्थद्धाहं, भो गोतमा" ति। अथ खो सा परिसा अब्भुतचित्तजाता अहोसि—"अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो! अयं हि मानत्थद्धो ब्राह्मणो नेव मातरं अभिवादेति; न पितरं अभिवादेति, न आचरियं अभिवादेति, न जेट्ठभातरं अभिवादेति; अथ च पन समणे गोतमे एवरूपं परमनिपच्चकारं करोती" ति। अथ खो भगवा मानत्थद्धं ब्राह्मणं एतदवोच—"अलं, ब्राह्मण, उट्ठेहि, सके आसने निसीद। यतो ते मयि चित्तं पसन्नं" ति। अथ [N.178] खो मानत्थद्धो ब्राह्मणो सके आसने निसीदित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"केसु न मानं कयिराथ, केसु चस्स सगारवो।
क्यस्स अपचिता अस्सु, क्यस्सु साधु सुपूजिता" ति?

"ब्राह्मण, सन्तों के सम्मुख आकर इस तरह मान करना उचित नहीं। अतः तुम जिस उद्देश्य से यहाँ आये हो, वह उद्देश्य स्पष्ट करो।"

तब वह मानस्तब्ध ब्राह्मण—"ये गौतम मेरे मन की बात समझ तो गये।" तथा वह ब्राह्मण भगवान् के इस व्यवहार से भावविह्वल होकर भगवान् की चरणवन्दना करता हुआ, उनको चरणों को अपने शिर तथा मुख से स्पर्श करते हुए अपने हाथों से दबाने लगा। और साथ ही कहने लगा—"भगवान्! मैं मानस्तब्ध ब्राह्मण हूँ। भो गौतम! मैं मानस्तब्ध ब्राह्मण हूँ"। तब वहाँ बैठी वह धर्मपरिषद् आश्चर्य चकित होती हुई सोचने लगी—"अरे! यह बहुत आश्चर्य की बात है कि यह मानस्तब्ध ब्राह्मण जो न माता को प्रणाम करता था, न पिता को, न आचार्य को, न ज्येष्ठ भ्राता को; वह आज श्रमण गौतम के साथ ऐसा नम्रतापूर्वक व्यवहार कैसे कर रहा है!"

भगवान् ने उस ब्राह्मण से कहा—"ब्राह्मण! अब उठो, अपना आसन ग्रहण करो, क्योंकि तुम्हारा चित्त मेरे प्रति स्नेहिल हो गया है।" तब भगवान् से उस मानस्तब्ध ब्राह्मण ने इस गाथा के माध्यम से यह पूछा—

"भो गौतम! मनुष्य को किनके साथ अभिमान करना चाहिये? किनके प्रति गौरव का भाव रखना चाहिये? वह किसका सम्मान करे? तथा उसके लिये किसकी पूजा करना उचित है?"

"मातरि पितरि चा पि, अथो जेट्ठम्हि भातरि।
आचरिये च चतुत्थम्हि, तेसु न मानं कयिराथ।
तेसु अस्स सगारवो, त्यस्स अपचिता अस्सु।
त्यस्सु साधु सुपूजिता॥"
"अरहन्ते सीतीभूते, कतकिच्चे अनासवे।
निहच्च मानं अत्थद्धो, ते नमस्से अनुत्तरे" ति॥

एवं वुत्ते, मानत्थद्धो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो [B.181] गोतम...पे०...उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ •

१६. पच्चनीकसुत्तं

१६. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन पच्चनीकसातो नाम ब्राह्मणो सावत्थियं पटिवसति। अथ खो पच्चनीकसातस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—"यन्नूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं। यं यदेव समणो गोतमो भासिस्सति तं तदेवस्साहं [R.179] पच्चनीकस्सं" ति। तेन खो पन समयेन भगवा अब्भोकासे चङ्कमि; अथ खो पच्चनीकसातो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं चङ्कमन्तं एतदवोच—"भण, समण, धम्मं" ति।

(भगवान्—) "माता, पिता, ज्येष्ठ भ्राता तथा चतुर्थ आचार्य—इन चार के प्रति सदैव अपने मन में आदर भाव रखना चाहिये। उनके सम्मुख अपना महत्त्वप्रदर्शन नहीं करना चाहिये, अपितु उनके प्रति अपने मन में सदैव पूजा प्रतिष्ठा का भाव रखना चाहिये। उनका सबके सम्मुख गौरव करना चाहिये। उनकी पूजा करना ही उचित है।

"अर्हत् (ज्ञानी) के सम्मुख जाने पर उनके प्रति शान्त भाव से, कृतकृत्य होकर, अभिमान त्याग कर निर्विकार भाव से उन्हें प्रणाम करना चाहिये।"

भगवान् द्वारा ऐसा उपदेश किये जाने पर, वह मानस्तबन्ध ब्राह्मण भगवान् से यों बोला—"आप धन्य हैं, भो गौतम! आप धन्य हैं! ...पूर्ववत्...आज से आप मुझे प्राण रहने तक अपना शरणागत उपासक समझें"॥ •

१६. प्रत्यनीकसूत्र : : कलह से दूर रहना चाहिये

१६. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय एक प्रत्यनीकसात नामक ब्राह्मण श्रावस्ती में रहता था। उस ब्राह्मण के मन में कभी यह विचार हुआ—"मुझे श्रमण गौतम के पास चलना चाहिये। तब वहाँ श्रमण गौतम जो कहेगा उसके विपरीत ही मैं बोलूँगा।" उस समय भगवान् खुले आकाश के नीचे चंक्रमण कर रहे थे। इसी क्षण वह ब्राह्मण

"न पच्चनीकसातेन, सुविजानं सुभासितं।
उपक्किलिट्ठचित्तेन, सारम्भबहुलेन च॥
"यो च विनेय्य सारम्भं, अप्पसादं च चेतसो।
आघातं पटिनिस्सज्ज, स वे जञ्ञा सुभासितं" ति॥

एवं वुत्ते, पच्चनीकसातो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, [N.179] भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ •

१७. नवकम्मिकसुत्तं

१७. एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन नवकम्मिकभारद्वाजो ब्राह्मणो तस्मिं वनसण्डे कम्मन्तं कारापेति। अद्दसा खो नवम्मिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं अञ्ञतरस्मिं सालरुक्खमूले निसिन्नं पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। दिस्वानस्स एतदहोसि—"अहं खो इमस्मिं वनसण्डे कम्मन्तं कारापेन्तो रमामि। अयं समणो गोतमो [B.182] किं कारापेन्तो रमती" ति? अथ खो नवकम्मिकभारद्वाजो ब्राह्मणो येन [R.180] भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

भगवान् के सम्मुख पहुँचा और उनसे निवेदन करने लगा—"श्रमण! मुझे कुछ धर्मोपदेश कीजिये!"

(भगवान् बोले—) "अरे ब्राह्मण! तुम्हारा चित्त मलिन है, तुम निरन्तर कलह के लिये सतत सन्नद्ध रहते हो! ऐसे कलहप्रिय के साथ किसी तरह का संवाद करना उचित नहीं लगता॥

"(इसके विपरीत) जिसने अपने द्वेष (विरोध) भाव तथा चित्त की उच्छृङ्खलता को दबाकर द्वेष का सर्वथा परित्याग कर दिया है वही सुभाषित का महत्त्व समझ सकता है"॥

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह प्रत्यनीकसात ब्राह्मण बोला—"आप गौतम! धन्य हैं!...पूर्ववत्...शरणागत उपासक समझें"॥ •

१७. नवकार्मिकसूत्र : : जङ्गल का नाश

१७. एक समय भगवान् (बुद्ध) **कोसल देश** के किसी वनषण्ड में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय किसी नवकार्मिक भारद्वाज ब्राह्मण ने लकड़ी चिरवाते हुए, उस वनषण्ड में किसी साल वृक्ष के नीचे साधनाहेतु पद्मासन से विराजमान, शरीर को सीधाकर, स्मृतिसम्प्रज्ञान के साथ भगवान् को देखा। उन्हें देखकर उसके मन में यह

"के नु कम्मन्ता करीयन्ति, भिक्खु सालवने तव।
यदेकको अरञ्ञस्मिं, रतिं विन्दति गोतमो" ति?
"न मे वनस्मिं करणीयमत्थि, उच्छिन्नमूलं मे वनं विसूकं।
स्वाहं वने निब्बनथो विसल्लो, एको रमे अरतिं विप्पहाया" ति॥

एवं वुत्ते, नवकम्मिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ •

१८. कट्ठहारसुत्तं

१८. एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स सम्बहुला अन्तेवासिका कट्ठहारका माणवका येन वनसण्डो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा अद्दसंसु भगवन्तं तस्मिं वनसण्डे निसिन्नं पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं [N.180] उपट्ठपेत्वा। दिस्वान येन भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमिंसु; भारद्वाजगोत्तं ब्राह्मणं एतदवोचुं—"यग्घे, भवं जानेय्यासि! असुकस्मिं वनखण्डे समणो निसिन्नो पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा"। अथ खो भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो तेहि माणवकेहि सद्धिं येन सो वनसण्डो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा

विचार होने लगा—"ये श्रमण गौतम यहाँ बैठे हुए क्या कर रहे हैं?" तब वह भगवान् के पास गया, तथा इस गाथा के माध्यम से पूछने लगा—

"हे भिक्षु! इस एकान्त में बैठे हुए आप क्या कार्य कर रहे हैं? अकेले आप यहाँ विराजमान रहकर किस सुख का अनुभव कर रहे हो?"

"हे ब्राह्मण! मेरा इस वन में कोई कार्य नहीं है। मेरे लिये यह समस्त वन कटछट कर समतल हो चुका है। मैं इस वन में दुःख से मुक्त होकर, परमपद प्राप्त कर सांसारिक असन्तोष (आसक्ति) का परित्याग कर एकाकी धर्मसाधनारत रहता हूँ"।

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर...पूर्ववत्...शरणागत उपासक समझें॥ •

१८. काष्ठहारसूत्र : : निर्जन वन में वास

१८. एक समय भगवान् (बुद्ध) **कौसल देश** के किसी वनषण्ड में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय किसी भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण के कुछ शिष्य, लकड़ी चुनने के लिये, उस वनषण्ड में गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि भगवान् किसी वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर शरीर को सीधा कर स्मृति के साथ साधनारत थे। उन्हें देखकर उन शिष्यों ने भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण को वैसी स्थिति में बैठे हुए भगवान् के विषय में बताया।

खो भगवन्तं तस्मिं वनसण्डे निसिन्नं पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। दिस्वान येन भगवा तेनुपङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"गम्भीररूपे बहुभेरवे वने, सुञ्ञं अरञ्ञं विजनं विगाहिय।
अनिञ्जमानेन ठितेन वग्गुना, सुचारुरूपं वत भिक्खु झायसि॥[R.181]
"न यत्थ गीतं न पि यत्थ वादितं, एको अरञ्ञे वनवस्सितो मुनि। [B.183]
अच्छेररूपं पटिभाति मं इदं, यदेकको पीतिमनो वने वसे॥
"मञ्ञामहं लोकधिपतिसहब्यतं, आकङ्खमानो तिदिवं अनुत्तरं।
कस्मा भवं विजनमरञ्ञमस्सितो,तपो इध कुब्बसि ब्रह्मपत्तिया" ति?
"या काचि कङ्खा अभिनन्दना वा, अनेकधातूसु पुथू सदासिता।
अञ्ञाणमूलप्पभवा पजप्पिता, सब्बा मया ब्यन्तिकता समूलिका॥
"स्वाहं अकङ्खो असितो अनूपयो, सब्बेसु धम्मेसु विसुद्धदस्सनो।
पप्पुय्य सम्बोधिमनुत्तरं सिवं, झायामहं ब्रह्म रहो विसारदो" ति॥[N.181]

एवं वुत्ते, भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ ●

यह सुनकर वह ब्राह्मण उस वनषण्ड में गया तथा भगवान् को उस स्थिति में बैठे देखकर, भगवान् के पास आया। आकर वह यह गाथा बोला—

"हे भिक्षु! आप इस घोर, भयानक, शून्य एवं निर्जन अरण्य में बैठ कर भव्य अचल आसन लगाये हुए बहुत अच्छी ध्यानभावना में रत हो।

"जहाँ न किसी का गीत है, न कोई वाद्य। ऐसे अरण्य में एकाकी वनवासी मुनि को देख कर मुझे बहुत आश्चर्य (उद्विग्नता) होता है कि वह कैसे एकाकी इस वन में प्रसन्नता के साथ बैठा है।

"मैं समझता हूँ कि लोकाधिपति के साथ अनुत्तर स्वर्ग की कामना से आप इस निर्जन वन में क्यों वास कर रहे हैं? क्या आप ब्रह्मत्व प्राप्ति हेतु इस तप:साधना में रत हैं?॥"

(भगवान्—) "संसार के पदार्थों में जो कोई भी आकांक्षा, आनन्द या आसक्ति है इच्छा है वे सब अज्ञानमूलक हैं। इन सभी का मैं मूलत: त्याग कर चुका हूँ॥

"इस तरह मैं इन तृष्णाओं तथा इच्छाओं से रहित होकर एकाकी रूप में सभी धर्मों की वास्तविकता जानकर अद्वितीय एवं मङ्गलमय बुद्धत्व को प्राप्त कर हे ब्राह्मण! एकान्त में निर्भय होकर ध्यानभावना में लगा हुआ हूँ"॥

१९. मातुपोसकसुत्तं

१९. सावत्थिनिदानं। अथ खो मातुसोपको ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मातुपोसको ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच— "अहं हि, भो गोतम, धम्मेन भिक्खं परियेसामि, धम्मेन भिक्खं परियेसित्वा मातापितरो पोसेमि। कच्चाहं, भो गोतम, एवङ्कारी किच्छकारी होमी" ति।

"तग्घ त्व, ब्राह्मण, एवङ्कारी किच्चकारी होसि। यो खो, ब्राह्मण, धम्मेन [R.182] भिक्खं परियेसति, धम्मेन भिक्खं परियेसित्वा मातापितरो पोसेति, बहुं पुञ्ञं पसवती" ति।

[B.184] "यो मातरं पितरं वा, मच्चो धम्मेन पोसति।
ताय नं पारिचरियाय, मातापितूसु पण्डिता।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती" ति॥

एवं वुत्ते, मातुपोसको ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ •

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण...पूर्ववत्...शरणागत उपासक समझें॥ •

१९. मातृपोषकसूत्र : : माता पिता पालन से पुण्य

१९. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। तब कोई मातृपोषक ब्राह्मण भगवान् के पास गया। जाकर भगवान् के साथ कुशलक्षेम संवाद कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठा वह ब्राह्मण भगवान् से यों बोला—"भो गौतम! मैं धर्मपूर्वक भिक्षाटन करता हूँ। इस तरह भिक्षाटन कर मैं अपनी माता का भी पालन पोषण करता हूँ। ऐसा करता हुआ मैं उचित करता हूँ कि नहीं?"

"अवश्य तुम, ब्राह्मण! ऐसा करते हुए उचित ही कर रहे हो। ब्राह्मण जो धर्मपूर्वक भिक्षाटन करता है, तथा धर्मपूर्वक भिक्षाटन करता हुआ अपनी माता का पालन पोषण भी करता है, वह बहुत पुण्य कमाता है।

"ब्राह्मण! जो मनुष्य धर्माचरण द्वारा माता या पिता का पालन करता है, उसकी इस माता पिता की परिचर्या को विद्वज्जन बहुत ही प्रशंसा करते हैं। तथा वह देहपात के बाद स्वर्ग में जा कर भी आनन्द का ही उपभोग करता है"॥

२०. भिक्खकसुत्तं

२०. सावत्थिनिदानं। अथ खो भिक्खको ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो भिक्खको ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच— "अहं पि खो, भो गोतम, भिक्खको, भवं पि भिक्खको, इध नो किं नानाकरणं" ति?

"न तेन भिक्खको होति, यावता भिक्खते परे। [N.182]
विस्सं धम्मं समादाय, भिक्खु होति न तावता॥[ध.प., २६६ गा.]
"योध पुञ्ञं च पापं च, बाहित्वा ब्रह्मचरियवा।
सङ्खाय लोके चरति, स वे भिक्खू ति वुच्चती" ति॥[ध.प., २६७ गा.]

एवं वुत्ते, भिक्खको ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥

•

२१. सङ्गारवसुत्तं

२१. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन सङ्गारवो नाम ब्राह्मणो सावत्थियं

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर वह ब्राह्मण बोला—"भो गौतम! आप धन्य हैं!...पूर्ववत्...मुझे, प्राण रहने तक, अपना शरणागत उपासक समझें॥"

•

२०. भिक्षुकसूत्र : : भीख माँगने वाला 'भिक्षु' नहीं

यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। तब कोई गली गली घूमकर भिक्षा करने वाला ब्राह्मण भगवान् के पास गया। जाकर कुशलमङ्गल पूछने के बाद उसने भगवान् से प्रश्न किया—"तो गौतम! मैं भी गली गली घूमकर भिक्षा माँगता हूँ, आप भी ऐसा ही करते हैं; तब बताइये-आप में तथा मुझमें क्या अन्तर (नामकरण) है?"

(भगवान्—) "ब्राह्मण! केवल 'भिक्षा माँगना' कर्म से कोई 'भिक्षु' नहीं कहला सकता। जब तक उसका चित्त दोषयुक्त है तब तक वह भिक्षु कैसे हो सकता है।"

"हाँ, जो संसार के पाप एवं पुण्य की बातों को एक तरफ छोड़कर, ज्ञानपूर्वक सच्चे अर्थ में धर्मसाधना करता है वही यथार्थ में 'भिक्षु' कहलाने का अधिकारी है"॥

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, वह भिखारी ब्राह्मण भगवान् से निवेदन करने लगा—"भो गौतम! आप धन्य है! ...पूर्ववत्...आज से मुझे अपना शरणागत उपासक समझें"॥

•

पटिवसति उदकसुद्धिको, उदकेन परिसुद्धिं पच्चेति, सायं पातं उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरति।

अथ खो आयस्मा आनन्दो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं [R.183] पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। [B.185] एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"इध, भन्ते, सङ्गारवो नाम ब्राह्मणो सावत्थियं पटिवसति उदकसुद्धिको, उदकेन सुद्धिं पच्चेति, सायं पातं उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। साधु, भन्ते, येन सङ्गारवस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन सङ्गारवस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो सङ्गारवो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो सङ्गारवं ब्राह्मणं भगवा एतदवोच—"सच्चं किर त्वं, ब्राह्मण, उदकसुद्धिको, उदकेन सुद्धिं पच्चेसि, सायं पातं उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरसी" ति?

"एवं, भो गोतम।"

---

२१. सङ्गारवसूत्र : : स्नानमात्र से शुद्धि नहीं

२१. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय सङ्गारव नामक एक ब्राह्मण श्रावस्ती में रहता था, जो उदकस्नानमात्र द्वारा पापों से शुद्धि मानता था। अत: वह प्रतिदिन प्रात:काल तथा सायङ्काल बहुत समय जल में ही पड़ा रहता था।

तब, कभी आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्न में शरीर के वस्त्रों को व्यवस्थित कर श्रावस्ती में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। वहाँ से लौटकर वे भगवान् की सेवा में पहुँचे तथा उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एकान्त में बैठने के बाद, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! वहाँ सङ्गारव नामक ब्राह्मण...पूर्ववत्...जल में ही पड़ा रहता है। अच्छा हो, भन्ते, यदि आप कृपाकर सङ्गारव ब्राह्मण के घर पधारें।" भगवान् ने चुप रहते हुए आयुष्मान् आनन्द का निवेदन स्वीकार कर लिया।

तब भगवान् कभी प्रात:काल...सङ्गारव ब्राह्मण के घर गये तथा वहाँ प्राप्त आसन पर विराजे सङ्गारव ब्राह्मण भगवान् के सम्मुख आया। ...एक ओर बैठे भगवान् ने सङ्गारव ब्राह्मण से पूछा—"क्या ब्राह्मण! वस्तुत: स्नानमात्र से मनुष्य की आभ्यन्तर शुद्धि मानते हो?"

"किं पन त्वं, ब्राह्मण, अत्थवसं सम्पस्समानो उदकसुद्धिको, उदकसुद्धिं पच्चेसि, सायं पातं उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरसी" ति? [N.183]

"इध मे, भो गोतम, यं दिवा पापकम्मं कतं होति तं सायं न्हानेन पवाहेमि, यं रत्तिं पापकम्मं कतं होति तं पातं न्हानेन पवाहेमि। इमं ख्वाहं, भो गोतम, अत्थवसं सम्पस्समानो उदकसुद्धिको, उदकेन सुद्धिं पच्चेमि, सायं पातं उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरामी" ति।

"धम्मो रहदो ब्राह्मण सीलतित्थो, अनाविलो सब्भि सतं पसत्थो।
यत्थ हवे वेदगुनो सिनाता, अनल्लगत्ता व तरन्ति पारं" ति॥

एवं वुत्ते, सङ्गारवो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥

•

२२. खोमदुस्ससुत्तं

२२. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति खोमदुस्सं नामं सक्यानं निगमो। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय खोमदुस्सं निगमं पिण्डाय पाविसि। तेन खो पन समयेन खोमदुस्सका ब्राह्मणगहपतिका [R.184] सभायं सन्निपतिता होन्ति केनचिदेव करणीयेन, देवो च एकमेकं फुसायति। [B.186]

"हाँ, गौतम!"

"ब्राह्मण! तुम किस उद्देश्य से उदक से शुद्धि होना मानते हो?"

"भो गौतम! दिन भर में मुझसे जो पाप होते हैं, उन्हें सायङ्काल उदक से स्नान कर बहा देता हूँ। तथा रात्रि में जो पाप मुझसे पाप होते हैं उन्हें मैं प्रात:काल स्नान कर बहा देता हूँ। हे गौतम! मैं इसी उद्देश्य से उदकशुद्धिक सिद्धान्त को मानता हूँ। और इसी लिये मैं प्राय: सायं जल में पड़ा रहता हूँ।"

(भगवान्—) "हे ब्राह्मण! धर्म ही जलाशय है, शील का आचरण उसमें उतरने की सीढियाँ (तीर्थ=घाट) हैं। जो कि पूर्णत: स्वच्छ है। विद्वज्जनों द्वारा यह प्रशस्त है। जिसमें परम पुरुष ही स्नान कर पवित्रशरीर हो कर भवसागर के पार चला जाता है।"

(भगवान् द्वारा) इतना कहे जाने पर, सङ्गारव ब्राह्मण बोला—"भो गौतम! आप धन्य है!...पूर्ववत्...मुझे अपना शरणागत उपासक समझें॥"

•

२२. क्षोमदुष्यकसूत्र : : सन्त के लक्षण

२२. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्य जनपद के **क्षोमदुष्यक** नामक एक शाक्यों के निगम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कभी भगवान्...क्षोमदुष्यक

अथ खो भगवा येन सा सभा तेनुपसङ्कमि। अद्दसंसु खोमदुस्सका ब्राह्मणगहपतिका भगवन्तं, दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान एतदवोचुं—"के च मुण्डका समणका, के च सभाधम्मं जानिस्सन्ती" ति? अथ खो भगवा खोमदुस्सके ब्राह्मणगहपतिके गाथाय अज्झभासि—

"नेसा सभा यत्थ न सन्ति सन्तो, सन्तो न ते ये न वदन्ति धम्मं।
रागं च दोसं च पहाय मोहं, धम्मं वदन्ता च भवन्ति सन्तो" ति॥

एवं वुत्ते, खोमदुस्सका ब्राह्मणगहपतिका भगवन्तं एतदवोचुं—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम; सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति, एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एते मयं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छाम धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते सरणं गते" ति॥ •

उपासकवग्गो दुतियो॥

तस्सुद्दानं

कसि उदयो देवहितो, अञ्ञतरमहासालं।
मानत्थद्धं पच्चनीकं, नवकम्मिककट्ठहारं।
मातुपोसकं भिक्खको, सङ्गारवो च खोमदुस्सेन द्वादसा ति॥ •

ब्राह्मणसंयुत्तं समत्तं॥

में भिक्षाकर्म हेतु प्रविष्ट हुए। उस समय क्षोमदुष्यकवासी ब्राह्मण गृहस्थ किसी कार्यविशेष से सभा में एकत्र थे। बूँदाबाँदी भी हो रही थी। भगवान् भी उस सभा में पधारे! उस समय कुछ क्षोमदुष्यकवासी कुछ तरुण भी उस सभा में उपस्थित थे।

भगवान् को देख कर वे बोले उठे—"अरे ये श्रमण मुण्डक कौन होते हैं! ये सभा में उठना बैठना या बोलना क्या जानें!" तब भगवान् ने उन ब्राह्मणगृहपतियों को यह गाथा कही—

"वह सभा वास्तविक सभा नहीं, जहाँ सन्त न विराजमान हो। इसी तरह वे सन्त भी वास्तविक सन्त नहीं जो धर्मप्रवचन में निपुण न हों। राग, द्वेष, एवं मोह का त्याग का जो एकमात्र धर्म का ही प्रवचन करते हैं वे ही वस्तुतः 'सन्त' हैं॥

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वे उस सभा में उपस्थित क्षोमदुष्यकवासी

सभासद् यों बोले—"आप, गौतम! धन्य हैं...पूर्ववत्...अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें॥"

•

उपासकवर्ग समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—११. कृषिभारद्वाजसूत्र, १२. उदयसूत्र, १३. देवहितसूत्र, १४. महासारसूत्र, १५. मानस्तब्ध-सूत्र, १६. प्रत्यनीकसूत्र, १७. नवकार्मिकसूत्र, १८. काष्ठहारसूत्र, १९. मातृपोषकसूत्र, २०. भिक्षुक-सूत्र, २१. सङ्गारवसूत्र, २२. क्षोमदुष्यकसूत्र॥

सप्तम ब्राह्मणसंयुक्त भी समाप्त॥

८. वङ्गीससंयुत्तं

१. निक्खन्तसुत्तं

[N.185, B.187, R.185] १. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा वङ्गीसो आळवियं विहरति अग्गाळवे चेतिये आयस्मता निग्रोधकप्पेन उपज्झायेन सद्धिं। तेन खो पन समयेन आयस्मा वङ्गीसो नवको होति अचिरपब्बजितो ओहिय्यको विहारपालो। अथ खो सम्बहुला इत्थियो समलङ्करित्वा येन अग्गाळवको आरामो तेनुपसङ्कमिंसु विहारपेक्खिकायो। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स ता इत्थियो दिस्वा अनभिरति उप्पज्जति, रागो चित्तं अनुद्धंसेति। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि— ''अलाभा वत मे, न वत मे लाभा; दुल्लद्धं वत मे, न वत मे सुलद्धं; यस्स मे अनभिरति उप्पन्ना, रागो चित्तं अनुद्धंसेति, तं कुतेत्थ लब्भा यं मे परो अनभिरतिं विनोदेत्वा अभिरतिं उप्पादेय्य। यन्नूनाहं अत्तना व अत्तनो अनभिरतिं विनोदेत्वा अभिरतिं उप्पादेय्यं'' ति। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो अत्तना व अत्तनो अनभिरतिं विनोदेत्वा अभिरतिं उप्पादेत्वा तायं वलायं इमा गाथायो अभासि—

''निक्खन्तं वत मं सन्तं, अगारस्मानगारियं।
वितक्का उपधावन्ति, पगब्भा कण्हतो इमे॥

---

८. वङ्गीशसंयुक्त

१. निष्क्रान्तसूत्र : : **वङ्गीश का दृढ सङ्कल्प**

१. ऐसा मैने सुना है। एक समय आयुष्मान् बङ्गीश आळवी स्थित अग्गाळव चैत्य में अपने उपाध्याय आयुष्मान् न्यग्रोधकल्प के साथ ठहरे हुए थे। उस समय आष्युमान् वङ्गीश अभी नये ही प्रव्रजित हुए थे तथा विहार की देखभाल के लिये नियुक्त कर दिये गये थे। उसी अवसर पर कभी कुछ स्त्रियाँ सजधजकर विहार में दर्शन हेतु वहाँ चली आयीं। उन्हें देख कर आयुष्मान् वङ्गीश का चित्त धर्म के प्रति अनभिरत (अनुत्सुक) हो गया तथा उन स्त्रियों के प्रति आसक्त हो गया। परन्तु वङ्गीश को तत्काल ध्यान आया— ''अरे यह तो बहुत अनुचित हो रहा है; यह मेरा दौर्भाग्य ही है, सौभाग्य नहीं कि मेरी यह धर्म के प्रति अनुत्कण्ठा तथा इन स्त्रियों के प्रति आसक्ति हो। अब यह कैसे होगा कि कोई अन्य अधिकारी साधक आकर मेरी इस अनभिरत तथा आसक्ति को दूर करे! तो क्यों न मैं स्वयं ही इस धार्मिक अनुत्कण्ठा तथा इन स्त्रियों के प्रति चित्त में उत्पन्न आसक्ति को विवेकपूर्वक दूर कर लूँ।'' तब आयुष्मान् वङ्गीश ने अपने चित्त की इस धर्म के प्रति अनभिरति को नष्ट कर तथा उसमें अभिरति उत्पन्न करते हुए ये गाथाएँ कहीं—

"उग्गपुत्ता महिस्सासा, सिक्खिता दळ्हधम्मिनो।
समन्ता परिकिरेय्युं, सहस्सं अपलायिनं॥
"सचे पि एत्ततो भिय्यो, आगमिस्सन्ति इत्थियो।
नेव मं ब्याधयिस्सन्ति, धम्मे सम्हि पतिट्ठितं॥
"सक्खी हि मे सुतं एतं, बुद्धस्सादिच्चबन्धुनो।
निब्बानगमनं मग्गं, तत्थ मे निरतो मनो। [R.186]
"एवं चे मं विहरन्तं, पापिम उपगच्छसि।
तथा मच्चु करिस्सामि, न मे मग्गं पि दक्खसी" ति॥ ●

२. अरतिसुत्तं

२. एकं समयं आयस्मा वङ्गीसो आळवियं विहरति अग्गाळवे चेतिये निग्रोधकप्पेन उपज्झायेन सद्धिं। तेन खो पन समयेन आयस्मा [N.186, B.188] निग्रोधकप्पो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो विहारं पविसति, सायं वा निक्खमति अपरज्जु वा काले। तेन खो पन समयेन आयस्मतो वङ्गीसस्स अनभिरति उप्पन्ना होति, रागो चित्तं अनुद्धंसेति। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि—"अलाभा वत मे, न वत मे लाभा; दुल्लद्धं वत मे, न वत मे सुलद्धं; यस्स मे अनभिरति उप्पन्ना,

---

"घर से निकल कर प्रव्रजित हुए मेरे मन में ये अशुभ एवं पापमय सङ्कल्प क्यों उठ रहे हैं!

"श्रेष्ठजनों के पुत्र, शिक्षित, महाधनुर्धर एवं दृढपराक्रमशाली पुरुष भी आकर युद्ध में पीठ न दिखाने वाले मुझ पर हजारों बाण बरसावें॥

"या हजारों स्त्रियाँ अलङ्कृत होकर मेरे सामने आवें तो भी अब यह मेरा मन विचलित नहीं होगा; क्यों कि अब यह मेरा मन सम्यक् प्रकार से धर्म में प्रतिष्ठित हो गया है॥

"मैने अपने इन्हीं कानों से सूर्यकुलोत्पन्न भगवान् बुद्ध को उपदेश करते हुए सुना है कि निर्वाण की ओर जाने वाला मार्ग कौन सा है। उसमें मेरा यह मन रम चुका है।

'इस तरह साधना करते हुए मुझको हे पापत्मन्! मृत्यु! यदि तुम मुझको बलपूर्वक घेरना चाहोगे तो मैं ऐसी स्थिति बना दूँगा कि तुम मेरा मार्ग भी न देख पाओगे!"॥●

२. अरतिसूत्र : : राग का त्याग

एक समय आयुष्मान् वङ्गीश आळवी के अग्गाळव चैत्य में अपने उपाध्याय आयुष्मान् न्यग्रोधकल्प के साथ ठहरे हुए थे। उस समय आयुष्मान् न्यग्रोधकल्प में भिक्षा करने के बाद साधनास्थल में प्रविष्ट होते तो सायङ्काल होने पर या दूसरे दिन वहाँ से

रागो चित्तं अनुद्धंसेति; तं कुतेत्थ लब्भा यं मे परो अनभिरतिं विनोदेत्वा अभिरतिं उप्पादेय्य। यन्नूनाहं अत्तना व अत्तनो अनभिरतिं विनोदेत्वा अभिरतिं उप्पादेय्यं'' ति। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो अत्तना व अत्तनो अनभिरतिं विनोदेत्वा अभिरतिं उप्पादेत्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि—

''अरतिं च रतिं च पहाय, सब्बसो गेहसितं च वितक्कं।
वनथं न करेय्य कुहिञ्चि, निब्बनथो अरतो स हि भिक्खु॥
''यमिध पठविं च वेहासं, रूपगतं च जगतोगधं।
किञ्चि परिजीयति सब्बमनिच्चं, एवं समेच्च चरन्ति मुतत्ता॥
''उपधीसु जना गधितासे, दिट्ठसुते पटिघे च मुते च।
एत्थ विनोदय छन्दमनेजो, यो एत्थ न लिम्पति तं मुनिमाहु॥
[R.187] ''अथ सट्ठिनिस्सिता सवितक्का, पुथू जनताय अधम्मा निविट्ठा।
[N.187] न च वग्गगतस्स कुहिञ्चि, नो पन दुट्ठुल्लभाणी स भिक्खु॥
''दब्बो चिररत्तसमाहितो, अकुहको निपको अहिहालु।
सन्तं पदं अज्झगमा मुनि पटिच्च, परिनिब्बुतो कङ्खति कालं'' ति॥ •

३. पेसलसुत्तं

३. एकं समयं आयस्मा वङ्गीसो आळवियं विहरति अग्गाळवे चेतिये

निकलते थे। इस कारण आयुष्मान् वङ्गीश को धर्मसाधना में अनुत्कण्ठा एवं सांसारिक पदार्थों में आसक्ति होने लगी। तब आयुष्मान् वङ्गीश को तत्काल ध्यान आया—...पूर्ववत्...ये गाथाएं कहीं—

''साधारण जन देखे, सुने एवं अनुभव किये हुए धर्मों के प्रति सांसारिक पदार्थों में लुब्ध रहते हैं। परन्तु स्थिरचित्त ज्ञानिजन इनके प्रति अपनी इच्छाओं को दबाकर इनमें लिप्त नहीं होते। ऐसे साधक को ही 'मुनि' कहते हैं॥

''जो साठ मिथ्या धारणाएँ पृथग्जनों को आवृत किये रहती हैं, उनमें जो लिप्त नहीं होता; जो किसी को कोई अपशब्द (हीनस्तर की बात) नहीं बोलता वही 'भिक्षु' कहलाता है॥

''बुद्धिमान्, चिरकाल से समाहितचित्त, ढोंग न रखने वाले, दक्ष एवं निर्लोभ जिस मुनि ने शान्त पद जान कर निर्वाण को प्राप्त कर लिया है वह अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा है''॥ •

३. पेशलसूत्र : : अभिमान का त्याग

३. एक समय आयुष्मान् वङ्गीश आळवी में...पूर्ववत्...आयुष्मान् वङ्गीश अपनी

आयस्मता निग्रोधकप्पेन उपज्झायेन सद्धिं। तेन खो पन समयेन आयस्मा [B.189] वङ्गीसो अत्तनो पटिभानेन पेसले भिक्खू अतिमञ्ञति। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि—"अलाभा वत मे, न वत मे लाभा; दुल्लद्धं वत मे, न वत मे सुलद्धं; य्वाहं अत्तनो पटिभानेन अञ्ञे पेसले भिक्खू अतिमञ्ञामी" ति। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो अत्तना व अत्तनो विप्पटिसारं उप्पादेत्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि—

"मानं पजहस्सु गोतम, मानपथं च पजहस्सु।
असेसं मानपथस्मिं, सम्मुच्छितो विप्पटिसारीहुवा चिररत्तं॥

"मक्खेन मक्खिता पजा, मानहता निरयं पपतन्ति।
सोचन्ति जना चिररत्तं, मानहता निरयं उपपन्ना॥

"न हि सोचति भिक्खु कदाचि, मग्गजिनो सम्मापटिपन्नो।
कित्तिं च सुखं च अनुभोति, धम्मदसो ति तमाहु पहितत्तं॥

"तस्मा अखिलोध पधानवा, नीवरणानि पहाय विसुद्धो। [R.188]
मानं च पहाय असेसं, विज्जायन्तकरो समितावी" ति॥

प्रत्युत्पन्नमतिता से दूसरे भिक्षुओं को उद्विग्न करते रहते थे। परन्तु अन्त में आयुष्मान् वङ्गीश को विचार हुआ—"ऐसा करना मेरे लिये बहुत अनुचित है कि मैं अपनी प्रत्युत्पन्नमति से दूसरों को उद्विग्न करूँ।" तब आयुष्मान् वङ्गीश ने स्वयं ही अपना प्रायश्चित्त कर उस समय ये गाथाएँ कहीं—

"हे गौतम शिष्य! यह वृथाभिमान त्याग दे। अभिमान के मार्ग से दूर हट। इस अभिमान के मार्ग में भटक कर बहुत दिनों तक पश्चात्ताप करते रहेगा!॥

"यह समस्त अपने दर्प (वृथाभिमान) में मत्त है। अभिमानियों का अन्त में नरक में पात होता है। वे इस कारण (नकर में उत्पन्न होकर) बहुत काल तक शोकमान रहते हैं॥

"परन्तु भिक्षु (साधक) कभी शोक नहीं करता, जिसने मार्ग को जीत लिया हो। ऐसा सम्यक्प्रतिपन्न साधक चिरकाल तक सुखानुभव करता है। लोक में यश प्राप्त करता है। धर्म का साक्षात्कार करने वाला ही 'धर्मात्मा' कहलाता है॥

"अतः, ओ साधक! मन के मैल को दूर कर उत्साही बन। बन्धनों को काटकर विशुद्ध हो जा। तथा अपने इस वृथाभिमान को सर्वथा दबा दें। यों शान्तचित्त होकर साधक ज्ञानपूर्वक अपने अन्त की प्रतीक्षा करता है॥"

४. आनन्दसुत्तं

[N.188] ४. एकं समयं आयस्मा आनन्दो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आयस्मा आनन्दो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि आयस्मता वङ्गीसेन पच्छासमणेन। तेन खो पन समयेन आयस्मतो वङ्गीसस्स अनभिरति उप्पन्ना होति, रागो चित्तं अनुद्धंसेति। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो आयस्मन्तं आनन्दं गाथाय अज्झभासि—

"कामरागेन डय्हामि, चित्तं, मे परिडय्हति।
साधु निब्बापनं ब्रूहि, अनुकम्पाय गोतमा" ति॥
"सञ्ञाय विपरियेसा, चित्तं ते परिडय्हति।
निमित्तं परिवज्जेहि, सुभं रागूपसंहितं॥
"सङ्खारे परतो पस्स, दुक्खतो मा च अत्ततो।
निब्बापेहि महारागं, मा डय्हित्थो पुनप्पुनं॥
[B.190] "असुभाय चित्तं भावेहि, एकग्गं सुसमाहितं।
सति कायगता त्यत्थु, निब्बिदाबहुलो भव॥
"अनिमित्तं, च भावेहि, मानानुसयमुज्जह।
ततो मानाभिसमया, उपसन्तो चरिस्ससी" ति॥ •

---

४. आनन्दसूत्र : : कामराग से मुक्ति

४. एक समय आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्न में, वस्त्रों को व्यवस्थित कर...आयुष्मान् वङ्गीश के साथ भिक्षाहेतु श्रावस्ती में प्रविष्ट हुए। उस समय आयुष्मान् वङ्गीश को धर्म के प्रति अनभिरुचि तथा सांसारिक विषयों के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई। इसका चित्त राग से डावाँडोल होने लगा। तब आयुष्मान् वङ्गीश ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—

"मैं कामराग से जल रहा हूँ। चित्त भी मेरा जल रहा है। हे गौतम शिष्य! कृपाकर उसकी शान्ति का कोई उचित उपाय बताइये?"

(आनन्द—) "मन के भ्रान्त होने से वह जल रहा है। राग-उत्पादक इस शुभ लगने वाले आकर्षण का त्याग कर दो"॥

"अपने संस्कारों को अन्य के संस्कारों के समान देखो, उन्हें दुःखमय तथा अनात्म समझो। इस तरह इस महाराग का निर्वापण (बुझाना) कर दो। इस तरह तुम्हारा यह बार बार जलना समाप्त हो जायगा॥

५. सुभासितसुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"चतूहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागता वाचा सुभासिता होति, नो दुब्भासिता; अनवज्जा च अननुवज्जा च विञ्ञूनं। कतमेहि चतूहि? १. इध, भिक्खवे, [R.189] भिक्खु सुभासितं येव भासति नो दुब्भासितं, २. धम्मं येव भासति नो अधम्मं, ३. पियं येव भासति नो अप्पियं, ४. सच्चं येव भासति नो अलिकं। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि अङ्गेहि समन्नागता वाचा सुभासिता होति, नो दुब्भासिता, अनवज्जा च अनुनुवज्जा च विञ्ञूनं" ति।

६. इदमवोच भगवा, इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था— [N.189]

"सुभासितं उत्तममाहु सन्तो, धम्मं भणे नाधम्मं तं दुतियं।
पियं भणे नाप्पियं तं ततियं, सच्चं भणे नालिकं तं चतुत्थं" ति॥

"तुम दुःख, अनित्य एवं अनात्म की भावना करो, वृथाभिमान तथा दर्प का त्याग कर दो। तब इस मान के प्रहाण (नाश) से तुम शान्तचित्त होकर विचरण करोगें"॥ ●

५. सुभाषित सूत्र : : सुभाषित के लक्षण

५. यह सूत्र श्रावस्ती में ही...। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाया तथा वे उनको यों उपदेश करने लगे—

भिक्षुओ! चार अङ्गों से युक्त होने पर वचन सुभाषित होता है, दुर्भाषित नहीं; विद्वानों से अनिन्द्य होता है, निन्द्य नहीं। किन चार अङ्गों से?

(१) भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु सुभाषित ही बोलता है, दुर्भाषित नहीं;

(२) धर्मपूर्वक ही भाषण करता है, अधर्मपूर्वक नहीं;

(३) प्रिय वचन ही बोलता है, अप्रिय वचन नहीं; एवं

(४) सत्य वचन ही बोलता है, असत्य वचन नहीं। भिक्षुओ! इन चार अङ्गों से युक्त वाणी ही सुभाषित होती है, दुर्भाषित नहीं; विद्वानों द्वारा अनिन्दनीय ही होती है, निन्दनीय नहीं।"

६. भगवान् ने यों कहा। यह कहकर भगवान् ने गाथाओं के माध्यम से यह भी कहा—

"सन्तों ने सुभाषित को ही श्रेष्ठ 'वचन' कहा है। धर्मपूर्वक ही भाषण करना चाहिये, अधर्मपूर्वक नहीं। प्रिय वचन ही बोलना चाहिये, अप्रिय वचन नहीं। सत्यभाषण ही करना चाहिये, असत्य भाषण नहीं"।

७. अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"पटिभाति मं भगवा, पटिभाति मं सुगता" ति।

"पटिभातु तं, वङ्गीसा" ति भगवा अवोच।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

"तमेव वाचं भासेय्य, यायत्तानं न तापये।
परे च न विहिंसेय्य, सा वे वाचा सुभासिता॥
"पियवाचं व भासेय्य, या वाचा पटिनन्दिता।
यं अनादाय पापानि, परेसं भासते पियं॥
[B.191] "सच्चं वे अमता वाचा, एस धम्मो सनन्तनो।
सच्चे अत्थे च धम्मे, च, आहु सन्तो पतिट्ठिता॥
"यं बुद्धो भासते वाचं, खेमं निब्बानपत्तिया।
दुक्खस्सन्तकिरियाय, सा वे वाचानमुत्तमा" ति॥ •

६. सारिपुत्तसुत्तं

८. एकं समयं आयस्मा सारिपुत्तो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ-पिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू धम्मिया कथाय

---

७. तब आयुष्मान् वङ्गीश ने आसन से उठकर, उत्तरासङ्ग (ऊपर का वस्त्र) को एक कन्धे पर कर, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर यों कहा—"भगवन्! मैं कुछ कहना चाहता हूँ, सुगत! मैं कुछ बोलना चाहता हूँ।"

"कहो, वङ्गीश! तुम्हें मेरी अनुज्ञा है"—भगवान् ने यों आदेश दिया। तब आयुष्मान् वङ्गीश ने समयोचित वाणी से भगवान् की स्तुति करते हुए यह कहा—

"साधक को वही वाणी बोलनी चाहिये जिसे बोलने के बाद पश्चाताप न करना पड़े तथा उससे दूसरों को कोई कष्ट भी न हो। ऐसी वाणी को ही 'सुभाषित' कहते हैं॥

"प्रियवचन ही बोलने चाहिये जो सुनने वाले मधुर लगे तथा उसको प्रसन्नताधायक हों। जो अपनी वाणी से दूसरों के दोष नहीं निकालता वही 'प्रिय वक्ता' कहलाता है॥

"सत्यभाषण ही सर्वोत्तम है। यह सनातन धर्म है। क्यों कि सत्यभाषण को ही विद्वानों ने प्रयोजनयुक्त तथा धर्म में प्रतिष्ठित बताया है।

"अथ च, बुद्ध जो क्षेम तथा निर्वाण की प्राप्ति एवं दुःखों का अन्त करने के लिये वचन बोलते हैं वे तो सबसे उत्तम (श्रेष्ठ) वचन (वाणी) हैं॥" •

सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति पोरिया वाचाय विस्सट्ठाय [N.190] अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। अथ खो आयस्मतो [R.190] वङ्गीसस्स एतदहोसि—"अयं खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति पोरिया वाचाय विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। यन्नूनाहं आयस्मन्तं सारिपुत्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवेय्यं" ति।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येनायस्मा सारिपुत्तो तेनञ्जलिं पणामेत्वा आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"पटिभाति मं, आवुसो सारिपुत्त, पटिभाति मं, आवुसो सारिपुत्ता" ति।

"पटिभातु तं, आवुसो वङ्गीसा" ति।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो आयस्मन्तं सारिपुत्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

"गम्भीरपञ्ञो मेधावी, मग्गामग्गस्स कोविदो।
सारिपुत्तो महापञ्ञो, धम्मं देसेति भिक्खुनं॥

"सङ्खित्तेन पि देसेति, वित्थारेन पि भासति।
साळिकायिव निग्घोसो, पटिभानं उदीरयि॥

---

६. सारिपुत्रसूत्र : : सारिपुत्र की प्रशंसा

८. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र **श्रावस्ती** के जेतवन में साधना हेतु ठहरे हुए थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को धर्मोपदेश द्वारा सन्दृष्ट, समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। उन के धर्मोपदेश के वचन सभ्य, स्पष्ट, निर्दोष एवं सार्थक थे। सामने बैठे हुए भिक्षु भी उसको बहुत आदरपूर्वक मन लगा कर, ध्यान देकर अवहितश्रोत्र हो (कान लगा) कर सुन रहे थे। तब आयुष्मान् वङ्गीश के मन में हुआ कि...ऐसे अवसर पर मैं भी क्यों न सारिपुत्र की समयोचित वाणी से, गाथा के माध्यम से, स्तुति करूँ।

तब आयुष्मान् वङ्गीश...पूर्ववत्...गाथाओं से यों स्तुति करने लगा—

"गम्भीर प्रज्ञावाले, बुद्धिमान्, सत् एवं असत् के ज्ञाता ये सारिपुत्र महाप्रज्ञ भिक्षुओं को धर्मोपदेश कर रहे हैं।

"वे संक्षेप में भी उपदेश करते हैं, उसका समयोचित विस्तार भी करते हैं। उनका स्वर शारिका (मैंना) के समान मधुर है। उनकी प्रत्युत्पन्नमतिता उच्च स्तर की है।

[B.192] "तस्स तं देसयन्तस्स, सुणन्ति मधुरं गिरं।
उदग्गचित्ता मुदिता, सोतं ओधेन्ति भिक्खवो" ति॥ •

७. पवारणासुत्तं

९. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सब्बेहेव अरहन्तेहि। तेन खो पन समयेन भगवा तदहुपोसथे पन्नरसे पवारणाय भिक्खुसङ्घपरिवुतो अब्भोकासे निसिन्नो होति। अथ खो भगवा तुण्हीभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"हन्द दानि, भिक्खवे, पवारेमि वो। न च मे किञ्चि गरहथ कायिकं वा वाचसिकं वा" ति?

१०. एवं वुत्ते, आयस्मा सारिपुत्तो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"न खो मयं, भन्ते, भगवतो किञ्चि गरहाम कायिकं वा वाचसिकं वा। भगवा हि, भन्ते, अनुप्पन्नस्स मग्गस्स उप्पादेता,
[R.191] असञ्जातस्स मग्गस्स सञ्जनेता, अनक्खातस्स मग्गस्स अक्खाता, मग्गञ्ञू मग्गविदू मग्गकोविदो। मग्गानुगा च, भन्ते, एतरहि सावका विहरन्ति पच्छा

उनके उपदेश की वाणी मधुर, आनन्ददायक, सुनने में मीठी, तथा सुन्दर है, अतएव ये भिक्षुजन उनको प्रसन्न (उदग्र) एवं पमुदितचित्त होकर ध्यानपूर्वक कान लगा कर सुन रहे हैं"॥ •

७. प्रवारणासूत्र : : प्रवारणा कर्म

९. एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती के** पूर्वारामस्थित मृगारमातृप्रासाद में पाँच सौ भिक्षुओं के, जो कि सभी अर्हत् हो चुके थे, विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ साधनाहेतु विराजमान थे।

उस समय भगवान् पञ्चदशी (पूर्णिमा) के उपोसथ के दिन प्रवारणा के लिये सम्मिलित हुए भिक्षुसङ्घ के मध्य खुले आकाश के नीचे विराजमान थे। तब भगवान् भिक्षुसङ्घ को चुप (मौन) देखकर भिक्षुसङ्घ से कहा—"भिक्षुओ मैं अपनी प्रवारणा (आत्मशुद्धि का आश्वासन) देता हूँ। क्या तुम में से किसी ने मेरा कोई निन्दनीय कायिक वाचिक दोष तो नहीं देखा?"

१०. भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् सारिपुत्र ने...पूर्ववत्...भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! हम भगवान् पर किसी भी प्रकार का कायिक या वाचिक दोष नहीं लगा सकते! भन्ते! आप तो हमारे लिये अनुत्पन्न मार्ग के उत्पादक हैं, अज्ञात मार्ग के बताने वाले हैं, न कहे मार्ग के कहने वाले हैं, तथा आप स्वयं अपने आप में मार्ग को

समन्नागता; अहं च खो, भन्ते, भगवन्तं पवारेमि। न च मे भगवा किञ्चि गरहति कायिकं वा वाचसिकं वा'' ति?

''न ख्वाहं ते, सारिपुत्त, किञ्चि गरहामि कायिकं वा वाचसिकं वा। पण्डितो त्वं, सारिपुत्त, महापञ्ञो त्वं, सारिपुत्त, पुथुपञ्ञो त्वं, सारिपुत्त, हासपञ्ञो त्वं, सारिपुत्त, जवनपञ्ञो त्वं, सारिपुत्त। सेय्यथापि, सारिपुत्त, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स जेट्ठपुत्तो पितरा पवत्तितं चक्कं सम्मदेव अनुप्पवत्तेति; एवमेव खो त्वं, सारिपुत्त, मया अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेसी'' ति।

''नो चे किर मे, भन्ते, भगवा किञ्चि गरहति कायिकं वा वाचसिकं वा। इमेसं पन, भन्ते, भगवा पञ्चन्नं भिक्खुसतानं न किञ्चि गरहति कायिकं वा वाचसिकं वा'' ति।

इमेसं पि ख्वाहं, सारिपुत्त, पञ्चन्नं भिक्खुसतानं न किञ्चि गरहामि कायिकं वा वाचसिकं वा। इमेसं हि, सारिपुत्त, पञ्चन्नं भिक्खुसतानं सट्ठि भिक्खू तेविज्जा, [B.193] सट्ठि भिक्खू छळभिञ्ञा, सट्ठि भिक्खू उभतोभागविमुत्ता, अथ इतरे पञ्ञाविमुत्ता'' ति।

११. अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन

पहचानने वाले, मार्गज्ञ तथा सम्यग्मार्गप्रदर्शक हैं। आप के बताये हुए मार्ग पर ही इस समय भिक्षु लोग आप के पीछे पीछे चल रहे हैं। भन्ते! मैं भी आप को अनी कायिक तथा वाचिक शुद्धि का आश्वासन देता हूँ। क्या आप ने मुझमें कोई ऐसा दोष देखा है?''

(भगवान्—) ''सारिपुत्त! मैं तुममें कोई कायिक या वाचिक दोष नहीं देखता। सारिपुत्र! तुम तो महान् पण्डित हो, महाप्रज्ञ हो, तीव्रबुद्धि हो, प्रसन्न (निर्मल) बुद्धि वाले हो। सर्वत्र गति, कुशाग्र एवं अपराजेय हो। सारिपुत्त! किसी राजा का ज्येष्ठ पुत्र जैसे पिता द्वारा प्रवर्तित शासनचक्र का प्रवर्तन करता है वैसे ही तुम मेरे द्वारा प्रवर्तित इस धर्मचक्र का सम्यक् प्रवर्तन करते हो।''

(सारिपुत्र—) ''भन्ते! यदि भगवान् मुझमें कोई कायिक वाचिक दोष नहीं पा रहे हैं तो भगवन्! आप विश्वास कीजिये कि इन पाँच सौ भिक्षुओं में भी कोई वैसा दोष नहीं मिलेगा।''

(भगवान्—) ''सारिपुत्त! इन पाँच सौ भिक्षुओं में भी मैं कोई कायिक या वाचिक दोष नहीं देख पा रहा हूँ। सारिपुत्त! इन पाँच सौ भिक्षुओं में साठ भिक्षु त्रैविद्य हैं, साट भिक्षु षडभिज्ञ है, साठ भिक्षु उभयभागों (संयोजनों के दोनों भागों) से विमुक्त हैं, तथा अवशिष्ट प्रज्ञा के आलम्बन से सांसारिक मुक्ति पा चुके हैं''॥

भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"पटिभाति मं भगवा, पटिभाति मं सुगता" ति।

"पटिभातु तं, वङ्गीसा" ति भगवा अवोच।

[N.192] अथ खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

"अज्ज पन्नरसे विसुद्धिया, भिक्खू पञ्चसता समागता।
संयोजनबन्धनच्छिदा, अनीघा खीणपुनब्भवा इसी॥

[R.192] "चक्कवत्ती यथा राजा, अमच्चपरिवासितो।
समन्ता अनुपरियेति, सागरन्तं महिं इमं॥
एवं विजितसङ्गामं, सत्थवाहं अनुत्तरं।
सावका पयिरुपासन्ति, तेविज्जा मच्चुहायिनो॥
"सब्बे भगवतो पुत्ता, पलापेत्थ न विज्जति।
तण्हासल्लस्स हन्तारं, वन्दे आदिच्चबन्धुनं" ति॥ •

८. परोसहस्ससुत्तं

१२. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेलसेहि भिक्खुसतेहि। तेन खो पन समयेन भगवा भिक्खू निब्बानपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति

---

११. तब आयुष्मान् वङ्गीश ने...भगवान् से समयोचित गाथाओं से यह कहा—

"आज पूर्णिमा के दिन विशुद्धिज्ञापन के निमित्त एकत्र ये पाँच सौ भिक्षु सभी संयोजन बन्धन को काट चुके हैं, निष्पाप हैं, इनकी जन्ममरणपरम्परा क्षीण हो चुकी है, अत: ये ऋषितुल्य हैं॥

"जैसे चक्रवर्ती राजा अपने मन्त्रियों से धिरा हुआ अपने अधीन समस्त राज्य में समुद्र तक पृथ्वी के चारों ओर धूम आता है; वैसे ही आप विजितसंग्राम तथा अद्वितीय नायक की ये आप के शिष्यगण उपासना करते हैं। ये सभी त्रैविद्य एवं मृत्यु पर विजय प्राप्त कर चुके हैं"

"'ये सभी भगवान् के शिष्य हैं'— इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। अत: मैं आप सूर्यवंशोत्पन्न बुद्ध को प्रणाम करता हूँ॥" •

८. पर:सहस्रसूत्र : : **बुद्धस्तुति**

१२. एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती के** जेतवन में १२५० सङ्ख्यावाले भिक्षुसङ्घ के साथ साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् भिक्षुओं को निर्वाण की

सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति।

अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि—"अयं खो भगवा भिक्खू निब्बानपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। यन्नूनाहं भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवेय्यं" ति।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन [B.194] भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"पटिभाति मं भगवा, पटिभाति मं सुगता" ति।

"पटिभातु तं, वङ्गीसा" ति भगवा अवोच।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

"परोसहस्सं भिक्खूनं, सुगतं पयिरुपासति। [N.193]
देसेन्तं विरजं धम्मं, निब्बानं अकुतोभयं॥
"सुणन्ति धम्मं विमलं, सम्मासम्बुद्धदेसितं।
सोभति वत सम्बुद्धो, भिक्खुसङ्घपुरक्खतो॥
"नागनामोसि भगवा, इसीनं इसि सत्तमो।
महामेघो व हुत्वान, सावके अभिवस्सति॥

ओर प्रवृत्त करने वाली धार्मिक कथा से सन्दृष्ट, समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट कर रहे थे। भिक्षु भी उस कथा को बहुत ही मन लगाकर, ध्यान लगाकर खुले कानों से सुन रहे थे।

उस समय आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह सङ्कल्प हुआ...तब उसने भगवान् की समयोचित गाथाओं से यों स्तुति की—

"यहाँ हजार सङ्ख्या से भी अधिक भिक्षु भगवान् के चारों और बैठे हैं, भगवान् उनको विमल धर्म का उपदेश कर रहे हैं। जो कि भय से रहित करने वाला तथा निर्वाण की तरफ ले जाने वाला है॥

"वे भिक्षु उस विमल (स्वच्छ) धर्म का श्रवण कर रहे हैं जिसे भगवान् बुद्ध उपदेश कर रहे हैं। इस तरह भिक्षुसङ्घ भगवान् को चारों ओर से घेरे बैठा है। इन भिक्षुओं के बीच में भगवान् अत्यधिक शोभायमान हो रहे हैं॥

"इन भगवान् का एक नाम नाग है, ये ऋषियों (बुद्धों) में सातवें ऋषि (बुद्ध) हैं। ये महामेघ की तरह भिक्षुसङ्घ पर धर्मोपदेश की वर्षा कर रहे हैं॥

[R.193] दिवाविहारा निक्खम्म, सत्थुदस्सनकम्यता।
सावको ते महावीर, पादे वन्दति वङ्गीसो'' ति॥

१३. ''किं नु ते, वङ्गीस, इमा गाथायो पुब्बे परिवितक्किता उदाहु, ठानसो व तं पटिभन्ती'' ति?

''न खो मे, भन्ते, इमा गाथायो पुब्बे परिवितक्किता, अथ खो ठानसो व मं पटिभन्ती'' ति।

''तेन हि तं, वङ्गीस, भिय्योसोमत्ताय पुब्बे अपरिवितक्किता गाथायो पटिभन्तू'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो आयस्मा वङ्गीसो भगवतो पटिस्सुत्वा भिय्योसोमत्ताय भगवन्तं पुब्बे अपरिवितक्किताहि गाथाहि अभित्थवि—

''उम्मग्गापथं मारस्स अभिभुय्य, चरसि पभिज्ज खिलानि।
तं पस्सथ बन्धपमुञ्चकरं, असितं भागसो पविभजं॥
''ओघस्स नित्थरणत्थं, अनेकविहितं मग्गं अक्खासि।
तस्मिं चे अमते अक्खाते, धम्मद्दसा ठिता असंहीरा॥

''दिन की साधना से उठकर बुद्धदर्शन की इच्छा से, हे महावीर! आप का यह वङ्गीश शिष्य आप के चरणों में वन्दना करता है''॥

१३. यह सुनकर भगवान् ने वङ्गीश से पूछा—''वङ्गीश! तुमने ये गाथाएँ पहले से ही रच रखी थी, या तुम्हें ये इसी क्षण सूझी हैं?''

(वङ्गीश—) ''भन्ते! इन गाथाओं को पहले से नहीं बनाया था, अपितु अभी (परिस्थिति को देखकर ही) सूझी हैं।''

(भगवान्—) ''तो वङ्गीश! ऐसी ही कुछ अन्य गाथाएँ भी सुनाओ, जिनको तुमने पहले से न रचा हो।''

''भन्ते! बहुत अच्छा''—कहकर आयुष्मान् वङ्गीश तत्काल रचित गाथाओं से भगवान् की यों स्तुति करने लगे—

''मार के मिथ्या मार्ग को धूलिसात् कर, मानसिक ग्रन्थियों को काटकर आप संसार में विचरण करते हैं। जिज्ञासुओं को संसारिक बन्धनों से मुक्त कराने वाले अपने इन शिष्यों पर आप अनुकम्पामय दृष्टि डालें, जो अपने संयोजनों का नाश कर स्वच्छन्द हो चुके हैं तथा जो जिज्ञासुओं को स्मृतिप्रस्थान आदि साधन धर्मोपदेश द्वारा वितरित करते है॥

''चतुर्विध औघों से निस्तरण के लिये आप अनेक प्रकार के साधना-मार्ग का उपदेश करते रहते हैं। आपसे वह अमृतोपदेश सुनकर ये धर्मज्ञानी (मार की सीमा से निकलकर) अजेय हो गये॥

"पज्जोतकरो अतिविज्झ, सब्बट्ठितीनं अतिक्कममद्दस।
ञत्वा च सच्छिकत्वा च, अग्गं सो देसयि दसद्धानं॥
"एवं सुदेसिते धम्मे, को पमादो विजानतं धम्मं। [B.195]
तस्मा हि तस्स भगवतो सासने।
अप्पमत्तो सदा नमस्समनुसिक्खे" ति॥

९. कोण्डञ्ञसुत्तं

१४. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो आयस्मा अञ्ञासिकोण्डञ्ञो सुचिरस्सेव येन भगवा तेनुपङ्कमित्वा भगवतो [N.194] पादेसु सिरसा निपत्वि भगवतो पादानि मुखेन च परिचुम्बति, पाणीहि च परिसम्बाहति, नामं, च सावेति—"कोण्डञ्ञोहं, भगवा, कोण्डञ्ञोहं, सुगता" ति। [R.194] अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि—"अयं खो आयस्मा अञ्ञासिकोण्डञ्ञो सुचिरस्सेव येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवतो पादानि मुखेन च परिचुम्बति, पाणीहि च परिसम्बाहति, नामं च सावेति—'कोण्डञ्ञोहं, भगवा, कोण्डञ्ञोहं, सुगता' ति। यन्नूनाहं आयस्मन्तं अञ्ञासिकोण्डञ्ञं भगवतो सम्मुखो सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवेय्यं" ति।

"अन्तर्मन को प्रकाशित कर देने वाले आपने उच्च से उच्च लक्ष्य का साक्षात्कार कर लिया। एतदनन्तर आपने जिज्ञासुओं को ज्ञान का उपदेश किया॥

"इस प्रकार का धर्मोपदेश सुनने वाले को धर्म के विषय प्रमाद कैसा! अत: जिज्ञासु साधक आप भगवान् के शासन में सदा अप्रमत्त होकर नम्रतापूर्वक साधनाभ्यास करें"॥

९. कौण्डिन्यसूत्र : : आज्ञातकौण्डिन्य की विशेषता

१४. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** स्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। तब आयुष्मान् आज्ञात कौण्डिन्य, बहुत समय बाद, भगवान् के दर्शन हेतु आये। आकर भगवान् के श्रीचरण में प्रणाम कर भावातिरेक में उनके श्रीचरणों का चुम्बन करने लगे,तथा उनके चरणों का अपने हाथों से संवाहन (दबाना), यों कहते हुए, करने लगे कि भगवन्! मैं कौण्डिन्य हूँ, सुगत! मैं कौण्डिन्य हूँ।

तब आयुष्मान् बङ्गीश को यह विचार हुआ— "यह आयुष्मान् आज्ञातकौण्डिन्य बहुत समय बाद...पूर्ववत्...मैं कौण्डिन्य हूँ। तो क्यों न मैं इन आज्ञातकौण्डिन्य का, भगवान् के सम्मुख ही, समयोचित गाथाओं से सम्मान करूं"॥

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो आयस्मन्तं अञ्ञासिकोण्डञ्ञं भगवतो सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

"बुद्धानुबुद्धो सो थेरो, कोण्डञ्ञो तिब्बनिक्कमो।
लाभी सुखविहारानं, विवेकानं अभिण्हसो॥
"यं सावकेन पत्तब्बं, सत्थुसासनकारिना।
सब्बस्स तं अनुप्पत्तं, अप्पमत्तस्स सिक्खतो॥
"महानुभावो तेविज्जो, चेतोपरियायकोविदो।
कोण्डञ्ञो बुद्धदायादो, पादे वन्दति सत्थुनो" ति॥ •

१०. मोग्गल्लानसुत्तं

१५. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति इसिगिलिपस्से काळसिलायं महता [B.196] भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सब्बेहेव अरहन्तेहि। तेसं सुदं आयस्मा महामोग्गल्लानो चेतसा चित्तं समन्नेसति विप्पमुत्तं निरुपधिं। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि—"अयं खो भगवा राजगहे विहरति इसिगिलिपस्से [N.195] काळसिलायं महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सब्बेहेव

यह विचारकर आयुष्मान् वङ्गीश ने अपने आसन से उठकर...भगवान् से...निवेदन किया। भगवान् ने वङ्गीश को अनुमति दे दी। तब आयुष्मान् वङ्गीश ने आयुष्मान् आज्ञात-कौण्डिन्य की इन सामयिक गाथाओं से स्तुति की—

"भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट ज्ञान के ज्ञाता स्थविर, अत्युत्साही, हे कौण्डिन्य! आप सुखपूर्वक (सरलता से) साधना में लगे हुए हैं। आप ज्ञान की परा काष्ठा को प्राप्त कर चुके हैं॥

"आपने, बुद्ध के शासन (धर्म) में रहकर किसी शिष्य द्वारा जो कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है वह आपने सावधानीपूर्वक प्राप्त कर लिया है॥

"आप बहुत बड़े प्रतापी, तीनों विद्याओं के ज्ञाता, परचित्तज्ञानी है। आप बुद्ध के प्रथम शिष्य हैं, अत: आप उचित ही भगवान् के श्रीचरणों की वन्दना कर रह रहे हैं"॥•

१०. मौद्गल्यायनसूत्र : : मौद्गल्यायन के विशिष्ट गुण

१५. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** के ऋषिगिरि पर्वत के पार्श्व में स्थित कालशिला पर पाँच सौ भिक्षुओं के साथ विराजमान रहते हुए साधना कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् महामौद्गल्यायन साधना द्वारा इस स्थिति में पहुँच गये थे कि वे स्वचित्त से अन्य के चित्त की विमुक्ति एवं निर्विकारता को जान रहे थे। इस अवसर आयुष्मान्

अरहन्तेहि। तेसं सुदं आयस्मा महामोग्गल्लानो चेतसा चित्तं समन्नेसति विप्पमुत्तं निरुपधिं। यन्नूनाहं आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं भगवतो सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवेय्यं'' ति।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—''पटिभाति मं, भगवा, पटिभाति [R.195] मं, सुगता'' ति।

''पटिभातु तं, वङ्गीसा'' ति भगवा अवोच।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं भगवतो सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

''नगस्स पस्से आसीनं, मुनिं दुक्खस्स पारगुं।
सावका पयिरुपासन्ति, तेविज्जा मच्चुहायिनो॥
''ते चेतसा अनुपरियेति, मोग्गल्लानो महिद्धिको।
चित्तं नेसं समन्नेसं, विप्पमुत्तं निरूपधिं॥
''एवं सब्बङ्गसम्पन्नं, मुनिं दुक्खस्स पारगुं।
अनेकाकारसम्पन्नं, पयिरुपासन्ति गोतमं'' ति॥ •

११. गग्गरासुत्तं

१६. एकं समयं भगवा चम्पायं विहरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सत्तहि च उपासकसतेहि सत्तहि च

वङ्गीश को यह सङ्कल्प...भगवान् ने अनुमति...वङ्गीश ने आयुष्मान् मौद्गल्यायन की इन गाथाओं से स्तुति की—

''पर्वत के पार्श्व में विराजमान, दुःखों के पारगामी महामुनि (बुद्ध) की त्रैविद्य एवं मृत्युजेता शिष्य उपासना कर रहे हैं॥

''ऋद्धिसम्पन्न आयुष्मान् महामौद्गल्यायन स्वचित्त से उनके चित्त की विमुक्ति एवं निर्विकार को जान रहे हैं॥

''इस तरह विविध अङ्गों द्वारा नाना प्रकार से सम्पन्न तथा दुःखों के अन्तकारक महामुनि गौतम बुद्ध की, उनके शिष्य, उपासना कर रहे हैं''॥ •

११. मग्गरासूत्र : : बुद्धस्तुति

१६. एक समय भगवान् (बुद्ध) **चम्पा** नगरी की गग्गरा नामक पुष्करणी के तट पर पाँच सौ भिक्षुओं के विशाल भिक्षुसङ्घ से, पाँच सौ उपासकों तथा पाँच सौ उपासिकाओं

उपासिकासतेहि अनेकेहि च देवतासहस्सेहि। त्यास्सुदं भगवा अतिरोचति वण्णेन चेव यससा च। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि—"अयं खो भगवा [B.197] चम्पायं हिरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सत्तहि च उपासकसतेहि सत्तहि च उपासिकासतेहि अनेकेहि च देवतासहस्सेहि। त्यास्सुदं भगवा अतिरोचति वण्णेन चेव यससा च। यन्नूनाहं भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाय गाथाय अभित्थवेय्यं" ति।

[N.196] अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गंकरित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"पटिभाति मं, भगवा, पटिभाति मं, सुगता" ति।

"पटिभातु तं, वङ्गीसा" ति भगवा अवोच।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाय गाथाय अभित्थवि—

[R.196]"चन्दो यथा विगतवलाहके नभे, विरोचति विगतमलो व भाणुमा।
एवं पि अङ्गीरस त्वं महामुनि, अतिरोचसि यससा सब्बलोकं" ति॥

१२. वङ्गीससुत्तं

१७. एकं समयं आयस्मा वङ्गीसो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मा वङ्गीसो अचिरअरहत्तपत्तो हुत्वा विमुत्तिसुखं पटिसंवेदी तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि—

से तथा अनेक सहस्र देवताओं से घिरे हुए साधनाहेतु विराजमान हुए अतिशय शोभायमान हो रहे थे।

उस समय आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह विचार उठा—"इस समय भगवान् ...पूर्ववत्...अतिशय शोभायमान् हो रहे हैं, तो क्यों न मैं उचित गाथाओं के माध्यम से स्तुति करूँ"॥

तब आयुष्मान् वङ्गीश ने भगवान् की अनुमति लेकर उनकी स्तुति में यह समयोचित गाथा कही—

"मेघ रहित आकाश में जैसे चन्द्रमा सुशोभित होता है, उसी तरह हे महामुनि अङ्गिरस्! आप भी अपने विशिष्ट यश के कारण समस्त संसार से अधिक शोभित हो रहे हैं"॥

१२. वङ्गीशसूत्र : : वङ्गीश के हृदयोद्गार

१७. एक समय आयुष्मान् वङ्गीश **श्रावस्ती** के अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित

''कावेय्यमत्ता विचरिह्म पुब्बे, गामा गामं पुरा पुरं।
अथद्दसाम सम्बुद्धं, सद्धा नो उपपज्जथ॥

''सो मे धम्ममदेसेसि, खन्धायतनधातुयो।
तस्साहं धम्मं सुत्वान, पब्बजिं अनगारियं॥

''बहुन्नं वत अत्थाय, बोधिं अज्झगमा मुनि।
भिक्खूनं भिक्खुनीनं च, ये नियामगतद्दसा॥

''स्वागतं वत मे आसि, मम बुद्धस्स सन्तिके। [B.198]
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥

''पुब्बेनिवासं जानामि, दिब्बचक्खुं विसोधितं।
तेविज्जो इद्धिपत्तोम्हि, चेतोपरियायकोविदो'' ति॥

वङ्गीससंयुत्तं समत्तं।

जेतवन में रहकर साधना कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् वङ्गीश को अर्हत्त्व प्राप्त किये हुये कुछ ही समय हुआ था। वह विमुक्तिसुख का आनन्द लेते हुए अपना हृदयाद्गार यों प्रकट करने लगे—

''प्रव्रजित होने से पूर्व मैं इस ग्राम से उस ग्राम एवं इस नगर से उस नगर में लोगों को काव्य (कविता) सुनाते हुए घूमता था। उसी प्रसङ्ग में मैने कभी कहीं भगवान् बुद्ध के दर्शन किये । दर्शन करते ही, उनमें मेरी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी॥

''उन्होंने मुझको स्कन्ध आयतन एवं धातुओं के विषय में धर्मोपदेश किया। उनका उपदेश सुनकर मैने घर छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहणकर ली॥

''बहुत से भिक्षु-भिक्षुणियों की अर्थसिद्धि के लिये मुनि ने बुद्धत्व प्राप्त किया। उन भिक्षु एवं भिक्षुणियों ने नियमों (बुद्धोपदिष्ट शिक्षापदों) का साक्षात्कार किया।

''बुद्ध के पास पहुँचने पर उन्होंने मुझे अनुकम्पा भाव से देखा। उनसे मैने तीनों विद्याएँ प्राप्त की, तथा उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म का अभ्यास किया। इससे उनको मुझका उपदेश करना सफल हुआ॥

''मैं अब अपने पूर्वजन्मों की बात जानता हूँ। (दूसरे जन्मों की बात जानने के लिये) मुझे दिव्य चक्षु प्राप्त हो गया है। मैं अब त्रैविद्य एवं ऋद्धिमान् हूँ। दूसरों के चित्त की बात जानने की सामर्थ्य मुझमें आ गयी है''॥ •

अष्टम वङ्गीशसंयुक्त समाप्त॥

तस्सुद्दानं

[N.197] निक्खन्तं अरति चेव, पेसला अतिमञ्ञना।
आनन्देन सुभासिता, सारिपुत्तपवारणा॥
परोसहस्सं कोण्डञ्ञो, मोग्गल्लानेन गग्गरा।
वङ्गीसेन द्वादसा ति॥

इस संयुक्त में आगत सूत्रों की सूची—इस वङ्गीसंयुक्त में ये १२ सूत्र व्याख्यात हैं— १. निष्क्रान्तसूत्र, २. अरतिसूत्र, ३. पेशलसूत्र, ४. आनन्दसूत्र, ५. सुभाषितसूत्र, ६. सारिपुत्रसूत्र, ७. प्रवारणासूत्र, ८. परःसहस्रसूत्र, ९. कौण्डिन्यसूत्र, १०.मौद्गल्यायनसूत्र, ११. गग्गरासूत्र एवं १२. वङ्गीशसूत्र॥

९. वनसंयुत्तं

१. विवेकसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु [N.198, B.199, R.197] कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन सो भिक्खु दिवाविहारगतो पापके अकुसले वितक्के वितक्केति गेहनिस्सिते। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो अनुकम्पिका अत्थकामा तं भिक्खुं संवेजेतुकामा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाहि अज्झभासि—

''विवेककामोसि वनं पविट्ठो, अथ ते मनो निच्छरती बहिद्धा।
जनो जनस्मिं विनयस्सु छन्दं, ततो सुखी होहिसि वीतरागो॥
''अरतिं पजहासि सतो, भवासि सतं तं सारयामसे।
पातालरजो हि दुत्तरो, मा तं कामरजो अवाहरि॥
''सकुणो यथा पंसुकुन्थितो, विधुनं पातयति सितं रजं।
एवं भिक्खु पधानवा सतिमा, विधुनं पातयति सितं रजं'' ति॥

---

९. वनसंयुक्त

१. विवेकसूत्र : : **एकान्त साधना**

ऐसा मैंने सुना है। एक समय कोई भिक्षु **कौसल देश** के किसी वनषण्ड में एकान्तसाधना हेतु बैठा हुआ था। उस समय वह भिक्षु उस वनषण्ड में दिन की साधनाहेतु गया हुआ था; परन्तु वह वहाँ बैठकर अशुभ सांसारिक वितर्क में अपना मन लगा बैठा। तब उसकी शुभकामना से उसे सचेत करने के लिये कोई वनदेवता उसके पास आकर इन गाथाओं के माध्यम से यों बोला—

''भिक्षु! तुम एकान्त में साधना की इच्छा से यहाँ वन में आकर बैठे हो, परन्तु तुम्हारा मन सांसारिक बातों की ओर प्रवृत्त हो रहा है। दूसरों के प्रति अपनी वासनाओं को दबाओ। यों वीतराग होकर सुखपूर्वक साधना कर सकोगे''॥

''स्मृतिमान् रहते हुए, मन के मोह को त्याग दो, ऐसे सत्पुरुष बनो जिसकी सभी प्रशंसा करते हैं। नीच एवं पापमय कांमों के प्रति, स्मृतिमान् होकर वहाँ भ्रान्त न बनो।

''पक्षी जैसे अपने शरीर पर धूल पड़ जाने पर पँख फड़फड़ा कर उसे उड़ा देता है, वैसे ही तुम भी उत्साही बन कर एवं स्मृतिमान् बन कर अपने मन के राग को मन को फड़फड़ाकर झाड़ दो''॥

अथ खो सो भिक्खु ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादी ति। •

२.उपट्ठानसुत्तं

२. एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन सो भिक्खु दिवाविहारगतो सुपति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे [R.198] अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो अनुकम्पिका अत्थकामा तं भिक्खुं संवेजेतुकामा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाहि [N.199] अज्झभासि—

"उट्ठेहि भिक्खु किं सेसि, को अत्थो सुपितेन ते।
आतुरस्स हि का निद्दा, सल्लविद्धस्स रुप्पतो॥
[B.200] "याय सद्धाय पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
तमेव सद्धाय ब्रूहेहि, मा निद्दाय वसं गमी" ति॥
"अनिच्चा अद्धुवा कामा, येसु मन्दो व मुच्छितो।
बद्धेसु मुत्तं असितं, कस्मा पब्बजितं तपे॥
"छन्दरागस्स विनया, अविज्जासमतिक्कमा।
तं ञाणं परियोदातं, कस्मा पब्बजितं तपे॥
"छेत्वा अविज्जं विज्जाय, आसवानं परिक्खया।
असोकं अनुपायासं, कस्मा पब्बजितं तपे॥

तब देवता द्वारा यों समझाये जाने पर वह भिक्षु स्मृतिमान् होकर सचेत हो गया॥•

२. उपस्थान सूत्र : : उठो, जागो

२. एक समय कोई भिक्षु कौसल देश के किसी वनषण्ड में...पूर्ववत्...सो रहा था...कोई देवता उसको गाथाओं से यों बोला—

"उठो! भिक्षु! क्या सो रहे हो! तुम्हें सोने से क्या प्रयोजन! बाण लगे, घायल एवं उस वेदना से पीड़ित आदमी को निद्रा कैसे आ सकती है!

इस धर्म के प्रति श्रद्धा के सहारे घर से बेघर हुए हो, उस श्रद्धा को जगाओ, निद्रा के अधीन न होओ॥

(भिक्षु—)"ये सांसारिक पदार्थ सभी अनित्य एवं विनाशी है, जिनमें मूर्खजन ही आसक्त हो सकते हैं। परन्तु जो स्वतन्त्र एवं बन्धनमुक्त है, उस प्रव्रजित को वे कैसे सता सकते हैं!॥"

छन्दराग के दब जाने से अविद्या के सर्वथा क्षीण हो जाने से, जो शोक एवं खेद से दूर हो चुका है उस प्रव्रजित को वे क्यों सतावें!॥

"आरद्धविरियं पहितत्तं, निच्चं दळ्हपरक्कमं।
निब्बानं अभिकङ्खन्तं, कस्मा पब्बजितं तपे" ति॥ •

३. कस्सपगोत्तसुत्तं

३. एकं समयं आयस्मा कस्सपगोत्तो कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन आयस्मा कस्सपगोत्तो दिवाविहारगतो अञ्ञतरं छेतं ओवदति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता आयस्मन्तं कस्सपगोत्तं संवेजेतुकामा येनायस्मा कस्सपगोत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं कस्सपगोत्तं गाथाहि अज्झभासि—

"गिरिदुग्गचरं छेतं, अप्पपञ्ञं अचेतसं।
अकाले ओवदं भिक्खु, मन्दो व पटिभाति मं॥
"सुणाति न विजानाति, आलोचेति न पस्सति।
धम्मस्मिं भञ्ञमानस्मिं, अत्थं बालो न बुज्झति॥
"सचे पि दस पज्जोते, धारयिस्ससि कस्सप। [N.200, R.199]
नेव दक्खति रूपानि, चक्खु हिस्स न विज्जती" ति॥

"विद्या के बल से अविद्या को हटा कर, आश्रवों के क्षीण हो जाने से जिस साधक का ज्ञान शुद्ध हो गया है, उस प्रव्रजित को वे कैसे सता सकते हैं!॥

"जो सतत वीर्यवान् है, संयतात्मा है साधना में नित्य दृढ़ पराक्रमशील है, निर्वाण की आकांक्षा रखने वाले उस प्रव्रजित को वे (निद्रा आदि) दुर्गुण क्यों सतावे!"॥ •

३. काश्यपगोत्र : : व्याध को निरर्थक उपदेश

३. एक समय आयुष्मान् काश्यपगोत्र भिक्षु **कौसल देश** में...पूर्ववत्...किसी व्याध (=छेत) को उपदेश कर रहे थे। तब उस वन का अधिष्ठाता देवता आयुष्मान् कश्यपगोत्र को उचित मार्ग दिखाने की दृष्टि से...गाथाओं से यों उपदेश करने लगा—

"प्रज्ञाहीन, मूर्ख, दुर्गम पर्वत में वास करने वाले इस व्याध को असमय में समझाने के लिये तुम क्या प्रयास कर रहे हो? मुझे तो तुम मूर्ख ज्ञात होते हो!

"यह तो केवल सुन सकता है, उसे हृदयङ्गम (समझ) नहीं कर सकता। देखने में तो इसकी आँखे खुली हुई लगती है; परन्तु यह संसार की वास्तविकता को पहचान नहीं सकता। धर्मोपदेश किये जाने पर यह मूर्ख उसका तत्त्व क्या समझेगा!॥

"हे काश्यपगोत्र भिक्षु! यदि तूँ इसके सम्मुख दश दीपक लेकर भी खड़ा हो जाय, तो भी यह उन रूपों (विषयों) की निस्सारता नहीं समझ पायगा; क्योंकि इसके पास उसको समझने में समर्थ ज्ञानचक्षु ही नहीं हैं!"

अथ खो आयस्मा कस्सपगोत्तो ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादी ति। •

४. सम्बहुलसुत्तं

४. एकं समयं सम्बहुला भिक्खू कोसलेसु विहरन्ति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। [B.201] अथ खो ते भिक्खू वस्सं वुत्था तेमासच्चयेन चारिकं पक्कमिंसु। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता ते भिक्खू अपस्सन्ती परिदेवमाना तायं वेलायं इमं गाथं अभासि—

"अरति विय मेज्ज खायति, बहुके दिस्वान विवित्ते आसने।
ते चित्तकथा बहुस्सुता, को मे गोतमसावका गता?" ति॥

एवं वुत्ते, अञ्ञतरा देवता तं देवतं गाथाय पच्चभासि—

"मगधं गता कोसलं गता, एकच्चिया पन वज्जिभूमिया।
मगा विय असङ्गचारिनो, अनिकेता विहरन्ति भिक्खवो" ति॥ •

५. आनन्दसुत्तं

५. एकं समयं आयस्मा आनन्दो कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे।

तब आयुष्मान् काश्यपगोत्र भिक्षु उस देवता द्वारा सावधान किये जाने पर वह व्याध की मूर्खता को समझ कर अपने निरर्थक व्यापार (उपदेश) से दूर हो गया॥ •

४. सम्बहुलसूत्र : : भिक्षुओं की स्वच्छन्द साधना

४. एक समय बहुत से भिक्षु **कौसल** देश के किसी वनषण्ड में साधना हेतु ठहरे हुए थे। तीन मास के बाद, वर्षावास का समय बीतने पर, वे भिक्षु चारिका हेतु वहाँ से चल दिये। तब उस वन का अधिष्ठाता देवता उन भिक्षुओं को वहाँ न देखकर उनके लिये विलाप करता हुआ यों बोला—

"आज मुझे यह वन बहुत उदास लग रहा है; क्योंकि आज यहाँ अनेक भिक्षुओं के शयनस्थान खाली है। वे शास्त्र की ऊँची ऊँची बातें करने वाले पण्डित भगवान् बुद्ध के शिष्य आज कहाँ चले गये?"

देवता द्वारा ऐसा कहे जाने पर, दूसरे बुद्धिमान् देवता ने उसको यों समझाया—

"उन में से कोई मगध चला गया, तथा कोई कौशल। एवं उनमें से कुछ वज्जी प्रदेशचले गये। स्वच्छन्द मृग की तरह विचरण करने वाले ये भिक्षु एक स्थान पर नहीं रहते; क्योंकि इनका कोई स्थायी आवास तो है नहीं। ये तो निन्तर चारिका ही करते रहते हैं"॥ •

५. आनन्दसूत्र : : प्रमाद न करना

५. एक समय आयुष्मान् आनन्द कोसल के किसी वनषण्ड में साधनाहेतु बैठे थे।

तेन खो पन समयेन आयस्मा आनन्दो अतिवेलं गिहिसञ्ञत्तिबहुलो विहरति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता आयस्मतो आनन्दस्स अनुकम्पिका अत्थकामा आयस्मन्तं आनन्दं संवेजेतुकामा येनायस्मा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं गाथाय अज्झभासि—

"रुक्खमूलगहनं पसक्किय, निब्बानं हदयस्मिं ओपिय। [N.201]
झाय गोतम मा पमादो, किं ते विळिविळिका करिस्सती" ति॥ [R.200]

अथ खो आयस्मा आनन्दो ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादी ति। •

६. अनुरुद्धसुत्तं

६. एकं समयं आयस्मा अनुरुद्धो कोसलेसु अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। अथ खो अञ्ञतरा तावतिंसकायिका देवता जालिनी नाम आयस्मतो अनुरुद्धस्स पुराण-दुतियिका येनायस्मा अनुरुद्धो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं अनुरुद्धं [B.202] गाथाय अज्झभासि—

"तत्थ चित्तं पणिधेहि, यत्थ ते वुसितं पुरे।
तावतिंसेसु देवेसु, सब्बकामसमिद्धिसु।

ऐसे समय आयुष्मान् आनन्द को इधर उधर के बहुत से गृहस्थ किसी न किसी कारण से घेरे रहते थे। तब उस वन का अधिष्ठाता देवता आयुष्मान् आनन्द पर अनुकम्पा करता हुआ उन को इस जञ्जाल से छुड़ाने के लिये वहाँ आया तथा उनसे यह गाथा बोला—

"इस जङ्गल के झाड़ झंखाड़ में आकर हृदय में निर्वाण की आकांक्षा ही रखो। हे गौतमशिष्य! निरन्तर ध्यानाभ्यास में ही अपना मन लगाये रखो। इन गृहस्थ लोगों के अधिक आने जाने, चहल पहल (विलिविलिका=भीड़) से आपका क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला होगा!"॥

देवता का यह सत्परामर्श सुनकर आयुष्मान् आनन्द अपनी धर्मसाधना में सावधान हो गये"॥ •

६. अनुरुद्धसूत्र : : संस्कारों की अनित्यता

६. एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध कोसल देशके किसी वनषण्ड में साधनाहेतु बैठे थे। तब कोई त्रायस्त्रिंशलोकवासिनी जालिनी नामक देवता,जो कि पूर्वजन्म में आयुष्मान् अनुरुद्ध की पत्नी थी, आयुष्मान् अनुरुद्ध के सम्मुख आयी, तथा उनसे गाथाओं में यों बोली—

"श्रीमन्! कृपया आप अपने पूर्व जन्म के आवास का भी ध्यान कीजिये जहाँ

पुरक्खतो परिवुतो, देवकञ्ञाहि सोभसी'' ति॥
''दुग्गता देवकञ्ञायो, सक्कायस्मिं पतिट्ठिता।
ते चा पि दुग्गता सत्ता, देवकञ्ञाहि पत्थिता'' ति॥
''न ते सुखं पजानन्ति, ये न पस्सन्ति नन्दनं।
आवासं नरदेवानं, तिदसानं यसस्सिनं'' ति॥
''न त्वं बाले विजानासि, यथा अरहतं वचो।
अनिच्चा सब्बसङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो॥
''नत्थि दानि पुनावासो, देवकायस्मि जालिनि।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो'' ति॥

७. नागदत्तसुत्तं

७. एकं समयं आयस्मा नागदत्तो कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन आयस्मा नागदत्तो अतिकालेन गामं पविसति अतिदिवा पटिक्कमति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता आयस्मतो नागदत्तस्स

आपने पहले कभी चिरकाल तक वास किया था। जहाँ सभी प्रकार की सुखसुविधायें थीं। जहाँ आप निरन्तर देवकन्याओं से घिरे रह कर शोभित होते थे''॥

(अनुरुद्ध—) ''अपनी सुख सुविधाओं में लगी देवकन्याओं को धिक्कार है जिनकी पहुँच सत्काय दृष्टि तक ही सीमित है। साथ ही उन प्राणियों को भी धिक्कार है जो उन देवकन्याओं की प्राप्ति हेतु ही सतत प्रयत्नशील है''॥

(जालिनी—) ''वे निरीह प्राणी सुख की विशेषता क्या जाने जिन्होंने नन्दन वन ही न देखा हो। जो कि यशस्वी त्रायस्त्रिंशलोकवासियों का स्थायी वासस्थान है''॥

(अनुरुद्ध—) ''अरी मूर्खे! तूँ क्या नहीं जानती कि ज्ञानियों ने क्या उपदेश किया है? (वे कहते है—)'सभी संसार अनित्य हैं। उत्पाद एवं विनाश स्वभाव वाले हैं। ये उत्पन्न होकर विनष्ट होते रहते हैं'। इनका व्युपशमन (शान्त करना) ही वास्तविक सुख है॥

'' हे जालिनि! अब हमारा किसी भी देवलोक में जन्म नहीं होना है। अब हमारी जन्मपरम्परा (संसार में आने-जाने) का क्रम क्षीण हो गया। अब हमारा कहीं पुनर्जन्म ही नहीं होना है''॥

७. नागदत्तसूत्र : :भिक्षु का ग्राम में अधिक रहना अनुचित

७. एक समय आयुष्मान् नागदत्त कौसल के किसी वनषण्ड में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। वे उस समय प्रातः ही ग्राम में प्रविष्ट होने तथा दिन में बहुत समय वहाँ बिता कर

अनुकम्पिका अत्थकामाआयस्मन्तं नागदत्तं संवेजेतुकामा येनायस्मा नागदत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागदत्तं गाथाहि अज्झभासि—[N.202,R.201]

"काले पविस नागदत्त, दिवा च आगन्त्वा अतिवेलचारी।
संसट्ठो गहट्ठेहि, समानसुखदुक्खो॥
"भायामि नागदत्तं सुप्पगब्भं, कुलेसु विनिवद्ध।
मा हेव मच्चुरञ्ञो बलवतो, अन्तकस्स वसं उपेसी" ति॥

अथ खो आयस्मा नागदत्तो ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादी ति। [B.203]

८. कुलघरणीसुत्तं

८. एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन सो भिक्खु अञ्ञतरस्मिं कुले अतिवेलं अज्झोगाळ्हप्पत्तो विहरति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो अनुकम्पिका अत्थकामा तं भिक्खुं संवेजेतुकामा या तस्मिं कुलघरणी तस्सा वण्णं अभिनिम्मिनित्वा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाय अज्झभासि—

पुन: लौटते थे। तब उस वनषण्ड-देवता ने, उन पर अनुकम्पा करते हुए, उनकी हितकामना को ध्यान में रखते हुए, आयुष्मान् नागदत्त को सचेत करने के लिये उनके पास आकर उनको गाथाओं के माध्यम से यह कहा—

"नागदत्त! तुम प्रात: ही ग्राम में प्रविष्ट होकर भी विलम्ब कर के वहाँ से लौटते हो! वहाँ जाकर गृहस्थों से अत्यधिक सम्पर्क करने लगते हो, उनसे उनके सुख दु:ख की बातें पूछते- सुनते हो॥

"इस तरह गृहस्थ कुलों में अत्यधिक सम्पृक्त नागदत्त के विषय में मुझे भय है कि ये ऐसा करते हुए मृत्युराज के बन्धन में न फँस जायें"॥

वह आयुष्मान् नागदत्त देवता के इस सत्परापर्श को मानकर पुन: अपनी साधना में ही सावधानी से लग गया॥

●

८. कुलगृहिंणीसूत्र : : तितिक्षा ही उत्तम है

८. एक समय कोई भिक्षु **कोसल** देश के किसी वनषण्ड में साधना हेतु ठहरे हुए थे। परन्तु वे ग्राम के किसी घर में बहुत समय तक आने जाने तथा रहने लगा। तब उस वन में वास करने वाला देवता उस पर अनुकम्पा कर उसको सामाजिक निन्दा से बचाने के लिये उसे सत्परामर्श देने हेतु उस घर की गृहिणी का रूप बना कर उसके सम्मुख आया, तथा उससे गाथा में यों बोला—

"नदीतीरेसु सण्ठाने, सभासु रथियासु च।
जना सङ्गम्म मन्तेन्ति, मं च तं च किमन्तरं" ति॥
"बहू हि सद्दा पच्चूहा, खमितब्बा तपस्सिना।
न तेन मङ्कु होतब्बं, न हि तेन किलिस्सति॥
"यो च सद्दपरित्तासी, वने वातमिगो यथा।
लहुचित्तो ति तं आहु, नास्स सम्पज्जते वतं" ति॥ •

९. वज्जिपुत्तसुत्तं

९. एकं समयं अञ्ञतरो वज्जिपुत्तको भिक्खु वेसालियं विहरति अञ्ञतरस्मिं बनसण्डे। तेन खो पन समयेन वेसालियं वज्जिपुत्तको सब्बरत्तिचारो होति। अथ खो [R.202] सो भिक्खु वेसालिया तूरियताळितवादितनिग्घोससद्दं सुत्वा परिदेवमानो तायं [N.203] वेलायं इमं गाथं अभासि—

"एकका मयं अरञ्ञे विहराम, अपविद्धं व वनस्मिं दारुकं।
एतादिसिकाय रत्तिया, को सु नामम्हेहि पापियो!" ति॥

अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो अनुकम्पिका

"नदीतट पर धर्मशालाओं में, सभाओं में, ग्राम की गलियों में, मनुष्य एकत्र होकर हमारे तुम्हारे विषय में परस्पर यही बातें करते हैं कि हमारे तुम्हारे में अब क्या भेद रह गया है!"

(भिक्षु—)"इस तरह के जनप्रवाद (अफवाहें) तपस्वी को सहन करने ही चाहिये। उससे लज्जा या सङ्कोच नहीं करना चाहिये। इससे इस का अपयश (बदनामी) नहीं फैलेगा।

"जो ऐसे शब्द सुनकर जङ्गल में मृग की तरह चौंक जाते है उसे लोग 'दुर्बलचित्त' (लघुचित्त) कहते हैं। उनका लक्ष्य कभी पूर्ण नहीं होता"॥ •

९. वज्जिपुत्रसूत्र : : भिक्षुजीवन के सुख की विशेषता

९. एक समय कोई भिक्षु **वैशाली** के किसी वनषण्ड में साधना में लगा हुआ था। उस समय वैशाली में सभी वज्जिपुत्र मिलकर कोई रात्रि-उत्सव मना रहे थे। तब वह भिक्षु वैशाली में हो रहे उस रात्रि-उत्सव में प्रयुक्त वाद्यसङ्गीत को सुन कर सोचने लगा तथा उसने इस गाथा के माध्यम से अपनी वेदना कही—

"हम लोग यहाँ एकाकी इस वन में वैसे ही पड़े हैं, जैसे वन में कोई कटा हुआ लकड़ी का कुन्दा पड़ा हो। आज जैसी इस शुभ रात्रि में हम जैसा अन्य कौन अभागा होगा!"

अत्थकामा तं भिक्खुं संवेजेतुकामा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाय अज्झभासि—

''एकको व त्वं अरञ्ञे विहरसि, अपविद्धं व वनस्मि दारुकं। [B.204]
तस्स ते बहुका पिहयन्ति, नेरयिका विय सग्गगामिनं'' ति॥

अथा खो सो भिक्खु ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादी ति।

१०. सज्झायसुत्तं

१०. एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन सो भिक्खु यं सुदं पुब्बे अतिवेलं सज्झायबहुलो विहरति सो अपरेन समयेन अप्पोस्सुक्को तुण्हीभूतो सङ्कसायति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो धम्मं असुणन्ती येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाय अज्झभासि—

''कस्मा तुवं धम्मपदानि भिक्खु, नाधीयसि भिक्खुहि संवसन्तो।
सुत्वान धम्मं लभतिप्पसादं, दिट्ठे धम्मे लभतिप्पसंसं'' ति॥

''अहु पुरे धम्मपदेसु छन्दो, याव विरागेन समागमिम्ह।

तब उस वन में वास करने वाला कोई देवता उस भिक्षु पर अनुकम्पा करते हुए उसे सत्पथ पर लाने हेतु सत्परामर्श देता हुआ यों बोला—

''यद्यपि आप लोग इस वन में कटे हुए लकड़ी के किसी कुन्दे की तरह अकेले पड़े हैं, फिर भी साधारण लोग आपके पवित्र जीवन से ईर्ष्या ही करते हैं, जैसे नरकवासी लोग स्वर्ग में जाते हुए को देखकर ईर्ष्या किया करते हैं॥ ''

तब वह भिक्षु देवता के इस परामर्श को हृदयङ्गम कर धर्म के प्रति अनुरक्त हुआ।

१०. स्वाध्यायसूत्र : : स्वाध्याय

१०. एक समय कोई भिक्षु **कौशल** देश के किसी वनषण्ड में साधना कर रहा था। उस समय वह भिक्षु, जो पहले कभी स्वाध्याय में बहुत अधिक व्यस्त रहता था अब, उसके प्रति उपेक्षाभाव दिखाने लगा।

तब उस वन का वासी देवता भिक्षु का स्वाध्याय (धर्मपठन) न सुनकर उसको प्रोत्साहित करने के लिये वहाँ आया तथा यह गाथा बोला—

''भिक्षु ! आप अब उन धर्मपदों को भिक्षुओं के साथ मिलकर क्यों नहीं पढ़ते? धर्म को पढ़कर मन में सन्तोष होता है,शान्ति मिलती है; तथा ऐसा करनेवाले का संसार में यश फैलता है''॥

[N.204] यतो विरागेन समागमिम्ह, यं किञ्चि दिट्ठं व सुतं मुतं वा,
[R.203] अञ्ञाय निक्खेपनमाहु सन्तो'' ति॥ •

११. अकुसलवितक्कसुत्तं

११. एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन सो भिक्खु दिवाविहारगतो पापके अकुसले वितक्के वितक्केति, सेय्यथीदं—कामवितक्कं, ब्यापादवितक्कं, विहिंसावितक्कं। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो अनुकम्पिका अत्थकामा तं भिक्खुं संवेजेतुकामा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाहि अज्झभासि—

''अयोनिसो मनसिकारा, सो वितक्केहि खज्जसि।
अयोनिसो पटिनिस्सज्ज, योनिसो अनुचिन्तय॥

[B.205] ''सत्थारं धम्ममारब्भ, सङ्घं सीलानि अत्तनो।
अधिगच्छसि पामोज्जं, पीतिसुखमसंसयं।
ततो पामोज्जबहुलो, दुक्खस्सन्तं करिस्सती'' ति॥

अथ खो सो भिक्खु ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादी ति॥ •

१२. मज्झन्हिकसुत्तं

१२. एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे।

(भिक्षु—) ''पहले जब तक वैराग्य नहीं हुआ था तब तो उन धर्मपदों को पढ़ने में सन्तोष मिलता था। परन्तु अब जब हमारे मन में संसार के प्रति पूर्ण वैराग्य हो गया तो ऐसे समय में शान्त जन जो कुछ भी देखा, सुना या स्मरण किया हुआ है उसे जानबूझकर त्याग देना ही उचित कहते हैं''॥ •

११. अकुशलवितर्कसूत्र : : उचित विचार

११. एक समय कोई भिक्षु **कोशल** के किसी वनषण्ड में...। उस समय दिन की साधना के समय उस भिक्षु के मन में पापमय अकुशल विचार उठने लगे, जैसे कामविचार, व्यापादविचार या विहिंसाविचार।

तब उस वनषण्ड में रहने वाला कोई देवता...गाथा में यों बोला—''अस्थिर चित्त (अयोनिशः मनस्कार) होने के कारण आप पापभय अकुशल विचारों में फँसे हैं। इन अकुशल वितर्कों को छोड़कर उचित विचार मन में लावें।

''बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ के प्रति श्रद्धा रखते हुए शील का पालन करो। तब तुम्हें आनन्द एवं प्रीतिसुख का अनुभव होगा। यों तुम्हारे दुःखों का भी अन्त हो पायगा॥''

इस प्रकार देवता के सत्परामर्श के वह भिक्षु पुनः सत्पथ पर लग गया॥ •

अथ खो तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तस्स भिक्खुनो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"ठिते मज्झन्हिके काले, सन्निसीवेसु पक्खिसु।
सणतेव ब्रहारञ्ञं, तं भयं पटिभाति मं"॥
"ठिते मज्झन्हिके काले, सन्निसीवेसु पक्खिसु।
सणते व ब्रहारञ्ञं, सा रति पटिभाति मं" ति॥ •

१३. पाकतिन्द्रियसुत्तं

१३. एकं समयं सम्बहुला भिक्खु कोसलेसु विहरन्ति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे उद्धता उन्नळा चपला मुखरा विकिण्णवाचा मुट्ठस्सतिनो असम्पजाना [N.205] असमाहिता विब्भन्तचित्ता पाकतिन्द्रिया। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे [R.204] अधिवत्था देवता तेसं भिक्खूनं अनुकम्पिका अत्थकामा ते भिक्खु संवेजेतुकामा येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू गाथाहि अज्झभासि—

"सुखजीविनो पुरे आसुं, भिक्खू गोतमसावका।
अनिच्छा पिण्डमेसना, अनिच्छा सयनासनं।
लोके अनिच्चतं ञत्वा, दुक्खस्सन्तं अकंसु ते॥

---

१२. मध्याह्निकसूत्र : : एकान्त में निर्भयता

१२. एक समय कोई भिक्षु कोसल देश के किसी वनषण्ड में साधना कर रहा था। उन वनषण्ड का वासी कोई देवता उस भिक्षु के पास आया, तथा उससे यह गाथा कहीं—

"इस भयङ्कर नीरव मध्याह्न काल में, जब कि पक्षी भी अपने अपने घोंसलों में छिपे बैठे हैं, समस्त जङ्गल साँय साँय कर रहा है, ऐसे में मुझे बहुत भय लग रहा है"॥

(इसके उत्तर में भिक्षु बोला—) इस नीरक जङ्गल में, जब कि सब पक्षी भी अपने अपने घोंसलों में छिपे बैठे हैं, और यह समस्त जङ्गल भी साँय साँय कर रहा है (एकान्त होने के कारण) मुझे बहुत सुख मिल रहा है"॥ •

१३. प्राकृतेन्द्रियसूत्र : : दुर्गुणमय दुराचरण

१३. एक समय बहुत से भिक्षु कोसल देश में किसी वनषण्ड में उद्धत, उद्दण्ड, चपल, वृथा प्रलापी, परस्पर पापभय संवाद करने वाले, मन्दमति, असम्प्रज्ञ, असमाहित, विभ्रान्तचित्त एवं असंयतेन्द्रिय (दुराचारी) होकर धर्मसाधना के नाम पर एकत्र थे। तब उस वन में रहने वाला कोई देवता, उन भिक्षुओं पर अनुकम्पा करता हुआ, उन की शुभेच्छा से उनको सत्परामर्श देने हेतु उनके पास आया, तथा ये गाथाएँ बोला—

"दुप्पोसं कत्वा अत्तानं, गामे गामणिका विय।
भुत्वा भुत्वा निपज्जन्ति, परागारेसु मुच्छिता॥
[B.206] "सङ्घस्स अञ्जलिं कत्वा, इधेकच्चे वदामहं।
अपविद्धा अनाथा ते, यथा पेता तथेव ते॥
"ये खो पमत्ता विहरन्ति, ते मे सन्धाय भासितं।
ये अप्पमत्ता विहरन्ति, नमो तेसं करोमहं" ति॥

अथ खो ते भिक्खू ताय देवताय संवेजिता संवेगमापादुं ति॥

१४. गन्धत्थेनसुत्तं

१४. एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खू कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन सो भिक्खु पच्छाभत्तं पिण्डापातपटिक्कन्तो पोक्खरणिं ओगाहेत्वा पदुमं उपसिङ्घति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो अनुकम्पिका अत्थकामा तं भिक्खुं संवेजेतुकामा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाय अज्झभासि—

"ये गौतम बुद्ध के शिष्य पहले बहुत सुखपूर्वक रहते थे। निर्लोभ रहते हुए भिक्षाटन करते थे। इन्हें अपने शयनासन की भी कोई अपेक्षा (परवाह) नहीं थी। इन्होंने, इस लोक की अनित्यता जान कर, अपने सभी दुःखों का अन्त कर लिया था॥

"आजके ये भिक्षु भोजन के विषय में स्वयं को भ्रष्ट कर, ग्रामवासियों की तरह गले तक भर कर खाते हैं। तथा इस तरह खा खा कर भी, कुछ और मिल जाने के लोभ में दूसरों के घरों में पड़े रहते हैं॥

"इस सङ्घ में मैं अनेक भिक्षुओं को प्रणाम ही करता हूँ! जो समाजद्वारा परित्यक्त एवं अनाथ के तुल्य, मृत शव के समान, पड़े रहते हैं, इस तरह के भिक्षुओं को लक्ष्य कर के ही मैने यह बात कही है। अन्यथा जो भिक्षु, वस्तुतः अप्रमत्त (सावधान) होकर साधना में लीन हैं, उन्हें मैं वस्तुतः प्रणाम करता हूँ।" (द्र० पीछे जन्तुसूत्र (२.३.५ भी॥स०)

१४. गन्धस्तेन (पद्मपुष्प) सूत्र : :पुरुषों का अदत्त गन्ध लेना भी चौरी है

१४. एक समय कोई भिक्षु कोसल के किसी वनषण्ड में साधना हेतु ठहरा हुआ था। वह भिक्षु किसी दिन, भिक्षा करने के बाद, किसी पुष्करणी में उतर कर वहाँ खिले पद्मपुष्पों की गन्ध लेने लगा। उस समय उस पुष्करणी की अधिष्ठात्री देवता ने, उस भिक्षु पर अनुकम्पा करते हुए, उस भिक्षु को सत्पथ पर लाने के लिये, उस भिक्षु के पास आ कर यह गाथा कही—

"यमेतं वारिजं पुप्फं, अदिन्नं उपसिङ्घसि।
एकङ्गमेतं थेय्यानं, गन्धत्थेनोसि मारिसा" ति॥
"न हरामि न भञ्जामि, आरा सिङ्घामि वारिजं।
अथ केन नु वण्णेन, गन्धत्थेनो ति वुच्चति?॥
"य्वायं भिसानि खनति, पुण्डरीकानि भञ्जति। [N.206]
एवं आकिण्णकम्मन्तो, कस्मा एसो न वुच्चती" ति॥
"आकिण्णलुद्दो पोसस्स, निच्चं सुचिगवेसिनो। [R.205]
वालग्गमत्तं पापस्स, अब्भमत्तं व खायती" ति॥
"अनङ्गणस्स पोसस्स, निच्चं सुचिगवेसिनो।
वालग्गमत्तं पापस्स, अब्भामत्तं व खायती" ति॥
"अद्धा मं, यक्ख, जानासि, अथो मे अनुकम्पसि।
पुन पि, यक्ख, वज्जासि, यदा पस्ससि एदिसं" ति॥
"नेव तं उपजीवाम, न पि ते भतकाम्हसे। [B.207]
त्वमेव भिक्खु जानेय्य, येन गच्छेय्य सुग्गतिं" ति॥

अथ खो सो भिक्खु ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादी ति। •

वनसंयुत्तं समत्तं॥

"मार्ष! आप जो यहाँ यह दूसरों के पद्मपुष्पों की गन्ध का विना दिये सुखानुभव कर रहे हैं, यह भी एक भी प्रकार की चौरी है। अत: आप 'गन्धचौर' हैं"॥

(भिक्षु—) "हे देवते! मैं न तो यहाँ से कुछ ले जा रहा हूँ, न कुछ नष्ट ही कर रहा हूँ, केवल इन पुष्पों की गन्ध दूर से ले रहा हूँ। तब भी किस कारण आप मुझे 'गन्ध चौर' कह रह हैं?"

"जो इनको मूल से उखाड़ देता है, इनकी पुण्डरीकों (कलियों) को खा जाता है, ऐसा कार्य करने वाले को आप कुछ क्यों नहीं कहते?"

(देवता—) "अतिलोभी पुरुष धात्री के वस्त्रों की तरह मलिन है। उसे कहना या परामर्श देना व्यर्थ है। हाँ! आप को कहा जा सकता है; क्यों कि, नित्य निष्पाप एवं पवित्र आचरण करने वाले पुरुष का बाल जितना सूक्ष्म पाप भी आकाश जितना महान् दिखायी देता है"॥

(भिक्षु—) "अरे! इस देवता ने मेरी वास्तविकता जान ली, इसी लिये यह मुझ पर (मेरा दोष बताकर) अनुकम्पा कर रहा है! हे यक्ष! मेरा ऐसा प्रमाद, तुम आगे भी कभी देखो तो मुझे सावधान करते हुए उससे रोकना"॥

तस्सुद्दानं

विवेकं उपट्ठानं च, कस्सपगोत्तेन सम्बहुला ।
आनन्दो अनुरुद्धो च, नागदत्तं च कुलघरणी॥
वज्जिपुत्तो च वेसाली, सज्झायेन अयोनिसो ।
मज्झन्हिकालम्हि पाकतिन्द्रिय पदुमपुप्फेन चुद्दस भवेति॥ •

(देवता—) ''भिक्षु! मैं आपका वेतनभोगी मृत्य नहीं हूँ कि मैं तुम्हें प्रतिक्षण सावधान करता चलूँ! आप स्वयं सावधान रहें जिससे आप को सुगति प्राप्त हो''॥ •

नवम वनसंयुक्त समाप्त॥

इस वनसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. विवेकसूत्र, २. उपस्थानसूत्र, ३. काश्यपगोत्रसूत्र, ४. सम्बहुल सूत्र, ५. आनन्दसूत्र, ६. अनुरुद्धसूत्र, ७. नागदत्तसूत्र, ८. कुलगृहिणीसूत्र, ९. वैशालीयवज्जिपुत्रसूत्र, १०. स्वाध्यायसूत्र, ११. अकुशलवितर्कसूत्र, १२. मध्याह्निक सूत्र, १३. प्राकृतेन्द्रियसूत्र एवं १४. गन्धस्तेनसूत्र। इस वनसंयुक्त में ये चौदह सूत्र व्याख्यात है॥

१०. यक्खसंयुत्तं

१. इन्दकसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति [N.207, B.208, R.206] इन्दकूटे पब्बते, इन्दकस्स यक्खस्स भवने। अथ खो इन्दको यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"रूपं न जीवं ति वदन्ति बुद्धा, कथं न्वयं विन्दतिमं सरीरं?
कुतस्स अट्ठीयकपिण्डमेति, कथं न्वयं सज्जति गब्भरस्मिं" ति?

"पठमं कललं होति, कलला होति अब्बुदं।
अब्बुदा जायते पेसि, पेसि निब्बत्तती घनो।
घना पसाखा जायन्ति, केसा लोमा नखा पि च॥

"यं चस्स भुञ्जती माता, अन्नं पानं च भोजनं।
तेन सो तत्थ यापेति, मातुकुच्छिगतो नरो" ति॥ •

२. सक्कनामसुत्तं

२. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकुटे पब्बते। अथ खो

---

१०. यक्षसंयुक्त

१. इन्द्रकसूत्र : : उत्पत्ति

ऐसा मैने सुना है। एक समय (बुद्ध) **राजगृह** के इन्द्रकूट पर्वत पर इन्द्रक यक्ष के भवन में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कभी इन्द्रक यक्ष भगवान् के पास आया, आकर भगवान् से यह गाथा बोला—

"'रूप जीव नहीं है'—ऐसा (आप) बुद्ध कहते हैं, तो यह (रूप) शरीर (आकार) कैसे पाता है? इसका यह अस्थिपिण्ड कैसे पाता है? तथा गर्भरूप गह्वर में कैसे पड़ जाता है?"

(भगवान्—) "यहाँ (इसकी उत्पत्ति के प्रसङ्ग में) पहले कुलल (कर्दम सदृश गाढा द्रव) होता है, तब कलल से अर्बुद (पिण्डावस्था) बनता है। अर्बुद से पेशी (मांसपिण्ड) बनती है। पेशी से घन (स्थूल आकार) बनने लगता है। घन से शाखा प्रशाखाएँ तथा केश लोम नख आदि बनते हैं।

("संक्षेप में निष्कर्ष यह है कि) इसकी माता जो कुछ भी खाती है, पीती है, उसी भोजन से माता के गर्भस्थान में इस मानव शरीर का पोषण (उपचय=वृद्धि) होता है"॥ •

सक्कनामको यक्खो येन भगवा तेनुसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"सब्बगन्थप्पहीनस्स, विप्पमुत्तस्स ते सतो।
समणस्स न तं साधु, यदञ्ञमनुसाससी" ति॥
"येन केनचि वण्णेन, संवासो सक्क जायति।
न तं अरहति सप्पञ्ञो, मनसा अनुकम्पितुं॥
"मनसा चे पसन्नेन, यदञ्ञमनुसासति।
न तेन होति संयुत्तो, यानुकम्पा अनुद्दया" ति॥

३. सूचिलोमसुत्तं

[N.208, R.207, B.209] ३. एकं समयं भगवा विहरति टङ्कितमञ्चे सूचिलोमस्स यक्खस्स भवने। तेन खो पन समयेन खरो च यक्खो सूचिलोमो च यक्खो भगवतो अविदूरे अतिक्कमन्ति। अथ खो खरो यक्खो सूचिलोमं यक्खं एतदवोच—"एसो समणो" ति!

---

२. शक्रनामसूत्र : : उपदेश बन्धन नहीं

२. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** में गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। तब शक्रनामक यक्ष भगवान् के पास गया। जाकर भगवान् से गाथा के माध्यम से यों बोला—

जिस (आप बुद्ध) के सभी सांसारिक बन्धन कट चुके हैं, आप स्मृतिमान् एवं विमुक्त हैं, अत: आप श्रमण के लिये यह उचित नहीं है कि आप (बाध्यता के रूप में) दूसरों को उपदेश देने हेतु यहाँ वहाँ जायँ!"॥

(भगवान्—) "शक्र! किसी भी तरह जब किसी से साथ हो जाता है तो ज्ञानी पुरुष की उस के प्रति मन में अनुकम्पा हो जाती है॥

"अत: प्रसन्न मन से जब ज्ञानी दूसरों को उपदेश (सत्पथ पर चलने के लिये) उपदेश देता है तो यक्ष (ज्ञानी) इस कारण किसी बन्धन में नहीं बँधता; क्यों कि वह जिस अनुकम्पा के सहारे उपदेश करने को बाध्य होता है वह अनुकम्पा उसी के हृदय में पैदा होती है, दूसरे के नहीं॥"

३. सूचिलोमसूत्र : : सूचिलोम यक्ष के प्रश्न

३. एक समय भगवान् (बुद्ध) गया के टङ्कितमञ्च स्थान पर सूचिलोम यक्ष के स्थान पर साधना हेतु विराजमान थे। उस समय, खर एवं सूचिलोम-ये दोनों यक्ष भगवान् के समीप से ही कहीं जा रहे थे। तब यक्ष, भगवान् को देख कर, सूचिलोम यक्ष से बोला—"अरे! यह श्रमण है।"

"नेसो समणो, समणको एसो"।

"याव जानामि यदि वा सो समणो यदि वा पन सो समणको" ति।

अथ खो सूचिलोमो यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो कायं उपनामेसि। अथ खो भगवा कायं अपनामेसि। अथ खो सूचिलोमो यक्खो भगवन्तं एतदवोच—"भायसि मं समणा" ति?

"न ख्वाहं तं, आवुसो, भायामि; अपि च ते सम्फस्सो पापको" ति

"पञ्हं तं, समण, पुच्छिस्सामि। सचे मे न ब्याकरिस्ससि चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हदयं वा ते फालेस्सामि, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपिस्सामी" ति।

"न ख्वाहं तं, आवुसो, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय्य, हदयं वा फालेय्य, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपेय्य; अपि च त्वं, आवुसो, पुच्छ यदा कङ्खसी" ति।

४. अथ खो सूचिलोमो यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"रागो च दोसो च कुतोनिदाना, अरती रती लोमहंसो कुतोजा।
कुतो समुट्ठाय मनोवितक्का, कुमारका धङ्कमिवोस्सजसन्ती" ति॥

(सूचिलोम—) "नहीं यह श्रमण नहीं ढोंगी (श्रमण का रूप बनाये हुए) है।"

(खर—) "इसकी मीमांसा करनी चाहिये कि यह वास्तविक श्रमण है कि नहीं?"

यह सुनकर सूचिलोम यक्ष ने अपना शरीर भगवान् को स्पर्श कराना चाहा। भगवान् ने अपना शरीर दूर हटा लिया। तब सूचिलोम यक्ष भगवान् से पूछने लगा—"श्रमण! आप मुझसे डर गये?"

"नहीं, आयुष्मन्! मैं तुमसे डरा नहीं, किन्तु 'तुम्हारा स्पर्श शुभ नहीं' यह सोचकर मैं दूर हट गया।"

(सूचिलोम—) "मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा, यदि तुम उत्तर न दे पाये तो मैं तुम्हें विक्षिप्त (पागल) बना दूँगा। तुम्हारा वक्ष:स्थल चीर दूँगा या तुम्हें गंगा के पार फेंक दूँगा।"

(भगवान्—) "आयुष्मन्! मैं इस संसार में...पूर्ववत्...किसी से डरता नहीं हूँ कि कोई मुझे पागल बना देगा, मेरा हृदय चीर देगा या फिर वह मुझे गंगा के पार फेंक देगा! फिर भी तुम मुझसे जो प्रश्न पूछना चाहते हो, पूछ सकते हो!"

४. तब उस सूचिलोम यक्ष ने भगवान् से यह प्रश्न किया—

"रागो च दोसो च इतोनिदाना, अरती रती लोमहंसो इतोजा।
इतो समुट्ठाय मनोवितक्का, कुमारका धङ्कमिवोस्सजन्ति॥
[N.209] "स्नेहजा अत्तसम्भूता, निग्रोधस्सेव खन्धजा।
पुथू विसत्ता कामेसु, मालुवा व वितता वने॥
[B.210, R.208] "ये नं पजानन्ति यतोनिदानं, ते नं विनोदेन्ति सुणोहि, यक्ख!
ते दुत्तरं ओघमिमं तरन्ति, अतिण्णपुब्बं अपुनब्भवाया" ति॥ •

४. मणिभद्दसुत्तं

५. एकं समयं भगवा मगधेसु विहरति मणिमालिके चेतिये मणिभद्दस्स यक्खस्स भवने। अथ खो मणिभद्दो यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"सतीमतो सदा भद्दं, सतिमा सुखमेधति।
सतीमतो सुवे सेय्यो, वेरा च परिमुच्चती" ति॥

"राग एवं द्वेष कहा से पैदा होते हैं? उदासी (उपेक्षा) तथा प्रेम (रति) एवं रोमहर्ष (भय से रोमाञ्च होना) कैसे पैदा होते हैं? मन के तर्क वितर्क मनुष्य को कहाँ से उठाकर उसे खींच कर, जैसे कौए को पकड़ कर बच्चे, कहाँ ले जाते हैं?"

(भगवान्—) "राग एवं द्वेष यहीं (मन) से पैदा होते हैं। इसी तरह, उदासी प्रेम, तथा रोमाञ्च भी यहीं (मन) सै ही पैदा होते हैं। ये तर्क वितर्क भी यहीं से उठकर उसे उसी तरह खींच ले जाते है जैसे बच्चे कौए को पकड़कर खींच ले जाते हैं॥

"ये सब स्नेहजन्य हैं तथा अपने आप में पैदा होते हैं जैसे वट (न्यग्रोध) वृक्ष की शाखाओं से ही जटा पैदा होती हैं। तथा पैदा होकर तृष्णा के रूप में अधिक से अधिक विस्तार पाते रहते हैं जैसे जङ्गल में मालुवा लता विस्तार पाती रहती है॥

"हे यक्ष! सुनो! जो ज्ञानी इसके उत्पाद एवं विस्तार का स्थान एवं कारण जान लेते हैं वे उस (तृष्णा) का दमन करते हैं। वे ही उस दुस्तर भवसागर को भी पार कर जाते हैं, जिसको उन्होंने पहले कभी पार नहीं किया था। तथा इस तरह वे अपनी पुनर्जन्म परम्परा को एक दिन समूल नष्ट कर देते हैं"॥ •

४. मणिभद्रसूत्र : : स्मृतिमान् सदा सुखी रहता है

५. एक समय भगवान् (बुद्ध) मगध देश में **मणिमालिक चैत्य** पर मणिभद्र यक्ष के भवन में साधनाहेतु विराजमान थे। तब मणिभद्र यक्ष जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचा तथा भगवान् से यह गाथा कही—

''सीतमतो सदा भद्दं, सतिमा सुखमेधति।
सीतमतो सुवे सेय्यो, वेरा न परिमुच्चति॥
''यस्स सब्बमहोरत्तं, अहिंसाय रतो मनो।
मेत्तं सो सब्बभूतेसु, वेरं तस्स न केनची'' ति॥ •

५. सानुसुत्तं

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तने खो पन समयेन अञ्ञतरिस्सा उपासिकाय सानु नाम पुत्तो यक्खेन गहितो होति। अथ खो उपासिका परिदेवमाना तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि—

''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खं च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥
''उपोसथं उपवसन्ति, ब्रह्मचरियं चरन्ति ये। [N.210]
न तेहि यक्खा कीळन्ति, इति मे अरहतं सुतं।
सा दानि अज्ज पस्सामि, यक्खा कीळन्ति सानुना'' ति॥

''स्मृतिमान् का सदा कल्याण होता है, स्मृतिमान् सदा सुखी रहता है। स्मृतिमान् ही सर्वश्रेष्ठ है, तथा वह सब प्रकार के वैर विरोधों से मुक्त हो सकता है''॥

(भगवान्—) ''तुम्हारा यह कहना तो उचित है कि स्मृतिमान्...पूर्ववत्...स्मृतिमान् ही सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु यह कहना उचित नहीं है वह सर्वविध वैर से भी मुक्त हो जाता है; क्यों कि वह सर्वविध वैर से मुक्त नहीं हो पाता॥

''हाँ; जिसका चित्त निरन्तर दिन रात अहिंसा में ही मन रमा हुआ है, सभी प्राणियों के प्रति जिसका मैत्रीभाव रहता है, उसका ही किसी के साथ वैरभाव नहीं हो पाता''॥ •

५. सानुसूत्र : : उपोसथव्रती को यक्ष-पीड़ा नहीं

६. एक समय भगवान् **श्रावस्ती के** जेतवन में साधनाहेतु विराजमान ते। उस समय किसी उपासिका का सानु नामक पुत्र यक्ष से गृहीत था। तब वह उपासिका विलाप करती हुई ये गाथाएँ कहने लगी—

चतुर्दशी या पञ्चदशी (पूर्णिमा या अमावस्या), पक्ष की कोई अष्टमी एवं प्रातिहार्य पक्ष में अष्टाङ्ग व्रत का पालन करती हुई, उपोसथ व्रत रखती हुई तथा अर्हतों का आदेश मानने वाली के पुत्रों को यक्ष पीड़ित नहीं करते—ऐसा मैने अर्हतों से सुना है; परन्तु आज मैं देख रहीं हूँ कि (मेरे पुत्र) सानु पर यक्ष आरूढ है''॥

[यहाँ एक गाथा रो० सं० में अधिक है, जिसका अर्थ है—

[B.211] "चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी[1]।
पाटिहारियपक्खं च, अट्ठङ्गसुसमागतं।
[R.209] उपोसथं उपवसन्ति, ब्रह्मचरियं चरन्ति ये॥

"न तेहि यक्खा कीळन्ति, साहु ते अरहतं सुतं।
सानुं पबुद्धं वज्जासि, यक्खानं वचनं इदं।
माकासि पापकं कम्मं, आवि वा यदि वा रहो॥

"सचे च पापकं कम्मं, करिस्ससि करोसि वा।
न ते दुक्खा पमुत्यत्थि, उप्पच्चा पि पलायतो" ति॥

"मतं वा अम्म रोदन्ति, यो वा जीवं न दिस्सति।
जीवन्तं अम्म पस्सन्ती, कस्मा मं अम्म रोदसी" ति॥

"मतं वा पुत्त रोदन्ति, यो वा जीवं न दिस्सति।
यो च कामे चजित्वान, पुनरागच्छते इध।
तं वा पि पुत्त रोदन्ति, पुन जीवं मतो हि सो॥

'मैने अर्हतों की पूजा की, मैने अर्हतों के आदेश का पालन किया। परन्तु आज मैं देख रही हूँ कि यक्षजन सानु पर आरूढ हैं॥"]

(यक्ष—) "चतुर्दशी, पञ्चदशी...पूर्ववत्...ऐसा तुमने अर्हतों से सत्य ही सुना है। परन्तु प्रबुद्ध सानु को यक्षों का यह बता दो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष (छिप कर) कोई पापकर्म न करना। यदि ऐसा कोई पाप कर्म करोगे तो तुम्हें दुःख से कभी मुक्ति नहीं मिल सकती। चाहे जहाँ कही भी कितना ही उछलो कूदो। उड़कर भले ही आकाश में चले जाओ"॥

(सानु—) "मेरा अनुभव तो यह है कि माताएँ या तो पुत्र के मरने पर रोती हैं या जीवित को भी (परदेश आदि चले जाने पर) न देखने पर ही रोया करती हैं। परन्तु मैं देख रहा हूँ कि मेरे जीवित रहने पर भी मेरी माता मेरे लिये रो रही है। माँ तूँ क्यों रो रही है?"

(माता—)"पुत्र के मर जाने या उसके परदेश चले जाने पर तो माताएँ रोती ही है, परन्तु माताएँ उस पुत्र के लिये भी रोती हैं जो प्रव्रजित होकर एक बार समस्त कामभोगों को जीत लेता है, किन्तु (दौर्भाग्य से वह) पुनः गृहस्थ धर्म स्वीकार कर लेता है। माताएँ उसके लिये भी रोती ही हैं; क्यों कि वह जीवित भी मृत के समान ही है॥

---

१. एत्थ रो० पोत्थके इयं गाथा अधिका दिस्सति—
"साहू ति मे अरहतं, इति मे अरहतं सुतं।
सा दानि अज्ज पस्सामि, यक्खा कीळन्ति सानुना" ति॥

"कुक्कुळा उब्भतो तात, कुक्कुळं पतितुमिच्छसि।
नरका उब्भतो तात, नरकं पतितुमिच्छसि॥
"अभिधावथ भद्दन्ते, कस्स उज्झापयामसे।
आदित्ता नीहतं भण्डं डय्हितुमिच्छसी" ति॥ •

६. पियङ्करसुत्तं

७. एकं समयं आयस्मा अनुरुद्धो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ-पिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मा अनुरुद्धो रत्तियो पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय धम्मपदानि भासति। अथ खो पियङ्करमाता यक्खिनी पुत्तकं एवं तोसेसि—

"मा सद्दं करि पियङ्कर, भिक्खू धम्मपदानि भासति। [N.211]
अपि च धम्मपदं विजानिय, पटिपज्जेम हिताय नो सिया॥
"पाणेसु च संयमामसे, सम्पजानमुसा न भणामसे।
सिक्खेम सुसील्यमत्तनो, अपि मुच्चेम पिसाचयोनिया" ति॥ •

("सांसारिकत्याग स्वरूप) गरम राख से कुछ समय पहले छुटकारा पाये हो, अब पुन: उसी गरम राख में गिरना चाह रहे हो। जिस नरक से अभी निकले हो उसी में पुन: गिरना चाह रहे हो॥

"भन्ते! आगे बढिये, आप का कल्याण हो! हम किसको कष्ट दें या किसका कष्ट देखें। आप तो अपने शरीर पात्र को, जिस अग्निदाह से मुक्त करा चुके थे उसी अग्नि में पुन: जलना चाह रहे है!"॥[१] •

६. प्रियङ्करसूत्र : : पिशाच योनि से मुक्ति

७. एक समय आयुष्मान् अनुरूद्ध **श्रावस्ती के** जेतवन में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय ये आयुष्मान् अनुरुद्ध रात्रि के अन्तिमप्रहर प्रत्यूष समय निद्रा त्याग कर धर्मपदों का पाठ करते थे। तब प्रियङ्कर माता यक्षिणी अपने पुत्र को यों सन्तोष (आश्वासन=समझाना) देती थी—

"पुत्र प्रियङ्कर! कोलाहल न करो! ये भिक्षु धर्मपदों का स्वाध्याय कर रहे हैं। हम भी इन धर्मपदों के जान लें तथा इन पर आचरण करें तो हमारा भी हित ही होगा॥

"जीवों के प्रति हम दयाभाव (हिंसा में संयम) रखें। जानते बूझते हुए असत्यभाषण न करें, तो अवश्य ही इस पिशाचयोनि से मुक्ति पा लेंगे"॥ •

[यह कथा धम्पद अट्ठकथा में बहुत अच्छी तरह वर्णित की हैं, इसे वहाँ अवश्य देखना चाहिये। द्र० गाथा सं० ३२६ की व्याख्या नागवर्ग में —सं०]

७. पुनब्बसुसुत्तं

८. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। [B.212] तेन खो पन भगवा भिक्खू निब्बानपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय सन्दस्सेति [R.210] समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। अथ खो पुनब्बसुमाता यक्खिनी पुत्तकं एवं तोसेसि—

''तुण्ही उत्तरिके होहि, तुण्ही होहि पुनब्बसु।
यावाहं बुद्धसेट्ठस्स, धम्मं सोस्सामि सत्थुनो॥
''निब्बानं भगवा आह, सब्बगन्थप्पमोचनं।
अतिवेला च मे होति, अस्मिं धम्मे पियायना॥
''पियो लोके सको पुत्तो, पियो लोके सको पति।
ततो पियतरा मय्हं, अस्स धम्मस्स मग्गना॥
''न हि पुत्तो पति वा पि, पियो दुक्खा पमोचये।
यथा सद्धम्मस्सवनं, दुक्खा मोचेति पाणिनं॥

---

७. पुनर्वसुसूत्र : : धर्माचरण सर्वतोऽधिक प्रिय

८. एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के जेतवन में...। उस समय भगवान् भिक्षुओं का निर्वाण की ओर प्रदत्त करने वाली धर्म कंथा से साक्षात्कार, समुत्तेजन एवं सम्प्रहर्षण कर रहे थे। वे भिक्षु भी ध्यान लगा कर...उस धर्मकथा को कान लगाकर सुन रहे थे। उसी समय उत्तरिका एवं पुनर्वसु की माता यक्षिणी ने अपने पुत्र को यों कहकर सन्तुष्ट (आश्वस्त) किया—

''उत्तरिके! तुम तब तक शान्त रहो, कोलाहल न करो; पुनर्वसु! तुम भी चुप रहो। जब तक कि मैं शास्ता बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्मकथा न सुन लूँ॥

''भगवान् सभी सांसारिक ग्रन्थियों से मुक्त कराने वाले निर्वाण का उपदेश कर रहे हैं। इस धर्मश्रवण मे मेरी श्रद्धा अधिक से अधिक बदली जा रही है॥

''संसार में लोगों को अपना पुत्र सर्वप्रिय होता है, स्त्रियों को अपना पति प्रिय होता है; परन्तु मुझ को यह भगवदुपदिष्ट धर्मकथा का सुनना इन दोनों से भी अधिक प्रिय है॥

''पुत्र या पति उतना अधिक प्रिय होने पर भी वे उसको सांसारिक बन्धनों से मुक्त नहीं कर सकते; परन्तु इस सद्धर्मश्रमण के प्रभाव से सभी प्राणी दुःखों से मुक्त हो सकते हैं॥

"लोके दुक्खपरेतस्मिं, जरामरणसंयुते।
जरामरणमोक्खाय, यं धम्मं अभिसम्बुधं।
तं धम्मं सोतुमिच्छामि, तुण्ही होहि पुनब्बसू" ति॥
"अम्मा न ब्याहरिस्सामि, तुण्हीभूतायमुत्तरा।
धम्ममेव निसामेहि, सद्धम्मस्सवनं सुखं।
सद्धम्मस्स अनञ्ञाय, अम्मा दुक्खं चरामसे॥
"एस देवमनुस्सानं, सम्मूळ्हानं पभङ्करो। [N.212]
बुद्धो अन्तिमसारीरो, धम्मं देसेति चक्खुमा" ति॥
"साधु खो पण्डितो नाम, पुत्तो जातो उरेसयो।
पुत्तो मे बुद्धसेट्ठस्स, धम्मं सुद्धं पियायति॥
"पुनब्बसु सुखी होहि, अज्जाहम्हि समुग्गता।
दिट्ठानि अरियसच्चानि, उत्तरा पि सुणातु मे" ति॥

८. सुदत्तसुत्तं

९. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति सतीवने। तेन खो पन समयेन [B.213] अनाथपिण्डिको गहपति राजगहं अनुप्पत्तो होति केनचिदेव करणीयेन। अस्सोसि खो

"इस दु:खबहुल संसार में, जो कि जरा एवं मृत्यु से सम्पृक्त है, जरा एवं मृत्यु से मुक्ति पाने के लिये जिस धर्म का उदय हुआ है, उस धर्म को मैं सुनना चाहती हूँ। अत: हे पुनर्वसु! तुम कुछ क्षण चुप ही रहो॥

(पुनर्वसु—) "हे माता! मैं कुछ न बोलूँगा, (मेरी बहन) यह उत्तरा भी चुप है। आप धर्मश्रवण करें; क्यों कि यह धर्मश्रवण सुखकर है। सद्धर्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके ही हम अपने दु:खों से मुक्ति पा सकेंगे। यों इसका श्रवण कर हम अपना हित ही करेंगे॥

"अज्ञानान्धकार से आवृत इन देवता एवं मनुष्यों को प्रकाश दिखाने वाले ये अनितम देहधारी ज्ञानी बुद्ध धर्मोपदेश कर रहे हैं"॥

(पुनर्वसुमाता—) "मेरी कोंख से उत्पन्न हुए मेरे पुत्र! तुम धन्य हो! मेरे पुत्र तुम को यह बुद्धोपदिष्ट धर्म प्रिय लगता है, (तुम इसके प्रति श्रद्धालु हो) तुम पण्डित हो। हे पुनर्वसु! तुम सुखी रहो। आज मेरा मस्तक ऊँचा हो गया है। मुझे आज आर्यसत्यों का दर्शन हो गया है। हे उत्तरे! तूँ भी मेरी बात सुन"॥

८. सुदत्तसूत्र : : अनाथपिण्डिक द्वारा का प्रथम दर्शन

९. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के शीतवन में साधना हेतु विराजमान थे। उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति किसी विशेष कार्य से राजगृह आये हुए थे। अनाथपिण्डिक

[R.211] अनाथपिण्डिको गहपति—"बुद्धो किर लोके उप्पन्नो" ति। तावदेव च पन भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुकामो होति। अथस्स अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स एतदहोसि—"अकालो खो अज्ज भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। स्वे दानाहं कालेन भगवन्तं दस्सनाय गमिस्सामी" ति बुद्धगताय सतिया निपज्जि। रत्तिया सुदं तिक्खत्तुं वुट्ठासि पभातं ति मञ्ञमानो। अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन सिवथिकद्वारं तेनुपसङ्कमि। अमनुस्सा द्वारं विवरिंसु। अथ खो अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स नगरम्हा निक्खमन्तस्स आलोको अन्तरधायि, अन्धकारो पातुरहोसि, भयं छम्भितत्तं लोमहंसो उदपादि, ततो व पुन निवत्तितुकामो अहोसि। अथ खो सिवको यक्खो अन्तरहितो सद्दमनुस्सावेसि—

"सतं हत्थी सतं अस्सा, सतं अस्सतरीरथा।
सतं कञ्ञासहस्सानि, आमुक्कमणिकुण्डला।
एकस्स पदवीतिहारस्स, कलं नाग्घन्ति सोळसिं॥

अभिक्कम, गहपति, अभिक्कम, गहपति! अभिक्कमनं ते सेय्यो, नो पटिक्कमनं" ति।

१०. अथ खो अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स अन्धकारो अन्तरधायि, आलोको पातुरहोसि, यं अहोसि भयं छम्भितत्तं लोमहंसो, सो पटिप्पस्सम्भि। दुतियं पि खो

गृहपति ने जब सुना—"बुद्ध लोक में उत्पन्न हुए हैं". तो उसी समय उसके हृदय में भगवान् के दर्शन के लिये उत्कण्ठा जाग्रत् हो गयी। परन्तु उसने सोचा—"अब तो भगवान् के दर्शन के लिये असमय है, कल प्रातः ही भगवान् के दर्शन हेतु चलूँगा।" यों बुद्धस्मृति चित्त में सँजोये हुए वह शय्या पर लेट गया। रात्रि में वह 'प्रातः काल हुआ' समझ कर तीन बार उठा। तथा उठकर वह नगर के श्मशान द्वार पर पहुँचा। देवताओं ने द्वार खोल दिया। तब अनाथपिण्डिक गृहपति के नगर से निकलते हुए प्रकाश लुप्त हो गया, अन्धकार छा गया, अतः वह भय से स्तब्ध हो गया। उसको रोमाञ्च हो गया। वहाँ से पुनः पीछे लौटने की इच्छा होने लगी। उस समय श्मशान के देवता शिवक यक्ष ने अप्रत्यक्ष रूप से यों कहा—

"सौ हाथी, सौ घोड़े, सौ घोड़ों वाला रथ, मुक्ता एवं माणिक्य से अलंकृत लाखों कन्याएँ आपके एक पदक्रम की तुलना नहीं कर सकतीं। अतः हे गृहपति! आगे बढ़ो, गृहपति! तुम आगे बढो! तुम्हारा तो अब आगे बढना ही अच्छा है, पीछे रहना तुम्हें शोभा नहीं देगा।"

अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स आलोको अन्तरधायि, अन्धकारो पातुरहोसि, [N.213] भयं छम्भितत्तं लोमहंसो उदपादि, ततो व पुन निवत्तितुकामो अहोसि। दुतियं पि खो सिबको यक्खो अन्तरहितो सद्दमनुस्सावेसि—

"सतं हत्थी सतं अस्सा...पे०...कलं नाग्धन्ति सोळसिं॥" [B.214]

अभिक्कम गहपति, अभिक्कम गहपति! अभिक्कमनं ते सेय्यो, नो पटिक्कमनं" ति।

अथ खो अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स अन्धकारो अन्तरधायि, आलोको पातुरहोसि, यं अहोसि भयं छम्भितत्तं लोमहंसो, सो पटिप्पस्सम्भि। ततियं पि खो अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स आलोको अन्तरधायि, अन्धकारो पातुरहोसि, भयं छम्भितत्तं लोमहंसो उदपदि, ततो व पुन निवत्तितुकामो अहोसि। ततियं पि खो सिवको यक्खो अन्तरहितो सद्दमनुस्सावेसि—

"सतं हत्थी, सतं अस्सा...पे०...
कलं नाग्घन्ति सोळसिं ॥

अभिक्कम गहपति, अभिक्कम गहपति! अभिक्कमनं ते सेय्यो नो पटिक्कमनं" ति।

अथ खो अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स अन्धकारो अन्तरधायि, आलोको पातुरहोसि, यं अहोसि भयं छम्भितत्तं लोमहंसो, सो पटिप्पस्सम्भि। अथ [R.212] खो अनाथपिण्डिको गहपति येन सीतवनं येन भगवा तेनुपसङ्कमि।

११. तेन खो पन समयेन भगवा रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय अब्भोकासे चङ्कमति। अद्दसा खो भगवा अनाथपिण्डिकं गहपतिं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान

---

१०. तब अनाथपिण्डिक गृहपति के सामने से अन्धकार हट गया, प्रकाश फैल गया। उसका समस्त भय शान्त हो गया।

दूसरी बार भी अनाथपिण्डिक गृहपति के नगर से निकलते हुए...पूर्ववत्...उसका समस्त भय शान्त हो गया।

तीसरी बार भी अनाथपिणिडक गृहपति के नगर से निकलते हुए...पूर्ववत्...उसका समस्त भय शान्त हो गया। तब अनाथपिण्डिक गृहपति क्रमशः शीतवन में, जहाँ भगवान् विराजमान थे, पहुँचा।

११. उस समय भगवान् रात्रि के अन्तिम प्रहर में शयनासन त्याग कर खुले आकाश के नीचे चंक्रमण कर रहे थे। भगवान् ने अनाथपिण्डिक गृहपति को आते हुए

चङ्कमा ओरोहित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा अनाथपिण्डिकं गहपतिं एतदवोच—"एहि, सुदत्ता" ति। अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति, 'नामेन मं भगवा आलपती' ति, हट्ठो उदग्गो तत्थेव भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोच—"कच्चि, भन्ते, भगवा सुखमसयित्था" ति?

[N.214] "सब्बदा वे सुखं सेति, ब्राह्मणो परिनिब्बुतो।
यो न लिम्पति कामेसु, सीतिभूतो निरूपधि॥
"सब्बा आसत्तियो छेत्वा, विनेय्य हदये दरं।
उपसन्तो सुखं सेति, सन्ति पप्पुय्य चेतसा" ति॥ •

९. पठमसुक्कासुत्तं

१२. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो [B.215] पन समयेन सुक्का भिक्खुनि महतिया परिसाय परिवुता धम्मं देसेति। अथ खो सुक्काय भिक्खुनिया अभिप्पसन्नो यक्खो राजगहे रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन उपसङ्कमित्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि—

"किं मे कता राजगहे मनुस्सा, मधुपीता व सेयरे।
ये सुक्कं न पयिरुपासन्ति देसेन्तिं अमतं पदं॥

दूर से ही देख लिया। उसे देख कर भगवान् चंक्रमणस्थान से उतरकर अपने आसन पर विराजमान हो गये। विराजमान होकर भगवान् ने गृहपति को—"आओ, सुदत्त!" कहकर बुलाया। तब वह गृहपति, 'भगवान् मुझको नामग्रहणपूर्वक बुला रहे हैं'—यह सोच कर बहुत प्रसन्न हुआ। तथा उसी समय भगवान् के श्रीचरणों में गिर कर उन्हें प्रणाम करता हुआ यों बोला—"भन्ते! आप समस्त रात्रिपर्यन्त सुखपूर्वक सोये ना?" भगवान् ने उत्तर दिया—

"जो निष्पाप एवं विमुक्त है वह सदा ही सुख से सोता है। जो कामभोगों में लिप्त नहीं होता जो चित्त विकारों के प्रशमन होने से शान्त हो गया है॥

जो सभी आसक्तियों को छिन्न भिन्न कर, हृदय में स्थित सांसारिक भय को निकाल कर शान्त हो गया है। वह चित्त की शान्ति प्राप्त कर सुख से ही सोता है"॥ •

९. प्रथम शुक्रासूत्र : : शुक्रा के उपदेश की यक्ष द्वारा प्रशंसा

१२. एक समय भगवान् **राजगृह के** वेणुवन में स्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय शुक्रा नाम की भिक्षुणी जिज्ञासुओं की विशाल सभा में धर्मोपदेश कर रही थी। तब उस शुक्रा भिक्षुणी पर कोई श्रद्धालु यक्ष राजगृह की एक गली से दूसरी गली या एक चौराहे से दूसरे चौराहे पर जाकर, उस प्रसङ्ग में, ये गाथाएँ कहने लगा—

"तं च पन अप्पटिवानीयं, असेचनकमोजवं।
पिवन्ति मञ्ञे सप्पञ्ञा, वलाहकमिव पन्थगू" ति॥ •

१०. दुतियसुक्कासुत्तं

१३. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो उपासको सुक्काय भिक्खुनिया भोजनं अदासि। अथ खो सुक्काय भिक्खुनिया अभिप्पसन्नो यक्खो राजगहे रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन [R.213] सिङ्घाटकं उपसङ्कमित्वा तायं वेलायं इमं गाथं अभासि—

"पुञ्ञं वत पसवि बहुं, सप्पञ्ञो वतायं उपासको।
यो सुक्काय अदासि भोजनं, सब्बगन्थेहि विप्पमुत्तिया" ति॥ •

११. चीरासुत्तं

१४. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दक-निवापे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो उपासको चीराय भिक्खुनिया चीवरं अदासि। अथ खो चीराय भिक्खुनिया अभिप्पसन्नो यक्खो राजगहे रथिकाय रथकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं उपसङ्कमित्वा तायं वेलायं इमं गाथं अभासि—

"ओ! राजगृह के वासियो! क्या कर रहे हो? सुरापायी के समान उन्मत्त होकर क्या सो रहे हो। तुम इस शुक्रा भिक्षुणी द्वारा किया जा रहा धर्मोपदेश क्यों नहीं सुनते! जो उसमें अमृत रस घोल कर आप लोगों को पिलाना चाह रही है!॥

"जो पीछे हटने वाला नहीं है, जो विना सेचे ओज से परिपूर्ण है। इस अमृत का पान तो कोई ज्ञानिजन ही कर पायगा, जैसे कोई यात्री मेघ का जल पी लेता है"॥ •

१०. द्वितीयशुक्रासूत्र : : शुक्रा को भोजनदान प्रशंसनीय

१३. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** के वेणुवन में...पूर्ववत्...उस समय कोई उपासक शुक्रा भिक्षुणी को भोजनदान कर रहा था। तब उस शुक्रा भिक्षुणी में कोई श्रद्धालु यक्ष...यह गाथा कहने लगा—

"इस प्रज्ञावान् उपासक ने शुक्रा भिक्षुणी को भोजनदान कर बहुत पुण्य का अर्जन किया। इस पुण्य के प्रभाव से यह उपासक सभी सांसारिक ग्रन्थियों से पूर्णतः मुक्त हो गया"॥ •

११. चीरासूत्र : : चीरा को चीवरदान

१४. एक समय भगवान् राजगृह में...पूर्ववत्...। उस समय कोई उपासक चीरा नामक भिक्षुणी को चीवरदान कर रहा था। तब उस चीरा भिक्षुणी पर श्रद्धा रखने वाला कोई यक्ष...चौराहे पर धूम धूम कर यह गाथा कहने लगा—

[N.215,B.216] "पुञ्ञं वत पसवि बहुं, सप्पञ्ञो वतायं उपासको।
यो चीराय अदासि चीवरं, सब्बयोगेहि विप्पमुत्तिया" ति॥ •

१२. आळवकसुत्तं

१५. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा आळवियं विहरति आळवकस्स यक्खस्स भवने। अथ खो आळवको यक्खो येन भगवा तनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"निक्खम, समणा" ति। "साधावुसो" ति भगवा निक्खमि। "पविस, समणा" ति। "साधावुसो" ति भगवा पाविसि। दुतियं पि खो आळवको [R.214] यक्खो भगवन्तं एतदवोच—"निक्खम, समणा" ति। "साधावुसो" ति भगवा निक्खमि। "पविस, समणा" ति "साधावुसो" ति भगवा पाविसि। ततियं पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच—"निक्खम, समणा" ति। "साधावुसो" ति भगवा निक्खमि। 'पविस, समणा' ति। "साधावुसो" ति पाविसि। चतुत्थं पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच—"निक्खम, समणा" ति।

"न ख्वाहं तं, आवुसो, निक्खमिस्सामि। यं ते करणीयं तं करोही" ति।

"पञ्हं तं, समण, पुच्छिस्सामि। सचे मे न ब्याकरिस्ससि चित्तं वा ते खिपिस्सामि हदयं व ते फलेस्सामि पादेसु व गहेत्वा पारगङ्गाय खिपिस्सामी" ति।

"न ख्वाहं तं, आवुसो, पस्सामि सदेवके लोके समारक सब्रह्मके सस्समण-ब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय ये मे चित्तं व खिपय्य हदयं व फालेय्य पादेसु व गहेत्वा पारगङ्गाय खिपय्य। अपि च त्वं, आवुसो, पुच्छ यदाकङ्खसी" ति।

"इस प्रज्ञावान् उपासक ने चीरा भिक्षुणी को चीवरदान कर बहुत पुण्यार्जन किया। इस पुण्य के प्रभाव से यह उपासक समस्त सांसारिक ग्रन्थियों से पूर्णतः विमुक्त हो गया॥" •

१२. आळवकसूत्र : : आळवकदमन

१५. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **आळवी** के आळवक यक्ष के भवन में साधनाहेतु विराजमान थे। तब वह आळवक यक्ष भगवान् के पास गया तथा उनसे बोला—"श्रमण! यहाँ से बाहर निकलो।" भगवान् "आयुष्मन्! बहुत अच्छा" कहकर भवन से बाहर निकल गये।

दूसरी बार भी...पूर्ववत्... "श्रमण! अन्दर चले आओ"...बाहर निकल गये।

तीसरी बार भी...पूर्ववत्...बाहर निकल गये।

परन्तु चौथी बार भी जब यक्ष बोला—"श्रमण! बाहर निकल जाओ!" तो

१६. अथ खो आळवको यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"किंसूध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, किंसु सुचिण्णं सुखमावहाति।
किंसु हवे सादुतरं रसानं, कथंजीविं जीवितमाह सेट्ठं" ति॥ [N.216]

"सद्धीध वित्तं पुरिस्स सेट्ठं, धम्मो सुचिण्णो सुखमावहाति।
सच्चं हवे सादुतरं रसानं, पञ्ञाजीविं जीवितमाहु सेट्ठं" ति॥

"कथंसु तरति ओघं, कथंसु तरति अण्णवं।
कथंसु दुक्खमच्चेति, कथंसु परिसुज्झती" ति॥

"सद्धाय तरति ओघं, अप्पमादेन अण्णवं। [B.217]
विरियेन दुक्खमच्चेति, पञ्ञाय परिसुज्झती" ति॥

"कथंसु लभते पञ्ञं, कथंसु विन्दते धनं?
कथंसु कित्तिं पप्पोति, कथं मित्तानि गन्थति?
अस्मा लोका परं लोकं, कथं पेच्च न सोचती"? ति॥

भगवान् ने कहा—मुझे...गङ्गा के पार फेंक सके। फिर भी तुम्हें जो प्रश्न पूछना हो, पूछ लो।

१६. तब आळवक यक्ष ने भगवान् से यह गाथा कहते हुए प्रश्न किया—

"पुरुष का सर्वश्रेष्ठ धन क्या है? क्या सञ्चित किया हुआ सुखदायक होता है? रसों में सबसे स्वादिष्ठ रस कौन है? तथा कैसा जीवन श्रेष्ठ कहलाता है"?

(भगवान्-) "श्रद्धा ही पुरुष का सर्वश्रेष्ठ धन है। सञ्चित किया हुआ धर्म ही सुखदायक होता है। सत्य का रस सब रसों में श्रेष्ठ है। एवं प्रज्ञामय जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है"॥

(यक्ष—) "संसार की बाढ को कैसे पार किया जा सकता है? समुद्र को कैसे तैरा जा सकता है? दुःखों का अन्त कैसे किया जा सकता है? तथा मनुष्य कैसे परिशुद्ध हो सकता है?"

(भगवान्—) "संसार की बाढ को श्रद्धा से पार किया जा सकता है। साधना में अप्रमाद से भवसागर को तैरा जा सकता है। साधना में वीर्य (पराक्रम) से दुःखों का अन्त किया जा सकता है तथा प्रज्ञा से मनुष्य का चित्त शुद्ध हो सकता है"॥

(यक्ष—)"साधक प्रज्ञा का लाभ कैसे कर सकता है? धन कैसे प्राप्त किया जा सकता है? साधक द्वारा यश कैसे प्राप्त किया जा सकता है? मित्रों को कैसे अपना बनाया जा सकता है। देहपात के बाद मनुष्य को इस लोक से परलोक जाने पर कैसे शोक नहीं करना पड़ता?"

"सद्दहानो अरहतं, धम्मं निब्बानपत्तिया।
सुस्सूसं लभते पञ्ञं, अप्पमत्तो विचक्खणो॥
"पतिरूपकारी धुरवा, उट्ठाता विन्दते धनं।
सच्चेन कित्तिं पप्पोति, ददं मित्तानि गन्थति।
अस्मा लोका परं लोकं, एवं पेच्च न सोचति॥
"यस्सेते चतुरो धम्मा, सद्धस्स घरमेसिनो।
सच्चं धम्मो धिति चागो, स वे पेच्च न सोचति॥
"इङ्घ अञ्ञे पि पुच्छस्सु, पुथू समणब्राह्मणे।
यदि सच्चा धम्मा चागा, खन्त्या भिय्योध विज्जती" ति॥
"कथं नु दानि पुच्छेय्यं, पुथू समणब्राह्मणे।
योहं अज्ज पजानामि, यो अत्थो सम्परायिको॥
"अत्थाय वत मे बुद्धो, वासायाळविमागमा।
योहं अज्ज पजानामि, यत्थ दिन्नं महप्फलं॥

(भगवान्—) निर्वाण की प्राप्ति के लिये अर्हत् एवं धर्म पर श्रद्धा रखता हुआ अप्रमत्त एवं विचक्षण पुरुष ही, उनकी सेवा शुश्रूषा कर प्रज्ञा का लाभ कर सकता है॥

"कार्य करने वाले, परिश्रमी एवं उत्साही पुरुष द्वारा ही अर्थ (धन) का उपार्जन किया जा सकता है।

"सत्य आचरण से ही साधक द्वारा यश प्राप्त किया जा सकता है। मित्रों को निरन्तर कुछ देते रहने से ही उनको अपना बनाये रखा जा सकता है। इतना सब करके ही देहपात के बाद इस लोक से परलोक जाने के बाद मनुष्य को शोक नहीं करना पड़ता॥

"जो श्रद्धालु गृहस्थ इन चारों धर्मों (कर्तव्यों) को पूर्ण करने का प्रयास करता रहता है; जैसे—१. सत्य, २. इन्द्रिनिग्रह, ३. धैर्य एवं ४. त्याग; वही परलोक जाकर कोई शोक नहीं करता॥

"इस विषय में तुम अन्य ज्ञानी श्रमण ब्राह्मणों से भी पूछ सकते हो कि क्या सत्य, इन्द्रियनिग्रह, धैर्य एवं त्याग एवं क्षमा के अतिरिक्त भी कोई श्रेष्ठ धर्म है?"

(यक्ष—) "भन्ते! अब दूसरे ज्ञानी श्रमण ब्राह्मणों से क्यों और क्या पूछने जाऊँगा जब कि मैं स्वयं ही जान चुका हूँ कि पारलौकिक परमार्थ क्या है?

"मेरे कल्याण के लिये ही आज आप बुद्ध इस आळवी में पधारे हैं। आज हम जान गये हैं कि किसको दान करने का महाफल होता है॥

"सो अहं विचरिस्सामि, गामा गामं पुरा पुरं। [N.217]
नमस्समानो सम्बुद्धं, धम्मस्स च सुधम्मतं" ति॥ •

यक्खसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

इन्दको सक्क सूचि च, मणिभद्दो च सानु च।
पियङ्कर पुनब्बसु सुदत्तो च, द्वे सुक्का चीरआळवी ति द्वादस॥ •

"अब मैं ग्राम ग्राम तथा नगर नगर घूम घूमकर बुद्ध और धर्म को प्रणाम करते हुए उनके महत्त्व एवं वैशिष्ट्य का प्रचार करूँगा"॥ •

इन्द्रक वर्ग समाप्त॥

यक्षसंयुक्त समाप्त॥

इस संयुक्त के सूत्रों की सूची—१. इन्द्रकसूत्र, २. शक्रनामसूत्र, ३. सूचिलोमसूत्र, ४. मणिभद्रसूत्र, ५. सानुसूत्र, ६. प्रियङ्करसूत्र, ७. पुनर्वसुसूत्र, ८. सुदत्तसूत्र, ९. प्रथम शुक्रासूत्र, १०. द्वितीयशुक्रासूत्र, ११. चीरासूत्र एवं १२. आळवकसूत्र॥

११. सक्कसंयुत्तं

१. पठमो वग्गो

१. सुवीरसुत्तं

[N.218, B.218, R.216] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि— ''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''भूतपुब्बं, भिक्खवे, असुरा देवे अभियंसु। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुवीरं देवपुत्तं आमन्तेसि—'एते, तात सुवीर, असुरा देवे अभियन्ति। गच्छ, तात सुवीर, असुरे पच्चुय्याही' ति। 'एवं भद्दन्तवा' ति खो, भिक्खवे, सुवीरो देवपुत्तो सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा पमादं आपादेसि। दुतियं पि खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुवीरं देवपुत्तं आमन्तेसि—'एते, तात सुवीर, असुरा देवे अभियन्ति। गच्छ, तात सुवीर, असुरे पच्चुय्याही' ति। 'एवं भद्दन्तवा' ति खो, भिक्खवे, सुवीरो देवपुत्तो सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा दुतियं पि पमादं आपादेसि। ततियं पि खो भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुवीरं देवपुत्तं आमन्तेसि— 'एते, तात सुवीर, असुरा देवे अभियन्ति। गच्छ, तात सुवीर, असुरे पच्च्याही' ति। [R.217] 'एवं भद्दन्तवा' ति खो, भिक्खवे, सुवीरो देवपुत्तो सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा ततियं पि पमादं आपादेसि। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुवीरं देवपुत्तं गाथाय अज्झभासि—

---

११. शक्रसंयुक्त

प्रथम वर्ग

१.सुवीरसूत्र : : देवासुरसंग्राम, परिश्रम की प्रशंसा

ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती के** जेतवन में साधना हेतु विराजमान थे। किसी समय वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाकर यह कहा—

''भिक्षुओ! पहले कभी असुरों ने देवताओं पर आक्रमण किया था। उस समय, भिक्षुओ! देवराज शक्र ने सुवीर देवपुत्र को बुलाकर यह आदेश दिया—''तात सुवीर! ये असुर देवताओं पर आक्रमण कर रहे हैं। अत: तुम जाओ और इन पर प्रत्याक्रमण करो।'' सुवीर ने देवराज इन्द्र का आदेश सुन कर उसकी उपेक्षा कर दी। अत: दूसरी बार भी देवराज ने सुवीर को बुलाकर कहा—...पूर्ववत्...तीसरी बार भी उपेक्षा ही कर दी। तब, भिक्षुओ! देवराज शक्र ने इस गाथा के माध्यम से उसको यह कहा—

'अनुट्ठहं अवायामं, सुखं यत्राधिगच्छति।
सुवीर तत्थ गच्छाहि, मं च तत्थेव पापया' ति॥
'अलस्वस्स अनुट्ठाता, न च किच्चानि कारये।
सब्बकामसमिद्धस्स, तं मे सक्क वरं दिसा' ति॥
'यत्थालसो अनुट्ठाता, अच्चन्तं सुखमेधति। [B.219]
सुवीर तत्थ गच्छाहि, मं च तत्थेव पापया' ति॥
'अकम्मुना देवसेट्ठ, सक्क निन्देमु यं सुखं। [N.219]
असोकं अनुपायासं, तं मे सक्क वरं दिसा' ति॥
'सचे अत्थि अकम्मेन, कोचि क्वचि न जीवति।
निब्बानस्स हि सो मग्गो, सुवीर तत्थ गच्छाहि।
मं च तत्थेव पापया' ति॥

२. ''सो हि नाम, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सकं पुञ्ञफलं उपजीवमानो देवानं तावतिंसानं इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेन्तो उट्ठानविरियस्स वण्णवादी भविस्सति। इध खो तं, भिक्खवे, सोभेथ, यं तुम्हे एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजिता समाना उट्ठहेय्याथ घटेय्याथ वायमेय्याथ अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया'' ति। ●

'तात सुवीर! कोई अनुष्ठान या उद्यम किये विना जहाँ सुख मिल पाता हो, तुम वहाँ चले जाओ तथा मुझको भी वहीं ले चलो'॥

(सुवीर—) 'जहाँ आलसी एवं उद्यमरहित पुरुष जो कुछ भी नहीं कर पाता वैसे मेरे सभी अभीष्ट कार्य पूर्ण होने का वर दें॥

(शक्र—)'जहाँ आलसी एवं उद्यमरहित पुरुष भी सुख पा सकता हो, तुम वहीं चले जाओ, तथा मुझे भी वहीं ले चलो'॥

(सुवीर—) 'हे देवश्रेष्ठ! कर्म किये विना ही, आलसी बने रहते भी मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण होती चलें—मुझे ऐसा वर दो।'

(शक्र—) 'कर्म किये विना भी यदि कोई कहीं सुख पा सकता है तो वह एकमात्र निर्वाण का मार्ग है। सुवीर! तुम वहीं चले जाओ, तथा मुझे भी वहीं ले चलो'॥

२. ''भिक्षुओ! वह देवराज शक्र अपने पुण्य के प्रताप से त्रायस्त्रिंश देवों पर ऐश्वर्य प्राप्त कर राज्य करते हुए उत्साह एवं उद्यम का प्रशंसक है। भिक्षुओ! तुम्हारी भी इसी में शोभा है कि तुम भी इस भली भाँति आख्यात धर्म में प्रव्रजित होकर उत्साहपूर्वक, साहस

२. सुसीमसुत्तं

३. सावत्थियं। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"भूतपुब्बं, भिक्खवे, असुरा देवे अभियंसु। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुसीमं देवपुत्तं आमन्तेसि—'एते, तात सुसीम, असुरा देवे अभियन्ति। गच्छ, तात सुसीम, असुरे पच्चुय्याही' ति। 'एवं भद्दन्त्वा ति खो, भिक्खवे, सुसीमो देवपुत्तो सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा पमादं आपदेसि। दुतियं पि खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुसीमं देवपुत्तं आमन्तेसि...पे०...दुतियं पि पमादं आपादेसि। [R.218] ततियं पि खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुसीमं देवपुत्तं आमन्तेसि ...पे०...ततियं पि पमादं आपादेसि। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुसीमं देवपुत्तं गाथाय अज्झभासि—

'अनुट्ठहं अवायामं, सुखं यत्राधिगच्छति।
सुसीम तत्थ गच्छाहि, मं च तत्थेव पापया' ति॥
[B.220] 'अलस्वस्स अनुट्ठता, न च किच्चानि कारये।
सब्बकामसमिद्धस्स, तं मे सक्क वरं दिसा' ति॥
[N.220] 'यत्थालसो अनुट्ठाता, अच्चन्तं सुखमेधति।
सुसीम तत्थ गच्छाहि, मं च तत्थेव पापया' ति॥
'अकम्मुना देवसेट्ठ, सक्क विन्देमु यं सुखं।
असोकं अनुपायासं, तं मे सक्क वरं दिसा' ति॥
'सचे अत्थि अकम्मेन, कोचि क्वचि न जीवति।
निब्बानस्स हि सो मग्गो, सुसीम तत्थ गच्छाहि।
मं च तत्थेव पापया' ति॥

४. "सो हि नाम, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सकं पुञ्ञफलं उपजीवमानो

के साथ, अप्राप्त की प्राप्ति के लिये, दुर्गम स्थान पर जाने के लिये तथा असाक्षात्कृत के साक्षात्कार के लिये परिश्रम करो"॥ •

२. सुसीम सूत्र : : परिश्रम का माहात्म्य

३. श्रावस्ती में...। वहाँ भिक्षुओ को बुला कर भगवान् ने उनसे यह कहा—"पहले कभी, भिक्षुओ! असुरों ने देवताओं पर आक्रमण किया...पूर्ववत्..तथा मुझे भी वहीं पहुँचा दो।

देवानं तावतिंसानं इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेन्तो उट्ठानविरियस्स वण्णवादी भविस्सति। इध खो तं, भिक्खवे, सोभेथ यं तुम्हे एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजिता समाना उट्ठहेय्याथ घटेय्याथ वायमेय्याथ अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया'' ति। ●

३. धजग्गसुत्तं

५. सावत्थियं। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''भूतपुब्बं, भिक्खवे, देवासुरसङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो देवे तावतिंसे आमन्तेसि—

'सचे, मारिसा, देवानं सङ्गामगतानं उप्पज्जेय्य भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, ममेव तस्मिं समये धजग्गं उल्लोकेय्याथ। ममं हि वो धजग्गं उल्लोकयतं [R.219] यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सति।

'नो चे मे धजग्गं उल्लोकेय्याथ, अथ पजापतिस्स देवराजस्स धजग्गं उल्लोकेय्याथ। पजापतिस्स हि वो देवराजस्स धज्जगं उल्लोकयतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सति।

'नो चे पजापतिस्स देवराजस्स धजग्गं उल्लोकेय्याथ, अथ वरुणस्स [B.221] देवराजस्स धजग्गं उल्लोकेय्याथ। वरुणस्स हि वो देवराजस्स धजग्गं उल्लोकयतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सति। [N.221]

---

४. भिक्षुओ! वह देवराज शक्र...पूर्ववत्...साक्षात्कार के लिये परिश्रम करो''॥●

३. ध्वजाग्रसूत्र : : देवासुर संग्रम, त्रिरत्न का माहात्म्य

५. श्रावस्ती में...। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाकर यह बताया—भिक्षुओ! पहले कभी देवताओं एवं असुरों में भयङ्कर संग्राम आरम्भ हुआ। तब भिक्षुओ! देवराज शक्र ने त्रायस्त्रिंशलोकवासी देवताओं को एकत्र कर यह कहा—

'मार्ष! यदि संग्राम में शत्रु से युद्ध करते हुए देवताओं को भय, स्तब्धता एवं रोमहर्ष होने लगे तो उस समय उन्हें मेरे रथ की ध्वजा के अग्रभाग को देख लेना चाहिये, उससे उनका वह भय, स्तब्ध एवं रोमहर्ष—सभी कुछ प्रहीण हो जायगा।

'वे मेरा ध्वजाग्र न देख पावें तो उन्हें प्रजापति देवराज का ध्वजाग्र देखना चाहिये, उससे उनका वह भय...प्रहीण हो जायगा।

'वे प्रजापति का ध्वजाग्र न देख पावें तो उन्हें वरुणदेवराज का ध्वजाग्र देखना चाहिये, उससे उनका वह भय...प्रहीण हो जायगा।

'नो चे वरुणस्स देवराजस्स धजग्गं उल्लोकेय्याथ, अथ ईसानस्स देवराजस्स धजग्गं उल्लोकेय्याथ। ईसानस्स हि वो देवराजस्स धजग्गं उल्लोकयतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सती' ति।

''तं खो पन, भिक्खवे, सक्कस्स वा देवानमिन्दस्स धजग्गं उल्लोकयतं, पजापतिस्स वा देवराजस्स धजग्गं उल्लोकयतं, वरुणस्स वा देवराजस्स धजग्गं उल्लोकयतं, ईसानस्स वा देवराजस्स धजग्गं उल्लोकयतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयेथा पि नो पि पहीयेथ।

''तं किस्स हेतु? सक्को हि, भिक्खवे, देवानमिन्दो अवीतरागो अवीतदोसो अवीतमोहो भीरु छम्भी उत्रासी पलायी ति।

६. ''अहं च खो, भिक्खवे, एवं वदामि—'सचे तुम्हाकं, भिक्खवे, अरञ्ञगतानं वा रुक्खमूलगतानं वा सुञ्ञागारगतानं वा उप्पज्जेय्य भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, ममेव तस्मिं समये अनुस्सरेय्याथ—इतिपि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। ममं हि वो, भिक्खवे, अनुस्सरतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सति।

'नो चे मं अनुस्सरेय्याथ, अथ धम्मं अनुस्सरेय्याथ—स्वाक्खातो भगवता [R.220] धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो

'वे वरुण देवराज का ध्वजाग्र भी न देख पावें तो उन्हें ईशान देवराज का ध्वजाग्र देखना चाहिये, उससे उनका भय...प्रहीण हो जायगा'।

''भिक्षुओ! हो सकता है उन देवताओं का शक्र देवराज का, प्रजापति देवराज का, वरुणदेवराज का, ईशान देवराज का ध्वजाग्र देखने से भय...प्रहीण हो भी सकता है, या नहीं भी हो सकता है। वह किस कारण? क्यों कि देवराज शक्र राग द्वेष मोह से दूर नहीं हुआ है, वह स्वयं भी डरपोक, स्तब्ध, उद्विग्न होने वाला तथा रणक्षेत्र से भाग जाने वाला है।

६. ''मैं तो इसका उपाय तुम्हें यह बताता हूँ—यदि, भिक्षुओ! तुम्हें अरण्य में, वृक्षों के नीचे, शून्य भवनों में भय स्तब्धता एवं रोमाञ्च होने लगे तो उस समय तुम्हें मेरा अनुस्मरण करना चाहिये—'भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध...इस लोक में मनुष्यों एवं देवताओं के शास्ता हैं।' इस अनुस्मरण से तुम्हारा भय, स्तब्धता एवं रोमहर्ष प्रहीण हो जायगा।

''यदि तुम किसी कारण, धर्म का भी अनुस्मरण न कर सको तो मेरे द्वारा सञ्चातित भिक्षुसङ्घ का अनुस्मरण करना चाहिये—'भगवान् द्वारा सञ्चालित भिक्षु सङ्घ

विञ्ञूही ति। धम्मं हि वो, भिक्खवे, अनुस्सरतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सति।

'नो चे धम्मं अनुस्सरेय्याथ, अथ सङ्घं अनुसरेय्याथ—'सुप्पटिपन्नो [B.222] भगवतो सावकसङ्घो सामीचिप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, यदिदं चत्तारि पुरिस-युगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला एस भगवतो सावकसङ्घो, आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा ति। सङ्घं हि वो, भिक्खवे, [N.222] अनुस्सरतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सति'।

"तं किस्स हेतु? तथागतो हि, भिक्खवे, अरहं सम्मासम्बुद्धो वीतरागो वीतदोसो वीतमोहो अभीरु अच्छम्भी अनुत्रासी अपलायी" ति।

७. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच—

"अरञ्ञे रुक्खमूले वा, सुञ्ञागारे व भिक्खवो।
अनुस्सरेथ सम्बुद्धं, भयं तुम्हाकं नो सिया॥
"नो चे बुद्धं सरेय्याथ, लोकजेट्ठं नरासभं।
अथ धम्मं सरेय्याथ, निय्यानिकं सुदेसितं॥
"नो चे धम्मं सरेय्याथ, निय्यानिकं सुदेसितं।
अथ सङ्घं सरेय्याथ, पुञ्ञक्खेत्तं अनुत्तरं॥
"एवं बुद्धं सरन्तानं, धम्मं सङ्घं च भिक्खवो।

सरल साधना मार्ग वाला है व्यवस्थित है, सुपथगामी है,...पूर्ववत्...अद्वितीय पुण्य का स्थान है'। इस अनुस्मरण से भी तुम्हारा वह भय, स्तब्धता एवं रोमहर्ष प्रहीण हो जायगा। वह किस लिये? वह इस लिये कि भिक्षुओ! भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध राग द्वेष मोह को अतिक्रान्त कर चुके हैं। तथा वे स्वयं न भीरु हैं, न स्तब्ध हैं, न कभी किसी स्थिति में उद्विग्न होने वाले हैं तथा कर्मक्षेत्र से पलायन करने वाले भी नहीं हैं"॥

७. भगवान् ने भिक्षुओं को यह कहा। साथ ही गाथाओं के माध्यम से भी यह कहा—

"किसी अरण्य में, किसी वृक्ष के नीचे, किसी शून्य भवन में भिक्षुओ! यदि तुम्हें भय ज्ञात हो तो उस समय बुद्ध का स्मरण करो, तुम्हारा भय दूर हो जायगा॥

"यदि तुम इन लोक में अद्वितीय एवं नरश्रेष्ठ बुद्ध का अनुस्मरण न कर पाओ तो उन के द्वारा स्वाख्यात, मोक्ष तक पहुँचाने वाले सूपदिष्ट धर्म का अनुस्मरण करो, तुम्हारा भय दूर हो जायगा॥

भयं वा छम्भितत्तं वा,लोमहंसो न हेस्सती'' ति॥

४. वेपचित्तिसुत्तं

८. सावत्थिनिदानं। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, देवासुरसङ्गामो समुपब्यूळ्हो [R.221] अहोसि। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो असुरे आमन्तेसि—'सचे, मारिसा, देवानं असुरसङ्गामे समुपब्यूळ्हे असुरा जिनेय्युं देवा पराजिनेय्युं, येन नं सक्कं देवानमिन्दं कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बन्धित्वा मम सन्तिके आनेय्याथ असुरपुरं' ति। सक्को पि खो, भिक्खवे, देवानमिन्दो देवे तावतिंसे आमन्तेसि—'सचे, मारिसा, देवानं असुरसङ्गामे समुपब्यूळ्हे देवा जिनेय्युं असुरा पराजिनेय्युं, येन नं वेपचित्तिं असुरिन्दं कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बन्धित्वा मम सन्तिके आनेय्याथ सुधम्मसभं' ति।

''तस्मिं खो पन, भिक्खवे, सङ्गामे देवा जिनिंसु, असुरा पराजिनिंसु। अथ [B.223] खो, भिक्खवे, देवा तावतिंसा वेपचितिं असुरिन्दं कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बन्धित्वा सक्कस्स देवानमन्दिस्स सन्तिके आनेसुं सुधम्मसभं। तत्र सुदं, भिक्खवे, [N.223] वेपचित्ति असुरिन्दो कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बद्धो सक्कं देवानमिन्दं सुधम्मसभं पविसन्तं च निक्खमन्तं च असब्भाहि फरुसाहि वाचाहि अक्कोसति

''यदि तुम, किसी कारण,उस धर्म का भी स्मरण न कर पाओ तो भगवान् द्वारा सञ्चालित सङ्घ का, जो कि अद्वितीय पुण्य का स्थान है, स्मरण करो॥

''इस तरह, भिक्षुओ! बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ का स्मरण करते हुए तुम्हारा सर्वविध भय, स्तब्धता एवं रोमहर्ष—सब कुछ दूर हो जायगा''॥

४. वेपचित्तिसूत्र : : क्षमा एवं सौजन्य का महत्त्व

८. यह सूत्र भी **श्रावस्ती के** जेतवन में ही...। ''भिक्षुओ! पहले कभी देवताओं तथा असुरों में परस्पर युद्ध हो रहा था। तब वेपचित्ति नामक असुरेन्द्र ने असुरों को अपने पास बुलाकर यों कहा—

'मार्ष! इस देवासुर संग्राम के समाप्त होने पर असुरों की विजय हो तथा देवताओं की पराजय हो तो तुम लोग देवराज शक्र को हाथ, पैर तथा कण्ठ—इन पाँच स्थानों से बाँध कर मेरे सम्मुख इस असुरपुर में ले आओ।'

''इसी तरह देवराज शक्र ने भी देवताओं को यों आदेश दिया—''मार्ष!...यदि देवताओं की विजय हो तो तुम वेपचित्ति असुरेन्द्र को...इस देवसभा में ले आओ।''

''उस समय, भिक्षुओ! उस संग्राम में देवताओं की विजय हुई, असुर पराजित हो गये, अतः त्रायत्रिंश लोकवासी देवता उस असुरेन्द्र वेपचित्ति को, हाथ पैर बाँध कर, देवराज के सम्मुख सुधर्मा देवसभा में ले आये। भिक्षुओ! उस समय वहाँ वह असुरेन्द्र

परिभासति। अथ खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कं देवानमिन्दं गाथाहि अज्झभासि—

'भया नु मघवा सक्क, दुब्बल्या नो तितिक्खसि।
सुणन्तो फरुसं वाचं, सम्मुखा वेपचित्तिनो' ति॥
'नाहं भया न दुब्बल्या, खमामि वेपचित्तिनो।
कथं हि मादिसो विञ्ञू, बालेन पटिसंयुजे' ति॥
'भिय्यो बाला पभिज्जेय्युं, नो चस्स पटिसेधको।
तस्मा भुसेन दण्डेन, धीरो बालं निसेधये' ति॥
'एतदेव अहं मञ्ञे, वालस्स पटिसेधनं।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मती' ति॥
'एतदेव तितिक्खाय, वज्जं पस्सामि वासव।
यदा नं मञ्ञति बालो, भया म्यायं तितिक्खति।
अज्झारुहति दुम्मेधो, गो व भिय्यो पलायिनं' ति॥
'कामं मञ्ञतु वा मा वा, भया म्यायं तितिक्खति। [R.222]

वेपचित्ति पाँच स्थानों से बंधा हुआ, देवताओं द्वारा सुधर्मा देवसभा में लाया जाता हुआ, सुधर्मा देवसभा में प्रविष्ट होने वाले देवराज शक्र को असभ्य एवं कठोर तथा रूखी वाणी (अपशब्द) का प्रयोग कर रहा था। भिक्षुओ! उस समय मातलि सारथि देवराज शक्र को ये गाथाएँ बोला—

'हे शक्र! आप आपको इस असुरेन्द्र से भय लग रहा है कि आप इसकी ऐसी असभ्य कठोर एवं रूक्ष वाणी सुन रहे हैं? क्या आप स्वयं को इससे दुर्बल समझ रहे हैं?

(शक्र—) 'मैं इस असुरेन्द्र वेपचित्ति के ये अपशब्द किसी भय या अपनी किसी दुर्बलता के कारण सह रहा हूँ, ऐसा नहीं है। मैं तो यह समझ रहा हूँ कि मेरे जैसा विज्ञ इस मूर्ख को क्या मुँह लगावे!''

(मातलि—) 'मूर्ख और भी आगें बढ जाते हैं, यदि उन्हें आरम्भ में ही दबा देने वाला कोई न मिले। अत: धैर्यवान् पुरुष को ऐसे मूर्खों के प्रति कठोर दण्ड की व्यवस्था करनी चाहिये कि ये आगे न बढने पावें॥

(शक्र—) 'मूर्ख को दण्ड देने का सबसे सरल उपाय यही समझता हूँ कि उसे क्रोधोन्मत्त देख कर स्वयं स्मृतिमान् रहता हुआ शान्त बना रहे'॥

(मातलि—) 'हे वासव! आप का उस मूर्ख को यों सह लेना मैं अनुचित (कर्म) समझता हूँ। क्योंकि मूर्ख तो आप की इस तितिक्षा के विषय में यही समझेगा कि ये मेरे

सदत्थपरमा अत्था, खन्त्या भिय्यो न विज्जति'॥
'यो हवे बलवा सन्तो, दुब्बलस्स तितिक्खति।
तमाहु परमं खन्तिं, निच्चं खमति दुब्बलो॥'
'अबलं तं बलं आहु, यस्स बालबलं बलं।
बलस्स धम्मगुत्तस्स, पटिवत्ता न विज्जति॥
'तस्सेव तेन पापियो, यो कुद्धं पटिकुज्झति।
कुद्धं अप्पटिकुज्झन्तो, सङ्गामं जेति दुज्जयं॥
[B.224] 'उभिन्नमत्थं चरति, अत्तनो च परस्स च।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मति॥
[N.224] 'उभिन्नं तिकिच्छन्तानं, अत्तनो च परस्स च।
जना मञ्ञन्ति बालो ति, ये धमस्स अकोविदा' ति॥

९. "सो हि नाम, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सकं पुञ्ञफलं उपजीवमानो देवानं तावतिंसानं इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेन्तो खन्तिसोरच्चस्स वण्णवादी

भय के कारण ही मेरे अपशब्द सहन कर रहे हैं, और वह इस कारण और अधिक आप के शिर चढ जायगा तथ विशेष उद्दण्डता करने लगेगा, जैसे मरकहा बैल सामने भागने वाले पर किया करता है'॥

(शक्र—) 'वह भले ही यह समझता रहे कि मेरे भय के कारण ये मेरी उद्दण्डता सहन कर रहे हैं, परन्तु परमार्थ सत्य इसके विपरीत है। वह यह है—क्षमा से बढ़कर दूसरा कोई अच्छा गुण नहीं है॥

'जो स्वयं बली होकर दूसरे दुर्बल पुरुष की बातें सहन कर लेता है उसी को सर्वोच्च क्षान्ति कहते हैं; दुर्बल तो निरन्तर ही बलवान् की बातें सहन करते रहते हैं॥

'वह बली तो वस्तुत: निर्बल ही है; क्यों कि उसके पास मूर्खों का बल हैं; वस्तुत: धर्मरक्षित सन्त के बल का कोई प्रतिद्वन्द्वी है ही नहीं॥

'जो क्रुद्ध के प्रति क्रोध करता है वह उसका अपराध ही है। हाँ, क्रोधी के प्रति भी क्रोध न करने वाला वस्तुत: संग्रामविजयी कहलाता है॥

'वह शान्तात्मा तो दोनों का ही हित करता है—अपना भी, दूसरे का भी कि जो दूसरे को क्रोध करता देख कर भी स्वयं शान्त ही रहता है॥

'अपना तथा दूसरे—दोनों का हित करने वाले ऐसे हितकारी मनुष्य को भले ही साधारण लोग 'मूर्ख' समझते रहें; क्यों कि वे धर्म के मर्मज्ञ नहीं है'॥

९. "भिक्षुओ! वे देवराज शक्र अपने पुण्य के प्रताप से त्रायस्त्रिंश देवों पर ऐश्वर्य

भविस्सति। इध खो तं, भिक्खवे, सोभेथ यं तुम्हे एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजिता समाना खमा च भवेय्याथ सोरता चा'' ति। ●

५. सुभासितजयसुत्तं

१०. सावत्थिनिदानं। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, देवासुरसङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच— 'होतु, देवानमिन्द, सुभासितेन जयो' ति।

'होतु, वेपचित्ति, सुभासितेन जयो' ति।

''अथ खो, भिक्खवे, देवा च असुरा च पारिसज्जे ठपेसुं—'नो सुभासितदुब्भासितं आजानिस्सन्ती' ति। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच—'भण, देवानमिन्द, गाथं' ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो वेपचित्तिं असुरिन्दं एतदवोच—'तुम्हे ख्वेत्थ, वेपचित्ति, पुब्बदेवा। भण, वेपचित्ति, गाथं' ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो इमं गाथं [R.223] अभासि—

'भिय्यो बाला पभिज्जेय्युं, नो चस्स पटिसेधको।
तस्मा भुसेन दण्डेन, धीरो बालं निसेधये' ति॥

प्राप्त कर शासन करते हुए क्षान्ति एवं सौजन्य के प्रशंसक हैं। भिक्षुओ! यहाँ इस साधनाक्षेत्र में तुम लोगों को भी यही कर्म शोभा देता है कि तुम इस स्वाख्यात धर्म में प्रव्रजित होकर दूसरों के प्रति क्षमाशील बनो तथा उनके प्रति सुखमयता का व्यवहार करो''॥ ●

५. सुभाषितजयसूत्र : : सुभाषित

१०. यह सूत्र भी **श्रावस्ती** में ही...। ''भिक्षुओ! पूर्वकाल में एक बार देवताओं एवं असुरों में संग्राम हो रहा था। तब असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवेन्द्र शक्र को कहा—'शुभ वचन (सुभाषित) बोलने वाले की ही जय हो।' देवेन्द्र शक्र ने भी स्वीकृति देते हुए कहा—'हाँ, वेपचित्ति! शुभ बोलने वाले की ही जय मान ली जाय।'

''भिक्षुओ! तब उन देवों तथा असुरों ने उनके सुभाषित का निर्णय करने के लिये मध्यस्थ (निर्णायक) का चुनाव किया।

''भिक्षुओ! तब असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवेन्द्र शक्र से कहा—'आप पहले कोई सुभाषित करें'।

''परन्तु देवेन्द्र शक्र इसके उत्तर में बोले—'नहीं हे वेपचित्ति! तुम ही हमसे पूर्व देव हो, अतः आप ही पहले सुभाषित सुनावें।' तब असुरेन्द्र वेपचित्ति यह गाथा बोला—

"भासिताय खो पन, भिक्खवे, वेपचित्तिना असुरिन्देन गाथाय, असुरा अनुमोदिंसु, देवा तुण्ही अहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच—'भण, देवानमिन्द, गाथं' ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो इमं गाथं अभासि—

'एतदेव अहं मञ्ञे, बालस्स पटिसेधनं।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मती' ति॥

"भासिताय खो पन, भिक्खवे, सक्केन देवामिन्देन गाथाय, देवा अनुमोदिंसु, [B.225] असुरा तुण्ही अहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो वेपचित्तिं [N.225] असुरिन्दं एतदवोच—'भण, वेपचित्ति, गाथं' ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो इमं गाथं अभासि—

'एतदेव तितिक्खाय, वज्जं पस्सामि वासव।
यदा नं मञ्ञति बालो, भया म्यायं तितिक्खति।
अज्झारुहति दुम्मेधो, गो व भिय्यो पलायिनं' ति॥

"''मूर्खजन और भी अधिक शिर पर चढ जाते हैं, यदि उनका दमन करने वाला कोई न हो। अतः बुद्धिमान् द्वारा अपराध के अनुसार पूर्णतः दण्डित करना चाहिये, वहीं रोक देना चाहिये।'

"भिक्षुओ! असुरेन्द्र वेपचित्ति द्वारा यह गाथा कही जाने पर असुरों ने उसका अनुमोदन किया, परन्तु देवतागण चुप (मौन) रहे।

"भिक्षुओ! तब असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवेन्द्र शक्र से कहा—'अब आप कुछ सुभाषित सुनाइये।' तब देवेन्द्र ने उस सभा में यह गाथा कही—

'मैं तो उस मूर्ख को पीछे हटाने का एक ही उपाय उचित मानता हूँ कि उसे क्रोध करते देखकर भी बुद्धिमान् पुरुष सावधनीपूर्वक शान्त ही रहे, उसके क्रोध का कोई उत्तर न दे॥'

"भिक्षुओ! देवेन्द्र शक्र द्वारा यह गाथा कही जाने पर देवताओं ने उनका अनुमोदन किया, परन्तु असुरगण शान्त रहा।

"भिक्षुओ! तब देवेन्द्र शक्र ने असुरेन्द्र से कहा—'अब आप अन्य कोई सुभाषित सुनाइये।' तब असुरेन्द्र वेपचित्ति ने यह गाथा सुनायी—

'हे वासव! आपकी इस तितिक्षावाली बात से मैं सहमत नहीं हूँ; क्यों कि वह मूर्ख इस तितिक्षा की बात को विपरीत अर्थ में लेता हुआ उस क्षमाशील को पहले की अपेक्षा

"भासिताय खो पन, भिक्खवे, वेपचित्तिना असुरिन्देन गाथाय असुरा अनुमोदिंसु, देवा तुण्ही अहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच–'भण, देवानमिन्द, गाथं' ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो इमा गाथायो अभासि–

'कामं मञ्ञतु वा मा वा, भया म्यायं तितिक्खति।
सदत्थपरमा अत्था, खन्त्या भिय्यो न विज्जति॥
'यो हवे बलवा सन्तो, दुब्बलस्स तितिक्खति।
तमाहु परमं खन्तिं, निच्चं खमति दुब्बलो॥
'अबलं तं बलं आहु, यस्स बालबलं बलं।
बलस्स धम्मगुत्तस्स, पटिवत्ता न विज्जति॥
'तस्सेव तेन पापियो, यो कुद्धं पटिकुज्झति।
कुद्धं अप्पटिकुज्झन्तो, सङ्गामं जेति दुज्जयं॥
'उभिन्नमत्थं चरति, अत्तनो च परस्स च।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मति॥
'उभिन्नं तिकिच्छन्तानं, अत्तनो च परस्स च। [R.224]
जना मञ्ञन्ति बालो ति, ये धम्मस्स अकोविदा' ति॥

"भासितासु खो पन, भिक्खवे, सक्केन देवानमिन्देन गाथासु, देवा अनुमोदिंसु, असुरा तुण्ही अहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, देवानं च असुरानं च पारिसज्जा एतदवोचुं–'भासिता खो वेपचित्तिना असुरिन्देन गाथायो। ता च खो सदण्डावचरा

अधिक दबाने का प्रयास करेगा, जैसे मरकहा बैल पीछे हटने वाले पुरुष का पहले की अपेक्षा अधिक पीछा करने लगता है'॥

"भिक्षुओ! असुरेन्द्र वेपचित्ति के ऐसा कहने पर...पूर्ववत्...देवेन्द्र शक्र ने यह गाथाएँ कहीं–

'वह मूर्ख भले ही यह समझता रहे कि यह (बलवान्) मेरे भय के कारण ही मेरी उद्दण्डता सहन कर रहे हैं; परन्तु परमार्थ सत्य इसके सर्वथा विपरीत है। वह यह है– क्षमा से बढकर कोई अन्य गुण नहीं है'॥ *(द्र०-अनुपद में पूर्वसूत्र)*

"भिक्षुओ! देवेन्द्र शक्र द्वारा ये गाथाएँ कही जाने पर देवताओं ने इसका अनुमोदन किया, परन्तु असुरगण उस समय शान्त ही रहे।

"तब भिक्षुओ! उस सब में निर्णायकों ने निर्णय दिया–'असुरेन्द्र वेपचित्ति ने

ससत्थावचरा, इति भण्डनं इति विग्गहो इति कलहो। भासिता खो सक्केन [B.226] देवानमिन्देन गाथायो। ता च खो अदण्डावचरा असत्थावचरा, इति अभण्डनं इति अविग्गहो इति अकलहो। सक्कस्स देवानमिन्दस्स सुभासितेन जयो' ति। इति [N.226] खो, भिक्खवे सक्कस्स देवानमिन्दस्स सुभासितेन जयो अहोसी'' ति॥ •

६. कुलावकसुत्तं

११. सावत्थियं। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, देवासुरसङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। तस्मिं खो पन, भिक्खवे, सङ्गामे असुरा जिनिंसु, देवा पराजिनिंसु। पराजिता च खो, भिक्खवे, देवा अपायंस्वेव उत्तरेनमुखा, अभियंस्वेव न असुरा। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो मातलिं सङ्गाहकं गाथाय अज्झभासि—

'कुलावका मातलि सिम्बलिस्मिं, ईसामुखेन परिवज्जयस्सु।
कामं चजाम असुरेसु पाणं, मायिमे दिजा विकुलावका अहेसुं' ति॥

'''एवं भद्दन्तवा' ति खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं पच्चुदावत्तेसि। अथ खो, भिक्खवे, असुरानं एतदहोसि—'पच्चुदावत्तो खो दानि सक्कस्स देवानमिन्दस्स सहस्सयुत्तो आजञ्ञरथो।

यहाँ जो सुभाषित कहे हैं, उनमें हिंसा का समर्थन ज्ञात होता है या कलह बढाने का अनुमोदन प्रकट होता है। तथा इसके विपरीत, देवेन्द्र शक्र ने जो सुभाषित कहे हैं उनसे अहिंसा एवं सौमनस्य का समर्थन एवं अनुमोदन प्रकट होता है। अत: देवेन्द्र शक्र के सुभाषित ही उचित हैं॥ यों, देवेन्द्र उस सुभाषित प्रतियोगिता में विजयी हुए।

''भिक्षुओ! इस तरह उक्त प्रतियोगिता में देवेन्द्र शक्र के सुभाषित ही श्रेष्ठ घोषित हुए''॥ •

६. कुलावकसूत्र　: :　धर्माचरण से शक्र की विजय

११. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! पहले कभी देवताओं एवं असुरों में संग्राम हो रहा था। उस समय, उस संग्राम में असुरों की विजय हो गयी, देवता पराजित हो गये। भिक्षुओ! ये पराजित देवता उत्तर दिशा की ओर भाग चले, असुरों ने उनका पीछा किया। भिक्षुओ! इस तरह भागते हुए देवताओं के मार्ग में सिम्बलिवन (सेमल के वृक्षों का समूह) पड़ गया। तब देवराज शक्र ने अपने मातलि सारथि से कहा—

'हे मातलि! सेमल के वृक्षों में लगे ये पक्षियों के घोंसले रथों के धुरों से टकरा कर नुच (टूट) न जायँ, इस लिये पीछे लौट चलो, भले ही इसके कारण असुरों से हमें अपने प्राण ही क्यों न खोने पड़े।'' 'अच्छा, श्रीमन्!' कह कर, भिक्षुओ! मालति ने हजार घोड़े जुते हुए रथ को पुन: पीछे लौटा दिया। देवराज शक्र के इस तरह पुन: लौटने पर असुरों

दुतियं पि खो देवा असुरेहि सङ्गामेस्सन्ती' ति ते भीता असुरपुरमेव [R.225] पाविसिंसु। इति खो, भिक्खवे, सक्कस्स देवानमिन्दस्स धम्मेन जयो अहोसी'' ति। •

७.नदुब्भियसुत्तं

१२. सावत्थियं। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्कस्स देवानमिन्दस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'यो पि मे अस्स सुपच्चत्थिको तस्स पाहं न दुब्भेय्यं' ति। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कस्स देवानमिन्दस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय येन सक्को देवानमिन्दो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा [B.227] खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो वेपचित्तिं असुरिन्दं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान वेपचित्तिं असुरिन्दं एतदवोच—'तिट्ठ, वेपचित्ति, गहितोसी' ति।

'यदेव ते, मारिस, पुब्बे चित्तं तदेव त्वं मा पजहासी' ति। [N.227]
'सपस्सु च मे, वेपचित्ति, अदुब्भाया' ति।
'यं मुसा भणतो पापं, यं पापं अरियूपवादिनो।
मित्तद्दुनो च यं पापं, यं पापं अकतञ्ञुनो।
तमेव पापं फुसतु, यो ते दुब्भे सुजम्पती' ति॥ •

को विचार हुआ—'अवश्य यह देवराज शक्र कुछ विशेष सहायता प्राप्त कर पुन: हम पर आक्रमण करने आ रहे हैं।' अत: वे भयभीत होकर असुरपुर में जा कर छिप गये। इस तरह, भिक्षुओ! देवराज शक्र की धर्मपूर्वक आचरण से विजय हो गयी॥ •

७. नद्रोहिसूत्र : : मित्रद्रोह पाप है

१२. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। ''पहले कभी, भिक्षुओ! देवराज शक्र को एकान्त में बैठे हुए यह विचार हुआ—'भले ही मेरे साथ कोई मेरा बड़े से बड़ा मित्र कितना ही बड़ा धोखा क्यों न करे, मैं उसके साथ धोखा नहीं करूँगा।' तब भिक्षुओ! असुरेन्द्र वेपचित्ति, देवराज के ये मानसिक विचार अपने मन से जान कर, देवराज के पास पहुँचा। भिक्षुओ! देवेन्द्र शक्र ने असुराज वेपचित्ति को आते हुए दूर से ही देख लिया। तब देवराज ने असुरराज वेपचित्ति से कहा—'ठहरो! वेपचित्ति! तुम निगृहीत (गिरफ्तार) हो गये हो।'

(वेपचित्ति—) 'देवराज! तुम अपने मन में पहले विचारी हुई बात पर दृढ रहो।'

(देवराज—) 'तो, तुम आगे कभी धोखा न करने की शपथ लो।'

(वेपचित्ति—) ''हे सुजापति! देवराज! जो पाप असत्यभाषण में लगता है, जो पाप सज्जनों की निन्दा करने में लगाता है, जो पाप मित्रद्रोह में लगता है वही पाप उसे भी लगे जो तुम्हें धोखा दे।'' •

८. वेरोचनअसुरिन्दसुत्तं

१३. सावत्थियं जेतवने। तेन खो पन समयेन भगवा दिवाविहारगतो होति पटिसल्लीनो। अथ खो सक्को च देवानमिन्दो वेरोचनो च असुरिन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पच्चेकं द्वारबाहं निस्साय अट्ठंसु। अथ खो वेरोचनो असुरिन्दो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"वायमेथेव, पुरिसो, याव अत्थस्स निष्फदा।
निप्फन्नसोभनो अत्थो, वेरोचनवचो इदं" ति॥

[R.226] "वायमेथेव पुरिसो, याव अत्थस्स निप्फदा।
निप्फन्नसोभनो अत्थो, खन्त्या भिय्यो न विज्जती" ति॥

"सब्बे सत्ता अत्थजाता, तत्थ तत्थ यथारहं।
संयोगपरमा त्वेव, सम्भोगा सब्बपाणिनं।
निप्फन्नसोभनो अत्थो, वेरोचनवचो इदं" ति॥

"सब्बे सत्ता अत्थजाता, तत्थ तत्थ यथारहं।
संयोगपरमा त्वेव, सम्भोगा सब्बपाणिनं।
निप्फन्नसोभनो अत्थो, खन्त्या भिय्यो न विज्जती" ति॥ •

---

८. वैरोचन असुरेन्द्र सूत्र : : सफलता की सीमा तक श्रम

यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय भगवान् दिन की साधना में विराजमान थे। उसी समय असुरेन्द्र वैरोचन तथा देवराज शक्र भगवान् के पास आये। आकर द्वार के स्तम्भ के पास खड़े हो गये। और उनमें वैरोचन ने पहले भगवान् से यह गाथा कही—

"मनुष्य को तब तक श्रम करते रहना चाहिये जब तक कि उसका वह प्रयोजन सिद्ध न हो जाय। कोई भी प्रयोजन तभी अच्छा लगता है जब वह सिद्ध हो जाय—यह मुझ विरोचन का मानना है।"

(शक्र—) "पुरुष को तब तक श्रम करते रहना चाहिये जब तक उसका लक्ष्य सिद्ध न हो जाय। सिद्ध लक्ष्य ही मनुष्य को प्रिय लगता है। क्षमा से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है॥"

(वैरोचन—) "सभी प्राणी जहाँ तहाँ अपने अपने लक्ष्य में बँधे हुए हैं। अत्यावश्यक भोग तो सभी प्राणियों को भोगने पड़ते हैं। विशेष लक्ष्य का सिद्ध होना ही मनुष्य का परम प्रयोजन होना चाहिये—मेरा तो यही मत है॥"

(शक्र—) "सभी प्राणी जहाँ तहाँ अपने अपने लक्ष्य से बँधे हुए हैं। अत्यावश्यक

९. अरञ्ञायतनइसिसुत्तं

१४. सावत्थियं। "भूतपुब्बं, भिक्खवे, सम्बहुला इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा अरञ्ञायतने पण्णकुटीसु सम्मन्ति। अथ खो, भिक्खवे, सक्को च [B.228] देवानमिन्दो वेपचित्ति च असुरिन्दो येन ते इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा तेनुपसङ्कमिं। अथ खो, भिक्खवे,वेपचित्ति असुरिन्दो पटलियो उपाहना आरोहित्वा खग्गं ओलग्गेत्वा छत्तेन धारियमानेन अग्गद्वारेन अस्समं पविसित्वा ते इसयो [N.228] सीलवन्ते कल्याणधम्मे अपब्यामतो करित्वा अतिक्कमि। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो पटलियो उपाहना ओरोहित्वा खग्गं अञ्ञेसं दत्वा छत्तं अपनामेत्वा द्वारेनेव अस्समं पविसित्वा ते इसयो सीलवन्ते कल्याणधम्मे अनुवातं पञ्जलिको नमस्समानो अट्ठासि। अथ खो, भिक्खवे, ते इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा सक्कं देवानमिन्दं गाथाय अज्झभासिंसु—

'गन्धो इसीनं चिरदिक्खितानं, काया चुतो गच्छति मालुतेन।
इतो पटिक्कम्म सहस्सनेत्त, गन्धो इसीनं असुचि देवराजा' ति॥

भोग तो सभी प्राणियों को भोगने पड़ते ही हैं। विशेष लक्ष्य की सफलता का विशेष महत्त्व है। क्षान्ति से बढकर दूसरा कोई महान् गुण नहीं है। •

९. आरण्यकऋषिसूत्र : : शीलगन्ध

१४. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! पूर्वकाल में कुछ शीलवान् एवं धर्माचारण सम्पन्न ऋषि अरण्य में पर्णकुटी बनाकर साधना कर रहे थे।

"भिक्षुओ! तब कभी देवराज शक्र एवं असुरेन्द्र वेपचित्ति उन ऋषियों के पास गये। तब असुरेन्द्र वेपचित्ति तो पैरों में लम्बे जूते पहने, पार्श्व में तलवार लटकाये, छत्र के नीचे चलते हुए उस आश्रम के अग्रद्वार में प्रविष्ट होकर उन शीलवान् एवं धार्मिक ऋषियों का अनादर एवं उपेक्षा करता हुआ उनके पास से आगे बढ गया।

"परन्तु, भिक्षुओ! देवेन्द्र शक्र जूते उतार कर अपनी तलवार अपने अनुचर को देकर, अपने ऊपर से छत्र हटवाकर, द्वार से आश्रम में प्रविष्ट होकर उन...ऋषियों को प्रणाम कर उनका सम्मान करते हुए वायु का रुख देख कर उन के सम्मुख बैठ गया। तब उन...ऋषियों ने देवेन्द्र शक्र को ये गाथाएँ कहीं—

"चिर काल से व्रत पालन करने वाले ऋषियों की गन्ध उनके शरीर से निकल कर वायु के साथ बहती है। हे सहस्राक्ष! यहाँ से हट जा, क्यों कि ऋषियों की गन्ध घ्राण को सुखद नहीं होती"॥

'गन्धो इसीनं चिरदिक्खितानं, काया चुतो गच्छतु, मालुतेन।
सुचित्रपुप्फं व सिरस्मि मालं।
[R.227] गन्धं एतं पटिकङ्खाम भन्ते, न हेत्थ देवा पटिकूलसञ्ञिनो' ति॥ •

१०. समुद्दकसुत्तं

१५. सावत्थियं। "भूतपुब्बं, भिक्खवे, सम्बहुला इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा समुद्दतीरे पण्णकुटीसु सम्मन्ति। तेन खो पन समयेन देवासुरसङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। अथ खो, भिक्खवे, तेसं इसीनं सीलवन्तानं कल्याणधम्मानं [B.229] एतदहोसि—'धम्मिका खो देवा, अधम्मिका असुरा। सिया पि नो असुरतो भयं। यन्नून मयं सम्बरं असुरिन्दं उपसङ्कमित्वा अभयदक्खिणं याचेय्यामा' ति। अथ खो, भिक्खवे, ते इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य एवमेव—समुद्दतीरे [N.227] पण्णकुटीसु अन्तरहिता सम्बरस्स असुरिन्दस्स सम्मुखे पातुहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, ते इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा सम्बरं असुरिन्दं गाथाय अज्झभासिंसु—

'इसयो सम्बरं पत्ता, याचन्ति अभयदक्खिणं।
कामङ्करोहि ते दातुं, भयस्स अभयस्स वा' ति॥
'इसीनं अभयं नत्थि, दुट्ठानं सक्कसेविनं।
अभयं याचमानानं, भयमेव ददामि वो' ति॥

(शक्र—) "चिरकाल से व्रती इन ऋषियों की गन्ध इनके शरीर से निकल कर वायु के साथ भले ही जाय, शिर पर धारण की हुई सुगन्धित पुष्पमाला के समान इसकी इच्छा हमको भी होती है। देवता इस गन्ध से कभी उदासीन नहीं होते"॥ •

१०. सामुद्रिक सूत्र : : कर्मानुरूप फल

१५. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। पहले कभी भिक्षुओ! बहुत से शीलवान् एवं धार्मिक ऋषि समुद्रतट पर पर्णकुटी बना कर धर्मसाधना में लगे हुए थे। उसी समय देवताओं एवं असुरों में भी संग्राम आरम्भ हो गया। तब उन ऋषियों को यह विचार हुआ—"ये देवता तो धार्मिक हैं, परन्तु असुर अधार्मिक हैं, तो इन असुरों से हमें भय हो सकता है। क्यों न हम, इसलिये, असुरराज शम्बर के पास जा कर अपने लिये अभय वर माँग लें" तब, भिक्षुओ! वे ऋषिगण बलवान् पुरुष की तरह...शम्बर असुरराज के सम्मुख प्रकट हुए। तथा उसको ये गाथाएँ कहीं—

'हम ऋषिजन अभय दक्षिणा माँगने के लिये शम्बर असुरेन्द्र के पास आये हैं। आप जैसा चाहें, हमें भय या अभयदान दें'॥

'अभयं याचमानानं, भयमेव ददासि नो।
पटिग्गण्हाम ते एतं, अक्खयं होतु तं भयं'॥
'यादिसं वपते बीजं, तादिसं हरते फलं।
कल्याणकारी कल्यागं, पापकारी च पापकं।
पवुत्तं तात ते बीजं, फलं पच्चनुभोस्ससी' ति॥

"अथ खो, भिक्खवे, ते इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा सम्बरं असुरिन्दं अभिसपित्वा—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसरेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य एवमेव—सम्बरस्स असुरिन्दस्स सम्मुखे अन्तरहिता समुद्दतीरे पण्णकुटीसु पातुरहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, सम्बरो असुरिन्दो तेहि इसीहि [R.228] सीलववन्तेहि कल्याणधम्मेहि अभिसपितो रत्तिया सुदं तिक्खत्तुं उब्बिज्जती" ति। •

पठमो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

सुवीरं सुसीमं चेव, धजग्गं वेपचित्तिनो।
सुभासितं जयं चेव, कुलावकं नदुब्भियं।
वेरोचनअसुरिन्दो, इसयो अरञ्ञकं चेव।
इसयो च समुद्दका ति॥

(शम्बर—) 'तुम, शक्र की सहायता करने के कारण, दुष्ट हो, अत: तुम्हें अभयदान नहीं दिया जा सकता। यद्यपि तुम अभय दान माँग रहे हो, परन्तु वह तुम्हें नहीं दिया जा सकता'॥

(ऋषिजन—) 'अभय माँगने आये हम को तूँ भय ही दे रहा है, ठीक हैं तुम्हारा दिया हुआ यह (भय) दान हम ले लेते हैं। तुम्हारे पास तुम्हारा यह भय अक्षय हो'॥

'क्यों कि जो जैसा बीज बोता है, उसको वैसा ही फल मिलता है। शुभ करने वाले को शुभ फल मिलता है तथा अशुभ करने वाले को अशुभ। तात! यह बीज बोया है, अत: इसका फल भी तुम ही चखोगे'॥

तब, भिक्षुओ! वे बलवान् धार्मिक ऋषि असुरेन्द्र शम्बर को यों शाप देकर, एक बलवान् पुरुष की तरह...पुन: समुद्र तट पर अपनी कुटियाओं में जाकर प्रकट हुए। तब से, भिक्षुओ! वह असुरेन्द्र शम्बर उन ऋषियों द्वारा अभिशप्त होने के कारण प्रत्येक रात्रि में तीन बार उद्विग्न (भयभीत) होने लगा"॥ •

प्रथम वर्ग समाप्त॥

इस वर्ग की सूत्रसूची—इस वर्ग में—१. सुवीरसूत्र, २. सुसीमसूत्र, ३. ध्वजाग्रसूत्र, ४. सुभाषित सूत्र, ५. जयसूत्र, ६. कुलावकसूत्र, ७. नद्रोहिसूत्र, ८. वैरोचन असुरेन्द्रसूत्र, ९. आरण्यकऋषिसूत्र एवं १०. सामुद्रिकसूत्र ॥

२. दुतियो वग्गो

११. वतपदसुत्तं

१६. सावत्थियं। "सक्कस्स, भिक्खवे, देवानमिन्दस्स पुब्बे मनुस्सभूतस्स सत्त वतपदानि समत्तानि समादिन्नानि अहेसुं, येसं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा। कतमानि सत्त वतपदानि? यावजीवं मातापेत्तिभरो अस्सं, यावजीवं [N.230, B.230] कुले जेट्ठापचायी अस्सं, यावजीवं सण्हवाचो अस्सं, यावजीवं अपिसुणवाचो अस्सं, यावजीवं विगतमलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसेय्यं मुत्तचागो पयतपाणी वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो, यावजीवं सच्चवाचो अस्सं, यावजीवं अक्कोधनो अस्सं—सचे पि कोधो उप्पज्जेय्य खिप्पमेव नं पटिविनेय्यं ति। सक्कस्स, भिक्खवे, देवानमिन्दस्स पुब्बे मनुस्सभूतस्स इमानि सत्त वतपदानि समत्तानि समादिन्नानि अहेसुं, येसं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा ति।

द्वितीय वर्ग

११. व्रतपदसूत्र : : शक्र के सात सद् व्रत

१६. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! देवराज शक्र जब पहले कभी मनुष्ययोनि में थे तब उन्होंने सात व्रत पूर्णत: पालन किये थे, जिन के कारण उन्हें शक्रत्व प्राप्त हुआ। कौन से सात?

१. जीवनपर्यन्त माता पिता का पालन पोषण तथा उनकी सेवा करूँगा।

२. जीवनपर्यन्त परिवार में बड़े बूढों का सम्मान व पूजा करूँगा।

३. जीवनपर्यन्त दूसरों से बातचीत में मृदुवाणी का व्यवहार करूँगा।

४. जीवनपर्यन्त ऐसी वाणी नहीं बोलूँगा जिससे दूसरों में कलह हो जाय।

५. जीवनपर्यन्त निर्विकार चित्त से गृहस्थ का पालन करूँगा, न कंजूसी करूँगा, न दान करने से हिचकूँगा, दूसरों को कुछ भी माँगने पर वह उन्हें दे दूँगा, परिवार में प्रत्येक वस्तु का विभाजन करके ही उपभोग करूँगा, अकेले नहीं।

६. जीवनपर्यन्त सत्य भाषण ही करूँगा।

७. जीवनपर्यन्त क्रोधरहित व्यवहार करूँगा, यदि कभी क्रोध करूँगा तो उसे तत्काल शान्त करने का प्रयास करूँगा।

"भिक्षुओ! देवराज शक्र ने पहले अपने मनुष्य जन्म में इन सात व्रतों का दृढतापूर्वक पालन किया था, जिनके पुण्य प्रभाव से शक्र त्रायस्त्रिंश (स्वर्ग) में जाकर देवराजपद प्राप्त कर सका।

"मातापेत्तिभरं जन्तुं, कुले जेट्ठापचायिनं।
सण्हं सखिलसम्भासं, पेसुणेय्यप्पहायिनं॥
"मच्छेरविनये युत्तं, सच्चं कोधाभिभुं नरं।
तं वे देवा तावतिंसा, आहु सप्पुरिसो इती" ति॥ •

१२. सक्कनामसुत्तं

[R.229] १७. सावत्थियं जेतवने। तत्र खो भगवा भिक्खू एतदवोच—

"सक्को, भिक्खवे, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो मघो नाम माणवो अहोसि, तस्मा मघवा ति वुच्चति।

"सक्को, भिक्खवे, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो पुरे दानं अदासि, तस्मा पुरिन्ददो ति वुच्चति।

"सक्को, भिक्खवे, देवानमिन्दो पुब्ब मनुस्सभूतो समानो आवसथं अदासि, [B.231] तस्मा वासवो ति वुच्चति।

"सक्को, भिक्खवे, देवानमिन्दो सहस्सं पि अत्थानं मुहुत्तेन चिन्तेति, तस्मा [N.231] सहस्सक्खो ति वुच्चति।

"जो माता पिता का पालन पोषण करता है, परिवार में बड़े बूढों का सम्मान करता है, जो मृदुवाणी एवं सार्थक वाणी ही बोलता है, जो व्यवहार में पिशुनता (दूसरों की निन्दा या चुगली) नहीं करता॥

"जो दान आदि में कंजूसी नहीं करता, सत्यभाषण ही करता है, किसी से क्रोध नहीं करता, त्रायस्त्रिंश लोकवासी देवता ऐसे पुरुष को 'सत्पुरुष' कहते हैं॥ •

१२. शक्रनामसूत्र : : इन्द्र के सात नाम एवं व्रत

१७. **श्रावस्ती के** जेतवन में यह सूत्र...। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को यह बताया—

१. भिक्षुओ! देवराज शक्र पहले मनुष्य जन्म में मघ नामक माणवक था, अत: वह **मधवान्** कहलाया।

२. भिक्षुओ! देवराज शक्र पहले मनुष्ययोनि में उत्पन्न होकर आगे बढ़ कर दान देता था, अत: उसका नाम **पुरन्दद** हुआ।

३. ...सत्कारपूर्वक दान करता था अत: वह **शक्र** नाम से प्रख्यात हुआ।

४. ...आवश्यकता वाले पुरुषों को रहने के लिये घर देता था, अत: उसका नाम **वासव** हुआ।

५. ...सहस्र बातों को भी एक साथ ही सोच विचार लेता था, अत: वह **सहस्राक्ष** कहलाया।

"सक्कस्स, भिक्खवे, देवानमिन्दस्स सुजा नाम असुरकञ्ञा पजापति, तस्मा सुजम्पती ति वूच्चति।

"सक्को, भिक्खवे, देवानमिन्दो देवानं तावतिंसानं इस्सरियाधि पच्चं रज्जं कारेति, तस्मा देवानमिन्दो ति वुच्चति।

१८. "सक्कस्स, भिक्खवे देवानमिन्दस्स पुब्बे मनुस्सभूतस्स सत्त वतपदानि समत्तानि समादिन्नानि अहेसुं, येसं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा। कतमानि सत्त वतपदानि? यावजीवं मातापेत्तिभरो अस्सं, यावजीवं कुले जेट्ठापचायी अस्सं, यावजीवं सण्हवाचो अस्सं, यावजीवं अपिसुणवाचो अस्सं, यावजीवं विगतमल-मच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झापसेय्यं मुत्तचागो पयतपाणी वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो, यावजीवं सच्चवाचो अस्सं, यावजीवं अक्कोधनो अस्सं—सचे पि मे कोधो उप्पज्जेय्य खिप्पमेव नं पटिविनेय्यं ति—सक्कस्स, भिक्खवे, देवानमिन्दस्स पुब्बे मनुस्सभूतस्स इमानि सत्त वतपदानि समत्तानि समादिन्नानि अहेसुं येसं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा ति।

"मातापेत्तिभरं जन्तुं, कुले जेट्ठापचायिनं। [R.230]
सण्हं सखिलसम्भासं, पेसुणेय्यप्पहायिनं॥
"मच्छेरविनये युत्तं, सच्चं कोधाभिभुं नरं।
तं वे देवा तावतिंसा, आहु सप्पुरिसो इती" ति॥ •

१३. महालिसुत्तं

१९. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागार-सालायं। अथ खो महालि लिच्छवी येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं

---

६. ...इस देवराज इन्द्र की असुरकथा सुजा नाम की पात्री थी, अत: यह 'सुजापति' कहलाता था।

७. वह शक्र त्रायस्त्रिंश देवों पर ऐश्वर्याधिपत्य पूर्वक राज्य करता था अत: वह देवेन्द्र कहलाया।

१८. भिक्षुओ! देवराज शक्र पहले जब कभी मनुष्ययोनि में उत्पन्न हुए थे तब उन्होंने सात व्रत...पूर्ववत्...सत्पुरुष कहते हैं॥" *(द्र० अनुपद में पूर्वसूत्र)* •

१३. महालिसूत्र : : इन्द्र के नाम एवं व्रत

१९. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। तब महालि नामक लिच्छवि भगवान् के

[B.232] अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो महालि लिच्छवी भगवन्तं एतदवोच—"दिट्ठो खो, भन्ते, भगवता सक्को देवानमिन्दो" ति?

"दिट्ठो खो मे, महालि, सक्को देवानमिन्दो" ति।

"सो हि नून, भन्ते, सक्कपतिरूपको भविस्सति। दुद्दसो हि, भन्ते, सक्को [N.232] देवानमिन्दो" ति।

"सक्कं च ख्वाहं, महालि, पजानामि सक्ककरणे च धम्मे, येसं धम्मानं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा, तं च पजानामि।

"सक्को, महालि, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो मघो नाम माणवो अहोसि, तस्मा मघवा ति वुच्चति।

"सक्को, महालि, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो सक्कच्चं दानं अदासि, तस्मा सक्को ति वुच्चति।

"सक्को, महालि, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो सक्कच्चं दानं अदासि, तस्मा पुरिन्ददो ति वुच्चति।

"सक्को, महालि, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो आवसथं अदासि, तस्मा वासवो ति वुच्चति।

"सक्को, महालि, देवानमिन्दो सहस्सं पि अत्थानं मुहुत्तेन चिन्तेति, तस्मा सहस्सक्खो ति वुच्चति।

"सक्कस्स, महालि, देवानमिन्दस्स सुजा नाम असुरकञ्ञा पजापति, तस्मा सुजम्पती ति वुच्चति।

"सक्को, महालि, देवानमिन्दो देवानं तावतिंसानं इस्सरियाधिपच्चं रज्जं [R.231] कारेति, तस्मा देवानमिन्दो ति वुच्चति।

सम्मुख पहुँचा। तथा उनका अभिवादन कर एक ओर बैठे उस महालि लिच्छवि ने भगवान् से यों पूछा—"भन्ते! क्या आप भगवान् ने देवेन्द्र शक्र को देखा है?"

"हाँ, महालि मैंने देवेन्द्र शुक्र को देखा है।"

(महालि—)"भन्ते! वह कोई शक्रवेशधारी अन्य होगा। वास्तविक शक्र का दर्शन तो बहुत दुर्लभ है।"

(भगवान्—)"महालि! मैं शक्र को जानता हूँ, तथा उसके पालन किये हुए सात धर्मों को भी जानता हूँ जिन के पालन करने से वह इस ऐन्द्र पद तक पहुँचा है...पूर्ववत्...देवेन्द्र कहलाता है।

२०. "सक्कस्स, महालि, देवानमिन्दस्स पुब्बे मनुस्सभूतस्स सत्त वतपदानि समत्तानि समादिन्नानि अहेसुं, येसं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा। कतमानि सत्तवतपदानि? यावजीवं मातापेत्तिभरो अस्सं, यावजीवं कुले जेट्ठापचायी अस्सं, यावजीवं सण्हवाचो अस्सं, यावजीवं अपिसुणवाचो अस्सं, यावजीवं विगतमलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसेसय्यं मुत्तचागो पयतपाणी वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो, यावजीवं सच्चवाचो अस्सं यावजीवं अक्कोधनो अस्सं...[B.233] सक्कस्स, महालि, देवानमिन्दस्स पुब्बे मनस्सभूतस्स इमानि सत्त वतपदानि समत्तानि समादिन्नानि अहेसुं, येसं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा ति।

"मातापेत्तिभरं जन्तुं, कुले जेट्ठापचायिनं। [N.233]
सण्हं सखिलसम्भासं, पेसुणेय्यप्पहायिनं॥
"मच्छेरविनये युत्तं, सच्चं कोधाभिभूं नरं।
तं वे देवा तावतिंसा, आहु सप्पुरिसो इती" ति॥

१४. दलिद्दसुत्तं

२१. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"भूतपुब्बं, भिक्खवे, अञ्ञतरो पुरिसो इमस्मिं एव राजगहे मनुस्सदलिद्दो अहोसि मनुस्सकपणो मनस्सवराको। सो तथागतप्पवेदिते धम्मविनये सद्धं समादियि, सीलं समादियि, सुतं समादियि, चागं समादियि, पञ्ञं समादियि। सो तथागतप्पवेदिते धम्मविनये सद्धं समादियित्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं

---

२०. "महालि! देवेन्द्र पहले कभी मनुष्ययोनि में उत्पन्न होकर ये सात व्रत कठोरता से पालन किये थे...पूर्ववत्...'सत्पुरुष' कहते हैं"॥ (द्र० अनुपद में वर्णित दोनों सूत्र)

१४. दरिद्रसूत्र : : बुद्धभक्त दरिद्र नहीं होता

२१. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह में वेणुवन के कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को यों सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ! पहले कभी पुरुष इसी राजगृह में हीन से हीनतम दुःखी एवं दरिद्र रूप में रहता था। उसे तथागतोपदिष्ट धर्म में श्रद्धा हो गयी, उसने तदनुसार शील का आचरण किया, धर्म श्रवण किया, त्याग किया, प्रज्ञा का अभ्यास किया। यह सब कर वह इस

लोकं उप्पज्जि देवानं तावतिंसानं सहब्यतं। सो अञ्ञे देवे अतिरोचति वण्णेन चेव यससा च। तत्र सुदं, भिक्खवे, देवा तावतिंसा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति— [R.232] 'अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो! अयं हि देवपुत्तो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो मनुस्सदलिद्दो अहोसि मनुस्सकपणो मनुस्सवराको; सो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उप्पन्नो देवानं तावतिंसानं सहब्यतं। सो अञ्ञे देवे अतिरोचति वण्णेन चेव यससा चा' ति।

"अथ खो भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो देवे तावतिंसे आमन्तेसि—'मा खो तुम्हे, मारिसा, एतस्स देवपुत्तस्स उज्झायित्थ। एसो खो, मारिसा, देवपुत्तो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो तथागतप्पवेदिते धम्मविनये सद्धं समादियि, सीलं समादियि, सुतं समादियि, चागं समादियि, पञ्ञं समादियि। सो तथागतप्पवेदिते धम्मविनये सद्धं समादियित्वा सीलं समादियित्वा सुतं समादियित्वा चागं समादियित्वा पञ्ञं समादियित्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्नो देवानं तावतिंसानं सहब्यतं। सो अञ्ञे देवे अतिरोचति वण्णेन चेव यससा चा' ति। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो देवे तावतिंसे अनुनयमानो तायं वेलायं इमा [N.234] गाथायो अभासि—

'यस्स सद्धा तथागते, अचला सुप्पतिट्ठिता।
सीलं च यस्स कल्याणं, अरियकन्तं पसंसितं॥

देहपात के बाद त्रायस्त्रिंश देवलोक में उत्पन्न होकर सुगति को प्राप्त हुआ। यों वह देवताओं की सङ्गति को प्राप्तहुआ। वहाँ वह अन्य देवताओं का अपेक्ष वर्ण(रूप) एवं यश में विशेष लगता था। इसको देखकर वहाँ के निवासी इससे खिन्न रहते थे, ईर्ष्या करते थे—"अरे! यह कितना आश्चर्य ही है कि मनुष्य लोक में सबसे हीन व दरिद्र के रूप में रहने वाला आज इस लोक में वर्ण एवं यश की दृष्टि से सर्वतोऽधिक शोभायमान हो रहा है।

तब भिक्षुओ! देवराज शक्र ने उन सभी देवताओं को एकत्र कर कहा—"मार्ष! यह देवता जब पहले मनुष्ययोनि में था तब इसने तथागत के धर्म में श्रद्धा उत्पन्न कर तदनुसार शील का आचरण किया, अधिक सेंक अधिक धर्मश्रवण किया तथा प्रज्ञा का अभ्यास किया। यह सब शुभ कर्म कर वहाँ से देहपात कर उसी पुण्य के प्रभाव से यहाँ उत्पन्न होकर आप लोगों से अधिक वर्ण एवं यश को प्राप्त हुआ है। अतः इसके प्रति तुम्हें ईर्ष्या या द्वेष नहीं करना चाहिये।" उस देवराज ने उनको यही बात गाथाओं के माध्यम से भी इसी तरह समझायी—

'सङ्घे पसादो यस्सत्थि, उजुभूतं च दस्सनं।
तस्मा सद्धं च सीलं च, पसादं धम्मदस्सनं।
अनुयुञ्जेथ मेधावी, सरं बुद्धान सासनं' ति॥

१५. रामणेय्यकसुत्तं

२२. सावत्थियं जेतवने। अथ खो सक्को देवानमिन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सक्को देवानमिन्दो भगवन्तं एतदवोच—''किं नु खो, भन्ते, भूमिरामणेय्यकं'' ति?

''आरामचेत्या वनचेत्या, पोक्खरञ्ञो सुनिम्मिता। [R.233]
मनुस्सरामणेय्यस्स, कलं नाग्घन्ति सोळसिं॥
''गामे वा यदि वारञ्ञे, निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थ अरहन्तो विहरन्ति, तं भूमिरामणेय्यकं'' ति॥

१६. यजमानसुत्तं

२३. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। अथ खो [B.235] सक्को देवानमिन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सक्को देवानमिन्दो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

''जिसकी तथागत में अचल श्रद्धा हो गयी है जिसका शील आर्यजनों को प्रिय है, उनके द्वारा प्रशस्त है॥

''जिसकी सङ्घ में अचल श्रद्धा प्रतिष्ठित है, धर्मदर्शन में जो अत्यधिक प्रगति कर चुका है, वह दरिद्र नहीं है, उसका जीवन व्यर्थ नहीं है॥

''अत: धर्म दर्शन के प्रति श्रद्धा एवं शील प्रदर्शित करते हुए बुद्धिमान् पुरुष को बुद्धानुशासन का स्मरण करते हुए आचरण करना चाहिये॥''

१५. रमणीयकसूत्र : : भूमिसौन्दर्य

२२. श्रावस्ती के जेतवन में ही...। उस समय देवराज शक्र ने भगवान् के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर एक तरफ खड़े होकर यह निवेदन किया—''भन्ते! भूमि का सौन्दर्य क्या है?''

''आरामों के पूजास्थल, वनों के पूजा स्थल, अच्छी भली पुष्करणियाँ भी मनुष्य की रमणीयता से सोलहवें भाग का भी समानता नहीं कर सकतीं॥

''ग्राम में या वन में, किसी नीची या समतल भूमि पर जहाँ बैठकर ज्ञानीजन साधना करते हैं वही भूमि रमणीय (सुन्दर) हैं''॥

"यजमानं मनुस्सानं, पुञ्ञपेक्खान पाणिनं।
करोतं ओपधिकंपुञ्ञं, कत्थ दिन्नं महप्फलं?" ति॥
"चत्तारो च पटिपन्ना, चत्तारो च फले ठिता।
एस सङ्घो उजुभूतो, पञ्ञासीलसमाहितो॥
[N.235] "यजमानानं मनुस्सानं, पुञ्ञपेक्खान पाणिनं।
करोतं ओपधिकं पुञ्ञं, सङ्घे दिन्नं महप्फलं" ति॥

१७. बुद्धवन्दनासुत्तं

२४. सावत्थियं जेतवने। तेन खो पन समयेन भगवा दिवाविहारगतो होति पटिसल्लीनो। अथ खो सक्को च देवानमिन्दो ब्रह्मा च सहम्पति येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पच्चेकं द्वारबाहं निस्साय अट्ठंसु। अथ खो सक्को देवानमिन्दो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"उट्ठेहि वीर विजितसङ्गाम, पन्नभार अनण विचर लोके।
चित्तं च ते सुविमुत्तं, चन्दो यथा पन्नरसाय रत्तिं" ति॥

---

१६. यजमानसूत्र : : सात्त्विक दान का माहात्म्य

२३. एक समय भगवान् राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर...। तब देवराज शक्र ने... गाथा के माध्यम से यह निवेदन किया—

"जो मनुष्य यज्ञ करते हैं, पुण्य के आकांक्षी है, मानसिक चित्त विकारों से रहित होकर पुण्य करते हैं उनकी किया हुआ दान कितना पुण्य फल देता है?"

(भगवान्—) "स्रोतआपन्न, सकृदागामि, अनागामि एवं अर्हत्— ये चार मार्गों में सफलता प्राप्त एवं इसी तरह इनके मार्गों के फलों तक पहुँचे हुए प्रज्ञा, शील एवं समाधियुक्त अर्हत् ही 'सङ्घ' कहलाते हैं।

"पुण्यकांक्षी यजमानों को, शुद्ध मन से, ऐसे सङ्घ के प्रति ही दान करना चाहिए। यह दान ही अतिमहत्वशाली होता है"॥

१७. बुद्धवन्दनासूत्र : : बुद्धवन्दनापद्धति

२४. यह सूत्र भी श्रावस्ती के जेतवन में ही...। उस समय भगवान् दिन की साधनाहेतु विराजमान थे। तब देवेन्द्र शक्र तथा सहम्पति ब्रह्मा...खड़े हो गये। देवराज शक्र ने उस समय यह गाथा कही—

"हे वीर, हे संग्रामविजयिन्! आप उठें, आप का (सांसारिक) भार उतर चुका है। आप पर किसी प्रकार का कोई भी ऋण नहीं रह गया है। आप का चित्त विकारों से उसी तरह मुक्त हो चुका है जैसे पूर्णिमा का निर्मल चन्द्रमा हो"॥

"न खो, देवानमिन्द, तथागता एवं वन्दितब्बा। एवं च खो, देवानमिन्द, तथागता वन्दितब्बा— [R.234]

'उट्ठेहि वीर विजितसङ्गाम, सत्थवाह अनण विचर लोके।
देसस्सु भगवा धम्मं, अञ्ञातारो भविस्सन्ती'" ति॥

१८. गहट्ठवन्दनासुत्तं

२५. सावत्थियं। तत्र...पे०...एतदवोच—"भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो मातलिं सङ्गाहकं आमन्तेसि—'योजेहि, सम्म मातलि, सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं। उय्यानभूमिं गच्छाम सुभूमिं दस्सनाया' ति। 'एवं भद्दन्तवा' ति [B.236] खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं योजेत्वा सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिवेदेसि—'युत्तो खो ते, मारिस, सहस्सयुत्तो आजञ्ञरथो। यस्स दानि कालं मञ्ञसी' ति। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो वेजयन्तपासादा ओरोहन्तो अञ्जलिं कत्वा सुदं पुथुद्दिसा [N.236] नमस्सति। अथ खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कं देवानमिन्दं गाथाय अज्झभासि—

'तं नमस्सन्ति तेविज्जा, सब्बे भुम्मा च खत्तिया।
चत्तारो च महाराजा, तिदसा च यसस्सिनो।
अथ को नाम सो यक्खो, यं त्वं सक्क नमस्सती'? ति॥

(यह सुनकर ब्रह्मा ने या भगवान् बुद्ध ने कहा—) देवेन्द्र! तथागत की वन्दना इस प्रकार नहीं की जाती। यह तो श्रद्धालु द्वारा ऐसे की जानी चाहिये—

"हे वीर!...लोक में कोई भी ऋण नहीं रह गया है। आप भगवान् धर्म का उपदेश करें। उस उपदेश के सुनने समझने वाले अधिकारी पुरुष मिलेंगे"॥

१८. गृहस्थ वन्दनासूत्र : : शीलवान् भिक्षु एवं गृहस्थ की वन्दना

२५. यह सूत्र भी श्रावस्ती में ही...। वहाँ...पूर्ववत्...। "पहले कभी भिक्षुओ! देवराज शक्र ने मातलि सारथि से कहा— 'सारथि! हजार घोड़ों का रथ सन्नद्ध करो। उद्यानभूमि का सौन्दर्य देखने चलेंगे।' कुछ समय बाद मातलि ने रथ सन्नद्ध होने की सूचना दी। तब, भिक्षुओ! देवराज शक्र ने, प्रासाद से उतरते हुए, सभी दिशाओं को प्रणाम किया। यह देखकर मातलि ने देवराज से पूछा—

'हे शक्र! संसार के सभी ज्ञानी त्रैविद्य, सभी राजा महाराजा, चारों दिक्पाल तथा बड़े बड़े यशस्वी देवता—सभी आपको ही प्रणाम करते हैं, अब, हे शक्र! आप यह किस को प्रणाम कर रहे हैं?"

'मं नमस्सन्ति तेविज्जा, सब्बे भुम्मा च खत्तिया।
चत्तारो च महाराजा, तिदसा च यसस्सिनो॥
'अहं च सीलसम्पन्ने, चिररत्तसमाहिते।
सम्मापब्बजिते वन्दे, ब्रह्मचरियपरायने॥
'ये गहट्ठा पुञ्ञकरा, सीलवन्तो उपासका।
धम्मेन दारं पोसेन्ति, ते नमस्सामि मातली' ति॥
'सेट्ठा हि किर लोकस्मिं, ये त्वं सक्क नमस्ससि।
अहं पि ते नमस्सामि, ये नमस्ससि वासवा' ति॥
'इदं वत्वान मघवा, देवराजा सुजम्पति।
पुथुद्दिसा नमस्सित्वा, पमुखो रथमारुही'' ति॥

१९. सत्थारवन्दनासुत्तं

[R.235] २६. सावत्थियं जेतवने। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो मातलिं सङ्गाहकं आमन्तेसि–'योजेहि, सम्म मातलि, सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं, उय्यानभूमिं [B.237] गच्छाम सुभूमिं दस्सनाया' ति। 'एवं भद्दन्तवा' ति खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुतवा सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं योजेत्वा सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिवेदेसि–'युत्तो खो ते, मारिस, सहस्सयुत्तो आजञ्ञरथो। यस्स दानि कालं मञ्ञसी' ति। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो

(शक्र–) 'मातलि! संसार के सभी ज्ञानी...पूर्ववत्...ये सभी मुझको प्रणाम करते हैं; परन्तु मैं संसार में उन शीलसम्पन्नों को, जो सदैव समाहितचित्त रहते हैं, जो सम्यक् रूप से प्रव्रजित हो चुके हैं, मैं उन्हे प्रणाम करता हूँ, जो धर्मसाधना की पराकाष्ठा तक पहुँच चुके हैं॥

'जो पुण्यमय कर्मकारी गृहस्थ हैं, शीलवान् उपासक हैं, धर्मपूर्वक अपने बालबच्चों का पोषण करते हैं, हे मातलि! मैं उनको प्रणाम करता हूँ' ॥

(मातलि–) 'लोक में उन्हें महान् ही समझा जाना चाहिये, जिन्हें आप भी नमस्कार करते हैं। तो मैं भी उन्हें नमस्कार करूँगा' ॥

''मातलि से यह संवाद होने के बाद सुजापति देवराज शक्र सभी दिशाओं को नमस्कार करता हुआ आगे बढकर रथ पर आरूढ़ हो गया''॥

१९. शास्तृवन्दनासूत्र : : लोकश्रेष्ठ बुद्ध नमस्कार

२६. यह सूत्र भी **श्रावस्ती के** जेतवन में ही... ।...पूर्ववत्...तब शक्र वैजयन्त

वेजयन्तपासादा ओराहन्तो अञ्जलिं कत्वा सुदं भगवन्तं नमस्सति। अथ खो, भिक्खवे,मातलि सङ्गाहको सक्कं देवानमिन्दं गाथाय अज्झभासि—

'यं हि देवा मनुस्सा च, तं नमस्सन्ति वासव!
अथ को नाम सो यक्खो, यं त्वं सक्क नमस्ससी'? ति॥
'यो इध सम्मासम्बुद्धो, अस्मिं लोके सदेवके। [N.237]
अनोमनामं सत्थारं, तं नमस्सामि मातलि॥
'येसं रागो च दोसो च, अविज्जा च विराजिता।
खीणासवा अरहन्तो, ते नमस्सामि मातलि॥
'ये रागदोसविनया, अविज्जा समतिक्कमा।
सेक्खा अपचयारामा, अप्पमत्तानुसिक्खरे।
ते नमस्सामि मातली' ति॥
'सेट्ठा हि किर लोकस्मिं, ये त्वं सक्क नमस्ससि।
अहं पि ते नमस्सामि, ये नमस्ससि वासवा' ति॥
'इदं वत्वान मघवा, देवराजा सुजम्पति।
भगवन्तं नमस्सित्वा, पमुखो रथमारुही'' ति॥ •

२०. सङ्घवन्दनासुत्तं

२७. सावत्थियं जेतवने। तत्र खो...पे०...एतदवोच—''भूतपुब्बं, भिक्खवे,

---

प्रासाद से उतरता हुआ प्रणामपूर्वक भगवान् बुद्ध का अभिवादन करने लगा। तब मातलि ने...शक्र आप किसको प्रणाम कर रहे हैं?''

(शक्र—)''जो देवताओं सहित इस लोक में सम्यकसम्बुद्ध बने हैं उन अनोम नामक शास्ता को मैं प्रणाम करता हूँ॥

''जिनका राग द्वेष एवं अविद्या आदि दोष विनष्ट हो चुके हैं,जो क्षीणाश्रव एवं अर्हत् हो चुके हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ॥

''जिन्होंने अपने राग द्वेष को दबा दिया है, अविद्या को विनष्ट कर दिया है, जो सावधान शैक्ष्य हैं, सावधानी से धर्मसाधना में रत हैं, मातलि! मैं उन्हीं को प्रणाम कर रहा हूँ''॥,

(मातलि—)''जब आप जैसा श्रेष्ठ जिस को प्रणाम कर रहा है तो हे वासव! मैं भी उन्हें प्रणाम करूँगा''॥

मातलि से यह संवाद होने के बाद ...पूर्ववत्...आरूढ़ हो गया॥ •

सक्को देवानमिन्दो मातलिं सङ्गाहकं आमन्तेसि—'योजेहि, सम्म मातलि, सहस्सयुत्तं [R.236] आजञ्ञरथं, उय्यानभूमिं गच्छाम सुभूमिं दस्सनाया' ति। 'एवं भद्दन्तवा' ति खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा, सहस्सयुत्तं [B.238] आजञ्ञरथं योजेत्वा सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिवेदेसि—'युत्तो खो ते, मारिस, सहस्सयुत्तो आजञ्ञरथो, यस्स दानि कालं मञ्ञसी' ति। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो वेजयन्तपासादा ओरोहन्तो अञ्जलिं कत्वा सुदं भिक्खुसङ्घं नमस्सति। अथ खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कं देवानमिन्दं गाथाय अज्झभासि—

'तं हि एते नमस्सेय्युं, पूतिदेहसया नरा।
निमुग्गा कुणपम्हेते, खुप्पिपाससमप्पिता॥
'किं नु तेसं पिहयसि, अनागारान वासव।
आचारं इसिनं ब्रूहि, तं सुणेम वचो तवा' ति॥
[N.238] 'एतं तेसं पिहयामि, अनागारान मातलि।
यम्हा गामा पक्कमन्ति, अनपेक्खा वजन्ति ते॥
'न तेसं कोट्ठे ओपेन्ति, न कुम्भि न कळोपियं।
परनिट्ठितमेसाना, तेन यापेन्ति सुब्बता॥

---

२०. सङ्घवन्दनासूत्र : : भिक्षु सङ्घ को नमस्कार

२७. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही... ।...पूर्ववत्...मातलि देवराज शक्र से पूछा—

''अच्छा तो यह होता कि ये मलिन शरीर धारण करने वाले आपको प्रणाम करते! ये पुरुष दश मास तक मलिन गर्भाशय में पड़े रहते हैं, भूख और जीवनपर्यन्त खिन्न रहते हैं॥

''हे वासव! उन आवासरहित लोगों में आप ऐसा क्या गुण देख रहे हैं कि उनको आप प्रणाम करते हैं? उन ऋषियों के आचार का कुछ वर्णन करें, मैं आप से उसको सुनना चाहूँगा''॥

(शक्र—) ''हे मातलि! मैं इन आवासरहित अकिञ्चनों से इनकी त्यागभावना पर मैं ईर्ष्या करता हूँ। जिस ग्राम से ये चारिका कर देते हैं तो वे उसको निरपेक्ष भाव से सदा के लिये छोड़ देते हैं॥

''न वे अपने लिये कोई अन्न किसी कोठी में कुछ संग्रह करते हैं, न किसी घड़े में या न किसी छोटे मोटे पात्र में। वे तो जीवनपर्यन्त दूसरों से जो कुछ रूखा सूखा पा जाते हैं उसी से वे कठोर व्रतधारी अपना जीवननिर्वाह करते हैं॥

'सुमन्तमन्तिनो धीरा, तुण्हीभूता समं चरा।
देवा विरुद्धा असुरेहि, पुथुमच्चा च मातलि॥
'अविरुद्धा विरुद्धेसु, अत्तदण्डेसु निब्बुता।
सादानेसु अनादाना, ते नमस्सामि मातली' ति॥
'सेट्ठा हि किर लोकस्मिं, ये त्वं सक्क नमस्ससि।
अहं पि ते मनस्सामि, ये नमस्ससि वासवा' ति॥
'इदं वत्वान मघवा, देवराजा सुजम्पति।
भिक्खुसङ्घं नमस्सित्वा, पमुखो रथमारुही'' ति॥

दुतियो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

देवा पन तयो वुत्ता दलिद्दं च रामणेय्यकं।
यजमानं च वन्दना, तयो सक्कनमस्सना ति॥

''ये सभी को सद्विचारों की मन्त्रणा देने वाले, चुप चाप शान्त रहकर साधना में रत रहने वाले, लोक से सम व्यवहार करने वाले हैं; जबकि देवताओं तथा असुरों में विरोध चलता है तथा मनुष्य से मनुष्य वैर रखते हैं॥

परन्तु ये विरोधियों के साथ निर्वैर व्यवहार करते हैं, शस्त्र उठाये हुओं पर भी हिंसा की कोई चेष्टा नहीं करते। इसे लेने की इच्छा रखने वाले संसार में भी स्वयं किसी से कुछ लेने की इच्छा नहीं रखते''॥

(मातलि—) ''जब आप ऐसे पूजनीयों को श्रेष्ठ मान कर प्रणाम करते हैं तो मैं भी इन्हें प्रणाम करूँगा''॥ ...पूर्ववत्...॥

द्वितीय वर्ग समाप्त॥

इस वर्ग की सूत्रसूची—इस वर्ग में—११.१२.१३ में तीन देवसूत्र, १४. दरिद्रसूत्र, १५. रमणीयकसूत्र, १६. यजमानसूत्र, १७. बुद्धवन्दनासूत्र, १८. गहस्थवन्दनासूत्र, १९. शास्तृवन्दनासूत्र एवं २०. सङ्घवन्दनासूत्र—ये दश सूत्र व्याख्यात हैं॥

३. ततियो वग्गो

२१. छेत्वासुत्तं

[B.239, R.237] २८. सावत्थियं जेतवने। अथ खो सक्को देवानमिन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सक्को देवानमिन्दो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"किंसु छेत्वा सुखं सेति, किंसु छेत्वा न सोचति।
किस्सस्सु एकधम्मस्स, वधं रोचेसि गोतमा"? ति॥
"कोधं छेत्वा सुखं सेति, कोधं छेत्वा न सोचति।
कोधस्स विसमूलस्स, मधुरग्गस्स वासव।
वधं अरिया पसंसन्ति, तं हि छेत्वा न सोचती" ति॥ •

२२. दुब्बण्णियसुत्तं

२९. सावत्थियं जेतवने। तत्र खो...पे०...एतदवोच —"भूतपुब्बं, भिक्खवे, [N.239] अञ्ञतरो यक्खो दुब्बण्णो ओकोटिमको सक्कस्स देवानमिन्दस्स आसने निसिन्नो अहोसि। तत्र सुदं, भिक्खवे, देवा तावतिंसा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति —'अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत, भो! अयं यक्खो दुब्बण्णो ओकोटिमको सक्कस्स

---

३. तृतीय वर्ग

२१. छित्वासूत्र : : क्रोधनाश से सुख

२८. यह सूत्र भी श्रावस्ती के जेतवन में ही...। तब देवेन्द्र शक्र...एक ओर खड़े होकर गाथा के माध्यम से भगवान् से यों से पूछा—

"साधक क्या नष्ट कर सुख से सोता है? क्या नष्ट कर वह वीतशोक हो जाता है?
हे गौतम! आपको किस एक धर्म का वध (नाश) करना उत्तम लगता हैं?"

(भगवान्—) "साधक क्रोध का नाश कर सुख से सोता है, क्रोध का नाश करने वाले को किसी प्रकार का शोक (चिन्ता) नहीं करना पड़ता। हे वासव! यह क्रोध पहले मीठा लगता है, इस का मूल विषसम्पृक्त है। इस का नाश करना ही बुद्धिमानों द्वारा प्रशस्त है। उस (क्रोध)को नष्ट करने पर साधक को कोइ शोक नही करना पड़ता है"॥ •

२१. दुर्वर्ण्यसूत्र : : क्रोध न करने का महत्व

२९. **श्रावस्ती के** जेतवन में ही...। वहाँ...भगवान् ने यह बताया— "भिक्षुओ! पहले कभी कोई दुर्वर्ण, विरूप (भद्दे आकार वाला) यक्ष देवराज शक्र के सिंहासन के पास खड़ा था। भिक्षुओ! उसे देखकर वहाँ उपस्थित त्रायस्त्रिंश देव यों खिन्न तथा उद्विग्न

देवानमिन्दस्स आसने निसिन्नो' ति! यथा यथा खो, भिक्खवे, देवा तावतिंसा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति तथा तथा सो यक्खो अभिरूपतरो चेव होति दस्सनीयतरो च पासादिकतरो च।

"अथ खो, भिक्खवे, देवा तावतिंसा येन सक्को देवानमिन्दो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा सकं देवानमिन्दं एतदवोचुं—'इध ते, मारिस, अञ्ञतरो यक्खो दुब्बण्णो ओकोटिमको सक्कस्स देवानमिन्दस्स आसने निसिन्नो। तत्र सुदं, मारिस, देवा तावतिंसा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो! अयं यक्खो दुब्बण्णा कोटिमको सक्कस्स देवानमिन्दस्स आसने निसिन्नो ति। [R.238] यथा यथा खो, मारिस, देवा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति तथा तथा सो यक्खो अभिरूपतरो चेव होति दस्सनीयतरो च पासादिकतरो चा ति। सो हि नून, [B.240] मारिस, कोधभक्खो यक्खो भविस्सती' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो येन सो कोधभक्खो यक्खो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दक्खिणजानुमण्डलं पठवियं निहन्त्वा येन सो कोधभक्खो यक्खो तेनञ्जलिं पणामेत्वा तिक्खत्तुं नामं सावेति—'सक्कोहं मारिस, देवानमिन्दो, सक्कोहं, मारिस, देवानमिन्दो' ति। यथा यथा खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो नामं सावेसि तथा तथा सो यक्खो दुब्बण्णतरो चेव अहोसि ओकोटिमकतरो च। दुब्बण्णतरो चेव हुत्वा ओकोटिमिन्दो च तत्थेवन्तरधायी ति। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सके आसने निसीदित्वा देवे तावतिंसे अनुनयमानो तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि—

होने लगे—"आश्चर्य है कि यह दुर्वण विरूप यक्ष देवराज शक्र के सिंहासन के पास कैसे और क्यों खड़ा है?" इससे भी अधिक आश्चर्य यह था कि ज्यों ज्यों वे देवता उस यक्ष को देखकर खिन्न तथा उद्विग्न हो रहे थे त्यों त्यों वह यक्ष देखने में सुन्दर रूप तथा सुन्दराकृति होता जा रहा था।

"तब, भिक्षुओ! ने त्रायस्त्रिंशवासी देवराज शक्र के पास गये तथा उनसे यों बोले—'मार्ष! यह कोई यक्ष आपके...सुन्दराकृति होता जा रहा है। अवश्य ही यह यक्ष अपने क्रोध को जीर्ण शीर्ण करने वाला है'!

"यह सुनकर वह देवराज शक्र उस क्रोधभक्षा यक्ष के पास गया तथा वहाँ जाकर उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर अपने दक्षिण जानु (घुटना) को भूमि पर टिका कर, उसको तीन बार अपना नाम सुनाया—'मैं देवराज शक्र हूँ, मैं देवराज शक्र हूँ।' यहाँ भी यह आश्चर्यजनक हुआ कि ज्यों ज्यों उस देवता को शक्र अपना नाम सुना रहा था त्यो त्यों

[N.240] 'न सूपहतचित्तोम्हि, नावत्तेन सुवानयो।
न वो चिराहं कुज्झामि, कोधो मयि नावतिट्ठति॥
'कुद्धाहं न फरुसं ब्रूमि, न च धम्मानि कित्तये।
सन्निग्गण्हामि अत्तानं, सम्पस्सं अत्थमत्तनो''' ति॥

२३. सम्बरिमायासुत्तं

३०. सावत्थियं...पे०...भगवा एतदवोच—''भूतपूब्बं, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो आबाधिको अहोसि दुक्खितो बाळ्हगिलानो। अथ खो भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो येन वेपचित्ति असुरिन्दो तेनुपसङ्कमि गिलानपुच्छको। अद्दसा खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कं देवानमिन्दं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच— 'तिकिच्छमं, देवानमिन्दा' ति।

[R.239] 'वाचेहि मं, वेपचित्ति, सम्बरिमायं' ति।
'न तावाहं वाचेमि, यावाहं, मारिस, असुरे पटिपुच्छामी' ति॥

''अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो असुरे पटिपुच्छि—'वाचेमहं, मारिसा, सक्कं देवानमिन्दं सम्बरिमायं' ति? 'मा खो त्वं, मारिस, वाचेसि सक्कं

वह यक्ष दुर्वर्ण एवं विरूप होने लगा। तथा वैसा होते होते वह वहाँ अन्तर्हित हो गया। तब, भिक्षुओं! वह देवराज शक्र उस समय ये गाथायें बोला—

''मेरा चित्त कभी इतना शीघ्र उद्विग्र नहीं होता, भ्रम में पड़कर मैं जल्दी भ्रान्त भी नहीं होता। मुझे क्रोध से उद्विग्र हुए बहुत समय बीत गया। सच तो यह है कि अब मेरे चित्त में क्रोध रह ही नहीं गया॥

''क्रुद्ध होने पर भी न मैने किसी को कठोर वचन कहे, न मैं अपने गुणों का वृथा महत्त्व ज्ञापित करता हूँ। मैं अपनी सभी इन्द्रियों को संयत रखता हूँ; क्योंकि मुझे इसी में अपना परमार्थ सिद्ध होता दीखता है''॥

२३. शाम्बरिमायासूत्र : : शाम्बरी माया

३०. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही... ।...वहाँ भगवान् ने यह कहा—''भिक्षुओ ! पहले कभी एक बार वेपचित्ति किसी रोग से आक्रान्त हो गया।

''भिक्षुओ! देवराज शक्र असुरेन्द्र का कुशलमङ्गल पूछने उसके पास गया। तब उस असुरेन्द्र ने देवराज को दूर से आते ही देख लिया। देख कर वह देवराज से बोला— ''देवराज! आप मेरी चिकित्सा करें।'' देवराज ने कहा—''यदि आप मुझे शाम्बरी माया सिखा दें तो मैं आपके रोग की चिकित्सा कर दूँ''। असुरेन्द्र ने कहा—''मैं असुरों से परामर्श करके ही इस विषय में कुछ निश्चित कह पाऊँगा''।

देवानमिन्दं सम्बरिमायं' ति। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कं देवानमिन्दं गाथाय अज्झभासि—

'मायावी मघवा सक्क, देवराज सुजम्पति। [B.241]
उपेति निरयं घोरं, सम्बरो व सतं समं''' ति॥

२४. अच्चयसुत्तं

३१. सावत्थियं...पे०...आरामे। तेन खो पन समयेन द्वे भिक्खू सम्पयोजेसुं। तत्रेको भिक्खु अच्चसरा। अथ खो सो भिक्खु तस्स भिक्खुनो सन्तिके अच्चायं अच्चतो देसेति; सो भिक्खु नप्पटिग्गण्हाति। अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना को ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—''इध, भन्ते, द्वे भिक्खू सम्पयोजेसुं, तत्रेको भिक्खु अच्चसरा। अथ खो सो, भन्ते, भिक्खु तस्स भिक्खुनो सन्तिके अच्चयं अच्चयतो देसेति, सो भिक्खु नप्पटिग्गण्हाती'' ति।

''द्वे मे, भिक्खवे, बाला। यो च अच्चयं अच्चयतो न पस्सति, यो च [N.241] अच्चयं देसेन्तस्स यथाधम्मं नप्पटिग्गण्हाति—इमे खो, भिक्खवे, द्वे बाला। द्वे मे, भिक्खवे, पण्डिता। यो च अच्चयं अच्चयतो पस्सति, यो च अच्चयं देसेन्तस्स यथाधम्मं पटिग्गण्हाति—इमे खो, भिक्खवे, द्वे पण्डिता।

''भिक्षुओ! तब असुरेन्द्र ने असुरों के पास जाकर पूछा—'क्या मैं देवराज को शाम्बरी माया सिखा दूँ?' असुरों ने कहा—'नहीं, मार्ष! उन्हें यह माया न सिखाना।'

''भिक्षुओ! तब असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवराज से यह गाथा कही—

'हे मघवन्, देवराज, सुजापति! माया करने वाला घोर नरक में गिरता है। उसे वहाँ सैकड़ों वर्ष तक वह नरक, शम्बर की तरह, भोगना पड़ता है'''॥

२४. अत्ययसूत्र : : अपराध एवं क्षमा

३१. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। उस समय दो भिक्षुओं में किसी बात पर कलह हो गया। तब उनमें से एक भिक्षु को अपना अपराध समझ में आ गया। वह उस भिक्षु से क्षमा माँगने गया; परन्तु उस दूसरे भिक्षु ने उसको क्षमा करना स्वीकार नहीं किया।

तब कुछ भिक्षुओं ने भगवान् के पास जाकर यह घटना सुनायी। तथा उन्होंने यह कहा—'भन्ते! यहाँ दो भिक्षु...स्वीकार नहीं किया।' यह सुनकर भगवान् ने कहा—''ये दोनों ही भिक्षु मूर्ख हैं। जो पहले अपराध को अपराध नहीं मानता तथा जो बाद में दूसरे

"भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुधम्मायं सभायं देवे तावतिंसे अनुनयमानो तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

'कोधो वो वसमायातु, मा च मित्तेहि वो जरा।
[R.240] अगरहियं मा गरहित्थ, मा च भासित्थ पेसुणं।
अथ पापजनं कोधो, पब्बतोवाभिमद्दती''' ति॥ •

२५. अक्कोधसुत्तं

३२. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू...पे०...भगवा एतदवोच–"भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुधम्मायं सभायं देवे तावतिंसे अनुनयमानो तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

'मा वो कोधो अज्झभवि, मा च कुज्झित्थ कुज्झतं।
अक्कोधो अविहिंसा च, अरियेसु च पटिपदा।
अथ पापजनं कोधो, पब्बतोवाभिमद्दती''' ति॥ •

ततिय वग्गो॥

द्वारा, क्षमा माँगने पर, क्षमा नहीं करता। इसके विपरीत ये दोनों 'बुद्धिमान्'(पण्डित) कहलाते हैं– जो अपराध को पहले ही अपराध की तरह स्वीकार कर लेता है, तथा जो दूसरे के द्वारा क्षमा माँगने पर क्षमा कर देता है।

"भिक्षुओ! पहले कभी देवराज शक्र ने अपनी सुधर्मा देवसभा में देवों द्वारा पूछे जाने पर यह गाथा कही थी–

'तुम लोग अपने क्रोध को वश में रखो। मित्रों के साथ व्यर्थ क्रोध नहीं करना चाहिये कि तुम्हारी मित्रता में कलङ्क लग जाय। अनिन्दनीय पुरुष की निन्दा नहीं करनी चाहिये। तथा किसी की झूठी चुगली भी नहीं करनी चाहिये। यह क्रोध तो हीन (असंयत) पुरुष को पर्वत की तरह दबा देता है'''॥ •

२५. अक्रोधसूत्र : : क्रोध का त्याग

३२. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् **श्रावस्ती के** जेतवन में ...। वहाँ भिक्षुओं को भगवान् ने यह उपदेश किया–

"पहले कभी, भिक्षुओ! देवराज शक्र ने...यह गाथा कही–

'तुम्हें क्रोध अपने वश में न कर ले। क्रोध करने वाले पर भी तुम्हें क्रोध न करना चाहिये। अक्रोध एवं अहिंसा–ये दोनों आर्यों के परम्परागत गुण हैं। क्रोध तो पापी (क्रोधी) पुरुष को, पर्वत की तरह, दबा बैठता है'''॥ •

तृतीय वर्ग समाप्त॥

तस्सुद्दानं

छेत्वा दुब्बण्णियमाया, अच्चयेन अकोधनो।
देसितं बुद्धसेट्ठेन, इदं हि सक्कपञ्चकं ति॥

सक्कसंयुत्तं समत्तं॥

सगाथवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

देवता देवपुत्तो च, राजा मारो च भिक्खुनी।
ब्रह्मा ब्राह्मण वङ्गीसो, वनयक्खेन वासवो ति॥

॥ सगाथवग्गसंयुत्तपालि निट्ठिता॥

इस तृतीय वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—इस तृतीय वर्ग में भगवान् बुद्ध ने ये पाँच सूत्र उपदिष्ट किये हैं— २१. छित्वासूत्र, २२. दुर्वर्णसूत्र, २३. मायासूत्र, २४. अक्षय सूत्र एवं २५. अक्रोधसूत्र। यह वर्ग **शक्रपञ्चक** कहलाता है; क्योंकि इसमें सभी सूत्रों में शक्र के साथ हुआ संवाद वर्णित है॥

शक्रसंयुक्त समाप्त॥

सगाथवर्ग प्रथम समाप्त॥

समाथ वर्ग में व्याख्यात संयुक्तों की सूची— इस प्रथम सगाथवर्ग में ग्यारह (११) संयुक्त व्याख्यात हुये हैं— १. देवतासंयुक्त, २. देवपुत्रसंयुक्त, ३. राजसंयुक्त, ४. भारसंयुक्त, ५. भिक्षुणीसंयुक्त, ६.ब्रह्मसंयुक्त, ७. ब्राह्मणसंयुक्त, ८. वङ्गीशसंयुक्त, ९. वनसंयुक्त, १०. यक्षसंयुक्त एवं ११. शक्रसंयुक्त॥

॥ सगाथवर्ग संयुक्तनिकायपालि समाप्त॥

दसबलसेलप्पभवा, निब्बाणमहासमुद्दपरियन्ता।
अट्ठङ्गमग्गसलिला, जिनवचननदी चिरं वहतु॥

['बुद्ध' रूपी महान् पर्वत से निःसृत, 'निर्वाण' रूप महासमुद्र तक जाने वाली, 'अष्टाङ्गिक मार्ग' रूप जल से पूर्ण यह 'बुद्धवाणी' रूप गङ्गा सदा बहती रहे।]